केदारखण्ड पुराण

खण्ड ३

स. (डा.) कृष्णकुमार

दिनांक	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या

केदारखण्डपुराणम्

(मूल संस्कृत, हिन्दी अनुवाद एवं विस्तृत समीक्षा)

सम्पादकः
डा० कृष्णकुमार

प्रकाशक:
प्राच्य विद्या अकादमी
मिश्रा बाग, हनुमानगढ़ी
कनखल (हरिद्वार)

पुन: मुद्रित: 2002
मूल्य: रु0 350.00

वितरक
मयंक प्रकाशन
मिश्रा बाग हनुमानगढी,
कनखल

मुद्रक:
मनोजकुमार
278, गोविन्दपुरी,
हरिद्वार 249401

केदारखण्डपुराणम्

(मूल संस्कृत, हिन्दी अनुवाद एवं विस्तृत समीक्षा)

सम्पादक:
विद्यामार्तण्ड डा० कृष्णकुमार
आयुर्वेदालङ्कार
(एम० ए० साहित्याचार्य,
पी० एच० डी०, डी० लिट्)

प्राच्य विद्या अकादमी
मिश्रा बाग, कनखल (हरिद्वार)

प्राक्कथन

भारतीय धर्म, संस्कृति, सभ्यता, साहित्य, इतिहास और दार्शनिक चिन्तन की दृष्टि से पुराणों का महत्त्व असंदिग्ध, निर्विवाद और सर्वमान्य है। वस्तुतः भारतीयता का मुख्य आधार पुराण ही हैं, जो कि वैदिक साहित्य के अनन्तर सर्वमान्य प्रामाणिक वचनों को प्रस्तुत करते हैं। पुराणों में मानव-जीवन से सम्बन्धित सभी तत्त्वों का विशद विवेचन एवं विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। वैदिक संहितायें आर्य जाति के धर्म और संस्कृति की मूल हैं, तथापि उनकी विशद लोकसम्मत व्याख्या पुराणों में ही है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये प्राचीन ऋषियों ने पुराणों के रूप में विशाल-व्यापक साहित्य की रचना की थी। सामान्यतः इसमें १८ पुराणों और १८ उपपुराणों की गणना की जाती है। इनका लेखन, संग्रह और सम्पादन सत्यवती पुत्र पाराशर व्यास के नाम से प्रसिद्ध है।

अठारह पुराणों एवं अठारह उपपुराणों के अतिरिक्त भारत के विभिन्न प्रदेशों से सम्बन्धित पुराणों की रचना भी मध्य युग में हुई। इनमें एक पुराण 'केदारखण्ड पुराण' भी है। यह पुराण केदारखण्ड (गढवाल) प्रदेश से सम्बन्धित है। 'केदारखण्ड पुराण' के प्रत्येक अध्याय के अन्तिम भाग के पादलेख[1] से तो यह प्रतीत होता है कि यह 'स्कन्दपुराण' के अन्तर्गत है, परन्तु वास्तव में यह उससे भिन्न ही है। 'स्कन्दपुराण' के 'माहेश्वर खण्ड' का एक उपखण्ड 'केदारखण्ड पुराण' भी है, परन्तु वह 'केदारखण्ड पुराण' प्रस्तुत 'केदारखण्ड पुराण' से बिलकुल भिन्न है। प्रस्तुत 'क़ेदारखण्ड पुराण' केदारखण्ड (गढवाल) की सांस्कृतिक, धार्मिक, दार्शनिक और भौगोलिक परम्पराओं को अभिव्यक्त करता है। केदारखण्ड क्षेत्र (गढवाल) से सम्बन्धित होने के कारण यह पुराण गढवालवासियों के लिये तो बहुत अधिक आदरणीय है ही, इस क्षेत्र के धार्मिक महत्त्व के कारण सभी भारतीयों के लिये आदर का पात्र है।

पौराणिक साहित्य में हिमालय देवतात्मा और पृथिवी का मानदण्ड हैं[2]। कालिदास

---

१. इति श्री स्कान्दे केदारखण्डे एकाशीतिसाहस्रे केदारमण्डलप्रशंसावर्णन नाम षडधिकद्विशततमोऽध्यायः।

२. अस्त्युत्तरस्यां दिशि वै गिरीशो हिमवान् महान्।
.... मानदण्ड इव क्षितेः।।
शिवपुराण-पार्वतीखण्ड १.१४

इस कथन की सम्पुष्टि करते हैं[1]। हिन्दुओं के अधिकांश तीर्थ यहां हैं। हिम से आच्छादित और नित्य-सलिला, निर्मल-पवित्र सरिताओं से भरे इस उत्तुङ्ग महान् पर्वत पर सभी प्रकार की धनसम्पत्तियां हैं। यह परम ब्रह्म का, सभी देवताओं का निवास है। हिमालय के पांच खण्ड हैं- नेपाल, कूर्माचल, केदार, जलन्धर और कश्मीर। इनमें केदारखण्ड मध्य हिमालय है तथा गंगा- यमुना की उद्गम भूमि है। इन सरिताओं के नाम-श्रवण, दर्शन, ध्यान और स्नान से त्रिविध संताप नष्ट होते हैं, महान् सुख प्राप्त होता है, कल्याण होता है और परम गति प्राप्त होती है। 'केदारखण्ड पुराण' इस क्षेत्र की सभी विशेषताओं को, महत्ता को प्रकट करता है। अत: यह पुराण सभी भारतीयों के घरों में सरल, सुबोध और सुपाठ्य रूप में होना आवश्यक है।

'केदारखण्ड पुराण' का प्रकाशन बहुत समय पूर्व १९०५ ई० में नन्दप्रयाग से, टिहरी नरेश की प्रेरणा से हुआ था। संस्करण बहुत पुराना हो गया है एवं उपलब्ध पाण्डुलिपियों के अनुसार इसमें संशोधन की बहुत अधिक आवश्यकता है। इस संस्करण से विषय भी पूरी तरह स्पष्ट नहीं होता है। बहुत समय से यह उपलब्ध भी नहीं हैं, किन्तु कहीं कहीं पुस्तकालयों में कोई प्रति दृष्टिगोचर हो जाती है। 'केदारखण्ड पुराण' का एक संस्करण मूल संस्कृत में वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से पत्राकार रूप में २० वीं शताब्दी ई० के प्रारम्भ में प्रकाशित हुआ था। सामान्य पाठक उसको न तो समझ सकता है और नाहीं विषय का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। यह भी इस समय उपलब्ध नहीं है। इन दोनों ही संस्करणों में 'केदारखण्ड पुराण' की भूमिका और समीक्षा भी नहीं है, जिससे भक्त सहृदय पाठक इसके विषयों को सरलता से समझ सकें।

इस प्रयास की परम आवश्यकता थी कि 'केदारखण्ड पुराण' का एक विवेचनात्मक संस्करण इस प्रकार से सम्पादित होकर अनुवाद सहित प्रकाशित हो, जिसमें विस्तृत समीक्षात्मक भूमिका हो, विषय को स्पष्ट करने वाली विषय-सूची हो, श्लोकों का सरल-सुबोध भाषा में अनुवाद हो और केदारखण्ड से सम्बन्धित विभिन्न तत्त्वों को स्पष्ट करने वाले लेख हों।

सन् १९८२ ई० में, जबकि मैं गढवाल विश्वविद्यालय में संस्कृत विभागाध्यक्ष पद पर कार्यरत था, 'केदारखण्ड पुराण' के समीक्षात्मक अध्ययन तथा हिन्दी अनुवाद के लिये एक शोध योजना विश्वविद्यालय अनुदान आयोग नई दिल्ली में प्रस्तुत की थी। इसको आयोग ने स्वीकार कर वित्तीय सहायता प्रदान की थी। उस समय मेरे निर्देशन में कार्य करने वाले अनेक शोध छात्रों ने भी इस पुण्य कार्य में उत्साह के साथ अपना योगदान किया। डा० ललिताप्रसाद पाण्डेय ने इसमें काफी समय तक कार्य कर कुछ

---

१. अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराज:।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थित: पृथिव्या इव मानदण्ड:।।

कुमारसम्भव १. १ ।।

अध्यायों का अनुवाद किया ओर कुछ लेख लिखे। इसके अतिरिक्त कु० रश्मि खंडूरी, कु० उषा विष्ट, कु० जयन्ती जुगरान, श्रीमती शैलबाला चमोली और कु० अंजलि उनयाल का भी इस पवित्र कार्य में योगदान रहा। अनेक वर्षों की कठोर तपस्या से तथा शोध छात्र-छात्राओं के सहयोग से इस अध्ययन को पूरा किया गया। इसके लिये केदारखण्ड (गढवाल) के विविध स्थलों की पैदल यात्रायें कर प्रत्यक्ष दर्शन करके शोध कार्य को अन्तिम रूप दिया गया। ये सभी छात्र-छात्रायें वात्सल्य और आशीर्वाद की पात्र हैं। परम प्रभु केदारेश्वर की अनुकम्पा से वे सभी अच्छी स्थिति में है और उन्नति कर रहे हैं।

'केदारखण्ड पुराण' के इस संस्करण को सम्पादित और प्रकाशित करना अति श्रमसाध्य है और महान् धन के व्यय की अपेक्षा भी रखता है। प्राच्य विद्या अकादमी ने 'केदारखण्ड पुराण' के इस संस्करण को प्रकाशित करने का निर्णय लिया था। परन्तु यह संस्था धन के अभाव में इस सम्बन्ध में बहुत समय तक कुछ न कर सकी। अब इसे प्रकाशित करने का साहस इसलिये कर रही है कि भारत सरकार के राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान ने इस प्रकाशन के लिये प्रोत्साहन और सहयोग देना स्वीकार कर लिया है। इस पवित्र और पुण्य कार्य के लिये प्राच्य विद्या अकादमी तो राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान की कृतज्ञ है ही, भारतीय संस्कृति, केदारखण्ड और गङ्गा-यमुना के प्रति भक्ति रखने वाले सभी जन उसके प्रति अनुगृहीत है।

प्राच्य विद्या अकादमी के सदस्यों और पदाधिकारियों ने भी इस पुराण के प्रकाशन के लिये महान् सहयोग प्रदान किया है। उन सबके प्रति मैं अत्यधिक कृतज्ञ हूँ। वस्तुतः यह प्रकाशन एक सामूहिक प्रयत्न, सहयोग और सद्भावना का ही परिणाम है। डा० निरूपण विद्यालंकार, श्री बंसीधर पोखरियाल, डा० भारतभूषण विद्यालंकार, डा० महावीर आदि विद्वानों के प्रति मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिनका सहयोग और परामर्श मुझको सदैव प्राप्त होता रहा।

'केदारखण्ड पुराण' का प्रस्तुत संस्करण भारतीय जनों की सेवा में प्रस्तुत है। आशा है कि यह भारतीयता के प्रति श्रद्धा और भक्ति रखने वाले सभी जनों की आकांक्षा को पूरा करने वाला होगा।

वैशाख- १, २०५० वि० सम्वत् — विनीत

१३ अप्रैल, १९९३ — कृष्णकुमार

निदेशक प्राच्य विद्या अकादमी

कनखल (हरिद्वार)

भूमिका

१. पुराणों का महत्त्व और उनकी रचना

भारतीय धर्म, संस्कृति और साहित्य की दृष्टि से पुराणों का बहुत अधिक महत्त्व है। वस्तुतः भारतीय संस्कृति, सभ्यता, धर्म, राजनीति, दर्शन और सामाजिक संगठन के मूल आधार पुराण हैं। पुराणों में मनुष्य के जीवन से सम्बन्धित सभी तत्त्वों का विस्तृत वर्णन है।

पुराण शब्द का अर्थ है- प्राचीन आख्यान, प्राचीन घटनाओं को बताने वाले ग्रन्थ, जगत् की आदि प्राचीन सृष्टि, उत्पत्ति और विकास के क्रम को बताने वाली पुस्तकें, पुरुष और प्रकृति के स्वरूप का चिन्तन करने वाला साहित्य और प्राचीन भारतीय परम्पराओं को प्रतिपादित करने वाली संहितायें।

पुराणों की रचना कब हुई और किसने की, इस विषय को सप्रमाण प्रस्तुत करना और प्रतिपादित करना असम्भव नहीं तो दुःसाध्य कार्य अवश्य है। भारतीय परम्पराओं के अनुसार पुराणों की रचना सत्यवती के पुत्र पाराशर व्यास ने की थी। पुराणों की संख्या अठारह कही जाती है और अठारह ही उपपुराण हैं। अन्य भी पुराणों-उपपुराणों के नाम मिलते हैं। इन सभी के रचयिता महर्षि कृष्ण द्वैपायन बादरायण व्यास कहे गये हैं। इसके साथ ही महर्षि व्यास को 'महाभारत' का रचयिता और वैदिक संहिताओं का सम्पादन करने वाला भी कहा जाता है।

आधुनिक समालोचकों के अनुसार पुराणों की रचना के प्रारम्भ का समय सामान्यतः ईसा पूर्व पांचवीं शताब्दी से ईसा की पांचवीं शताब्दी माना गया है। यह समय कुछ पहले का और बाद का भी हो सकता है। पुराणों में अनेक राजवंशों का वर्णन है, जिनके आधार पर भी इनके रचना-काल को निर्धारित करने का प्रयास किया गया है।

२. पुराणों का वर्ण्य विषय

पुराणों में सृष्टि की रचना और लोक-व्यवहार से सम्बन्धित सभी विषयों का वर्णन है। 'विष्णु पुराण' के अनुसार वर्ण्य विषयों के आधार पर पुराण का लक्षण निम्न है-

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्।।

अर्थात्, पुराणों में पांच विषयों का वर्णन है-

(१) सर्ग- सृष्टि की उत्पत्ति
(२) प्रतिसर्ग- प्रलय और उसके पश्चात् सृष्टि की पुनः उत्पत्ति
(३) वंश- देवताओं और ऋषियों की वंशावलियां
(४) मन्वन्तर- प्रत्येक मनु का समय और उसकी प्रमुख घटनायें
(५) वंशानुचरित- प्रमुख राजाओं और राजवंशों के विवरण

पुराणों में इतिहास की सामग्री प्रचुर मात्रा में है। अतः अनेक विद्वानों ने पुराणों को विश्व-सृष्टि का इतिहास कहा है।

पुराणों में अन्य भी अनेक विषयों के वर्णन हैं। जैसे - प्रार्थना, उपासना, उपवास, व्रत, तीर्थ, दर्शन, धार्मिक कर्मकाण्ड, विविध प्रकार के तकनीकी विषय, जैसे-ज्योतिष, शरीरशास्त्र, आयुर्वेद, वास्तुविद्या, यन्त्रविज्ञान, पशुविज्ञान, वनस्पतिविज्ञान, व्याकरण, काव्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र, आदि। पुराण प्राचीन भौगोलिक ज्ञान का भी विशद चित्रण प्रस्तुत करते हैं। इससे न केवल भारतवर्ष की ही, अपितु विश्व के और ब्रह्माण्ड के भी भूगोल और खगोल का काफी ज्ञान प्राप्त होता है।

पुराणों का महत्त्व विशेष रूप से धार्मिक और आध्यात्मिक समझा जाता है। एक प्रकार से ये हिन्दू जाति के मूल धर्म-ग्रन्थ हैं। हिन्दुओं की धार्मिक परम्परायें, कर्मकाण्ड और लोक विश्वास बहुत कुछ पुराणों में प्रतिपादित किये गये हैं। यद्यपि हिन्दू धर्म एवं संस्कृति का मूल आधार वैदिक और स्मृति साहित्य है, तथापि पुराणों को वेदों के व्याख्या ग्रन्थ मानकर हिन्दू धर्म का मूल कहा गया है। इनको पञ्चम वेद भी कहा जाता है। तो भी पौराणिक मान्यताओं में वैदिक मान्यताओं की अपेक्षा से पर्याप्त अन्तर हो गया है।

पुराणों में सृष्टि की उत्पत्ति, प्रलय और पुनः सृष्टि के विस्तृत विवरण दिये गये हैं। इनमें प्रतिपादित ईश्वरोपासना सरल है। ज्ञान और कर्म की अपेक्षा भक्ति को प्रधानता दी गई है। पुराण देवताओं की भौतिक शक्तियों के स्वरूप को मूर्त रूप में प्रस्तुत करते हैं। इनका अपना एक विशिष्ट रूप है। मनुष्यों को अच्छे या बुरे कर्मों के आधार पर एवं भक्ति के आधार पर विविध लोकों की प्राप्ति होती है। पुराणकारों ने ईश्वर की तीन शक्तियों-सृष्टि की उत्पत्ति रक्षा और विनाश के आधार पर तीन महादेवताओं-ब्रह्मा, विष्णु और महेश की कल्पना की, जो कि मूल रूप में एक ही हैं। इनकी भक्ति, उपासना और प्रार्थना कल्याणकारी है। अन्य इन्द्र आदि देवता उस परम

प्रभु की और प्रकृति की महान् शक्तियां हैं। महादेवताओं के और देवताओं के अपने लोक हैं। इस उपासना-प्रार्थना के लिये अनेक कर्मकाण्डों की कल्पना की गई। पृथिवी पर भी देवताओं के विशिष्ट स्थलों की कल्पना हुई। उनको तीर्थ मान कर तीर्थयात्रा का विधान हुआ।

३. पुराणों की अठारह संख्या और उनका संक्षिप्त परिचय

पुराणों के अनुसार मौलिक रूप से पुराण एक ही था[१]। ब्रह्मा ने सर्वप्रथम इनकी रचना के विकास के लिये विचार किया। मौलिक रूप से इसमें एक करोड श्लोक थे। महर्षि व्यास ने इनका सार चार लाख श्लोकों में प्रत्येक द्वापर युग में घोषित किया। पुराणों की कोई प्राचीन परम्परा थी या आरम्भ में एक ही पुराण था या यह कल्पना मात्र है, इन सब तथ्यों को निश्चित रूप से कहना कठिन है। पुराणों की संख्या, जो लोक में प्राप्त हैं, अठारह है-

(१) ब्रह्मपुराण, (२) पद्मपुराण, (३) विष्णुपुराण, (४) वायुपुराण, (५) श्रीमद्भागवतपुराण, (६) नारदपुराण, (७) मार्कण्डेयपुराण, (८) अग्निपुराण, (९) भविष्यपुराण, (१०) ब्रह्मवैवर्त पुराण, (११) लिङ्ग पुराण, (१२) वराह पुराण, (१३) स्कन्दपुराण, (१४) वामन पुराण, (१५) कूर्मपुराण, (१६) मत्स्यपुराण, (१७) गरुडपुराण और (१८) ब्रह्माण्डपुराण।

इन पुराणों का संक्षिप्त परिचय निम्न है-

(१) ब्रह्मपुराण-

ब्रह्मपुराण अष्टादश पुराणों में आदि और प्रथम माना जाता है। इसमें २४५ अध्याय तथा १४००० श्लोक हैं। इसको 'आदि ब्रह्म' पुराण भी कहते हैं।

ब्रह्मपुराण' ब्रह्मविषयक पुराण है। इसमें पुराणसम्मत सभी विषयों का समावेश हुआ है। अन्य देवों का भी इस पुराण में वर्णन है। २१ अध्यायों (३०-५०) में पार्वती विषयक आख्यान हैं। इसमें अनेक प्राचीन तीर्थों-के वर्णन माहात्म्य सहित वर्णित हैं (अध्याय ७०-१७५)। भगवान् कृष्ण का वर्णन है। सूर्य की उपासना है। सांख्य-योग की समीक्षा की गई है। भूगोल का विशेष वर्णन नहीं है।

---

१. मत्स्यपु० ५३.३-११, वायुपुराण १.६०-६१, ब्रह्माण्डपुराण १.१.४०-४१, लिङ्गपुराण १.२.२, नारदपुराण १.९२, पद्मपुराण ५.१.४५-५०

२. धर्मशास्त्र का इतिहास चतुर्थ भाग पृ० ३८१

(२) पद्‌मपुराण-

'स्कन्दपुराण' के पश्चात् 'पद्‌मपुराण' आकार में सब पुराणों में विशाल है। यह 'महाभारत' से लगभग आधा और 'श्रीमद्‌भागवत पुराण' से तीन गुना है। इसमें श्लोकों की संख्या ५५००० है। विष्णु भक्ति का प्रतिपादक यह पुराण अति विशाल है। इसके दो संस्करण उपलब्ध हैं- बंगाली संस्करण और देवनागरी संस्करण।

देवनागरी संस्करण आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली के अन्तर्गत चार भागों में प्रकाशित हुआ है। 'पद्‌मपुराण' में पांच खण्ड हैं- (१) सृष्टि खण्ड, (२) भूमि खण्ड, (३) स्वर्ग खण्ड, (४) पाताल खण्ड, और (५) उत्तर खण्ड। इस पुराण के भूमि खण्ड से विदित होता है कि इसमें पहले ये ही पांच खण्ड थे। परन्तु बाद में छः खण्डों की कल्पना भी की गई । 'पद्‌मपुराण' के बंगाली संस्करण में आज भी पांच खण्ड हैं।

'पद्‌मपुराण' के सृष्टि खण्ड के ८२ अध्यायों में समुद्रमन्थन, पृथु की उत्पत्ति, पुष्कर तीर्थ के निवासियों का धर्मकथन, वृत्रासुरसंग्राम, कार्त्तिकेय की उत्पत्ति, रामचरित, तारकवध आदि कथायें हैं। सृष्टि खण्ड पांच पर्वों में विभक्त है- पौष्कर पर्व, तीर्थपर्व, तृतीय पर्व (दक्षिणा देने वाले राजाओं का वर्णन), चतुर्थ पर्व (राजाओं का वंशानुकीर्तन) और पंचम पर्व (मोक्ष साधन)।

भूमि खण्ड में भी अनेक कथायें हैं। सोमशर्मा नामक ब्राह्मण की पितृभक्ति, राजा पृथु का जन्म और चरित्र, आध्यात्मिक संवाद, विष्णुभक्ति की कथा और च्यवन महर्षि की कथा इसमें है।

स्वर्गखण्ड में विभिन्न देवलोकों का;देवता-भूत-पिशाच-विद्याधर-अप्सरा-यक्ष आदि के लोकों का वर्णन है।

पाताल खण्ड में नागलोक का विशेष रूप से वर्णन है। व्यास द्वारा १८ पुराणों को रचे जाने की कथा भी इसमें है।

उत्तरखण्ड सबसे विशाल है तथा इसमें २८२ अध्याय हैं। इसमें वैष्णव मत से सम्बन्धित विविध आख्यानों, व्रतों, उत्सवों आदि का वर्णन किया गया है।

(३) विष्णु पुराण-

वैष्णव दर्शन का मूल आधार 'विष्णुपुराण' है। इसके खण्डों को अंश कहते हैं। इस पुराण में ६ अंश और १२६ अध्याय हैं। प्रथम अंश में सृष्टि वर्णन, द्वितीय अंश में भूगोल और तृतीय अंश में आश्रम सम्बन्धी कर्तव्यों और वैदिक शाखाओं का निर्देश है। चतुर्थ अंश विशेष रूप से ऐतिहासिक है। यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु,अनु और कुरु इन पांच क्षत्रिय वंशों का भिन्न भिन्न अध्यायों में वर्णन किया गया है। पञ्चम अंश में कृष्ण के अलौकिक चरित का वर्णन है। षष्ठ अंश में प्रलय और भक्ति का वर्णन

है। चार युगों- कृतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग को दर्शाकर कलियुग के दोषों का वर्णन किया गया है।

(४) वायु पुराण-

'वायु पुराण' को अति प्राचीन माना जाता है। इसमें ११२ अध्याय और मूल रूप से १२००० श्लोक थे। बाद में इसमें अनेक अध्याय और श्लोक जोड़े गये, जो २४००० तक हो गये। इस पुराण में चार खण्ड हैं, जो पाद कहलाते है। ये हैं- प्रक्रियापाद, अनुषङ्गपाद, उपोद्घातपाद और उपसहांरपाद।

'वायुपुराण' भौगोलिक वर्णनों के लिये विशेष रूप से प्रसिद्ध है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता शिव के चरित्र का विस्तृत वर्णन करना है। परन्तु यह साम्प्रदायिकता से दूषित नही है। इस पुराण में कृष्ण के अवतारों का भी वर्णन है और गुप्तवंश का वृत्तान्त दिया गया है।

(५) श्रीमद्भागवत पुराण

'श्रीमद्भागवत पुराण' में १२ स्कन्ध और १८००० श्लोक हैं। यह पुराणों के पञ्च लक्षणों से समन्वित है तथा महनीय आध्यात्मिक रूप को प्रकट करता है।

'श्रीमद्भागवत पुराण' में भूगोल तथा खगोल, वंश और वंशानुचरित का विस्तृत वर्णन है। श्रीकृष्ण को भगवान् का रूप चित्रित करने तथा उनकी ललित लीलाओं का विवरण देने में यह पुराण अद्वितीय है। यह पुराण भगवान् विष्णु की महिमा का प्रतिपादक है। 'भागवत पुराण' के माहात्म्य का विचार कर पंडितों में कहावत प्रसिद्ध हुई "विद्यावतां भागवते परीक्षा"।

(६) नारद पुराण

'नारद पुराण' भगवान् विष्णु की भक्ति का प्रतिपादक है। इस पुराण के दो भाग हैं। प्रथम भाग में १२५ अध्याय हैं और दूसरे भाग में ८२१। सम्पूर्ण पुराण में २५००० श्लोक कहे गये हैं। परन्तु वर्तमान उपलब्ध प्रति में १८१०१ श्लोक मिलने हैं।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से 'नारद पुराण' का बहुत महत्त्व है। इसमें १८ पुराणों की विस्तृत अनुक्रमणी है। व्याकरण, ज्योतिष, छन्दः आदि शास्त्रों का वर्णन अलग अलग अध्यायों में किया गया है। विष्णु, राम, हनुमान्, कृष्ण, काली, महेश, वेद आदि का इसमें विधिवत् निरूपण है। पूर्व भाग में वर्ण और आश्रम के आधार, श्राद्ध, प्रायश्चित्त आदि के विधान हैं।

(७) मार्कण्डेय पुराण

'मार्कण्डेय पुराण' आकार में छोटा है। इसमे १३८ अध्याय और ९००० श्लोक

हैं। पर्जिटर ने इस पुराण का अंग्रेजी में अनुवाद किया था।

प्रसिद्ध 'दुर्गासप्तशती', जो भगवती दुर्गा की स्तुति का स्तोत्र है, 'मार्कण्डेय पुराण ' का ही अंश है। इस पुराण में दुर्गा के चरित्र का विस्तृत वर्णन है। प्राचीन समय की प्रसिद्ध ब्रह्मवादिनी महिषी मदालसा का जीवन चरित भी इस पुराण में विस्तार से है। इस पुराण के प्रवक्ता महर्षि मार्कण्डेय होने से इसका नाम 'मार्कण्डेय पुराण' हुआ।

(८) अग्निपुराण

'अग्निपुराण' मूल रूप में 'वह्निपुराण' के नाम से भी प्रसिद्ध है। इसमें ३८३ अध्याय हैं और १५००० से कुछ अधिक श्लोक हैं।

'अग्निपुराण' में 'रामायण' और 'महाभारत' की कथा दी गई है। ज्योतिषशास्त्र, धर्मशास्त्र, व्रत, राजनीति, आयुर्वेद आदि शास्त्रों का वर्णन है। छन्दःशास्त्र का निरूपण आठ अध्यायों में है। अलङ्कारशास्त्र, व्याकरण और कोष के विषयों का अनेक अध्यायों में वर्णन है। योगशास्त्र के यम-नियम आदि आठ अंगों के विवरण हैं। अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्तों के सार का संकलन है। 'श्रीमद्भगवतगीता' का सारांश भी वर्णित है।

(९) भविष्यपुराण

'भविष्यपुराण' में १४५०० श्लोक हैं। इसमें सूर्य-पूजा का विशेष रूप से वर्णन है। विभिन्न राजवंशों का इतिहास भी इस पुराण में है। 'पाराशर स्मृति' की कुछ व्यवस्थाओं का संकेत भी किया गया है।

'नारद पुराण' द्वारा दी गई अनुक्रमणी के अनुसार 'भविष्य पुराण' में पांच पर्व हैं- ब्राह्मपर्व, विष्णुपर्व, शिवपर्व, सूर्यपर्व और प्रतिसर्ग पर्व।

इस पुराण का नाम 'भविष्य पुराण' इसलिये हुआ, क्योंकि भविष्य में होने वाली अनेक घटनाओं को वर्णित किया गया है। इसमें मंगोलों, मुसलमानों आदि के आक्रमण का भी वर्णन है।

(१०) ब्रह्मवैवर्त पुराण

'ब्रह्मवैवर्त पुराण' विशाल आकार का पुराण है, जिसके चार खण्ड हैं- ब्रह्मखण्ड, प्रकृतिखण्ड, गणेशखण्ड और श्रीकृष्णखण्ड। चार खण्डों में इसका प्रकाशन आनन्दाश्रम पूना से हुआ था। इस पुराण में २७६ अध्याय तथा १८००० श्लोक हैं।

ब्रह्मखण्ड में ३० अध्याय हैं, जिनमें कृष्ण द्वारा सृष्टि की रचना का वर्णन है। १६ वें अध्याय में आयुर्वेद का उपदेश है। प्रकृतिखण्ड में भगवान् कृष्ण के आदेशानुसार प्रकृति अपने को समय-समय पर दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री तथा राधा के रूप में

परिणत करती है। गणेशखण्ड में गणपति के जन्म, कर्म और चरित का वर्णन है। सावित्री और तुलसी की कथा भी विस्तार से दी गई है। श्रीकृष्ण खण्ड में १३३ अध्यायों में कृष्ण और राधा का विशेष वर्णन है।

(११) लिङ्गपुराण

'लिङ्गपुराण' अपेक्षाकृत लघुकाय है। इसमें १६३ अध्याय और ११००० श्लोक हैं। 'लिङ्गपुराण' में लिङ्गोपासना की उत्पत्ति और शङ्कर के अवतारों का विस्तृत वर्णन है। इस पुराण के दो भाग हैं- पूर्व भाग और उत्तर भाग। पूर्व भाग में शिव द्वारा सृष्टि-उत्पत्ति का वर्णन है ओर वैवस्वत मन्वन्तर से लेकर कृष्ण के समय तक के राजवंश वर्णित हैं। इस भाग में लिङ्गोपासना का भी प्रतिपादन है। उत्तरभाग में पशु तथा पशुपति की व्याख्या की गई है तथा शिव की प्रसिद्ध अष्ट मूर्तियों के वैदिक नामों का उल्लेख है। यह शैव तन्त्रों के अनुकूल है। 'लिङ्गपुराण' में ओङ्कार के रहस्यमय अर्थ पर विशेष बल दिया गया है।

(१२) वराहपुराण

'वराहपुराण' पूर्णरूप से वैष्णव पुराण है। विष्णु ने वराह का रूप रख कर पृथिवी का पाताल से उद्धार किया था। इस कथा से विशेष सम्बन्ध रखने के कारण इस पुराण का नाम 'वराहपुराण' हुआ।

'वराहपुराण' में २१७ अध्याय और २४००० श्लोक हैं। परन्तु कलकत्ते की एशियाटिक सोसाइटी से जो संस्करण प्रकाशित हुआ है, उसमें १०७०० श्लोक हैं।

'वराहपुराण' में मधुरा-माहात्म्य (अध्याय १५२-१७२) और नचिकेतोपाख्यान (अध्याय १९३-२१२) ये दो अंश अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

(१३) स्कन्दपुराण

इस पुराण का आकार सबसे विशाल है। इसके श्लोकों की संख्या ८१००० है। इसके दो संस्करण हैं- खण्डात्मक और संहितात्मक।

संहितात्मक संस्करण में, 'सूतसंहिता' के अनुसार ६ संहितायें हैं- (१) सनत्कुमारसंहिता, (२) सूतसंहिता (३) शङ्करसंहिता, (४) वैष्णवसंहिता, (५) ब्राह्मसंहिता और (६) सौरसंहिता। इन संहिताओं में वर्तमान समय में केवल पहली तीन ही उपलब्ध हैं।

खण्डात्मक संस्करण के अनुसार इसमें ८ खण्ड हैं- (१) माहेश्वरखण्ड, (२) वैष्णवखण्ड, (३) ब्रह्मखण्ड, (४) काशीखण्ड, (५) तापीखण्ड, (६) रेवाखण्ड, (७) अवन्तीखण्ड और (८) प्रभासखण्ड। माहेश्वरखण्ड में दो खण्ड सम्मिलित हैं-

(१) केदारखण्ड और (२) कुमारिकाखण्ड। ब्रह्मखण्ड के भी दो भाग हैं- (१)ब्रह्माख्यखण्ड और (१) ब्रह्मोत्तरखण्ड।

'केदारखण्ड' नाम से एक अन्य पुराण भी उपलब्ध है। इसमें हिमालय के केदारखण्ड (गढवाल) क्षेत्र का वर्णन है। इस 'केदारखण्ड पुराण' के रचयिता ने इसको 'स्कन्दपुराण' के अन्तर्गत ही बताया है। परन्तु उसका यह कथन यथार्थ नहीं है। 'स्कन्दपुराण' का 'केदारखण्ड' अंश और गढवाल से सम्बन्धित 'केदारखण्ड पुराण' सभी दृष्टियों से, विषयगत दृष्टि से भी भिन्न हैं। सम्भवतः गढवाल (केदारखण्ड) से सम्बन्धित 'केदारखण्ड पुराण' के रचयिता ने अपनी कृति को महनीय प्रतिपादित करने के लिये इसको स्कन्दपुराणान्तर्गत कहा।

भौगोलिक क्षेत्रों का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करना 'स्कन्दपुराण' के विविध खण्डों की विशेषता है।

(१४) वामनपुराण

'वामनपुराण' लघुकाय पुराण है। इसमें ९५ अध्याय और १०००० श्लोक हैं। वामनपुराण के दो भाग किये गये हैं- पूर्व तथा उत्तर। इसमें चार संहितायें हैं - माहेश्वरी, भागवती, सौरी और गाणेश्वरी। वामनपुराण में विष्णु के वामन से प्रारम्भ करके विभिन्न अवतारों का विशद वर्णन है। इसके साथ ही शिव, शिव का माहात्म्य, शैव तीर्थ, उमा, शिव-विवाह, गणेश की उत्पत्ति, कार्तिकेय का चरित आदि विभिन्न प्रकरणों का इसमें वर्णन है। धर्मशास्त्र के विषयों का भी संक्षिप्त वर्णन 'वामनपुराण' में है।

(१५) कूर्मपुराण-

'कूर्मपुराण' नामकरण इसलिये हुआ, क्योंकि भगवान् विष्णु ने कूर्म का अवतार लेकर इस पुराण का उपदेश राजा इन्द्रद्युम्न को किया था। परन्तु सामान्यतः यह शैव पुराण ही है।

उपलब्ध 'कूर्मपुराण' में दो भाग हैं- पूर्वार्द्ध और उत्तरार्ध । पूर्वार्द्ध में ५३ और उत्तरार्ध में ४६ अध्याय हैं। उपलब्ध कुल श्लोक संख्या केवल ६००० है।

कहा जाता है कि 'कूर्मपुराण' अतिविशाल था और इसमें १८००० श्लोक थे। 'विष्णुपुराण' के अनुसार १७००० तथा 'मत्स्यपुराण' के अनुसार १८००० श्लोक 'कूर्मपुराण' में होने चाहियें। नारद सूची के अनुसार इसमें चार संहितायें थीं- (१) ब्राह्मी (२) भागवती, (३) सौरी और (४) वैष्णवी। परन्तु अब केवल ब्राह्म संहिता उपलब्ध होती है।

'कूर्मपुराण' में शैव और वैष्णव दोनों विषयों का वर्णन होने पर भी शिव की महिमा अधिक है। शाक्त सम्प्रदाय से सम्बन्धित तत्त्व भी हैं। शक्ति की पूजा पर बल

दिया गया है।

(१६) मत्स्यपुराण-

'श्रीमद्भागवत' और 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' में 'मत्स्यपुराण' के श्लोकों की संख्या १९००० कही गई है। परन्तु आनन्दाश्रम पूना से प्रकाशित 'मत्स्यपुराण' में २९१ अध्याय और १६००० श्लोक हैं। इसमें भगवान् विष्णु के मत्स्यावतार का विस्तृत वर्णन है। इसमें प्रारम्भ में ही मन्वन्तर का सामान्य वर्णन करके पितृवंश का विशेष वर्णन किया गया है।

भगवान शंकर का विस्तृत वर्णन करने के कारण 'मत्स्यपुराण' को शैव पुराण भी कहा गया है। इसमें त्रिपुरासुर के साथ शंकर के युद्ध का विस्तृत वर्णन है। इसकी अन्य विशेषतायें हैं- पितरों का वर्णन, प्रयाग-काशी-नर्मदा आदि के भौगोलिक विवरण, ऋषियों के वंश-वर्णन, राजधर्म, देवताओं की प्रतिमाओं का विधान आदि। इसके ५३ वें अध्याय में पुराणों की विषयानुक्रमणी है।

(१७) गरुडपुराण-

यह पुराण गरुड और विष्णु के संवाद के रूप में है। 'गरुडपुराण' में २६४ अध्याय और १८००० श्लोक हैं। इसके दो खण्ड हैं- पूर्वखण्ड और उत्तरखण्ड। २२९ अध्यायों के पूर्वखण्ड के आरम्भ में विष्णु और उनके अवतारों का वर्णन करके आगे विविध विद्याओं का वर्णन किया गया है।

उत्तरखण्ड में ३५ अध्याय हैं, जिनको प्रेतकर्म के नाम से जाना जाता है। मृत्यु के अनन्तर मनुष्य की क्या गति होती है, कर्म के अनुसार वह किस योनि में जन्म लेता है, कौन-कौन से भोग भोगता है, इनका उल्लेख है। प्रेतकर्म, प्रेतयोनि, प्रेतश्राद्ध, यमलोक, यमयातना, नरक आदि का विशेष चित्र 'गरुडपुराण' में अङ्कित किया गया है। श्राद्ध के समय इस पुराण का पाठ किया जाता है।

(१८) ब्रह्माण्ड पुराण-

'ब्रह्माण्डपुराण'की गणना भी १८ महापुराणों में है। इसमें १२००० श्लोक और १०९ अध्याय हैं। वायु ने इस पुराण का उपदेश महर्षि व्यास को दिया था। प्रसिद्ध रामचरित 'अध्यात्मरामायण' इसी पुराण का अंश है, जिसमें राम की कथा आध्यात्मिक रूप से कही गई है। इस पुराण में अनेक स्तोत्र एवं कवच कहे गये हैं। इनमें प्रसिद्ध हैं- गणेशकवच, तुलसीकवच, हनूमत्कवच, सिद्धलक्ष्मीस्तोत्र, सीतास्तोत्र, ललितासहस्रनाम और सरस्वतीस्तोत्र।

४. उपपुराण

अठारह पुराणों के अतिरिक्त अनेक उपपुराणों की भी उपलब्धि होती है। इनकी संख्या भी १८ कही जाती है। अठारह उपपुराणों के सम्बन्ध में दो मत हैं। प्रथम मत के अनुसार अठारह उपपुराण निम्न हैं-

(१) सनत्कुमार (२) नृसिंह, (३) नारदीय, (४) शिव, (५) दुर्वासा, (६) कपिल, (७) मानव, (८) अनुशासन, (९) आदि, (१०) कालिका, (११) साम्ब, (१२) नान्दी (१३) सौर, (१४) पाराशर, (१५) आदित्य, (१६) महेश्वर, (१७) सोम और (१८) वसिष्ठ।

'गरुड़पुराण' के अनुसार १८ उपपुराण निम्न हैं-

(१) सनत्कुमार, (२) नारसिंह, (३) स्कन्द, (४) शिवधर्म, (५) नारदीय, (६) आश्चर्य, (७) कपिल, (८) वामन, (९) औशनस, (१०) ब्रह्माण्ड, (११) वारुण, (१२) कालिका, (१३) माहेश्वर, (१४) साम्ब, (१५) सौर, (१६) पाराशर, (१७) मारीच और (१८) भार्गव।

'हिन्दू धर्मकोश' में उपपुराणों की संख्या २९ कही गई है। वे निम्न हैं-

(१) सनत्कुमार	(१६) ब्रह्माण्ड
(२) नरसिंह	(१७) माहेश्वर
(३) बृहन्नारदीय	(१८) भागवत
(४) शिव अथवा शिवधर्म	(१९) वसिष्ठ
(५) दुर्वासा	(२०) कौर्म
(६) कापिल	(२१) भार्गव
(७) मानव	(२२) आदि
(८) औशनस	(२३) मुद्गल
(९) वारुण	(२४) कल्कि
(१०) कालिका	(२५) देवीभागवत
(११) साम्ब	(२६) बृहद्धर्म
(१२) नन्दिकेश्वर	(२७) परानन्द
(१३) सौर	(२८) पशुपति
(१४) पाराशर	(२९) हरिवंश
(१५) आदित्य	

५. स्थानीय पुराण

पुराणों और उपपुराणों की रचना के अनन्तर स्थानीय भौगोलिक आधार पर

अनेक पुराण रचित हुये। इनमें स्थानीय विशेषताओं का विस्तृत विवरण दिया गया हैं।

पुराणों में हिमालय को पांच खण्डों में विभाजित किया गया है- नेपालखण्ड, मानसखण्ड, केदारखण्ड, जलन्धरखण्ड और कश्मीरखण्ड। हिमालय के इन पांच खण्डों को आधार बना कर, इनके भौगोलिक परिवेश, सांस्कृतिक वातावरण और धार्मिक विशेषताओं को प्रदर्शित करने के लिये, महत्त्व को प्रतिष्ठापित करते हुये पुराण लिखे गये। जैसे कि नेपाल के सम्बन्ध में 'हिमवन्त पुराण', कुमायूं के सम्बन्ध में 'मानसखण्ड पुराण', गढवाल के सम्बन्ध में 'केदारखण्ड पुराण' और कश्मीर के सम्बन्ध में 'नीलमतपुराण' लिखे गये। जलन्धर खण्ड के सम्बन्ध में किसी पुराण की रचना के प्रमाण नहीं मिलते। इन पुराणों की रचना उस समय हुई होगी, जबकि उत्तरी भारत का अधिकांश भाग मुसलिम आक्रमणों से त्रस्त हो गया था। धार्मिक वृत्ति के अनेक जन अपने प्राणों और धर्म की रक्षा के लिये अपने घरों को छोड़ कर पुण्यभूमि हिमालय में चले आये थे। यहां आकर उन्होंने विविध आबादियों और तीर्थों का विकास किया। प्राचीन धर्मग्रन्थों और अन्य साहित्य में हिमालय की महिमा का वर्णन पहले ही विद्यमान था।

हिमालय क्षेत्र अति प्राचीन काल से धार्मिक क्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध रहा है। विशेष रूप से मध्य हिमालय का क्षेत्र, जो किसी समय केदारखण्ड के नाम से प्रसिद्ध था और अब गढवाल कहलाता है, धार्मिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है। यहां गङ्गा, यमुना आदि नदियों के पवित्र उद्गम हैं। पतितों को पवित्र करने वाली और पापों का विनाश करने वाली गङ्गा नदी की महिमा इस देश में हजारों वर्षो से प्रचलित है। यह नदी हिमालय के मध्य खण्ड, केदारखण्ड से उदित होती है ओर अन्य सभी नदियों के जल को अपने में समेट कर पर्वतों से उतर कर उत्तर भारत के मैदानों को सींचती हुई बंग समुद्र में विलीन हो जाती है।

केदारखण्ड क्षेत्र की पवित्रता और यहां के तीर्थो की यात्रा 'रामायण' और 'महाभारत' के युग से भी पहले से रही थी। जिस समय इस क्षेत्र में शेष भारत से आकर धार्मिक वृत्ति के लोग बसे, उन्होंने इस क्षेत्र की महिमा को और भी अधिक गौरवान्वित किया। देवताओं की क्रीडास्थली अनेक पर्वत- मन्दाराचल, मेरु, कैलास, हेमकूट, भृगु आदि इसी के अङ्क में थे। पौराणिक परम्पराओं के अनुसार त्रेतायुग में ब्रह्महत्या के दोष का निवारण करने के लिये अपने भाइयों के साथ भगवान् राम ने तथा द्वापर युग में स्वर्गारोहण के लिये पाण्डवों ने इसी क्षेत्र की यात्रा की थी। महर्षि व्यास ने इसी क्षेत्र में वैदिक संहिताओं का सम्पादन किया और 'महाभारत' की रचना की। आदि शङ्कराचार्य ने इस क्षेत्र में तप करके चार धामों की पवित्र तीर्थ यात्रा को प्रारम्भ कराया था तथा यहां विश्वकर्मा को आदेश देकर ३६५ मन्दिरों का निर्माण कराया था। अतः 'केदारखण्ड' आदि पुराणों ने हिमालय के विभिन्न प्रदेशों की महिमा

को धार्मिक वृत्ति के जनों में निश्चित रूप से प्रतिष्ठित किया था।

६. केदारखण्ड पुराण का रचयिता

'केदारखण्ड पुराण' के रचयिता का नाम और परिचय जानने की अत्यधिक उत्सुकता होने पर भी उसको यथार्थ में जानना सम्भव नहीं है। किसी समय किसी महान् कवि, भक्त, लेखक ने इस महान् पुराण की रचना करके केदारखण्ड के महान् गौरव का लोक में यश गाया था। परन्तु उसने कहीं भी अपना नाम या अन्य परिचय नहीं दिया। लेखक ने इसको 'स्कन्दपुराण' का ही एक भाग बताया है, जैसा कि इस पुराण के प्रत्येक अध्याय के अन्त में- "इति स्कान्दे केदारखण्डे......" शब्दों के अनन्तर अध्याय का नाम और संख्या दी गई है। इस लेखन से यह प्रतीत हो सकता है कि इस पुराण के लेखक भी महर्षि व्यास होंगे। परन्तु ऐसा नहीं है। यह 'केदारखण्ड पुराण' 'स्कन्दपुराण' के केदारखण्ड से सर्वथा भिन्न है। लोकप्रसिद्ध 'स्कन्दपुराण' के 'माहेश्वर खण्ड' के अन्तर्गत 'केदारखण्ड' में सती पार्वती की जो कथायें प्रकाशित हैं, वे प्रस्तुत 'केदारखण्ड पुराण' में लिखित गढवाल के तीर्थों से सर्वथा भिन्न हैं। अन्य भी सभी विवरण अलग अलग ही हैं। प्रस्तुत 'केदारखण्ड पुराण' को 'स्कन्दपुराण' के 'माहेश्वर खण्ड' के अन्तर्गत 'केदारखण्ड' से सर्वथा भिन्न मानना चाहिये। अतः महर्षि व्यास को इस पुराण का रचयिता नहीं माना जा सकता। इस पुराण का रचयिता तो कोई महनीय ऋषि, कवि, मनीषी लेखक रहा होगा, जिसने उस युग में अति दुर्गम केदारखण्ड में पैदल भ्रमण कर सब स्थानों को देखा और सारा विवरण लोकहित के लिये पुराण के रूप में निबद्ध कर दिया। उस अज्ञातनामा ऋषि के प्रति हमारे सैंकड़ों बार प्रणाम है।

७. केदारखण्ड पुराण का रचना काल

'केदारखण्ड पुराण' की रचना के समय का निर्धारण बाह्य प्रमाणों के आधार पर करना कठिन है, क्योंकि न तो इस पुराण के अन्तर्गत इसकी रचना के समय में कोई संकेत मिलते हैं और नाहीं किसी अन्य लेखक ने इसकी रचना का समय संकेतित किया है। तथापि आन्तरिक लेखों के आधार पर कुछ अनुमान अवश्य लगाये जा सकते हैं।

'केदारखण्ड पुराण' की रचना १२ वीं शताब्दी ई० के पश्चात् हुई होगी, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। इस समय तक काशी में यवन आ गये थे 'केदारखण्ड पुराण' में सौम्यकाशी अर्थात् उत्तरकाशी के माहात्म्य वर्णन में उल्लेख है कि जब धरती पर यवन फैल जायेंगे तो भगवान् शिव तीर्थों सहित हिमवन्त गिरि की काशी

में निवास करेंगे। यहां श्वेतवाहिनी गंगा कुछ उत्तर की ओर को बहती है। यहां असी और वरुणा नदियों का संगम है[1]। इसी प्रकार गोपेश्वर के त्रिशूल पर अशोकचल्ल के १२ वीं शताब्दी ई० के खुदे लेख को भूल कर पुराणकार ने उस त्रिशूल को देवासुर संग्राम वाली शक्ति कहा है[2]।

'केदारखण्ड पुराण' में गुरु गोरखनाथ का उल्लेख हुआ है। अतः इस पुराण की रचना को गुरु गोरखनाथ के बाद का मानना चाहिये। मन्दाकिनी के तट पर गौरी तीर्थ के समीप दक्षिण की ओर गोरक्ष का आश्रम है, जहां सिद्ध गोरक्ष रहा करते थे[3]। अन्य भी तीर्थों के माहात्म्य वर्णन में विद्वानों की विभिन्न धारणायें हैं-

डा० मोहन सिंह के आधार पर परशुराम चतुर्वेदी का कथन है कि गोरखनाथ के जीवन-काल के लिये दसवीं, ग्यारहवीं या अधिक से अधिक बारहवीं शताब्दी ई० का प्रारम्भिक भाग, या विक्रम की ११ वीं शताब्दी का ही कोई भाग निश्चित किया जाना उचित होगा[4]। ज्ञानदेव के लेख के आधार पर गोरखनाथ का समय १२ वीं शताब्दी ई० है। यह कथन उस परम्परा से मिलता है, जिसके अनुसार गोरक्ष और धर्मनाथ, ये दोनों गुरु भाई समकालीन माने गये हैं। धर्मनाथ का समय १२ वीं शताब्दी ई० है।

कुछ विद्वान् गोरखनाथ को ५०० ई० से १००० ई० तक किसी समय का मानते हैं[5]।

---

१ यदा पापस्य बाहुल्यं यवनाक्रान्तभूतलम्।
भविष्यति तदा विप्राः निवासं हिमवद्गिरौ।।
काश्या सह करिष्यामि सर्वतीर्थैः समन्वितः।
अनादिसिद्धं मे स्थानं वर्तते सर्वदैवहि।।
यत्र भागीरथी गङ्गा उत्तरा श्वेतवाहिनी।
असी च वरुणा तत्र सन्निधाने सदैव हि।। केदारखण्ड पुराण ९०.५०-५२।।

२ विक्षिप्ता यत्र पूर्वं हि सङ्गरे देवता सुरैः।
अद्यापि दृश्यते तत्र शक्तिर्धातुमयी शुभा।।
केदारखण्ड पुराण ९०.१४।।

३ तस्माद्दक्षिणतो देवि गोरक्षाश्रममण्डलम्।
यत्र सिद्धो महादेवि गोरक्षो वसते निशम्।। केदारखण्ड पुराण ४०.५२-५३।।

४ डा० मोहन सिंह: गोरखनाथ एण्ड मिडीवल हिन्दू मिस्टीसिज्म पृ० २०-३९
परशुराम चतुर्वेदी: उत्तर भारत की संत परम्परा पृ० ६०

५ गोपीनाथ कविराज: सरस्वती भवन स्टडीज, भाग-६, पृ० २४

'केदारखण्ड पुराण' में सत्यनाथ का उल्लेख है[1]। इससे सिद्ध है कि यह पुराण सत्यनाथ के बाद की रचना है। नव नाथों में सत्यनाथ की गणना अधिक प्राचीन नहीं है। हजारीप्रसाद द्विवेदी के ग्रन्थ 'नाथ सम्प्रदाय' और कल्याणी मलिक के बंगला ग्रन्थ 'नाथ सम्प्रदायेर इतिहास, दर्शन एवं साधन प्रणाली' में नव नाथों की विभिन्न सूचनाओं में सत्यनाथ के सम्बन्ध में मतभेद है। किन्तु 'गोरक्ष सिद्धान्त' (पृ० ४०) में सत्यनाथ का उल्लेख है।

कुमायूं और गढवाल के इतिहास से विदित होता है कि १५०० ई० के आसपास गढवाल और चम्पावत में सत्यनाथ और नागनाथ नामक दो गोरखपन्थी जोगियों ने अपने डेरे लगाये। सत्यनाथ का शिष्य नागनाथ था। गढवाल के इतिहास से यह भी विदित होता है कि १५००ई० में गढवाल का पंवार नरेश अजयपाल चांदपुर के सिंहासन पर बैठा। उन्हीं दिनों चम्पावत के राजा कीर्तिचन्द ने गढवाल के बधाण प्रान्त पर आक्रमण किया। युद्ध में हार कर गढवाल का राजा अजयपाल देवलगढ की ओर भागा। सत्यनाथ का आशीर्वाद पाकर गढवाल नरेश ने पुनः कुमायूं के नरेश को पराजित कर अपना राज्य वापिस प्राप्त कर लिया[2]।

कीर्तिचन्द के राज्यकाल (१४८८-१५०३) में सत्यनाथ की काफी प्रसिद्धि थी[3]। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि गढवाल में सत्यनाथ का आगमन १५०० ई० के आसपास हुआ होगा।

गोरक्षनाथ और सत्यनाथ के 'केदारखण्ड पुराण' में कुछ उल्लेख यह सिद्ध करते हैं कि इस ग्रन्थ में कुछ अंश पहले थे और कुछ को १५०० ई० के लगभग जोड़ा गया। शिवप्रसाद डबराल के अनुसार त्र्यंबकेश्वर, किलकिलेश्वर और ज्वाल्पा जैसे नवीन मन्दिरों का 'केदारखण्ड पुराण' में जो उल्लेख हुआ है, वह दो-तीन सौ वर्ष से अधिक प्राचीन नहीं है[4]।

'केदारखण्ड पुराण' में 'मानसखण्ड' का उल्लेख है। अतः इस पुराण की रचना 'मानसखण्ड' के पश्चात् हुई। बद्रीदत्त पाण्डे के अनुसार कूर्माञ्चल में 'मानसखण्ड' की रचना कूर्माञ्चली पण्डितों ने की थी[5]। स्वामी प्रणवानन्द ने 'मानसखण्ड' की हस्तलिखित

---

१ नवनाथाः समाख्यातास्तत्र श्रीआदिनाथकः।
अनादिनाथ कूर्माख्यौ भवनाथस्तथैव च।।
सत्यसन्तोषनाथौ तु मत्स्येन्द्रो गोपिनाथकः।। केदारखण्ड पुराण ७४.२८-२९।।

२ हरिकृष्ण रतूडी: गढवाल का इतिहास पृ० ३६४-६५

३ बद्रीदत्त पाण्डे: कुमायूं का इतिहास पृ० २५२

४ शिवप्रसाद डबराल: उत्तराखण्ड यात्रादर्शन पृ० १०७

५ बद्रीदत्त पाण्डे: कुमायूं का इतिहास पृ० १७७

प्रति देखने के बाद लिखा है कि यह ग्रन्थ दो-तीन सौ वर्ष से अधिक पुराना नहीं है[1]।

'केदारखण्ड पुराण' में 'कुलार्णवतन्त्र' आदि के उद्धरण हैं। ३३ वें अध्याय में 'कुलार्णवतन्त्र' से अनेक पंक्तियां उद्धृत हैं। इस पुराण के ३५ वें अध्याय से यह भी स्पष्ट है कि पुराणकार को महिम्नस्तोत्र का ज्ञान था। ६५ वें अध्याय में श्लेष अलङ्कार, दोहा-कुण्डली-सोरठा छन्द और राग-रागिनियों के नाम हैं। इनमें रामकली, केहरी, गुर्जरी और पटुमञ्जरी रागिनियों को गिनाया गया है। गुर्जरी रागिनी को दीपक राग की वाराङ्गना कहा गया है। गुर्जरी रागिनी की रचना ग्वालयिर नरेश मानसिंह ने अपनी गुर्जरी रानी मृगनयनी के नाम पर की थी। मानसिंह का समय विक्रम की १६ वीं शताब्दी माना जाता है[2]। इससे स्पष्ट होता है कि 'केदारखण्ड पुराण' की रचना इसके बाद ही हुई होगी।

बालाजीराव के समय से मराठे उत्तर भारत में आने लगे थे और अपने को वे हिन्दू धर्म और मन्दिरों का रक्षक कहते थे। सन् १७४१-४२-४३ में मध्य भारत में अपना प्रभाव जमा कर बालाजीराव (नाना साहब) ने धर्मस्थानों की रक्षा करनी प्रारम्भ कर दी थी[3]। अहिल्याबाई ने भी भारत के अनेक प्रमुख मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया था। इस समय भारतवर्ष में तीर्थयात्रा को पुनः प्रोत्साहन मिला। इन कार्यों पर 'केदारखण्ड पुराण' का कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा होगा।

'केदारखण्ड पुराण' में बार बार भृगुपतन की प्रशंसा की गई है। भृगुशिखर से श्रीशिला पर कूद कर टुकड़े टुकड़े होकर परब्रह्म से मिलन का मार्ग अंग्रेजों ने बन्द कर दिया[4]। अतः 'केदारखण्ड पुराण' की रचना निश्चित रूप से अंग्रेजों के अधिकार से पूर्व हो गई होगी।

ऊपर के विवेचन से यह कहा जा सकता है कि 'केदारखण्ड पुराण' की रचना १६ वीं शताब्दी ई० के प्रारम्भिक भाग में पूरी हो चुकी थी। यह पुराण इतना लोकप्रिय हुआ कि इसकी हस्तलिखित प्रति पंडित लोंग अपने घरों में रखने लगे। आज भी अनेक घरों में इस पुराण की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त की जा सकती हैं।

८. केदारखण्ड पुराण का वर्ण्य विषय

'केदारखण्ड पुराण' का मुख्य वर्ण्य विषय हिमालय और उसके केदारखण्ड क्षेत्र की धार्मिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से महिमा का वर्णन करना है। इसके अतिरिक्त इस पुराण में पुराणों के सामान्य विषयों को भी प्रस्तुत किया गया है। सृष्टि की उत्पत्ति,

१ प्रणवानन्द: एक्सप्लोरेशन इन तिबेट पृ० ११

२ ओझा: राजस्थान का इतिहास, भाग १, पृ० ३६

३ भीमसैन विद्यालंकार: वीर मराठे, पृ० १५०

४ शिवप्रसाद डबराल: उत्तराखण्ड यात्रा वर्णन पृ० १०९

प्रलय, आत्मा, परमात्मा, कर्मफल, पुनर्जन्म, यज्ञ-तप आदि कर्मकाण्ड, ऋषियों के नाम, तपोवन आदि का वर्णन है। धनुर्वेद और सङ्गीतशास्त्र का परिचय है। परन्तु मुख्य वर्ण्य विषय केदारखण्ड में स्थित तीर्थों की महिमा का गान करना है। 'केदारखण्ड पुराण' में २०६ अध्याय और १०१९२ श्लोक हैं। प्रारम्भ के १०८ अध्यायों तक तीर्थों का वर्णन इतना सुसम्बद्ध नहीं है, जितना कि अध्याय १०९ से लेकर २०६ तक है। इसमें केदारखण्ड की सीमाओं और क्षेत्रफल का भी निर्देश है। केदारखण्ड क्षेत्र ५० योजन (२०० मील) लम्बा और ३० योजन (१२० मील) चौड़ा है। इस प्रकार इसका विस्तार १५०० योजन (२४००० वर्गमील) है। यह उत्तर में श्वेतान्त (हिमाच्छादित कैलास आदि पर्वत शृंखला) पर्वत से लेकर दक्षिण में गंगाद्वार (हरिद्वार) तक और पश्चिम में तमसा (टौंस) नदी से लेकर पूर्व में बौद्धाचल (बधाण) तक विस्तृत है। देवताओं को भी दुर्लभ यह स्थान पृथिवी पर स्वर्ग ही है[1]।

'केदारखण्ड पुराण' में यहां की भूमि के अनेक विभागों को विभिन्न क्षेत्रों में दिखाया गया है। जैसे मायाक्षेत्र, कुब्जाम्रकक्षेत्र, सुदर्शनक्षेत्र, भास्करक्षेत्र, श्रीक्षेत्र आदि। इन क्षेत्रों के पुण्य पर्वत शिखरों, तीर्थस्थलों, नदियों और कुण्डों की महिमा का वर्णन इस पुराण में है।

इस पुराण में अनेक पर्वतों के नाम आये हैं। जैसे- नन्दादेवी, वानराचल (बन्दरपूंछ), गन्धमादन (कामठ), तुङ्गोच्च शिखर, चन्द्रशिला शिखर, गणेशपर्वत, नन्दापर्वत, यक्षकूट, महिषमण्डल, रेणुकाद्रि, श्रीमुख (सुमेरु), नीलपर्वत, बिल्वपर्वत, मलयपर्वत, श्वेत महापर्वत, हेमशृंग, मन्दराचल, पुष्करपर्वत. कैलासपर्वत, नागपर्वत, इन्द्रकीलपर्वत, स्वर्गारोहण पर्वत, भृगुतुङ्गशिखर, शङ्करपर्वत, नन्दनपर्वत आदि का वर्णन है।

अनेक तीर्थस्थलों की महिमा को इस पुराण में कहा गया है। जैसे- कनखल, मायापुर, गंगाद्वार (हरिद्वार), कुब्जाम्रक तीर्थ (ऋषिकेश), लक्ष्मणतीर्थ (लक्ष्मणझूला), इन्द्रप्रयाग (व्यासघाट), देवप्रयाग, सौम्यकाशी (उत्तरकाशी), श्रीक्षेत्र (श्रीनगर), रुद्रप्रयाग, कर्णप्रयाग, केदारनाथ, गोपेश्वर, विष्णुप्रयाग, बदरिकाश्रम (बदरीनाथ धाम), भिल्लांगण, तुङ्गनाथ, रुद्रालय (रुद्रनाथ), कल्पेश्वर, मेनकाक्षेत्र, लक्ष्मणतीर्थ (हिमकुण्ड), केशवप्रयाग (माणा ग्राम), गौरीतीर्थ, सूर्यकुण्ड, बैखानसतीर्थ, गंगोत्तरी, यमुनोत्तरी, कालीक्षेत्र (कालीमठ), पञ्चकेदार, पञ्चबदरी आदि हैं।

---

१. पञ्चाशद् योजनायामं त्रिंशद् योजनविस्तृतम्।
इदं वै स्वर्गगमनं न पृथ्वीं तां महाविभो।
गङ्गाद्वारपर्यन्तं श्वेतान्तं वरवर्णिनि।
तमसातटतः पूर्वभागे बौद्धाचलं शुभम्।।
केदारमण्डलं ख्यातं भूम्यां तद् भिन्नकं स्थलम्।। केदारखण्ड पुराण ४०.२६-२९

प्राय: प्रत्येक तीर्थ में वर्णित नदी, पर्वत आदि पर उसके अधिपति किसी ईश्वर (देवता) और ईश्वरी (देवी) का उल्लेख है। कुछ तीर्थों के भैरव भी बताये गये हैं। अनेक तीर्थों के वर्णनों में एक या अधिक रात्रि तक रहने तथा वहां भूमि और स्वर्ण का दान करने की प्रशंसा की गई है। कई तीर्थों में यज्ञ, तप, उपवास करने और कुछ में शरीर त्याग करने की भूरि भूरि महिमा कही गई है।

अनेक सरिताओं, जलाशयों और जलकुण्डों का वर्णन है, जिनके दर्शन, चिन्तन और स्नान से त्रिविध ताप दूर होकर मोक्ष प्राप्त होता है। भागीरथी, जाह्नवी, अलकनन्दा, सरस्वती, ऋषिगङ्गा, आकाशगङ्गा, पातालगङ्गा, यमुना, तमसा, नबालका (दोनों नयार), विरही, नन्दाकिनी, पिण्डर, मन्दाकिनी, धवलगङ्गा, भिल्लाङ्गणा आदि पवित्र नदियां हैं। अनेक तीर्थों पर अनेक काल्पनिक नाम वाली धारायें और नदियां कही गई हैं, जिनके नाम की संगति बिठाना भी कठिन है।

'केदारखण्ड पुराण' में अनेक सरोवरों, जलाशयों, कुण्डों आदि का वर्णन है। इनमें प्रसिद्ध हैं- विष्णुताल, सत्यपथताल, वासुकिताल, गौनाताल, देवरियाताल, अप्सराताल, यमताल, नचिकेताताल, दुग्धताल, मानसरोवर, सारस्वत सरोवर, मणिभद्र सरोवर, बिन्दु सरोवर, दिव्य सरोवर, नारायणकुण्ड, उर्वशीकुण्ड, सूर्यकुण्ड, चन्द्रकुण्ड, हेमकुण्ड, अमृतकुण्ड, रूपकुण्ड, होमकुण्ड, ब्रह्मकुण्ड, रुद्रकुण्ड, इन्द्रकुण्ड, शिवकुण्ड, गौरीकुण्ड, नन्दीकुण्ड, हंसकुण्ड, रेतसकुण्ड, उदककुण्ड, अमृतकुण्ड, बदरीनाथ और यमुनोत्तरी के तप्तकुण्ड आदि।

'केदारखण्ड पुराण' यद्यपि बहुत प्राचीन नहीं है, तथापि इसमें प्राचीन कथाओं को इस प्रकार बिठाया गया है, जिससे केदारखण्ड प्रदेश का माहात्म्य सिद्ध हो सके। टिहरी और गढवाल के तीर्थों, नदियों, गधेरों, पानी के गढों, कुण्डों, सरोवरों, पर्वत शिखरों और शिलाओं का यह अद्भुत विश्वकोष है।

केदारखण्ड की महत्वपूर्ण महत्ता उसके तीर्थों के साथ ही उसमें निहित प्राकृतिक सौन्दर्य वाले स्थलों में है। उन्हीं में से कुछ स्थल तीर्थों के रूप में विकसित हो गये। परन्तु जहां तक प्राकृतिक दृश्यों का, वनप्रदेशों, बुग्यालों और हिमालय की मनोहारिणी छटा का सम्बन्ध है, यह ग्रन्थ उसकी ओर ध्यान आकृष्ट नहीं करता। लेखक की दृष्टि प्राकृतिक दृश्यावली की ओर न जाकर तीर्थों का माहात्म्य कहने, उनमें सुवर्ण तथा भूमि का दान करने, जप-उपवास-स्नान करने, देवताओं की पूजा-उपासना करने, निवास करने आदि के गुणगान करने में ही लगी रही है।

विषय-सूची

विषयानुक्रमणिका

(प्रथम खण्ड)

(द्वितीय-खण्ड)

अध्याय- ६४-१२०

(तृतीय-खण्ड)

अध्याय-१२१-१८०

(चतुर्थ-खण्ड)

अध्याय-१८१-२०६ एवं परिशिष्ट

परिशिष्ट-१

परिशिष्ट-३

परिशिष्ट-४

केदारखण्ड के चार धाम

परिशिष्ट-५

परिशिष्ट–६

परिशिष्ट–७

परिशिष्ट-८

परिशिष्ट-९

परिशिष्ट-१०

परिशिष्ट-११

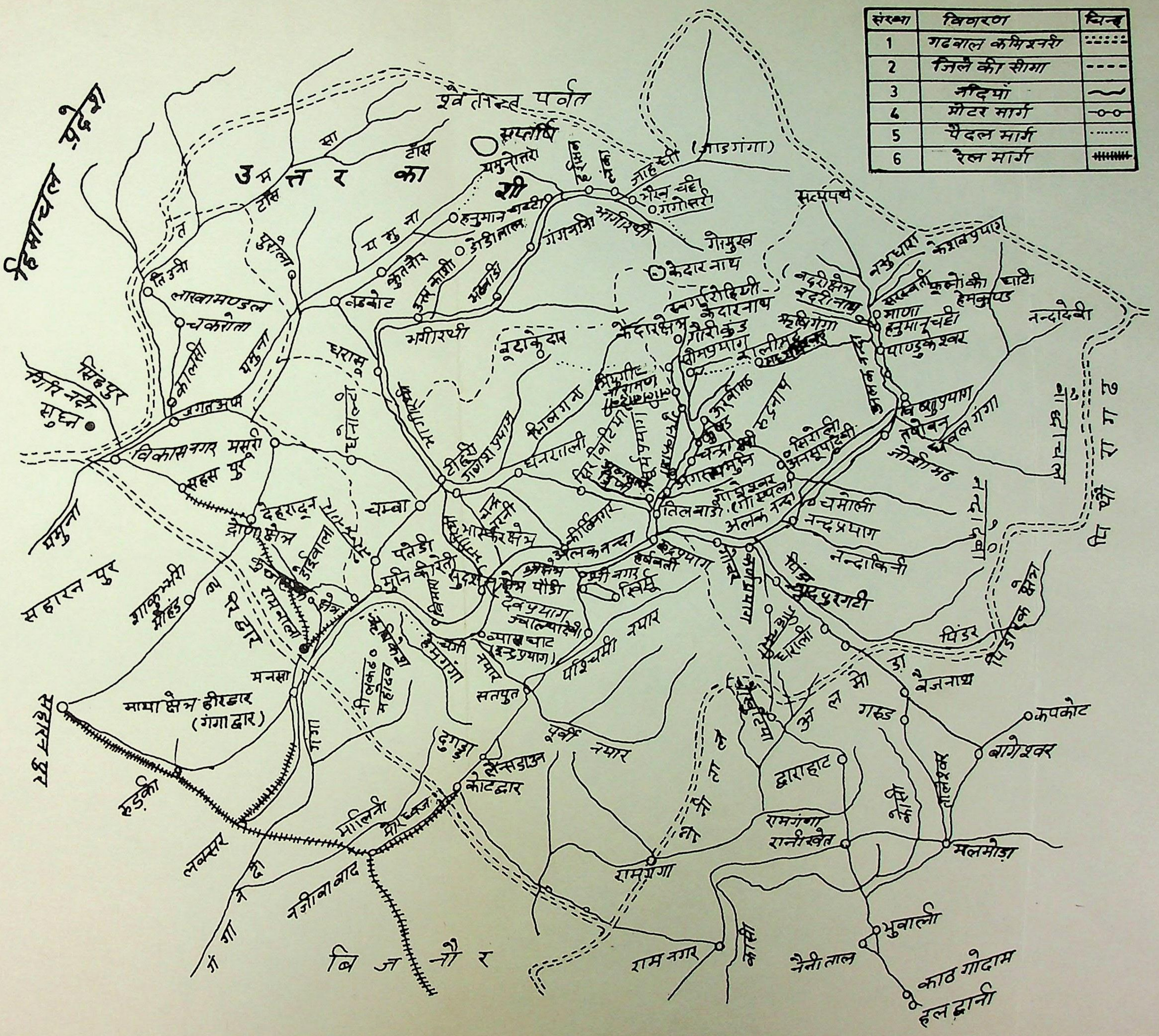
परिशिष्ट-१२

परिशिष्ट-१३

परिशिष्ट-१४

परिशिष्ट - १५

मानचित्र - केदार खण्ड (गढ़वाल)



तृतीय खण्ड

केदारखण्ड पुराण

अध्याय १२१ - १८०

एकविंशत्यधिकशततमोऽध्याय:

वायव्यवासवादितीर्थवर्णनपुरस्सरं संक्षेपेण रामरावणयुद्धवर्णनं वसिष्ठोपदेशाद्रामलक्ष्मणयो: कुब्जाम्रक्षेत्रे तप:करणम्

स्कन्द उवाच-

अन्यतीर्थं शृणु प्राज्ञ वायव्यं तीर्थमुत्तमम्।
कुब्जाम्रके महाभाग सर्वपापभयापहम् ।। १।।

यत्र वायुस्तपस्तेपे पञ्चवर्षसहस्रकम्।
प्राप्तवांश्च तथा तत्र दिक्पालत्वं महायशा: ।।२।।

अस्मिन्कृतोदको यस्तु पुण्यात्मा पितृतारक:।
दिव्यवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।।३।।

य: करोति तथा स्नानं वाजपेयशतस्य च।
फलं प्राप्नोति मनुज: स्वयमेतद्वदामि ते।।४।।

यस्तत्र त्यजते प्राणान्वायव्ये विजितेन्द्रिय:।
न स भूयो महाराज जायते नरलोकके ।। ५।।

तत्र चिह्नं प्रवक्ष्यामि वायव्यस्य महामते ।
तत्राश्वत्थ[1]छदाश्चैव चलन्ते वायुनेरिता: ।।६।।

स्वनन्ते च तथा तत्र द्वादश्यां दृश्यते मुने।
अन्यत्तत्रैव विख्यातं वासवं तीर्थमुत्तमम् ।।७।।

तत्र चिह्नं प्रवक्ष्यामि येन तज्ज्ञायते शुभम्।
पदानि तत्र दृश्यन्ते हस्तिनो वासवस्य तु ।।८।।

नित्यमायाति तत्रैव वासवो वसुसंवृत:।
तत्र स्नानेन संयाति पुरुहूतपुरं शुभम्।।९।।

चन्द्रिकेति समाख्याता नदी परमपावनी।
तत्सङ्गमे नर: स्नात्वा चन्द्रलोके महीयते।।१०।।

तत्रैव गणपो नाम भैरवो भीषणाकृति:।
तत्र चिह्नं प्रवक्ष्यामि सिन्दूराभा तु मृत्तिका।।११।।

यस्य दर्शनमात्रेण नरो याति परां गतिम्।।१२।।

अन्यच्च तीर्थप्रवरं वारुणं वरुणास्पदम्।
वरुणेन तपस्तप्तं शतं वै दिव्यवर्षकम्।।१३।।

१. तत्राश्वत्थस्य पत्राणि

अध्याय-१२१

वायव्य, वासव आदि तीर्थों का वर्णन, संक्षेप से राम-रावण युद्ध का वर्णन, वसिष्ठ के उपदेश से राम और लक्ष्मण का कुब्जाम्र क्षेत्र में जाकर तपस्या करना

स्कन्द ने कहा-

हे बुद्धिमान् महाभाग ! कुब्जाम्रक क्षेत्र में, सब पापों के भय को दूर करने वाले अन्य वायव्य नामक उत्तम तीर्थ के विषय में सुनो ।। १।।

यहां वायु ने ५००० वर्ष तक तपस्या की थी। तदन्तर उस महायशस्वी ने दिक्पाल पद को प्राप्त किया था ।। २।।

जो पुण्यात्मा मनुष्य इस तीर्थ में पितरों को तराने के लिए जल का तर्पण करता है, वह सहस्त्र दिव्य वर्षों तक स्वर्गलोक में महिमा को प्राप्त करता है ।। ३।।

जो मनुष्य यहां स्नान करता है, वह सौ वाजपेय यज्ञों के फल को प्राप्त करता है, यह मैं तुमसे स्वयं ही कह रहा हूं ।। ४।।

हे मुनि महाराज ! जो मनुष्य इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करके उस वायव्य तीर्थ में प्राणों का परित्याग करता है, वह फिर मनुष्य लोक में उत्पन्न नहीं होता ।। ५।।

हे महामते ! मैं वहां वायव्य तीर्थ का चिह्न बताऊंगा। वहां वायु से कम्पित पीपल के पत्ते हिलते रहते हैं ।। ६।।

हे मुने ! वहां वे द्वादशी की रात्रि में ही शब्द करते हैं तथा दिखाई देते हैं। वहीं पर दूसरा वासव नाम से प्रसिद्ध उत्तम तीर्थ है ।। ७।।

मैं वहां का चिह्न बताऊंगा, जिससे कि उस शुभ तीर्थ को पहचाना जा सकता है। वहां इन्द्र के हाथी के पद-चिह्न दिखाई देते हैं ।। ८।।

वहां वसु देवताओं से घिरा हुआ इन्द्र नित्य ही आता है। वहां स्नान करने से मनुष्य शुभ इन्द्रलोक में जाता है ।। ९।।

वहां चन्द्रिका नाम से प्रसिद्ध नदी आती है। उसके संगम में स्नान करके मनुष्य चन्द्रलोक में जाकर महिमा को प्राप्त करता है ।।१०।।

वहीं पर भीषण आकृति वाला गणप नाम का भैरव है। मैं उसका चिह्न बताऊंगा। वहां की मिट्टी सिन्दूरी रंग की है ।। ११।।

इसके दर्शन मात्र से मनुष्य परम गति को प्राप्त करता है ।। १२।।

और एक अन्य श्रेष्ठ तीर्थ वारुण नाम का है, जो वरुण देवता का स्थान है। यहां वरुण देवता ने १०० दिव्य वर्षों तक तप किया था ।। १३।।

पाशं प्राप महादेवात्तीर्थेऽस्मिन्वारुणे वरे।
उपोष्य दश रात्राणि यस्त्यजेदत्र देहकम्।।१४।।

स याति रुद्रसदनं यावदाचन्द्रतारकम्।
स यातो रुद्रसदनं पुनर्जायेत भूमिपः।।१५।।

यत्कर्म क्रियते तत्र तत्सर्वं शतसंख्यकम्।।१६।।

अथान्यत्ते प्रवक्ष्यामि वाराहं तीर्थमुत्तमम्।
यत्र विष्णुः क्रोडरूपी शिलारूपेण संस्थितः।।१७।।

तत्र वै स्नानदानाद्यैर्लभते परमं पदम्।
ततो वै उत्तरे भागे धनुषां च चतुःशते।।
सप्तसामुद्रकं नाम तीर्थं विष्णुसलोकदम्।।१८।।

अश्वमेधत्रयस्याऽत्र फलं वै स्नानमात्रतः।
कुब्जाम्रके परं पुण्यं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्।।१९।।

भाग्येन यस्त्यजेत्प्राणाञ्जन्मनाशादिवर्जितः।।२०।।

तत्र चिह्नं प्रवक्ष्यामि सप्तसामुद्रके महत्।
विमलं हि तथा गाङ्गं दृश्यते चित्रवन्मुने।।२१।।

क्षीरवर्णं कदाचित्तु कदाचित्पीतवर्णकम्।
कदाचिद् दृश्यते रक्तं तथा मारकतप्रभम्।।२२।।

एतैर्नानाविधैश्चिह्नैर्ज्ञेयं तीर्थमिदं ध्रुवम्।
तत्र स्नानादिना विप्र लभ्यन्ते सर्वसिद्धयः।। २३।।

कुब्जाम्रकादुत्तरत ऋषिपर्वत उत्तमे।
ऋषयः सिद्धगन्धर्वास्तत्र सन्ति महामुने।। २४।।

नानाविधानि लिङ्गानि तत्र सन्ति पराणि वै।
[1]यस्योपत्यधरायां हि गङ्गायाः पश्चिमे तटे।। २५।।

तपोवनं मुनीनां तु यत्र सौमित्रिरुत्तमः।
प्राप्तराज्ये तथा रामे निहते दशकन्धरे।
समाययौ तपस्तप्तुं लक्ष्मणो लक्ष्मणान्वितः।। २६।।

तस्मात्स्थलादधोभागे बिलमस्ति महत्तरम्।
तत्र शेषः स्वयं नित्यं वसते नाऽत्र संशयः।। २७।।

श्वेतवर्णः श्वेतबिन्दुः कृष्णनेत्रः प्रदृश्यते।
पुण्यात्मभिर्महाभाग यैर्गन्तव्यं हरिक्षये।। २८।।

---
१. तस्योपत्य

इस श्रेष्ठ वारुण तीर्थ में उसने महादेव से पाश नामक आयुध को पाया था। जो मनुष्य दस रात्रियों तक उपवास करके यहां प्राणों का परित्याग करता है..... ।। १४ ।।

जब तक कि चन्द्रमा और तारे हैं, तब तक के लिये वह शिवलोक में जाता है। वहां शिवलोक में जाकर वह पुनः राजा के रूप में जन्म लेता है ।। १५ ।।

वहां जो भी कर्म किया जाता है, उसका फल १०० गुना हो जाता है ।। १६ ।।

अब मैं उत्तम अन्य वाराह तीर्थ के विषय में कहूंगा, जहां विष्णु वाराहरूपी शिला के रूप में स्थित हैं ।। १७ ।।

वहां स्नान-दान आदि करने से मनुष्य परम पद को प्राप्त करता है। उससे उत्तरी दिशा में ४०० धनुष (४०० गज) की दूरी पर सप्तसामुद्रक नाम का तीर्थ है जो विष्णुलोक को प्रदान करता है ।। १८ ।।

यहां स्नान करने मात्र से तीन अश्वमेघ यज्ञों का फल मिलता है। यह कुब्जाम्रक क्षेत्र का तीर्थ परम पुण्यशाली है और तीनों लोकों में दुर्लभ है ।। १९ ।।

जो मनुष्य भाग्य से यहां प्राणों का परित्याग करता है, वह जन्म-मृत्यु आदि से मुक्त हो जाता है ।। २० ।।

मैं वहां सप्तसामुद्रक तीर्थ का चिह्न बताऊंगा। हे मुने! वहां चित्र के समान निर्मल गंगाजल दिखाई देता है ।। २१ ।।

वह जल कभी तो दूध के समान रंग का, कभी पीले रंग का, कभी लाल रंग का और कभी मरकत मणि के समान रंग का दिखाई देता है ।। २२ ।।

इस प्रकार के विविध चिह्नों से उस तीर्थ को निश्चय से पहचानना चाहिये। हे विप्र ! वहां स्नान करने आदि से सभी सिद्धियां प्राप्त होती हैं ।। २३ ।।

हे महामुने ! कुब्जाम्रक से उत्तर दिशा में उत्तम ऋषि पर्वत पर ऋषि, सिद्ध और गन्धर्व निवास करते हैं ।। २४ ।।

गंगा के पश्चिमी तट पर उपत्यका की भूमि में अनेक प्रकार के श्रेष्ठ लिङ्ग हैं।।२५।।

यहां मुनियों का तपोवन है। राम के द्वारा रावण के मारे जाने एवं राज्य को प्राप्त कर लेने पर श्रेष्ठ चिह्नों को धारण करने वाला सुमित्रा का उत्तम पुत्र लक्ष्मण तपस्या करने के लिये आया था ।। २६ ।।

उस स्थल से नीचे के भाग में बहुत बड़ा बिल है। वहां स्वयं शेषनाग निवास करते हैं, इसमें सन्देह नहीं है ।। २७ ।।

हे महाभाग! श्वेत वर्ण वाले, श्वेत बिन्दुओं से युक्त तथा काले नेत्र वाले उस शेषनाग को पुण्यात्मा जन ही देखते हैं और वे विष्णुलोक को जाते हैं ।। २८ ।।

नारद उवाच-

लक्ष्मणेन तपस्तप्तं किमर्थं तत्र तीर्थके।
किं प्राप्तं च फलं तेन शुद्धेन परमात्मना।।२९।।

किमर्थं तत्र वसते वासुकिः सर्पनायकः।
एतत्सर्वं समासेन कथयस्व शिवात्मज।। ३०।।

स्कन्द उवाच-

शृणु नारद वृत्तान्तं पापघ्नं सर्वकामदम्।
श्रुत्वापि यन्महाभाग मुच्यते सर्वकिल्बिषैः।। ३१।।

पुरा रामो महातेजाः पितुराज्ञा समाश्रितः।
सीतया सहितो भ्रात्रा लक्ष्मणेन समन्वितः।। ३२।।

ययौ वै दण्डकारण्ये नानामुनिगणान्विते।
पञ्चवट्यां महाभाग कृत्वा पर्णमयीं कुटीम्।
कारयामास भगवन्निवासार्थं महामतिः।। ३३।।

तत्र वै वसतस्तस्य रामस्य विदितात्मनः।
रावणस्य स्वसा तत्र नाम्ना शूर्पणखा ययौ।। ३४।।

दृष्ट्वा तौ भ्रातरौ तत्र कन्दर्पाविव रूपिणौ।
कामस्य वशमापन्ना चकमे तत्परिग्रहम्।। ३५।।

रामस्य सविधे गत्वा विकटाङ्गी घटोदरी।
विहस्य वचनं प्रोचे रामं दशरथात्मजम्।। ३६।।

भो भोः पुरुषशार्दूल भुवने त्वत्समो न हि।
आगच्छ त्वं मया सार्द्धं गिरीणां कन्दरेषु च।। ३७।।

सङ्गमेषु नदीनां च वनान्तेषु महत्सु च।
क्रीडस्व त्वं मया सार्द्धं यौवनं ते निवर्त्तते।। ३८।।

चतुर्दशसहस्राणामधिपौ खरदूषणौ।
भ्रातरौ राम वीर्याढ्यौ जनस्थाननिवासिनौ।। ३९।।

लङ्केश्वरेण प्रहितौ भ्रात्रा मे हिंसितुं मुनीन्।
अन्यथा वां भक्षयिष्ये अनया सह मानुष।। ४०।।

इत्युक्तः सहसा रामस्तदा भागवतोत्तमः।
उवाच विहसन्वाक्यं सौमित्रिं वरयस्व भोः।। ४१।।

अहं कलत्रवानस्मि सपत्नीको वरानने।
एवमुक्ता तु रामेण लक्ष्मणं च तयाऽब्रवीत्।। ४२।।

नारद ने कहा-

लक्ष्मण ने उस तीर्थ में किसलिये तप किया था ? वहां उस शुद्ध परम-आत्मा ने कौनसा फल पाया था ? ।। २९ ।।

वहां सर्पों का नायक वासुकि किसलिये निवास करता है? हे शिव के पुत्र स्कन्द! यह सब बात मुझको संक्षेप से कहो ।। ३० ।।

स्कन्द ने कहा-

हे नारद ! पापों को नष्ट करने वाले और सब कामनाओं को देने वाले इस वृत्तान्त को सुनो । हे महाभाग ! इसको सुनकर ही मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है ।।३१ ।।

पहले समय में महातेजस्वी राम पिता की आज्ञा पाकर, सीता और भाई लक्ष्मण के साथ...... ।। ३२ ।।

अनेक मुनियों से युक्त दण्डकारण्य में गये । हे भगवन् ! वहां महामति राम ने पञ्चवटी में निवास करने के लिये पर्णकुटी बनवाई ।। ३३ ।।

जबकि आत्मतत्त्व का ज्ञान रखने वाले राम वहां निवास कर रहे थे, वहां शूर्पणखा नाम की रावण की बहन आई ।। ३४ ।।

वहां कामदेव के समान सुन्दर दोनों भाइयों को देखकर, वह काम के वश में होकर उनसे विवाह की कामना करने लगी ।। ३५ ।।

राम के समीप जाकर विकट अंगों वाली और घट के समान उदर वाली वह दशरथ-पुत्र राम से हंस कर बोली ।। ३६ ।।

हे पुरुषश्रेष्ठ ! इस संसार में तुम्हारे समान दूसरा नहीं है । मेरे साथ तुम पर्वतों की गुफाओं में आओ ।। ३७ ।।

तुम नदियों के संगमों पर और महान् वनप्रान्तों में मेरे साथ क्रीडा करो । तुम्हारा यौवन बीता जा रहा है ।। ३८ ।।

हे राम ! जनस्थान में रहने वाले, पराक्रमी एवं १४००० सैनिकों के स्वामी खर और दूषण मेरे भाई हैं ।। ३९ ।।

उनको मेरे भाई लंकापति रावण ने मुनियों को मारने के लिये भेजा है। हे मनुष्य ! अन्यथा इस सीता के साथ मैं तुमको खा जाऊंगी ।। ४० ।।

इस प्रकार कहने पर उत्तम भागवत राम ने हंस कर यह वाक्य कहा कि हे सुन्दरि ! तुम लक्ष्मण का वरण करो ।। ४१ ।।

हे सुन्दर मुख वाली ! मैं सपत्नीक हूं, स्त्री वाला हूं । इस प्रकार कहने पर वह लक्ष्मण से उसी प्रकार बोली ।। ४२ ।।

लक्ष्मणोऽपि विहस्यैनामुत्तरं प्रोक्तवान्कटुम्।
ततः क्रुद्धा शूर्पणखा तान्हन्तुमुपचक्रमे।। ४३।।

इति तच्चेष्टितं दृष्ट्वा रामो राजीवलोचनः।
चकर्त्त नासां कर्णौ च तस्यास्तत्र महामते।। ४४।।

रुदन्ती रुधिरासिक्ता ययौ शीघ्रं खराश्रमम्।
खरं च दूषणं चैव ह्यानयामास सैनिकैः।। ४५।।

निहतौ राक्षसौ तेन रामेणाऽपि जनस्थले।
साऽपि कर्म महद् दृष्ट्वा ययौ लङ्कां विनासिका।। ४६।।

रुधिराप्लुतसर्वाङ्गी जगाद परुषं वचः।
मृतोऽसि राक्षसश्रेष्ठ भ्रातरौ निहतौ तव।। ४७।।

जनस्थाने मनुष्येण स्त्रीसहायेन रावण।
खरश्च निहतः सङ्ख्ये दूषणस्त्रिशिरास्तथा।। ४८।।

अहं च विकृता तेन कृता त्वत्कार्यसम्मुखी।
स्त्रीरत्नं च त्वदर्थं हि ह्यानेतुमहमुद्यता।। ४९।।

किं करोमि मम भ्रातर्हन्तुं त्वां समुपस्थितः।
स्वसुस्तद्गदितं श्रुत्वा रावणः क्रोधमूर्च्छितः।
जगाम सहसा तत्र जनस्थाने महामते।। ५०।।

अहरत्तत्र हैमेन छद्मयित्वा मृगेण तम्।।
रामं राजीवपत्राक्षं सीतां नीत्वा गृहं ययौ।। ५१।।

रामोऽपि तन्महाश्चर्यं दृष्ट्वा विस्मयमाययौ।
विलपन्प्रययौ भ्रात्रा ऋष्यमूके महागिरौ।। ५२।।

सुग्रीवेण तथा सख्यं कृत्वा वै चाऽग्निसाक्षिकम्।
हत्वा च बालिनं तत्र स्थापयित्वा नृपासने।। ५३।।

सुग्रीवं च तथा तेन ससैन्येन हनूमता।
अन्यैश्च कपिभिः सार्धं ययौ लंकां महायशाः।। ५४।।

बभूव तुमुलं युद्धं नरवानररक्षसाम् ।।
लङ्कायां विविधैः शस्त्रैस्तथाश्मतरुवृष्टिभिः।। ५५।।

निकुम्भिलाशिलायां तु तप्यमानं महत्तपः।।
मेघनादं स सौमित्रिर्विषमस्थं महायशाः।। ५६।।

सञ्छाद्य शरधाराभिर्विभीषणसहायवान्।
निजघान महोरस्कं शार्दूल इव कुञ्जरम्।। ५७।।

लक्ष्मण ने भी हंस कर उसको कटु उत्तर दिया। तब क्रुद्ध होकर शूर्पणखा उनको मारने का उपक्रम करने लगी ।। ४३।।

हे महामते ! उसकी उस चेष्टा को देखकर कमलनयन राम ने वहां उसके नाक और कान काट लिये ।। ४४।।

रुधिर से भरी हुई वह रोती हुई शीघ्र ही खर के घर गई खर और दूषण अपने सैनिकों के साथ वहां आ गये ।। ४५।।

उस राम ने भी जनस्थान में उन राक्षसों को मार डाला। राम के उस महान् कार्य को देखकर वह नासिका से रहित शूर्पणखा लंका चली गई ।। ४६।।

रुधिर से भरे सम्पूर्ण अंगों वाली शूर्पणखा ने यह कठोर वचन कहा कि हे राक्षस रावण ! तुम मर गये हो, जो तुम्हारे दो भाई मारे गये हैं ।। ४७।।

हे रावण ! स्त्री के साथ रहने वाले मनुष्य ने जनस्थान में युद्ध में खर, दूषण और त्रिशिरा को मार डाला है।। ४८।।

तुम्हारे कार्य को करने के लिये उद्यत मुझको उसने विकृत कर दिया है। मैं तुम्हारे लिये स्त्री-रत्न को लाने में उद्यत थी ।। ४९।।

हे भाई ! मैं क्या करूं ? वह मनुष्य तुमको मारने के लिये उद्यत है। हे महामते नारद ! बहन के इस कथन को सुनकर क्रोध से मूर्छित रावण एकदम उस जनस्थान में गया ।। ५०।।

वह स्वर्णमृग के कपट से कमलनयन राम को ठग कर सीता का अपहरण करके उसको अपने घर ले गया ।। ५१।।

राम भी उस महान् आश्चर्य को देखकर विस्मित हुये। रोते हुये वे भाई लक्ष्मण के साथ महागिरि ऋष्यमूक पर गये ।। ५२।।

वहां उन्होंने अग्नि की साक्षी देकर सुग्रीव को मित्र बनाया और बालि को मार कर उसको राज्य-आसन पर बैठाया ।। ५३।।

तदनन्तर सेनासहित सुग्रीव, हनूमान् और अन्य वानरों के साथ महायशस्वी राम लंका को गये ।। ५४।।

तब लंका में मनुष्य, वानरों और राक्षसों का विविध शस्त्रों से एवं पत्थरों और वृक्षों की वर्षा करके तुमुल युद्ध हुआ ।। ५५।।

आपत्ति में पड़े हुये एवं निकुम्भिला नामक शिला पर महान् तप करते हुये मेघनाद को महायशस्वी लक्ष्मण ने (मार डाला) ।। ५६।।

विभीषण की सहायता से लक्ष्मण ने बाणों की धाराओं से ढक कर विशाल वक्ष वाले मेघनाद को उसी प्रकार मारा, जैसे हाथी को सिंह मार डालता है ।। ५७।।

रामोऽपि कपिभिर्युक्तो हत्वा राक्षसमन्त्रिणः।
पुत्रान् सम्बन्धिनश्चैव निजघान दशाननम्।। ५८।।

तत्र संस्थापयामास तद्भ्रातरमनिन्दितम्।
लङ्काधिपत्ये विप्रर्षे मन्दोदर्यास्तथैव च ।। ५९।।

इति तद्वै महत्कर्म कृत्वा रामो महायशाः।
लक्ष्मणश्च महाबाहुर्दृष्ट्वा सर्वान्दिवौकसः।। ६०।।

तथा दशरथं चैव पितरं सुविमानगम्।
शुद्धिं दृष्ट्वा तु सीताया वह्नौ मानुषविग्रहः।। ६१।।

विष्णुः पुष्पकमारुह्य सबिभीषणवानरः।
सीतया सहितश्चैवाऽयोध्यायां च समाययौ।। ६२।।

तत्रासने शुभे पित्र्ये रामे राज्यं प्रशासति।
राजयक्ष्मा लक्ष्मणं च जगृहे गेहसंस्थितम्।। ६३।।

तथाविधं लक्ष्मणं हि रोगग्रस्तं समीक्ष्य सः।
रामो नाम महातेजाश्चिन्तयामास राघवः।। ६४।।

पप्रच्छ च वशिष्ठं वै स्वगुरुं ब्रह्मपुत्रकम्।
केन वै कर्मणा चेमं राजयक्ष्मा गृहीतवान्।। ६५।।

इति मे संशयं देव छिन्धि धीरवर प्रभो।।
इत्युक्तो मुनिराड् विप्रः कथयामास पातकम्।। ६६।।

वसिष्ठ उवाच-

इन्द्रजिद्वधनिर्णीतं घोररूपं महत्तरम्।
यस्मादेतस्य तपतः शिरश्चिच्छेद लक्ष्मणः।।६७।।

युद्धाद्वै विनिवृत्तस्य ब्रह्मवंशस्य रक्षसः।
तस्मादयं महातेजा राजरोगप्रपीडितः।। ६८।।

तपस्तपतु कुब्जाम्रे लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्द्धनः।
ततोऽयं भविता शीघ्रं राजयक्ष्मविवर्जितः।। ६९।।

त्वं च राम महाबाहो प्रायश्चित्तं तपात्मकम्।
कुरुष्व रावणवधजन्यपापापनुत्तये।। ७०।।

इति श्रुत्वा महातेजा विस्मयाविष्टमानसः।
पप्रच्छ गुरुमासीनं वशिष्ठं वाग्विदां वरम्।। ७१।।

राम उवाच-

ब्रह्मवंशसमुत्पन्नरावणस्य वधान्मुने।
कथं मे पातकं जातं पापस्य दुरितात्मनः।। ७२।।

वानरों से युक्त राम ने भी राक्षस मन्त्रियों को मार कर रावण को, उसके पुत्रों को और सम्बन्धियों को मार डाला ।। ५८ ।।

हे विप्रर्षे ! राम ने वहां रावण के प्रशंसनीय भाई विभीषण को लंका के राजपद पर स्थापित किया तथा मन्दोदरी का पति बनाया ।। ५९ ।।

इस प्रकार महायशस्वी राम ने और महाबाहु लक्ष्मण ने उस महान कार्य को करके सब देवताओं का दर्शन किया ।। ६० ।।

मनुष्यरूपधारी उस राम ने उत्तम विमान पर पिता दशरथ के दर्शन किये । उन्होंने अग्नि में सीता की पवित्रता को देखा ।। ६१ ।।

तदनन्तर वे रामरूप विष्णु बिभीषण और वानरों सहित तथा सीता के साथ पुष्पक विमान पर सवार होकर अयोध्या आ गये ।। ६२ ।।

वहां शुभ पितृपरम्परा से प्राप्त राज्य-आसन पर बैठ कर राम जबकि शासन कर रहे थे, राजयक्ष्मा रोग ने घर में स्थित लक्ष्मण को पकड़ लिया ।। ६३ ।।

लक्ष्मण को उस प्रकार से रोग से ग्रस्त देखकर महातेजस्वी रघुवंशी राम विचार करने लगे ।। ६४ ।।

उन्होंने ब्रह्मा के पुत्र अपने गुरु वसिष्ठ से पूछा- किस कर्म के प्रभाव से इस लक्ष्मण को राजयक्ष्मा ने पकड़ा है ।। ६५ ।।

हे धैर्यधारियों में श्रेष्ठ देव प्रभो ! मेरे इस संशय का छेदन करो । इस प्रकार राम के कहने पर मुनिराज विप्र वसिष्ठ ने कहा ।। ६६ ।।

वसिष्ठ ने कहा-

इसने इन्द्रजित् (मेघनाद) का वध करने रूप महान् भंयकर पाप किया है । क्योंकि इस लक्ष्मण ने तपस्या करते हुये इस मेघनाद का सिर काटा था ।। ६७ ।।

वह ब्राह्मण वंश का राक्षस उस समय युद्ध नहीं कर रहा था। इसलिये यह महातेजस्वी लक्ष्मण यक्ष्मा नाम के राजरोग से पीड़ित हुआ है ।। ६८ ।।

लक्ष्मी को बढाने वाला यह लक्ष्मण कुब्जाम्रक क्षेत्र में तपस्या करे । तदनन्तर यह शीघ्र ही राजयक्ष्मा से छूट जागया ।। ६९ ।।

हे महाबाहो! तुम भी रावण के वध से उत्पन्न पाप को दूर करने के लिये तपस्यारूप प्रायश्चित्त करो ।। ७० ।।

विस्मय से आविष्ट मन वाले महातेजस्वी राम ने इसको सुनकर आसंन पर बैठे हुये, विद्वानों में श्रेष्ठ गुरु वसिष्ठ वे पूछा ।। ७१ ।।

राम ने कहा-

हे मुने ! ब्राह्मण के वंश में उत्पन्न हुये दुरात्मा पापी रावण के वध से मुझको पाप कैसे लगा ।। ७२ ।।

गोविप्रहतकस्याऽपि देवानां चैव द्रोहिणः।
हर्त्तुश्च परदाराणां परक्षेत्रधनादिनाम्।। ७३।।

कथं तन्मारणे पापं युद्धस्योच्छ्‌वासवर्त्तिनः।
एतन्मे संशयं छिन्धि सर्वज्ञोऽसि यतो मुने।। ७४।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे मायापुरीमाहात्म्ये कुब्जाम्रके लक्ष्मणोपाख्यानवर्णनं नामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।। १२१।।

द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः
ब्राह्मणमहत्त्वर्णनम्

वसिष्ठ उवाच-

शृणु राम महाबाहो ब्राह्मणानां महामते।
माहात्म्यं सर्वपापघ्नं तापत्रयविनाशनम्।। १।।

ब्राह्मणा जङ्‌गमा मूर्त्तिः श्रीविष्णोः परमात्मनः।
अत एव हि विख्याताः क्षितिदेवाः महामते।। २।।

येषां वै दर्शनात्सद्यो नश्यन्ते पापराशयः।। ३।।

ब्राह्मणानां च सञ्चारो यत्र तिष्ठति सर्वदा।
तत्र सर्वाणि तीर्थानि वसन्ति नित्तरां सदा।। ४।।

भोजनीयाः प्रयत्नेन यद्यदिच्छन्ति तेन ते।
यत्किञ्चिदद्दुर्ल्लभं वस्तु ब्राह्मणेभ्यो ददेत्तु तत्।। ५।।

ब्राह्मणानां च सङ्‌गत्या ब्राह्मणानां च पूजनात्।
तर्पणाद् ब्राह्मणानां च पितॄणां तारणं भवेत्।। ६।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नरो ब्राह्मणमाश्रयेत्।
ब्रह्मवीर्यसमुत्पन्नो वरजातिषु वा विभो।। ७।।

सोऽपि देवो महाराज विज्ञेयो भवलिप्सुभिः।
ब्राह्मणस्य पदाङ्‌गुष्ठे दक्षिणे नरपुङ्‌गव।
सर्वतीर्थानि पुण्यानि वसन्ति नितरां सदा।। ८।।

यावन्ति विप्रपादोत्थरजांसि शिरसा नरैः।
धार्यन्ते नरशार्दूल तावद्वर्षसहस्रकम्।
स्वर्गलोके वसेन्मर्त्यो विमानवरमास्थितः।।९।।

यावन्त्यः कणिका देहे पतन्ति चरणाम्बुनः।
तावद्वर्षसहस्राणि ब्रह्मलोके महीयते।। १०।।

वह रावण गो-ब्राह्मण की हत्या करने वाला था, देवताओं का द्रोही था, दूसरों की स्त्रियों का हरण करता था और दूसरों की भूमि, धन आदि को छीन लेता था। ।७३। ।

युद्ध करने वाले उस रावण का वध करने में पाप कैसे है? हे मुने! क्योंकि तुम सर्वज्ञ हो, अत: मेरे इस संशय का छेदन करो ।। ७४।।

इस प्रकार श्री स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में मायापुरी-माहात्म्य में कुब्जाम्रक क्षेत्र में लक्ष्मणोपाख्यानवर्णन नामक १२१ वां अध्याय समाप्त हुआ।।

अध्याय-१२२

ब्राह्मणों के महत्त्व का वर्णन

वसिष्ठ ने कहा-

हे महाबाहो महामते राम ! सब पापों को नष्ट करने वाले और त्रिविध तापों का विनाश करने वाले ब्राह्मणों के माहात्म्य को सुनो ।।१।।

ब्राह्मण तो परमात्मा विष्णु के जंगम मूर्तिरूप हैं। हे महामते! इसीलिये वे पृथिवी के देवता कहलाते हैं ।।२।।

इनके दर्शन करने से पापों की राशियां तत्काल नष्ट जो जाती हैं ।।३।।

जहां सदा ब्राह्मणों का संचार होता है, वहां सदा सभी तीर्थ विद्यमान रहते हैं ।।४।।

ब्राह्मण जो-जो वस्तु चाहते हैं, उस-उसका उनको भोजन करावे। जो कुछ भी दुर्लभ वस्तु हो, ब्राह्मण के लिये उसका दान करे ।।५।।

ब्राह्मणों की संगति से, ब्राह्मणों का पूजन करने से और ब्राह्मणों को तृप्त करने से मनुष्यों के पितर तर जाते हैं ।।६।।

इसलिये मनुष्य को चाहिये कि सब प्रयत्न करके वह ब्राह्मण का आश्रय ले। हे विभो! ब्राह्मण तो श्रेष्ठ जाति में ब्रह्मा के वीर्य से उत्पन्न हुआ है ।।७।।

हे महाराज ! संसार में लिप्त रहने वाले मनुष्यों को उस ब्राह्मण देवता का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। हे नरश्रेष्ठ ! ब्राह्मण के दाहिने पैर के अंगूठे में सब पुण्य तीर्थ सदा निवास करते है ।।८।।

हे नरश्रेष्ठ ! ब्राह्मण के पैरों से उठे हुये धूलि के जितने कणों को मनुष्य सिर पर धारण करते हैं, उतने हजार वर्षों तक वह मनुष्य श्रेष्ठ विमान में स्थित होकर स्वर्गलोक में निवास करता है ।।९।।

ब्राह्मण के चरणों के जलों के जितने कण मनुष्य के शरीर पर गिरते हैं, वह मनुष्य उतने हजार वर्षों तक ब्रह्मलोक में जाकर महिमा को प्राप्त करता है ।।१०।।

श्राद्धे च ब्राह्मणा यत्र न सन्ति नृपसत्तम।
पितरश्चैव तेषां च नरके निवसन्त्यलम्।। ११।।

मूर्खा अपि महाबाहो ब्राह्मणाः पुण्यसञ्चयाः।
किं पुनश्चैव विद्वांसो वेदवेदाङ्गपारगाः।। १२।।

धन्यास्ते पुरुषा लोके ब्राह्मणानां च ये प्रियाः।
ये विप्रपूजाकामार्था न तेषां पुनरागमः।। १३।।

ते सर्वे निर्जरा ज्ञेया ब्राह्मणान्प्रणमन्ति ये।।
विप्रपादोदकं पुण्यं सर्वव्याधिविनाशनम्।। १४।।

सर्वपापप्रशमनं सर्वोपद्रवनाशनम्।। १५।।

धन्यं वै कीर्तितं विष्णोर्धन्यं ब्राह्मणपूजनम्।
विप्रपादोदकं धन्यं धन्यं गङ्गाजलं स्मृतम्।। १६।।

ब्राह्मणानां प्रसादाद्वै लभ्यन्ते सर्वसिद्धयः।
ब्राह्मणानां प्रकोपेण दह्यन्ते भवकोटयः।। १७।।

अविद्योऽपि महाराज नाऽवमान्यो द्विजः सदा।
अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणो भगवत्तनुः।। १८।।

संसारतापतप्तानां भेषजं ब्राह्मणा विभो।।१९।।

यावद् ब्राह्मणपूजाऽस्ति यावद् गङ्गा धरातले।
यावद्वेदमयो घोषस्तावन्नो विशते कलिः।। २०।।

ब्राह्मणोऽस्ति परं तत्त्वं ब्राह्मणोऽस्ति परं तपः।
ब्राह्मणोऽस्ति परा विद्या नाऽस्ति ब्राह्मणतः क्वचित्।। २१।।

अविद्यं ब्राह्मणं वाऽपि सविद्यं वा नराधिप।
योऽवमन्यति दुष्टात्मा तस्यर्द्धिर्नश्यति क्षणात्।। २२।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नाऽवमन्येद् द्विजातिकम्।
ब्राह्मणानां प्रकोपेण नहुषोऽजगरतां गतः।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मणं नाऽवकोपयेत्।। २३।।

वेदलेशोऽस्ति यत्रेश शास्त्रलेशोऽपि यत्र च।
तस्य दर्शनमात्रेण नश्यन्ते पापराशयः।। २४।।

वेदविन्मानुषो विप्रः स वै यत्र प्रगच्छति।
गच्छन्ति तत्र निधयः क्षेत्राण्यतितरां तथा।। २५।।

हे श्रेष्ठ राजन् ! जिसके श्राद्ध में ब्राह्मण नहीं रहते, उनके पितर निश्चित रूप से नरक में निवास करते हैं ।। ११।।

हे महाबाहो ! मूर्ख ब्राह्मणों में भी पुण्य संचित रहते हैं, पुनः वेद-वेदांगों में पारंगत विद्वान् का तो कहना ही क्या है ? ।। १२।।

लोक में वे पुरुष धन्य हैं जो ब्राह्मणों को प्रिय हैं और जो ब्राह्मणों की पूजा करके उनकी कामना पूरी करते हैं। उनका इस पृथिवी पर पुनः आगमन नहीं होता।।१३।।

जो ब्राह्मणों को प्रणाम करते हैं, उनको देवता समझना चाहिये। पुण्यशाली ब्राह्मणों के चरण का जल सब व्याधियों को नष्ट करने वाला है ।। १४।।

यह ब्राह्मण के चरण का जल सब पापों को शान्त करने वाला और सब उपद्रवों को नष्ट करने वाला है ।। १५।।

विष्णु का कीर्तन करना निश्चय से धन्य है। ब्राह्मण की पूजा करना धन्य है। ब्राह्मण के चरण का जल धन्य है। गंगा का जल धन्य है ।। १६।।

ब्राह्मणों की कृपा से निश्चय से सब सिद्धियां प्राप्त होती हैं। ब्राह्मणों के प्रकोप से करोड़ों लोक दग्ध हो जाते हैं ।। १७।।

हे महाराज ! विद्या से रहित ब्राह्मण का भी कभी तिरस्कार नहीं करना चाहिये। ब्राह्मण चाहे विद्या से रहित हो, चाहे विद्वान् हो, वह भगवान का शरीर है ।। १८।।

हे विभो ! संसार के ताप से सन्तप्त मनुष्यों के लिये ब्राह्मण ही औषध है ।।१९।।

इस पृथिवी पर जब तक ब्राह्मण की पूजा होती है, जब तक गंगा विद्यमान है और जब तक वेदों की ध्वनि है, तब तक कलि प्रवेश नहीं कर सकता ।। २०।।

ब्राह्मण परम तत्त्व है। ब्राह्मण परम तप है। ब्राह्मण परा विद्या है। ब्राह्मण के अतिरिक्त और कुछ नहीं है ।। २१।।

हे राजन् ! जो दुष्टात्मा मनुष्य अविद्वान् अथवा विद्वान् ब्राह्मण का तिरस्कार करता है, उसकी समृद्धियां तत्क्षण नष्ट हो जाती हैं ।। २२।।

इसलिये सब प्रकार से प्रयत्न करना चाहिये कि ब्राह्मण का तिरस्कार न करे। ब्राह्मणों के प्रकोप से नहुष अजगर हो गया था। इसलिये सब प्रकार से प्रयत्न करके ब्राह्मण को कुपित न करे ।। २३।।

जिस ब्राह्मण के पास वेद का लेश भी है और शास्त्र का लेश भी है, उसके दर्शन मात्र से पापों की राशियां नष्ट हो जाती हैं ।। २४।।

वेदों को जानने वाला ब्राह्मण मनुष्य जहां जाता है, वहीं सब निधियां और अतिशय पुण्यक्षेत्र पहुंच जाते हैं ।। २५।।

यत्राऽस्ति शास्त्रवेत्ता हि तत्र विष्णुः सनातनः।
पुराणसंहितावक्ता यत्र सञ्चरते द्विजः।
तत्रैव सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे प्रतिष्ठिताः।। २६।।

ब्रह्महत्यादिपापानां ब्राह्मणादेव निष्कृतिः।
गतश्रियश्च मर्त्या ये तथा चैव गतायुषः।
द्विषन्ति ब्राह्मणान् ये वै ते वा नरकगामिनः।। २७।।

आसन्नमरणा ज्ञेया हतश्रीकाश्च राघव।
ये द्विषन्ति महाभाग भिषक्कालज्ञसत्तमान्।। २८।।

यस्य भाव्या परा सिद्धिः यस्य भाव्या महार्थता।
यस्य भाव्यं परं ज्ञानं तस्य ब्राह्मणसङ्गतिः।। २९।।

तेन तप्तं हुतं तेन तेन जप्तं महत्तरम्।
पूजिता येन विप्रेशाः सत्यमेव नराधिप।।३०।।

आधिव्याधिभयं नैव भक्त्या यत्र द्विजार्चनम्।।३१।।

यथा सर्वेषु देवेषु श्रेष्ठो वै गरुडध्वजः।
वेदेषु च यथा साम शास्त्रे वेदान्त उच्यते।। ३२।।

पुराणां च यथा काशी क्षेत्राणां परमं त्विदम्।। ३३।।

हिमवान्पर्वतश्रेष्ठो यथा पशुषु धेनवः।
तथा सर्वपदार्थेषु ब्राह्मणाः परिकीर्त्तिताः।। ३४।।

इह चैव परत्राऽपि ब्राह्मणास्तारकाः स्मृताः।
केचिदैहिककर्माणः केचित्परसुखप्रदाः।। ३५।।

विप्रेतरो महाभाग यदि शास्त्रविशारदः।
ब्राह्मणश्च तथा मूर्खस्तस्माच्छ्रेष्ठतमो मतः।। ३६।।

ब्राह्मणांश्चैव सम्पूज्य यत्कर्म प्रकरोति हि।
अविधानात्कृतमपि सम्पूर्णं स्यादिति स्मृतिः।। ३७।।

अपृष्ट्वा ब्राह्मणान्ये वै स्वयं कर्म प्रकुर्वते।
तत्कर्म निष्फलं ज्ञेयमायासेनापि यत्कृतम्।। ३८।।

दम्भं करोति विप्रेषु विद्यायां यो नराधमः।
स याति नरकं घोरं यावदाभूतसम्प्लवम्।। ३९।।

यो निन्दति महाराज ब्राह्मणं ब्रह्मतत्परम्।
कुलं तस्य क्षयं याति ततो नरकमाप्नुयात्।। ४०।।

शास्त्रों को जानने वाला और पुराणों एवं संहिताओं की कथा कहने वाला ब्राह्मण जहां विचरण करता है, वहीं सनातन विष्णु रहते हैं और वहीं सब तीर्थ एवं सब देवता प्रतिष्ठित होते हैं ।। २६।।

ब्रह्महत्या आदि पापों से छुटकारा ब्राह्मण ही करा सकता है। जिनकी लक्ष्मी नष्ट हो गई है, जिनकी आयु समाप्त हो गई, ऐसे जो मनुष्य ब्राह्मणों से द्वेष करते हैं, वे नरक में जाते है ।। २७।।

हे महाभाग राघव ! जो मनुष्य चिकित्साविज्ञान और ज्योतिष को जानने वाले श्रेष्ठ ब्राह्मणों से द्वेष करते हैं, समझना चाहिये कि उनकी मृत्यु समीप है तथा लक्ष्मी नष्ट होने वाली है ।। २८।।

जिसको कि परम सिद्धि प्राप्त होती है, जिसको कि महान् धन प्राप्त होना है और जिसको परम ज्ञान प्राप्त होना है, उसको ब्राह्मणों की संगति प्राप्त होती है ।। २९।।

हे राजन् ! जिसने सत्य ही ब्राह्मणों का पूजन किया है, उसने मानों तप कर लिया है, उसने हवन कर लिया है और उसने अति महान् जप कर लिया है ।। ३०।।

जहां ब्राह्मणों की अर्चना भक्ति-भाव से की जाती है, वहां आधि (मानसिक रोग) और व्याधि (शारीरिक रोग) का भय नहीं रहता ।। ३१।।

जिस प्रकार सब देवताओं में विष्णु श्रेष्ठ हैं, वेदों में सामवेद श्रेष्ठ है और शास्त्रों में वेदान्त श्रेष्ठ कहा जाता है........।। ३२।।

पुरियों में काशी को और क्षेत्रों में इस क्षेत्र को परमश्रेष्ठ माना जाता है ।।३३।।

पर्वतों में हिमाचल पर्वत को और पशुओं में गौओं को श्रेष्ठ कहा जाता है, उसी प्रकार सब पदार्थों में ब्राह्मणों को श्रेष्ठ कहा गया है ।। ३४।।

इस लोक में ओर परलोक में भी ब्राह्मणों को भव से तराने वाला कहा गया है। कुछ ब्राह्मण इस लोक में कर्म करने वालों को सुख देते हैं और कुछ ब्राह्मण परलोक में सुख देते है ।। ३५।।

हे महाभाग ! यदि ब्राह्मण से अन्य वर्ण का मनुष्य शास्त्रों में विशारद हो और ब्राह्मण मूर्ख भी हो, तो भी ब्राह्मण को उससे श्रेष्ठ माना गया है ।। ३६।।

स्मृतियों का कथन है कि ब्राह्मणों का पूजन करके जो मनुष्य अपना काम करता है, उसका वह कार्य विधिपूर्वक किये विना भी पूरा हो जाता है ।। ३७।।

जो मनुष्य ब्राह्मणों से विना पूछे स्वयं कार्य करता है, उसका वह कार्य परिश्रम से करने पर भी निष्फल हो जाता है ।। ३८।।

जो नराधम मनुष्य ब्राह्मणों के प्रति विद्या का दम्भ करता है, वह मनुष्य प्रलय पर्यन्त घोर नरक में जाता है ।। ३९।।

जो मनुष्य ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण की निन्दा करता है, उसका कुल नष्ट हो जाता है और वह नरक में जाता है ।। ४०।।

विद्यया जयते विप्रान्स वै नरकमश्नुते।। ४१।।

ब्राह्मणार्थं यस्य वित्तं ब्राह्मणार्थं पराक्रमः।
स एव पुरुषो लोके पुण्यात्मा नाऽत्र संशयः।। ४२।।

चाण्डालीष्वपि सञ्जाता ब्राह्मणानां हि वीर्यतः।
तेऽप्यवध्या महाराज किमु विद्वान्सुकर्मकृत्।। ४३।।

पौलस्त्यपुत्रो भगवन्हतो यद्वै त्वया विभो।
रक्षणार्थं ब्राह्मणानां गवां चैव महामते।। ४४।।

अलेपस्यापि ते राम लक्ष्मणस्याऽपि पातकम्।
लोकानुवृत्तयेऽवश्यं कर्तव्यं पापसङ्क्षयम्।। ४५।।

कुब्जाम्रकात्परं क्षेत्रं ब्रह्महत्यानिवारणम्।
नाऽस्ति राघवशार्दूल पृथिव्यां पुण्यदं महत्।। ४६।।

लक्ष्मणेन प्रगन्तव्यं त्वया तत्र महीपते।। ४७।।

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे कुब्जाम्रकमाहात्म्ये ब्राह्मणप्रशंसा नाम
द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१२२।।

त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

लक्ष्मणस्य शेषरूपेण कुब्जाम्रतीर्थे तपश्चरणं श्रीशिवप्रसादात्तस्य यक्ष्मरोगत्यागो लक्ष्मणेश्वरस्थापनमिन्द्रवाय्वोः कुण्डे नन्दीशिला-कुण्डाद्यनेकतीर्थवर्णनपुरस्सरं ब्रह्मदत्तवैश्योपाख्यानम्

स्कन्द उवाच-

इत्युक्तो वै वसिष्ठेन रामो धर्मभृतां वरः।
कुब्जाम्रके महाक्षेत्रे जगाम च सहानुजैः।। १।।

नारद उवाच-

लक्ष्मणेन तपस्तप्तं कथं कुब्जाम्रके महत्।
कस्मिन्प्रदेशे भगवन्कानि तीर्थानि तद्वद।। २।।

रामेणाऽपि कृतं किं वा कस्मिन्क्षेत्रे कृतं तपः।
एतत्सर्वं समासेन कृपया वद मे प्रभो।। ३।।

स्कन्द उवाच-

सर्वं ते वच्मि विप्रेश महदज्ञाननाशनम्।
लक्ष्मणेन यथा तप्तं ब्रह्महत्यानिवारणम्।
रामेणाऽपि परक्षेत्रे कृतं पापप्रणाशनम्।। ४।।

जो मनुष्य ब्राह्मणों को विद्या से जीत ले, वह निश्चय से नरक में जाता है ।।४१।।

जिस मनुष्य का धन ब्राह्मण के लिये है और जिसका पराक्रम ब्राह्मण के लिये है, इस संसार में वह मनुष्य ही पुण्यात्मा है, इसमें सन्देह नहीं है ।। ४२।।

हे महाराज ! जो मनुष्य ब्राह्मण के वीर्य से चांडालिनों में भी उत्पन्न होते हैं, वे अवध्य होते है। उत्तम कर्म करने वाले विद्वान् ब्राह्मण का तो कहना ही क्या है ।।४३।।

हे विभो भगवन् महामते ! जो तुमने पुलस्त्य के पुत्र रावण का वध ब्राह्मणों और गौओं की रक्षा के लिये किया है ।। ४४।।

हे राम ! निर्लिप्त होते हुये भी तुमको और लक्ष्मण को पाप लगा है। अतः तुमको लोकधर्म का पालन करने के लिये पापों का विनाश करना चाहिये।। ४५।।

हे रघुवंशियों में श्रेष्ठ राम ! इस पृथिवी पर ब्रह्महत्या का निवारण करने वाला और पुण्य देने वाला परम क्षेत्र कुब्जाम्रक से अधिक महान् अन्य नहीं है ।। ४६।।

हे राजन् ! अतः तुमको वहां लक्ष्मण के साथ जाना चाहिये ।। ४७।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में कुब्जाम्रकमाहात्म्य प्रकरण में ब्राह्मण-प्रशंसा नाम का १२२ वां अध्याय पूरा हुआ ।।

अध्याय-१२३

लक्ष्मण का शेष के रूप में कुब्जाम्र तीर्थ में तपस्या करना, श्री शिव की कृपा से उसके यक्ष्मा रोग का निवारण, लक्ष्मणेश्वर की स्थापना करना, इन्द्रकुण्ड, वायुकुण्ड, नन्दीशिला, कुण्ड आदि अनेक तीर्थों का वर्णन, ब्रह्मदत्त वैश्य का उपाख्यान

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार वसिष्ठ के कहने पर धर्म का पालन करने वालों में श्रेष्ठ राम अपने छोटे भाइयों के साथ कुब्जाम्रक महाक्षेत्र में गये ।। १।।

नारद ने कहा-

हे भगवन् ! लक्ष्मण ने कुब्जाम्रक में किस प्रदेश में महान् तप किस प्रकार किया था। वहां कौन से तीर्थ हैं, कहिये ।। २।।

राम ने भी किस क्षेत्र में तप किया था। हे प्रभो! इस सारे वृत्तान्त को कृपा करके संक्षेप से मुझसे कहिये ।। ३।।

स्कन्द ने कहा-

हे विप्रेश नारद ! लक्ष्मण ने जिस प्रकार ब्रह्महत्या का निवारण करने वाले तप को किया था और राम ने भी परम कुब्जाम्रक क्षेत्र में पापों को नष्ट करने वाले तप को किया, महान् अज्ञान को नष्ट करने वाले इस सारे वृत्तान्त को मैं तुमसे कहता हूं।।४।।

भारापनुत्तये भूम्याः प्रार्थितस्य परात्मनः।
कृतदुष्टविनाशस्य रक्षणार्थं भवादृशाम्।। ५।।

श्रीरामस्य महाबाहोर्लीलामानुषरूपिणः।
पुण्यपापादिकं चैव नैव दोषविकल्पना।। ६।।

विशेषतोऽस्य पापस्य रावणस्य दुरात्मनः।
गोविप्रहन्तुर्विप्रेश मारणे नाऽस्ति यद्यपि।। ७।।

पातकं तदपि प्राज्ञ लोकचेष्टानुसारिणा।
प्रायश्चित्तं कृतं तेन लक्ष्मेणन च नारद।। ८।।

कुब्जाम्रकोत्तरे भागे गव्यूत्यर्द्धे तथाऽर्द्धके।
क्रोशे गङ्गातटे पश्चान्नानामुनिगणान्विते।। ९।।

अद्याऽपि तत्प्रदेशे हि लक्ष्मणस्याऽस्य रूपतः।
सर्परूपेण शेषांशो वर्त्तते भगवत्प्रियः।। १०।।

शिवमाराधयामास वर्षैर्द्वादशसङ्ख्यकैः।
निराहारो महातेजाः शिवसंन्यस्तमानसः।। ११।।

जजाप परमां विद्यां षड्वर्णां भक्तितत्परः।
वाय्वाहारो वर्षशतं शतपत्रफलाशनः।। १२।।

तस्यावेकेन पाद्गेन शिवभक्तो जितेन्द्रियः।
ततः शिवो महाभाग प्रत्यक्षं तस्य नारद।। १३।।

बभूव सहसा पुत्र कान्तिव्याप्तदिगन्तरः।
वृषसंस्थोऽर्द्धचन्द्रेण संशोभितललाटकः।। १४।।

व्याघ्रचर्मपरीधानो व्यालयज्ञोपवीतवान्।
उमानीतार्द्धतनुकस्त्रिनेत्रो गजकृत्तिधृक्।। १५।।

उवाच वचनं तत्र सौमित्रिं मित्रवत्सलम्।। १६।।

श्रीशिव उवाच-

साधु साधु महाभाग सुमित्रानन्दवर्द्धन।
गतं ते पातकं तेन मत्प्रसादेन लक्ष्मण।। १७।।

अस्मिन्क्षेत्रे सकृत्स्नानाद् ब्रह्महत्यात्रिकोटिभिः।
मुच्यन्ते किमु त्वं शुद्धो मुनिहिंसकहिंसकः।। १८।।

शुद्धस्त्वं सर्वपापेभ्यो देहजेभ्यो महाशय।
गच्छ गच्छ स्वके स्थाने कुरु राज्यं सुखानि च।। १९।।

भूमि के भार को दूर करने के लिये जिस परमात्मा से प्रार्थना की गई थी और जो आप जैसों की रक्षा के लिये दुष्टों का विनाश करते हैं.......... ।। ५ ।।

ऐसे लीलामय मनुष्य का रूप धारण करने वाले महाबाहु राम के सम्बन्ध में पाप-पुण्य आदि की एवं दोषों की कल्पना नहीं करनी चाहिये ।। ६ ।।

हे विप्रेश ! विशेष रूप से गो-ब्राह्मण की हत्या करने वाले इस पापी दुरात्मा रावण के मारने में यद्यपि (पाप नहीं है) .... ।। ७ ।।

पाप नहीं है, तथापि हे बुद्धिमान् नारद ! लोक में प्रचलित चेष्टाओं (व्यवहारों) का पालन करने वाले उस राम ने और लक्ष्मण ने प्रायश्चित्त किया ।। ८ ।।

कुब्जाम्रक क्षेत्र के उत्तरी भाग में आधा गव्यूति (एक कोस) और आधा कोस दूर (कुल डेढ कोस) मुनियों से युक्त गंगा के तट पर पीछे के भागों में लक्ष्मण ने तप किया था ।। ९ ।।

आज भी निश्चय से उस प्रदेश में इस लक्ष्मण के स्वरूप से भगवान् विष्णु के प्रिय शेष के अंशावतार सर्परूप में विद्यमान हैं ।। १० ।।

शिव के प्रति मन को निहित करके और निराहार रह कर महातेजस्वी लक्ष्मण ने १२ वर्षों तक शिव की आराधना की ।। ११ ।।

सौ वर्षों तक कमलों और फलों का भक्षण करके तथा तदनन्तर केवल वायु का आहांर करते हुये उन्होंने भक्ति से तत्पर होकर छः वर्णों वाली परम विद्या (ॐ नमः शिवाय) का जप किया ।। १२ ।।

वह शिव का भक्त जितेन्द्रिय लक्ष्मण एक पैर से खड़ा रहा। हे महाभाग नारद! तदनन्तर शिव उसके सामने प्रत्यक्ष हुये ।। १३ ।।

हे पुत्र नारद ! कान्ति से दिशाओं के अन्तःभाग को व्याप्त करते हुये, बैल पर बैठे हुये और आधे चन्द्रमा से मस्तक पर सुशोभित वे सहसा प्रकट हुये थे ।। १४ ।।

उनका परिधान व्याघ्र के चर्म का था। सर्प का यज्ञोपवीत था। आधे शरीर में पार्वती विराजमान थीं। तीन नेत्र थे और गज के चर्म को धारण कर रखा था ।।१५ ।।

मित्रवत्सल लक्ष्मण से उन्होंने यह वचन कहा ।। १६ ।।

श्रीशिव ने कहा-

सुमित्रा के आनन्द को बढाने वाले हे महाभाग! साधु, साधु। हे लक्ष्मण! मेरी कृपा से तुम्हारा पाप नष्ट हो गया है ।। १७ ।।

इस क्षेत्र में एक बार स्नान करने से तीन करोड़ ब्रह्महत्याओं से मनुष्य मुक्त हो जाता है। तुम्हारा तो कहना ही क्या? मुनियों के हिंसक राक्षस का वध करने वाले तुम शुद्ध हो ।। १८ ।।

हे महाशय ! तुम शरीरज सब पापों से शुद्ध हो गये हो। तुम अपने स्थान पर जाओ, राज्य करो और सुखों का उपभोग करो ।। १९ ।।

गतो वै राजयक्ष्मा ते देहतः शुभगेहतः।
त्वन्नाम्नेदं पुण्यतमं लक्षितं वै भविष्यति।। २०।।

अहं च भगवन्नित्यं लक्ष्मणेश्वरतां गतः।
तिष्ठामि मुक्तिदो नृणामतिदुष्कृतिनां तथा।। २१।।

स्कन्द उवाच-

इत्युक्त्वा च ततो दत्त्वा लक्ष्मणाय वरं तदा।
तत्रैवान्तर्दधे रुद्रो भक्तिगम्यो दुरासदः।। २२।।

सोऽपि लक्ष्मणनामा वै विष्णोरंशो महात्मनः।
स्थितवांस्तत्र स्वांशेन पूर्णोऽपि प्रभुरच्युतः।। २३।।

तत्रैव वामभागे तु शिवो ज्ञानगतिः प्रभुः।
नाम्ना लक्ष्मेश्वरः ख्यातो दर्शनात्सर्वपापहा।। २४।।

गङ्गायाः पश्चिमे तीरे यत्र सिन्दूरवर्णका।
मृत्तिका वर्त्तते विप्र तत्र लक्ष्मणकुण्डकम्।। २५।।

तत्र स्नात्वा च जप्त्वा च फलानन्त्यं लभेन्नरः।। २६।।

तत्र वामविभागे तु मुनिकुण्डमिति स्मृतम्।
तत्र स्नात्वा शुभांल्लोकान्प्राप्नोति परमं पदम्।। २७।।

तत्र विष्णोर्गदा विप्र निहिता कुद्धचेतसा।
विष्णुना वृत्रदमने तत्राऽस्ति चिह्नितं जले।। २८।।

इन्द्रकुण्डमिति ख्यातं तत्रैव भवमोचनम्।
यत्रेन्द्रस्तपसा वृत्रं निजघान् महामुने।। २९।।

तस्य वामे महत्तीर्थं वायुकुण्डमिति स्मृतम्।
स्नात्वा तत्र महाभाग शतगोदानजं फलम्।। ३०।।

तस्मिन्नेव स्थले रम्ये स्थिता नन्दीशिला शुभा।
स्पर्शमात्रेण यस्यास्तु मुच्यते सर्वपातकैः।। ३१।।

नन्दीकुण्डमिति ख्यातं सर्वतीर्थेषु चोत्तमम्।। ३२।।

तत उत्तरदिग्भागे नाम्ना धर्मधराधरः।
धर्मधारेति विख्याता सर्वपापक्षयङ्करी।। ३३।।

आयाति पर्वतश्रेष्ठाद्धर्माख्या धर्म्मवर्द्धिनी।
तस्यां स्नात्वा नरो भक्त्या वाजपेयफलं लभेत्।। ३४।।

तुम्हारे शरीर से और शुभ घर से राजयक्ष्मा रोग निश्चय से चला गया है। यह पुण्यतम तीर्थ तुम्हारे नाम से लक्षित होगा ।। २० ।।

हे भगवन् ! मैं भी लक्ष्मणेश्वर नाम को प्राप्त होकर सदा यहां रहूंगा और अति दुष्कर्म करने वाले मनुष्यों को भी मुक्ति प्रदान करूंगा ।। २१ ।।

स्कन्द ने कहा-

यह कहकर और तदनन्तर लक्ष्मण को वर देकर भक्ति से प्राप्त होने वाले दुष्प्राप्य रुद्र वहीं अर्न्तधान हो गये ।। २२ ।।

वे भी महात्मा विष्णु के अंश, लक्ष्मण के अपने नाम से स्थित हो गये। पूर्ण होने पर भी वे प्रभु अच्युत (विष्णु) हैं ।। २३ ।।

वहीं पर बांये भाग में ज्ञान से प्राप्त होने वाले प्रभु शिव लक्ष्मेश्वर नाम से प्रसिद्ध हुये। दर्शन करने से वे सब पापों को नष्ट करते हैं ।। २४ ।।

हे विप्र ! गंगा के पश्चिमी तट पर जहां सिन्दूरी रंग की मिट्टी है, वहां लक्ष्मणकुण्ड है ।। २५ ।।

वहां स्नान करने और जप करने से मनुष्य अनन्त फल पाता है ।। २६ ।।

उसके बायें भाग में मुनिकुण्ड है। उसमें स्नान करने से मनुष्य शुभ लोकों को और परम पद को प्राप्त करता है ।। २७ ।।

हे विप्र ! वहां क्रुद्ध मन वाले विष्णु ने गदा से राक्षसों को मारा था। यहां के जल में वृत्र के दमन करने का चिह्न है ।। २८ ।।

वहीं पर भव से मुक्ति दिलाने वाला प्रसिद्ध इन्द्रकुण्ड है। हे महामुने! यहां तपस्या करके इन्द्र ने वृत्र को मारा था ।। २९ ।।

उसके बायें भाग में वायुकुण्ड नाम का महान् तीर्थ है। हे महाभाग ! यहां स्नान करने से सौ गौओं के दान का फल मिलता है ।। ३० ।।

उसी रमणीय स्थल पर शुभ नन्दीशिला है। इसके स्पर्शमात्र से मनुष्य सारे पापों से मुक्त हो जाता है ।। ३१ ।।

वहां नन्दीकुण्ड नाम से प्रसिद्ध तीर्थ है। यह सब तीर्थों में उत्तम है ।। ३२ ।।

उससे उत्तर दिशा में धर्म पर्वत है। यहां धर्मधारा नाम की प्रसिद्ध नदी सब पापों का विनाश करने वाली है ।। ३३ ।।

धर्म को बढाने वाली वह धर्मधारा नाम की नदी श्रेष्ठ धर्म पर्वत से आती है। उसमें भक्तिभाव से स्नान करने से मनुष्य वाजपेय यज्ञ का फल पाता है ।। ३४ ।।

धर्मेश्वरो महादेवो वर्त्तते लिङ्गरूपधृक्।
यः स्नापयति लिङ्गं तन्मण्डलं भक्तिततत्परः।
सर्वान्कामानवाप्नोति जलदानेन नारद।। ३५।।

अथाऽन्यच्च प्रवक्ष्यामि पीठं परमदुर्लभम्।
यत्रैकरात्राल्लभते सिद्धिं परमदुर्लभाम्।। ३६।।

माहेश्वरीति विख्याता सर्वसिद्धिप्रदायिनी।
यत्र रुद्रः स्वयं साक्षाद्देवैः सन्निहितः सदा।। ३७।।

माहेश्वरीति नाम्ना वै कृष्णवर्णा महामुने।
तस्या वै दर्शनाद्याति रुद्रलोकं दुरासदम्।। ३८।।

आनागतीर्थतो विप्र तथा हैमवतीतटम्।
मायाक्षेत्रमिदं ख्यातं सर्वक्षेत्रोत्तमोत्तमम्।। ३९।।

यस्यैकवारमपि यो दर्शनं प्रकरोति हि।
कोटिजन्मकृतैः पापैर्मुच्यते नाऽत्र संशयः।। ४०।।

धन्यानां वसतिर्ह्यत्र क्षेत्रराजे महामुने।
न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि।। ४१।।

अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यं को वा वर्णयितुं क्षमः।
श्रीविष्णोर्यत्र सान्निध्यमीश्वरस्य तथैव च।। ४२।।

दक्षादिभिर्मुनिवरैः कृताः क्रतुवरा यतः।
एतत्क्षेत्रसमं क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्।। ४३।।

मृता यत्र महाभाग प्रयान्ति परमं पदम्।
तिर्यग्योनिगताश्चापि तथा स्थावरतां गताः।
प्रयान्ति भवनं विष्णोस्त्यक्तदेहा महामते।। ४४।।

शृणु विप्र पुरावृत्तं चित्रं परमकं तथा।।४५।।

यथाऽत्र प्रवरस्थाने वृषव्याघ्रौ महामुने।
ययतुः परमां सिद्धिं प्राप्ते चापरजन्मनि।
इतिहासमिमं श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते।। ४६।।

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे बभूव वणिजां वरः।
ब्रह्मदत्त इति ख्यातः कुबेर इव चापरः।। ४७।।

एकदा स महाभाग शकटे स्थाप्य द्रव्यकम्।
सुवर्णमुक्तारत्नानि प्रवालानि च नारद।। ४८।।

वहां लिंग रूपधारी धर्मेश्वर महादेव हैं। जो मनुष्य भक्तिभाव से उस लिंग को और उसके मंडल को स्नान कराता है, हे नारद! वह इस जल का दान करने से सब कामनाओं को प्राप्त करता है ।। ३५ ।।

इसके बाद मैं तुमको दूसरे परम दुर्लभ पीठ का वृत्तान्त बताऊंगा, जहां एक रात में ही मनुष्य परम दुर्लभ सिद्धि को प्राप्त करता है ।। ३६ ।।

यहां सब सिद्धियों को प्रदान करने वाली माहेश्वरी नाम से प्रसिद्ध देवी हैं। यहां देवों से युक्त होकर साक्षात् रुद्र सदा स्वयं निवास करते हैं ।। ३७ ।।

हे महामुने ! वे माहेश्वरी नाम से प्रसिद्ध देवी कृष्णवर्ण की हैं। उनके दर्शन करने से मनुष्य निश्चय से दुष्प्राप्य शिवलोक को प्राप्त करता है ।। ३८ ।।

हे विप्र ! नागतीर्थ से लेकर हैमवती नदी के तट तक यह मायाक्षेत्र नाम से प्रसिद्ध क्षेत्र है, जो सब क्षेत्रों में उत्तमोत्तम है ।। ३९ ।।

जो मनुष्य एक बार भी इस मायाक्षेत्र का दर्शन कर लेता है, वह निश्चय से करोड़ जन्मों में किये गये पापों से मुक्त हो जाता है। इसमें संशय नहीं है ।। ४० ।।

हे महामुने ! इस क्षेत्रराज में निश्चय से धन्य मनुष्यों का ही निवास है। उनका सौ करोड़ कल्पों तक भी पुनर्जन्म नहीं होता ।। ४१ ।।

इस क्षेत्र के माहात्म्य का वर्णन करने में कौन समर्थ है, जहां कि श्रीविष्णु का और शिव का सान्निध्य है ।। ४२ ।।

क्योंकि यहां दक्ष आदि श्रेष्ठ मुनियों ने उत्तम यज्ञ किये थे, अतः इसके समान क्षेत्र तीनों लोकों में दुर्लभ है ।। ४३ ।।

हे महाभाग ! जो यहां मरते हैं, वे परमपद को प्राप्त होते हैं। हे महामते नारद ! पशु-पक्षी योनि में गये हुये और स्थावर योनियों में गये प्राणी भी शरीर को छोड़ कर विष्णु के लोक को जाते हैं ।। ४४ ।।

हे विप्र! परम आश्चर्यकारी प्राचीन वृत्तान्त को सुनो ।। ४५ ।।

हे महामुने ! जिस प्रकार कि इस श्रेष्ठ स्थान पर बैल और बाघ ने दूसरे जन्म में परम सिद्धियों को प्राप्त किया था। इस इतिहास को सुनकर मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है ।। ४६ ।।

धर्म के क्षेत्र कुरुक्षेत्र में ब्रह्मदत्त नाम से प्रसिद्ध श्रेष्ठ वैश्य था। वह मानो दूसरा कुबेर था ।। ४७ ।।

हे महाभाग नारद ! एक बार वह गाड़ी में द्रव्य, स्वर्ण, मोती, रत्नों और प्रवालों को लाद कर........... ।। ४८ ।।

तीर्थयात्राप्रसङ्गेन दैवात्कुब्जाम्रके ययौ।
व्यापाराश्च कृतास्तेन तीर्थयात्रा च वै तथा।। ४९।।

ब्रह्मदत्तस्य गेहे तु गत एको वृषस्तदा।
सार्थाच्चैव परिभ्रष्टो भूयः कुब्जाम्रकं ययौ।। ५०।।

देवालयसमीपे तु स्थितवान्कतिचित्समाः।
निर्माल्यफलपत्राणि भक्षयन्वृषभो मुने।। ५१।।

दिने स्वयं वनं याति रात्रावायाति तत्र वै।
एवं हि वसतस्तस्य तत्र देवगृहाद्बहिः।
व्याघ्रश्चैको रिपुर्जातो दृष्ट्वा पुष्टशरीरकम्।। ५२।।

तत्प्रसङ्गाच्च तत्रैव समायाति जिघांसया।
एवं तयोर्महद्वैरं बभूव मुनिपुङ्गव।। ५३।।

वृषभः सोऽपि पुष्टाङ्गो न तं गणयति ध्रुवम्।
तीक्ष्णशृङ्गो महोच्चो वै ककुद्वान् दृढविक्रमः।। ५४।।

सहसा सोऽपि व्याघ्रश्च वृषभं न जिघांसति।
एकदा मुनिशार्दूल गतोऽरण्ये महावृषः।
तृणानि खादितुं विप्र निर्जनेऽतिभयङ्करे।। ५५।।

महावराहसञ्छन्ने सरीसृपनिषेविते।
व्याघ्रऋक्षशताकीर्णे दुर्गमे खड्गसेविते।। ५६।।

तयोर्युद्धं समभवन्महद् वृषभव्याघ्रयोः।
वृषश्च तं महाभाग शृङ्गाभ्यां व्याघ्रकं तदा।
दधार च तथा भूभौ चिक्षेप प्रबलं खलु।। ५७।।

उत्थाय सहसा सोऽपि वृषं कष्टाज्जघान ह।
सोऽपि सिंहो महातेजा आविद्धो वृषभेण ह।। ५८।।

ममार च महाभाग तस्मिन्कुब्जाम्रके वने।
अवन्तीविषये तौ च कुब्जाम्रमृतिवैभवात्।
पितापुत्रौ राजपुत्रौ बभूवतुरनिन्दितौ।। ५९।।

पूर्वजन्मविरोधेन जातौ तत्र विरोधिनौ।
वृषो राजा बभूवाऽथ सिंहो वै राजपुत्रकः।। ६०।।

एकपुत्रस्तदा राजा किञ्चित्पुत्रं न भाषते।
सोऽपि राजकुमारश्च राजानं न च पश्यति।। ६१।।

तीर्थयात्रा के प्रसंग से भाग्यवश कुब्जाम्रक क्षेत्र में गया। वहां उसने व्यापार किया और तीर्थयात्रा की ।। ४९।।

तदनन्तर ब्रह्मदत्त के घर का एक बैल सार्थ से भ्रष्ट होकर दूर पुनः कुब्जाम्रक क्षेत्र में चला गया ।। ५०।।

हे मुने ! वह बैल देवालय के समीप निर्माल्य, फलों और पत्तों को खाता हुआ कुछ वर्षों तक वहां स्थित रहा ।। ५१।।

वह स्वयं दिन में वन में जाता था और रात में वहां मन्दिर में आ जाता था। इस प्रकार निवास करते हुये, जबकि वह देवमन्दिर से बाहर था, उसके पुष्ट शरीर को देख कर एक बाघ उसका शत्रु हो गया ।। ५२।।

उसके प्रसंग से उस बैल को मारने की इच्छा से वह वहां आता था। हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार उनमें महान् वैर हो गया ।। ५३।।

पुष्ट अंगों वाला, तेज सींगों वाला, बहुत ऊंचे ककुद वाला, दृढ पराक्रमी वह बैल भी उस बाघ को निश्चय से कुछ नहीं गिनता था ।। ५४।।

वह बाघ भी सहसा उस बैल को मार नहीं पाता था। हे विप्र मुनिश्रेष्ठ नारद! एक दिन वह महान् बैल अति भयंकर निर्जन वन में घास खाने के लिये गया ।। ५५।।

वह वन बड़े सूअरों से भरा था, सर्पों से सेवित था, सैकड़ों बाघ और रीछ वहां भरे थे, दुर्गम था और गैंडों से सेवित था ।। ५६।।

वहां उन दोनों बैल और बाघ का महान् युद्ध हो गया। हे महाभाग! तब बैल ने उस बाघ को सींगों से बलपूर्वक भूमि पर फेंक दिया और धर दबाया ।। ५७।।

उठकर उस सिंह ने भी बड़ी कठिनाई से उस बैल को मार डाला। वह महातेजस्वी सिंह भी बैल द्वारा बींधे जाने से .... ।। ५८।।

हे महाभाग ! उस कुब्जाम्रक वन में मर गया। तदनन्तर कुब्जाम्रक क्षेत्र में मरने के प्रभाव से अवन्ती देश में वे दोनों अनिन्दित राजपुत्र पिता-पुत्र हुये ।। ५९।।

इनमें बैल राजा और सिंह राजकुमार हुआ था। परन्तु पूर्व जन्म के विरोध के कारण वे वहां भी विरोधी हो गये ।। ६०।।

राजा का एक ही पुत्र था, तो भी राजा उस पुत्र से कुछ नहीं बोलता था। वह राजकुमार भी राजा को देखता नहीं था ।। ६१।।

प्रजायाश्चानुरोधेन कुमारं च जिघांसति।
राजा स्मरति वृत्तान्तं पूर्वजन्मभवं खलु।। ६२।।

इति तयोर्महाभाग दैवयोगादभून्मतिः।
कुब्जाम्रकं महातीर्थं गन्तुं राज्ञो महात्मनः।। ६३।।

स कुमारो महाराजो निजधाम्नः पदैर्युतः।
ययौ हिमाद्रिनिकटे मायापुर्यां महामते।। ६४।।

यावत्प्रविशते राजा कुब्जाम्रक्षेत्र उत्तमे।
नानामुनिगणाकीर्णे देवगन्धर्वसेविते।। ६५।।

तावत्सस्मार पुत्रोऽपि वृत्तान्तं पूर्वसम्भवम्।
वैरस्य कारणं स्वस्य राज्ञश्चैव महामते।। ६६।।

तस्मिन्नेव क्षणे तौ च निर्वैरौ हि बभूवतुः।
क्षेत्रस्याऽस्य प्रभावेण शुद्धौ चैव तथा मुने।। ६७।।

तत्रैव स्थितवन्तौ च किञ्चित्कालं महामती।
कालेन व्ययमापन्नौ यत्र गत्वा न शोचति।। ६८।।

इति वै परमाश्चर्यं मृगेन्द्रवृषयोर्वने।
तिर्यग्योनिप्रगतयोर्मूढयोर्बद्धवैरयोः।। ६९।।

राज्यं चैव तथा प्राप्तं मोक्षश्चाऽपरजन्मनि।। ७०।।

कुब्जाम्रके मृतो विप्र विप्रहत्यायुतोऽपि वा।
मोक्षं प्राप्नोति सततं कुष्ठी वाऽमृतसन्ततिः।। ७१।।

अथाऽन्यच्चाऽत्र परमं तीर्थं वाराहसंज्ञितम्।
धरण्या यत्र नियतं संस्तुतो भगवानजः।। ७२।।

तस्मादिदं परं क्षेत्रं वाराहं नाम विश्रुतम्।
यत्र ब्रह्मादयो देवास्तपस्तेपुः सुदारुणम्।। ७३।।

वाराहतीर्थमहिमा केन वर्णयितुं क्षमः।
तत्रैका परमा मूर्त्तिः शिलारूपा महात्मनः।। ७४।।

तच्छिलास्पर्शनादेव विष्णुलोके वसेच्चिरम्।
सूर्यपुत्री नदी तत्र समायाति महामते।। ७५।।

गालवेन पुरा सूर्यः समाराधित ईश्वरः।
प्रसन्नश्चाब्रवीत्सूर्यो वरं वरय गालव।। ७६।।

पूर्वजन्म के वृत्तान्त को स्मरण करने से और प्रजा के अनुरोध से राजा उस पुत्र को मारना चाहता था ।। ६२।।

हे महाभाग ! उन दोनों की ऐसी ही बुद्धि थी। दैवयोग से महात्मा राजा का कुब्जाम्रक महातीर्थ को जाने का विचार हुआ ।। ६३।।

हे महामते नारद ! वह महाराजकुमार भी अपने स्थान से पैदल ही हिमालय के समीप मायापुरी में गया ।। ६४।।

जब राजा ने अनेक मुनियों से भरे हुये और देवताओं एवं गन्धर्वों से सेवित उत्तम कुब्जाम्रक क्षेत्र में प्रवेश किया ।। ६५।।

तब पुत्र ने भी पूर्वजन्म के वृत्तान्त को स्मरण कर लिया। हे महामते ! उसने अपने और राजा के वैर के कारण को जान लिया ।। ६६।।

हे महामुने ! इस क्षेत्र के प्रभाव से वे दोनों उसी क्षण वैर से रहित और शुद्ध हो गये ।। ६७।।

वे दोनों महाबुद्धिमान् कुछ समय तक वहीं रहते रहे। इसके बाद समय पर मरकर उस लोक में गये, जहां जाकर शोक नहीं रहता है ।। ६८।।

इस प्रकार पशुयोनि में गये हुये, मूढ और वैर को बांधने वाले सिंह और बैल का यह वन का परम आश्चर्यजनक वृत्तान्त है ।। ६९।।

उन्होंने राज्य प्राप्त किया था और दूसरे जन्म में मोक्ष पाया था।।७०।।

हे विप्र ! कुब्जाम्रक में मरने पर ब्रह्महत्या से युक्त मनुष्य भी, चाहे वह सदा कोढ़ का रोगी हो या देवता की सन्तान हो, मोक्ष को प्राप्त करता है ।। ७१।।

और यहां दूसरा परम तीर्थ वाराह नाम का है, जहां पृथिवी ने निश्चित रूप से भगवान् विष्णु की स्तुति की थी ।। ७२।।

इसलिये यह परम क्षेत्र वाराह नाम से प्रसिद्ध हुआ। यहां ब्रह्मा आदि देवताओं ने कठोर तप किया था ।। ७३।।

वाराह तीर्थ की महिमा का कौन वर्णन कर सकता है। वहां वराहावतार श्री विष्णु की एक परम शिलारूप मूर्ति है।। ७४।।

उस शिला के स्पर्श मात्र से ही मनुष्य चिरकाल तक विष्णुलोक में रहता है। हे महामते ! वहां सूर्य की पुत्री नदी के रूप में आती है ।। ७५।।

पहले समय में गालव नाम के मुनि ने सूर्य रूप ईश्वर की आराधना की थी। प्रसन्न होकर सूर्य ने कहा- "हे गालव वर मांगो" ।। ७६।।

सोऽब्रवीद्देहि भगवंस्तव पुत्री तु या स्मृता।
यमुनेति समाख्याता नदी परमपावनी।। ७७।।

सा समायातु सततं गङ्गायां सङ्गता भवेत्।
तीर्थराजप्रयागाच्च समं तीर्थं भवत्विति।। ७८।।

अत्र स्नास्यन्ति ये मर्त्यास्ते प्रयान्तु परं पदम्।
तव चात्र स्थितिश्चास्तु सर्वतीर्थेषु चोत्तमे।। ७९।।

सूर्यश्चापि तथेत्युक्त्वा ददौ वरमनुत्तमम्।
यमुना च महाभाग कलया चाऽत्र संस्थिता।। ८०।।

तस्यास्तु सङ्गमे पुण्ये प्रयागात्कोटिसङ्ख्यके।
स्नात्वा तत्र नरो भक्त्या शिवसायुज्यमाप्नुयात्।। ८१।।

तत्रैव सूर्यकुण्डाख्यं तीर्थं परमपावनम्।
यस्य संस्पर्शनादेव सूर्यलोके महीयते।। ८२।।

तत्रैव पश्चिमे भागे तीर्थं गालवसञ्ज्ञितम्।
यत्र स्नानात्परं याति पुनरावृत्तिवर्जितम्।। ८३।।

तत उत्तरवायव्ये शिवो यज्ञेश्वरः प्रभुः।
विष्णुना स्थापितो यत्र यज्ञादौ विघ्ननाशने।। ८४।।

यत्र विष्णुश्चक्ररूपी तत्रेदं लिङ्गमुत्तमम्।
इदं परमकं पीठं सर्वसिद्धिकरं नृणाम्।। ८५।।

यत्राऽर्चया सकृदपि लभते यद्यदिच्छति।
तस्य वामप्रदेशे हि शिला विष्णुकलेवरा।। ८६।।

यस्यां कृते हृषीकेशस्त्रेतायां भरतो हरिः।
द्वापरे वामनो देवो भूयश्च भरतः कलौ।। ८७।।

तस्य सन्दर्शनादेव महापातककोटयः।
नश्यन्ति ब्राह्मणश्रेष्ठ सिध्यन्ति सर्वसिद्धयः।। ८८।।

एतन्नाम्नैव सकलं प्राप्नोति निजवाञ्छितम्।
इति ते कथितं देव माहात्म्यं जगदीशितुः।। ८९।।

हृषीकेशाश्रमे पुण्ये यथा रैभ्यो ह्यनुग्रहम्।
कुब्जाम्रकस्य माहात्म्यं यः शृणोति महामते।। ९०।।

सोऽपि वैकुण्ठनिलये याति ब्रह्मसनातनम्।
मोदते त्रिदिवैस्सार्द्धं पितृभिः सह नारद।। ९१।।

उसने कहा कि हे भगवन् ! वर दीजिये। तुम्हारी जो पुत्री यमुना नाम की परमपावनी नदी है......... ।। ७७।।

वह यहां निरन्तर आकर गंगा में मिले। यह तीर्थ तीर्थराज प्रयाग के समान माहात्म्य वाला होवे ।। ७८।।

यहां जो मनुष्य स्नान करेंगे, वे परम पद को प्राप्त करें और इसकी स्थिति सब तीर्थों में उत्तम हो ।। ७९।।

सूर्य ने भी, "ऐसा ही हो", यह कहकर उत्तम वर दिया। हे महाभाग ! यमुना नदी अपने एक अंश से यहां स्थित हो गई ।। ८०।।

प्रयाग से भी करोड़ गुना पवित्र, यमुना के उस पुण्य संगम पर भक्ति-भाव से स्नान करके मनुष्य शिव के सायुज्य को प्राप्त करता है ।। ८१।।

वहीं पर परम पवित्र सूर्यकुण्ड नाम का तीर्थ है, जिसके स्पर्श से ही मनुष्य सूर्यलोक में जाकर महिमा को प्राप्त करता है ।। ८२।।

वहीं पर पश्चिम भाग में गालव नाम का तीर्थ है। यहां स्नान करने से मनुष्य परम लोक को जाता है, जहां से लौटना नहीं होता ।। ८३।।

उससे उत्तर-वायव्य दिशा में यज्ञेश्वर प्रभु शिव विद्यमान हैं, जहां कि विष्णु ने उनको यज्ञ के प्रारम्भ में विघ्नों को नष्ट करने के लिये स्थापित किया था ।। ८४।।

जहां कि चक्र को धारण करने वाले विष्णु हैं, वहीं यह उत्तम शिवलिङ्ग है। यह परम पीठ मनुष्यों की सब सिद्धियों को पूरा करता है ।। ८५।।

यहां एक बार भी पूजा करने से मनुष्य जो-जो चाहता है, उसको प्राप्त करता है। उसके बायें भाग में विष्णु के शरीर की शिला है ।। ८६।।

जिस शिला में विष्णु सत्ययुग में हृषीकेश के रूप में, त्रेतायुग में भरत के रूप में, द्वापर युग में वामन के रूप में और पुनः कलियुग में भरत के रूप में स्थित हैं ।।८७।।

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! इस शिला का दर्शन करने से ही करोड़ों महापाप नष्ट हो जाते हैं और सब सिद्धियां सिद्ध हो जाती हैं ।। ८८।।

इसके नाम से ही मनुष्य अपने सभी वांछित पदार्थों को प्राप्त कर लेता है। हे देव ! इस प्रकार से मैंने जगत् के स्वामी ईश्वर का वृत्तान्त कह दिया है ।। ८९।।

इस पुण्यशाली हृषीकेश आश्रम में रैभ्य मुनि को अनुग्रह प्राप्त हुआ था। हे महामते ! जो मनुष्य कुब्जाम्रक क्षेत्र के माहात्म्य का श्रवण करता है...... ।। ९०।।

वह भी ब्रह्म सनातन वैकुण्ठलोक को जाता है। हे नारद ! वह वहां देवताओं और पितरों के साथ आनन्द प्राप्त करता है ।। ९१।।

अस्य क्षेत्रस्य महिमा न वक्तुं[1] केन शक्यते।
सङ्क्षेपेण मयाऽऽख्यातं पापघ्नं सर्वकामदम्।। ९२।।

य इदं पठति श्राद्धे शृणोति च महामते।
तारिताः पितरस्तेन सत्यमेव न संशयः।। ९३।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे मायाक्षेत्रमाहात्म्ये कुब्जाम्रकमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।

चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

रामक्षेत्रमानम्, कालिकानदीसमीपे शिवाराधनतः घण्टाकर्णस्य गणत्वप्राप्तिर्मार्कण्डेयादिमुनिगुहाद्यनेकतीर्थानि, सीताकुण्डं, भाग्यहीनानामप्यैश्वर्यप्रदं भाग्यतीर्थञ्च

नारद उवाच-

अथान्यद्वद माहात्म्यं क्षेत्राणां हिमपर्वते।
श्रोतुकामोऽस्मि भगवन् कृपां कुरु दयानिधे।। १।।

कुत्र तप्तं हि रामेण तपः परमदारुणम्।
यस्मात्पौलस्त्यवधजातात् पातकान्मुक्त ईश्वरः।। २।।

कुत्र तद्वै महाक्षेत्रं कैलासे पर्वतोत्तमे।
यत्र ब्रह्मादिदेवानां वसतिर्नित्यमेव हि।। ३।।

स्कन्द उवाच-

साधु पृष्टं त्वया विप्र कथयामि तवानघ।
यस्य सन्दर्शनादेव मुच्यते सर्वपातकैः।। ४।।

गङ्गाद्वारादुत्तरेऽस्मिन्भागे वायव्यमाश्रिते।
रामाश्रम इति ख्यातो माने षोडशयोजने।। ५।।

धेनुपर्वतमारभ्य यावद्वेत्रवती नदी।
तावत्क्षेत्रं विजानीयात्पापघ्नं सर्वकामदम्।। ६।।

तत्र रम्या नदी श्रेष्ठा कालिकेति परिश्रुता।
यस्यां स्नात्वा नरो याति ब्रह्मलोके न संशयः।। ७।।

यत्र विष्णुः स्वयं साक्षान्नित्यं सन्निहितः प्रभुः।
यत्र चण्डी च दुर्गा च पूर्वपश्चिमयोः स्थिते।। ८।।

घण्टाकर्णो यत्र पुरा शिवमाराधयच्छुचिः।।
गणत्वं प्राप विभुतः शिवसान्निध्यसंस्थितः।। ९।।

१. केनापि

इस क्षेत्र की महिमा का वर्णन कोई नहीं कर सकता है। मैंने पाप को नष्ट करने वाले और सब कामनाओं को प्रदान करने वाले वृत्तान्त को संक्षेप से कह दिया है ।।९२।।

हे महामते नारद ! जो इस वृत्तान्त को श्राद्ध में पढता है और सुनता है, वह अपने पितरों को तरा देता है, इसमें संशय नहीं है ।। ९३।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में मायाक्षेत्र माहात्म्य के प्रकरण में कुब्जाम्रक माहात्म्य वर्णन नाम का १२३ वां अध्याय पूरा हुआ।।

अध्याय-१२४

रामक्षेत्र का परिमाण, कालिका नदी के समीप शिव की आराधना करने से घण्टाकर्ण को गणत्व की प्राप्ति, मार्कण्डेय आदि मुनियों के गुहारूप आदि अनेक तीर्थों का वर्णन, सीताकुण्ड, भाग्यहीनों को भी ऐश्वर्य प्रदान करने वाला भाग्यतीर्थ

नारद ने कहा-

हिमालय पर्वत के अन्य क्षेत्रों के माहात्म्य को अब कहिये। हे कृपानिधे स्कन्द भगवन् ! कृपा कीजिये। मैं सुनना चाहता हूं। ।।१।।

राम ने अति कठोर तप कहां किया था, जिससे कि वे ईश्वर रावण के वध से उत्पन्न पाप से मुक्त हुये थे ।। २।।

उत्तम पर्वत कैलास पर वह महाक्षेत्र कहां है, जहां नित्य ब्रह्मा आदि देवता निवास करते हैं ।। ३।।

स्कन्द ने कहा-

हे विप्र ! तुमने अच्छा पूछा है। हे निष्पाप नारद! मैं तुमको वह क्षेत्र बताऊंगा, जिसके दर्शन से ही मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है ।। ४।।

गंगाद्वार से उत्तर भाग में वायव्य दिशा में १६ योजन परिमाण का प्रसिद्ध रामाश्रम है ।। ५।।

धेनु पर्वत से आरम्भ करके, जहां तक वेत्रवती नदी है, वहां तक रामाश्रम का क्षेत्र जानना चाहिये। यह पापों को नष्ट करने वाला और सब कामनाओं को देने वाला है ।। ६।।

वहां कालिका नाम से प्रसिद्ध रमणीय नदी है। इस नदी में स्नान करके मनुष्य निस्सन्देह ब्रह्मलोक में जाता है ।। ७।।

जहां कि साक्षात् प्रभु विष्णु नित्य सन्निहित रहते हैं। जहां कि पूर्व और पश्चिम में चण्डी और दुर्गा की स्थिति है ।। ८।।

जहां कि प्राचीन समय में पवित्र घण्टाकर्ण ने शिव की आराधना की थी और शिव के समीप स्थित होकर उनके सामर्थ्य से गणत्व को प्राप्त किया था ।। ९।।

ततः पश्चिमतो लिङ्गं भूतेश इति कीर्त्तितम् ।।
तत्र गत्वा नरो विप्र जपन्पञ्चाक्षरं मनुम् ।। १० ।।

पश्यति प्रभुमीशानं त्रिरात्रेण न संशयः ।
कुहूनाम्नी नदी तत्र सर्वपापप्रमोचिनी ।। ११ ।।

तस्या जलस्य संस्पर्शान्मुच्यते पापकञ्चुकात् ।
तत्रैका शिवदा नाम्नी शिला परमपावनी ।। १२ ।।

तत्र पिण्डप्रदानेन गयाश्राद्धफलं लभेत् ।। १३ ।।
तदधः पीतवर्णं तु जलं निस्सरति ध्रुवम् ।
तस्य स्पर्शनमात्रेण शिवलोके महीयते ।। १४ ।।

तत्रैलापत्रको नागः शिवमस्तकभूषणः ।।
वर्त्तते शिवसंन्यस्तमानसो भक्तिसंयुतः ।। १५ ।।

तस्माद्वामप्रदेशे हि गुहा परमगह्वरा ।
त्रिंशद्योजनविस्तीर्णा नानामुनिगणान्विता ।। १६ ।।

जाबालिर्गालवश्चैव मार्कण्डेयो महामनाः ।
च्यवनश्च महातेजा भृगुपुत्रोऽङ्गिरा मनुः ।
एते चाऽन्ये च बहवो मुनयस्तप्तुमाश्रिताः ।। १७ ।।

तस्या वै दक्षिणे भागे सीताकुण्डमिति श्रुतम् ।
यत्र सीता च रामेण सहासीत्तप आस्थिता ।। १८ ।।
तत्र स्नानेन दानेन याति स्वर्गं न संशयः ।। १९ ।।

रामकुण्डात्पूर्वभागे सीताकुण्डाच्च दक्षतः ।
हनुमत्कुण्डमाख्यातं रुद्रलोकप्रदायकम् ।। २० ।।

तत्र वै कपिरूपेण हनुमान्नित्यमाश्रितः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः पश्यतीमं महामतिः ।। २१ ।।

ततः पारे महादुर्गा कोटरे पर्वतस्य वै ।
तत्र स्थित्वा कदाचिद्धि जपेच्च शिवमन्त्रकम् ।।
सर्वसिद्धिमवाप्नोति दुष्प्राप्यां योगिनामपि ।। २२ ।।

भाद्रकृष्णचतुर्दश्यां तत्रायान्ति सहस्रशः ।।
योगिन्यश्चार्द्धरात्रे हि नानाकृतिविभूषणाः ।। २३ ।।

श्रूयते च ततः शब्दो गीतोक्ताभिश्च[1] तत्र वै ।
श्रुत्वाऽऽदरसमायुक्तो ह्रियते च ततः क्षणात् ।। २४ ।।

---

१. गीतस्ताभिः

उससे पश्चिम दिशा में भूतेश नाम का लिंग है। हे विप्र! वहां जाकर जो मनुष्य पांच अक्षर वाले मनु मन्त्र का जप करता है.......... ।। १०।।

वह निस्सन्देह तीन रातों में प्रभु शिव का दर्शन कर लेता है। वहां सब पापों से मुक्त करने वाली कुहू नाम की नदी है ।। ११।।

उस कुहू नदी के जल का स्पर्श करने से मनुष्य पापों के कञ्चुक से मुक्त हो जाता है। वहीं एक परमपावनी शिवदा नाम की शिला है ।। १२।।

वहां पिण्डदान करने से गया में किये श्राद्ध के फल को प्राप्त करता है ।। १३।।

उसके नीचे से निश्चय से पीले रंग का जल निकलता है। उस जल के स्पर्श मात्र से मनुष्य शिवलोक में जाकर महिमा को प्राप्त करता है ।। १४।।

वहां शिव के मस्तक का भूषण एलापत्र नाम का नाग शिव में मन को निहित करके और भक्ति से युक्त होकर रहता है ।। १५।।

उसके बांये प्रदेश में अनेक मुनियों से युक्त, तीस योजन विस्तीर्ण बहुत गहरी गुफा है ।। १६।।

जाबालि, गालव, महामनस्वी मार्कण्डेय, महातेजस्वी च्यवन, भृगुपुत्र अंगिरा और मनु इन ऋषियों ने तथा अन्य बहुत से मुनियों ने तपस्या करने के लिये इस गुफा का आश्रय लिया ।। १७।।

इसके दाहिने भाग में प्रसिद्ध सीताकुण्ड है। यहां राम ओर सीता ने रह कर महान् तप किया था ।। १८।।

वहां स्नान करने और दान देने से मनुष्य निस्सन्देह स्वर्ग को जाता है ।। १९।।

रामकुण्ड से पूर्व भाग में और सीताकुण्ड से दक्षिण भाग में, रुद्रलोक को देने वाला हनुमानकुण्ड कहा जाता है ।। २०।।

वहां कपि के रूप में हनुमान् नित्य रहते हैं। सब पापों से मुक्त महामति मनुष्य ही इनको देख सकता है ।। २१।।

तदनन्तर गंगा के पार पर्वत की गुफा में महादुर्गा देवी है। वहां रह कर यदि कोई शिव मन्त्र का जाप करे तो वह योगियों को भी दुष्प्राप्य सब सिद्धियों को प्राप्त करता है ।। २२।।

भाद्रपद मास की चतुर्दशी की आधी रात में यहां अनेक आकारों के आभूषणों को धारण करने वाली हजारों योगिनियां आती हैं ।। २३।।

तदनन्तर वहां उनके शब्द और गीतों के वचन सुनाई देते हैं। आवर से युक्त मनुष्य जब इनको सुनता है, तो तत्क्षण उसके मन का हरण हो जाता है ।।२४।।

वाद्यानि चैव श्रूयन्ते कार्त्तिके बलिराजके।
पातालाद् बलिराजोऽपि तत्राऽऽयाति महामते ।। २५।।

बलिराजे तत्र योऽपि सम्पूजयति चाऽम्बिकाम्।
तस्मै सर्वं महेशानी ददाति शुभवाञ्छितम् ।। २६।।

तत्र दुर्गेश्वरो देवो लिङ्गरूपी महार्थदः।
तत्र पार्श्वे महच्छ्वभ्रं तत्र द्वीपेश्वरी शिवा ।। २७।।

तां कदाचिद्दैवयोगात्पश्यते यदि मानवः।
प्राप्नोति परमां सिद्धिं योगिनामपि दुर्लभाम् ।। २८।।

तत्र दक्षिणदिग्भागे शिवो रामेश्वरो मतः।
तस्य दर्शनमात्रेण सेतुबन्धादनन्तकम्।
फलं प्राप्नोति मनुजः सत्यं हि शिवभाषितम् ।। २९।।

तत्र प्रवालिका नाम्नी देवी दैत्यवधोद्यता।
यस्या वै पूजनान्मर्त्यो देवीलोके वसेच्चिरम् ।। ३०।।

तत्रापि जलदेवीति नाम्ना ब्रह्मर्षिसेविता।
जलमध्ये स्थिता नित्यं नवरात्रे प्रदृश्यते ।। ३१।।

वीणाकर्णो मुनिस्तत्र तपस्तेपे पुरा यतः।
जले ददौ दर्शनं यज्जलदेवीति सा स्मृता ।। ३२।।

सर्वसिद्धिप्रदा नित्यं साधकानन्ददायिनी ।। ३३।।

ततो वै पश्चिमे भागे भाग्यतीर्थमिति स्मृतम्।
भाग्यहीनोऽपि यत्र स्याद् भाग्यवान्नाऽत्र संशयः ।। ३४।।

अस्मिन्नेव महाक्षेत्रे रामो नाग महायशाः।
तपश्चकार परमं दिव्यं वर्षशतं पुरा ।। ३५।।

तत्र रामेश्वरं लिङ्गं संस्थाप्य विधिवत्सुधीः।
कृतकृत्यो बभूवाऽथ रामो नारायणः स्वयम् ।। ३६।।

कृतकृत्योऽपि भगवान्निर्गुणो गुणवर्जितः।
भक्ताधीनतया विप्र स करोति गतागतम् ।। ३७।।

इति ते कथितो दिव्यो विभवो रामतीर्थतः।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ।। ३८।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कैलासप्रशंसने उत्तरभागे रामतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।

कार्तिक मास में बलिराज दिवस में यहा वाद्यों की ध्वनियां सुनाई देती हैं। हे महामते! वहां पाताललोक से बलिराज भी आते हैं (बलिराजदिवस कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को मनाया जाता है। इस दिनं विष्णु के लिये लक्ष्मी को बलि से इन्द्र छीन कर लाये थे)।।२५।।

बलिराजदिवस में जो कोई अम्बिका की पूजा करता है, वह महेशानी देवी उसके सब शुभ-अभीष्ट को देती हैं ।। २६।।

वहां महान् अर्थो को देने वाले लिङ्ग रूपी दुर्गेश्वर देव हैं। उसके समीप बड़ा गढा है। उसमें द्वीपेश्वरी शिवा हैं ।। २७।।

यदि कोई मनुष्य उस शिवा को दैवयोग से देख लेता है, तो योगियों को भी दुर्लभ परम सिद्धि को प्राप्त करता है ।। २८।।

वहां उसके दक्षिण दिशा में रामेश्वर शिव हैं। उनके दर्शन मात्र से मनुष्य सेतुबन्ध रामेश्वर की अपेक्षा भी अनन्त फल प्राप्त करता है। शिव का यह कथन निश्चय से सत्य है ।। २९।।

वहां दैत्य के वध के लिये उद्यत प्रवालिका नाम की देवी है, जिसका पूजन करने से मनुष्य चिरकाल तक देवीलोक में निवास करता है ।। ३०।।

वहां भी ब्रह्मर्षियों से सेदित जलदेवी नाम से प्रसिद्ध देवी है। जल के मध्य में स्थित वह देवी नवरात्र में नित्य दिखाई देती है ।। ३१।।

पहले समय में यहां वीणाकर्ण नाम के मुनि ने तप किया था। क्योंकि देवी ने उनको जल में दर्शन दिये थे, अतः उनका नाम जलदेवी प्रसिद्ध हुआ ।। ३२।।

वे देवी नित्य सिद्धियों को देती हैं और साधकों को आनन्दित करती हैं ।। ३३।।

उससे पश्चिम भाग में भाग्यतीर्थ है। भाग्यहीन मनुष्य भी यहां निस्सन्देह भाग्यवान् हो जाता है ।। ३४।।

पहले समय में इसी महाक्षेत्र में महायशस्वी राम ने सौ दिव्य वर्षों तक परम तप किया था ।। ३५।।

यहां रामेश्वर नाम के लिंग की विधिवत् स्थापना करके बुद्धिमान् नारायण राम स्वयं कृतकृत्य हो गये थे ।। ३६।।

कृतकृत्य होते हुये भी राम निर्गुण और गुणवर्जित हैं। हे विप्र! वे भक्तों के आधीन होने के कारण संसार में आना-जाना करते हैं ।। ३७।।

इस प्रकार मैंने तुमको रामतीर्थ का दिव्य विभव बता दिया है। इसको सुनकर मनुष्य निस्सन्देह सब पापों से मुक्त हो जाता है ।। ३८।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में कैलासप्रशंसा प्रकरण के उत्तर भाग में रामतीर्थमाहात्म्य वर्णन नाम का १२४ वां अध्याय पूरा हुआ ।।

पंचविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

द्रोणक्षेत्रमानं तत्रत्यतीर्थानि श्रीशिवाराधनपुरस्सरं तस्माद् द्रोणस्य साङ्गवेदधनुर्वेदप्राप्तिः

नारद उवाच-

द्रोणाश्रमः पुरा प्रोक्तः त्वया यः पापनाशनः।
कानि तत्र च क्षेत्राणि किं पुण्यं तत्र जायते ।। १।।

एतत्सर्वं समासेन वद मे शङ्करात्मज।
कथं चास्मिन्प्रकर्तव्यं कर्म पापविनाशनम् ।। २।।

स्कन्द उवाच-

शृणु वच्मि महाभाग द्रोणक्षेत्रस्य वैभवम्।
मायाक्षेत्राद्धि पाश्चात्ये भागे सूर्यसुतावधि ।। ३।।

तत्त्रियोजनविस्तारमष्टयोजनदीर्घकम्।
क्षेत्रं परमकं ख्यातं दर्शनादेव कामदम् ।। ४।।

द्रोणो नाम महाभाग ब्रह्मर्षिः प्रियदर्शनः।
तेपे पुरा तपो यत्र प्राप्तवांश्चाऽत्र शिक्षणम् ।। ५।।

नारद उवाच-

कथं द्रोणो महाभाग तप्तवांश्च पुरा तपः।
प्राप्ता कथं धनुर्विद्या विस्तरेण वदस्व मे ।। ६।।

स्कन्द उवाच-

शृणु देव पुरावृत्तं द्रोणस्य परमं तपः।
महादेवो यथा तुष्टो दत्तवान्सर्वशास्त्रकम् ।। ७।।

देवधाराचले विप्र द्रोणो नाम महामतिः।
तपश्चकार परमं शिवमाराधयन्मुने ।। ८।।

शिवमन्त्रजपो विप्रोऽभूद्वै द्वादशवत्सरम्।
निराहारो महातेजा जितसर्वपरिग्रहः ।। ९।।

जितेन्द्रियो जितारातिः शिवसंन्यस्तमानसः।
दृष्ट्वा तपो महादेवो द्रोणस्यैव महात्मनः।
विप्ररूपं समाधाय यत्र द्रोणः समाययौ ।। १०।।

देवधारे गिरौ रम्ये देवजन्या नदी यतः।
द्रोणं प्रोवाच विप्रात्मा देवदेवः सनातनः ।। ११।।

अध्याय-१२५

द्रोणक्षेत्र का परिमाण, वहां के तीर्थों का वर्णन, श्रीशिव की आराधना करके उनसे द्रोण को अङ्गों सहित धनुर्वेद की प्राप्ति

नारद ने कहा-

हे स्कन्द ! तुमने जो पहले पापों को नष्ट करने वाले द्रोणाश्रम का वृत्तान्त कहा था, तो वहां कौन से क्षेत्र है और वहा कौन से पुण्य मिलते हैं ।। १।।

हे शंकर के पुत्र स्कन्द ! यहां पापों को नष्ट करने वाले कौन से कर्म किस प्रकार करने चाहियें ? इस सारी बात को मुझे संक्षेप से बताओ ।। २।।

स्कन्द ने कहा-

हे महाभाग ! सुनो। मैं तुमको द्रोण क्षेत्र के वैभव को बताता हूं। मायाक्षेत्र से पश्चिम भाग में यमुना नदी तक......... ।। ३।।

तीन योजन चौड़ा और आठ योजन लम्बा वह क्षेत्र बहुत प्रसिद्ध है। दर्शन करने से ही वह कामनाओं को प्रदान करता है ।। ४।।

हे महाभाग ! यहां द्रोण नाम के प्रियदर्शन महर्षि ने पहले समय में तप किया था और शिक्षा पाई थी ।। ५।।

नारद ने कहा-

हे महाभाग स्कन्द ! द्रोण ने यहां पहले समय में किस प्रकार से तपस्या की थी और धनुर्विद्या को कैसे पाया था? यह वृत्तान्त मुझको विस्तार से बताओ ।। ६।।

स्कन्द ने कहा-

हे देव नारद ! द्रोण की परम तपस्या के प्राचीन वृत्तान्त को सुनो, जिस प्रकार से कि महादेव ने सन्तुष्ट होकर उनको सब शास्त्र दिये थे ।। ७।।

हे मुने ! देवधार पर्वत पर महामति द्रोण ने परम तप किया और शिव की आराधना की ।। ८।।

वह महातेजस्वी ब्राह्मण सभी भौतिक सामग्रियों पर विजय पाकर और निराहार रह कर बारह वर्ष तक शिवमन्त्र का जप करता रहा ।। ९।।

उस द्रोण ने इन्द्रियों को और काम-क्रोध आदि छः शत्रुओं को जीत लिया था एवं अपने मन को शिव में निहित कर दिया था। महात्मा द्रोण की तपस्या को देखकर महादेव ब्राह्मण का रूप धर कर वहां आये, जहां द्रोण था ।। १०।।

वहां रमणीय देवधार पर्वत पर, जहा देवजन्दा नाम की नदी है, विप्रों की आत्मा, सनातन, देवताओं के भी देवता शिव ने द्रोण रो कहा ।। ११।।

किं कार्य्यं ते महाभाग कायक्लेशेन पर्वते।
इति तद्वचनं श्रुत्वा द्रोणो नाम महामुनिः ।। १२।।

बुद्ध्वा ब्राह्मणवेषस्थं भगवन्तं महेश्वरम्।
उवाच भक्तिनम्रोऽयं स्तोत्रेण सहसा पदोः।
पतित्वाऽऽनन्दपूर्णाङ्गो द्रोणो नाम महातपा ।। १३।।

द्रोण उवाच-

निराकाराय शुद्धाय निर्द्वन्द्वाय दयावते।
निरीहाय समीहाय निर्गुणाय गुणाकृते ।। १४।।

अरूपाय विरूपाय स्वरूपाय परात्मने।
जलाय मलहीनाय सम्मोहायाऽवमीजिते।
निर्वासनाय मेध्याय निरध्यासाय ते नमः ।। १५।।

व्यापिने व्यपदेश्याय वन्दिने बन्धनन्दिने।
नन्दानन्दस्वरूपाय ब्रह्मणे ब्रह्मपूजिते ।। १६।।

ज्योतिरूपाय भूपाय मनोऽमेयाय ते नमः।
भव्याय भव्यरूपाय भव्यदाय भवासिने ।। १७।।

भवद्भूतभविष्याय कालाय विकरालिने।
नीलण्ठाय रुद्राय पशूनां पतये नमः ।। १८।।

निर्मर्यादाय वर्याय गरिष्ठाय भवादये।
नमः स्वातन्त्र्यरूपाय परतन्त्राय मन्त्रिणे ।। १९।।

नेदिष्ठाय दविष्ठाय श्रेष्ठाय यदवे नमः।
निरञ्जनाय कूप्याय वाट्याय च नमोनमः ।। २०।।

सौरये शूरसंस्थाय वैण्वाय वेणुनादिने।
धनिने धनरूपाय स्वरूपायासुरारये ।। २१।।

बलाय बलदेवाय वामदेवाय ते नमः।
भीमाय भीमकान्ताय त्र्यम्बकाय कपालिने।।
त्रिलोचनाय देवाय देवानां पतये नमः ।। २२।।

उमेशाय महेशाय गिरीशाय विनाशिने।
गिरिव्रजैकरूपाय केदारेशाय ते नमः ।। २३।।

एकलिङ्गाय लिङ्गाय नमो मीनाङ्कहारिणे।
सतीश्वराय डिम्भाय शङ्करायाऽघनाशिने।।
मृळाय शितिकण्ठाय तथोग्राय च ते नमः ।। २४।।

हे महाभाग ! इस पर्वत पर तुम शरीर को किस कार्य से कष्ट दे रहे हो? उस ब्राह्मण के इस वचन को सुनकर महामुनि द्रोण ने....... ।। १२।।

भगवान् महेश्वर को ब्राह्मण के वेष में स्थित जान कर, आनन्द से भरे अङ्गों वाले उस महातपस्वी द्रोण ने भक्ति से नम्र होकर सहसा उनके पैरों में गिर कर यह स्तोत्र कहा ।। १३।।

द्रोण ने कहा-

शिव के लिये नमस्कार है, जो निराकार, शुद्ध, द्वन्द्वरहित, दयावान्, ईहा से रहित, ईहा से युक्त, निर्गुण और गुणयुक्त हैं ।। १४।।

रूप से रहित, विरूप, स्वरूप, परात्मा, जलरूप, मलहीन, मोह से युक्त, मोह को जीतने वाले, वासनाओं से रहित, पूजनीय, अध्यास से रहित तुझ शिव के लिये नमस्कार है ।। १५।।

सर्वव्यापक, व्यदेपश्य, स्तुति करने योग्य, बंध में पड़े मनुष्यों को प्रसन्न करने वाले, नन्द-आनन्द स्वरूप, ब्रह्मरूप और ब्राह्मणों से पूजित....... ।। १६।।

ज्योतिरूप, भूप, मन से अमेय, भव्य, भव्यरूप, भव्यता प्रदान करने वाले तथा शिवासन पर विराजमान तुझ शिव के लिये नमस्कार है ।। १७।।

वर्तमान, भूत और भविष्यत् कालरूप, विकराल, नीले कण्ठ वाले, रुद्र और पशुओं के पति शिव के लिये नमस्कार है ।। १८।।

मर्यादा में न बंधे हुये, श्रेष्ठ, गरिष्ठ, संसार के आदि कारण, स्वतन्त्रता रूप, भक्तों के आधीन रहने वाले और सबको मन्त्रणा देने वाले शिव के लिये नमस्कार है ।। १९।।

समीप रहने वाले, दूर रहने वाले, श्रेष्ठ, यदुवंशरूप, निरंजन, कुओं तथा बावड़ियों में रहने वाले शिव के लिये नमस्कार है ।। २०।।

कृष्णरूप, शूर देश में स्थित, वेणुरूप, वेणुवादकरूप, धनीरूप, धनरूप, अपने स्वरूप में रहने वाले और असुरों के शत्रु शिव को नमस्कार है ।। २१।।

बलरूप, बलदेवरूप, वामदेवरूप, भीमरूप, भीमकान्त, तीन नेत्रों वाले, कपाल को धारण करने वाले, त्रिलोचन, देव, देवों के स्वामी शिव को नमस्कार है ।। २२।।

उमेश, महेश, गिरीश, लोकों का नाश करने वाले, गिरिब्रजरूप एवं केदारक्षेत्र के स्वामी शिव को नमस्कार है ।। २३।।

एकलिंगरूप, लिङ्गरूप, कामदेव का विनाश करने वाले, सती के पति, डिम्भरूप, शंकर, पापों का विनाश करने वाले, सुखस्वरूप, नीले कण्ठ वाले और उग्र रूप धारण करने वाले तुझ शिव को नमस्कार है ।। २४।।

स्कन्द उवाच-

य एतैर्नामभिः स्तौति भक्त्या विप्र महेश्वरम्।
इह लोके परान् भोगान् भुक्त्वा व्रजति धूर्जटिम् ।।२५।।

इदं स्तोत्रमधीयानो वने चौरादिसङ्कुले।
न भयं शश्वदाप्नोति ग्रहपीडाश्च दारुणाः ।। २६।।

इति स्तुतो महेशानो दर्शयित्वा स्वकं वपुः।
वरं वरय चोवाच भक्तिनम्रं मुनीश्वरम् ।। २७।।

श्री शिव उवाच-

सन्तुष्टोऽस्मि भरद्वाज स्तोत्रेण तपसा तव।
यद्यदिच्छसि तद् ब्रूहि प्रसन्नोऽस्मि तवानघ ।। २८।।

इदं क्षेत्रं मदीयं च मानं षोडशयोजनम्।
अत्र यत्क्रियते कर्म तत्कोटिगुणितं भवेत् ।। २९।।

त्वया यत्तपसा विप्र स्तोत्रेणानेन तोषितः।
वरं ददामि सर्वस्वं यत्ते मनसि वर्त्तते ।। ३०।।

द्रोण उवाच-

धन्योऽहं कृतकृत्योऽस्मि यस्य त्वं दर्शनं गतः।
तत्तस्मात्पूर्तकामोऽहं न तृष्णा मयि वर्त्तते ।। ३१।।

ददासि चेद्वरं मह्यं धनुर्वेदं प्रशंस मे।
गमनं च तथा ह्यान्तेऽनन्ते रूपविवर्जिते ।। ३२।।

ईश्वर उवाच-

धनुर्वेदं गृहाण त्वं यथावत्सार्ववर्णिकम्।
इदं च परमं स्थानं त्वन्नाम्ना ख्यातिमेष्यति ।।३३।।

देवधाराचले मां यो ध्यायिष्यति महेश्वरम्।
तस्याऽहं सकलां बाधां नाशयिष्याम्यसंशयम् ।। ३४।।

साङ्गं चैव धनुर्वेदं गृहाण वरमुत्तमम्।
यज्ज्ञात्वा योत्स्यसे विप्र सर्वैरपि सुरासुरैः ।। ३५।।

स्कन्द उवाच-

इत्युक्त्वा प्रददौ सर्वं धनुर्वेदं द्विजातये।
यथावत्सर्वमन्त्रैश्च सहितं सार्ववर्णिकम् ।। ३६।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे द्रोणतीर्थमाहात्म्ये द्रोणवरप्रदानं
नाम पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।

स्कन्द ने कहा-

हे विप्र ! जो मनुष्य इन नामों से भक्तिभाव से महेश्वर की स्तुति करता है, वह इस लोक में उत्तम भोगों को भोग कर शिवलोक को जाता है ।। २५ ।।

चोर आदि से भरे हुये वन में इस स्तोत्र का पाठ करने पर निरन्तर भय को प्राप्त नहीं होता और दारुण ग्रह-पीड़ायें नहीं होतीं ।। २६ ।।

इस प्रकार स्तुति करने पर शिव ने अपना स्वरूप दिखाया और भक्ति से नम्र मुनीश्वर द्रोण से कहा- "वर मांगो" ।। २७ ।।

श्रीशिव ने कहा-

हे भरद्वाज द्रोण ! मैं तुम्हारी तपस्या से सन्तुष्ट हूं । जो-जो तुम चाहते हो, उसको कह दो । हे निष्पाप द्रोण ! मैं तुमसे प्रसन्न हूं ।। २८ ।।

सोलह योजन तक विस्तृत यह क्षेत्र मेरा है । यहां जो कर्म किया जाता है, उसका फल करोड़ गुना हो जाता है ।। २९ ।।

हे विप्र ! जो तुमने तपस्या से और इस स्तोत्र से मुझको प्रसन्न किया है, तो जो कुछ तुम्हारे मन में है, उस सबको देने का मैं वर देता हूं ।। ३० ।।

द्रोण ने कहा-

मैं धन्य हूं, कृतकृत्य हूं, जिसको कि आपने दर्शन दिये हैं । अत: मेरी कामनायें पूरी हो गई हैं । मुझमें अब तृष्णा नहीं है ।। ३१ ।।

यदि आप मुझको वर देते हैं, तो धनुर्वेद का उपदेश कीजिये । मृत्यु होने पर मेरी अनन्त, रूपरहित आपमें ही गति हो ।। ३२ ।।

ईश्वर ने कहा-

तुम सब वर्णों के योग्य धनुर्वेद का यथावत् ग्रहण करो । और यह परम स्थान तुम्हारे नाम से प्रसिद्ध होगा ।। ३३ ।।

जो मनुष्य देवधार पर्वत पर मुझ शिव का ध्यान करेगा, उसकी सब बाधा को मैं निस्संदेह नष्ट करूंगा ।। ३४ ।।

अंगों सहित धनुर्वेद रूप वर को तुम ग्रहण करो । हे विप्र ! इसको जान कर तुम सब देव और दानवों से युद्ध कर सकोगे ।। ३५ ।।

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार कह कर शिव ने उस ब्राह्मण द्रोण को सब वर्णों के लिए उपादेय सब मन्त्रों सहित सारे धनुर्वेद को यथावत् प्रदान कर दिया ।। ३६ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में द्रोणतीर्थमाहात्म्य प्रकरण में द्रोणवरप्रदान नाम का १२५ वां अध्याय पूरा हुआ ।।

षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

साङ्गधनुर्वेदशस्त्रास्त्रविद्यानिरूपणम्

नारद उवाच-

कथं धनुर्वेदमिमं परमात्मा सदाशिवः।
प्रोक्तवान्देवदेवेशो द्रोणाय दुरितापहम् ।।१।।

स्कन्द उवाच-

धनुर्वेदं प्रवक्ष्यामि सर्वपापभयापहम्।
यस्य श्रवणमात्रेण धनुर्वेदं चतुर्मुखः ।। २।।

चतुष्पादो धनुर्वेदो विस्तारस्तस्य नैकधा।
संक्षेपतः शृणु द्रोण विस्तारात्केन दृश्यते ।। ३।।

रथं चैव तथा नागं तुरङ्गं योधमुख्यकान्।
समाश्रित्य चतुष्पादः स एव च धनुष्क्रमः ।।४।।

प्रत्येकं पञ्चधा तद्धि कथ्यते स्थानभेदतः।
प्रथमं मन्त्रमुक्तं तु करमुक्तं द्वितीयकम् ।। ५।।

मुक्तसन्धारितं तद्वदमुक्तं च चतुर्थकम्।
बाहुयुद्धं तथा ख्यातं पञ्चमं सर्वसम्मतम् ।। ६।।

तच्छस्त्रास्त्रोक्तसम्पत्त्या द्विविधं तु ततः स्मृतम्।
पुनर्द्वैविध्यकं तस्य ऋजुमायाविभेदतः ।। ७।।

क्षेपणीयादिमन्त्रोत्थं मुक्तं चैतत्प्रकीर्त्तितम्।
शक्तितोमरपाषाणाः पाणिमुक्ताः[1] प्रकीर्तिताः ।। ८।।

मुक्तसन्धारितं तद्वत्प्रासाराद्यपि यद् भवेत्।
खड्गादिकं तथाऽमुक्तं बाहुयुद्धं गतायुषम् ।। ९।।

अङ्गुष्ठगुल्फपार्ष्ण्यङ्घ्रिश्लिष्टाः स्युः संहता यदि।
स्थानं समपदं दृष्टं पृथग्लक्षणतो मुने ।। १०।।

बाह्याङ्गुलिस्थितौ पादौ स्तब्धजानुतलावुभौ।
विशिखस्य तथा स्थानं सार्द्धहस्तान्तरं स्मृतम् ।। ११।।

---

१. पाणियुक्ता

अध्याय-१२६

अङ्गों सहित धनुर्वेद की शस्त्रास्त्र विद्या का निरूपण

नारद ने कहा-

देवदेवेश परमात्मा सदाशिव ने आपत्तियों के दूर करने वाले इस धनुर्वेद का उपदेश द्रोण से किस प्रकार कहा था ।।१।।

स्कन्द ने कहा-

मैं सब पापों और भय को दूर करने वाले धनुर्वेद को बतांऊगा। जिस धनुर्वेद को चार मुखों वाले ब्रह्मा ने सुन कर जान लिया था ।। २।।

धनुर्वेद के चार पाद हैं और अनेक प्रकार का विस्तार है। हे द्रोण! इसको तुम संक्षेप से सुनो। इसके विस्तार को कौन देख सकता है ।। ३।।

धनुर्वेद का क्रम इस प्रकार है- रथसेना, हस्तिसेना, अश्वसेना और पदातिसेना। इन चारों पैरों (अंगों) को यह आश्रित करता है ।। ४।।

स्थान के भेद से प्रत्येक अंग पांच प्रकार का कहा जाता है- पहला मन्त्रमुक्त, दूसरा करमुक्त, तीसरा मुक्तसन्धारित, चौथा अमुक्त और पांचवां बाहुयुद्ध कहलाता है। यह विभाजन सर्वसम्मत है ।। ५-६।।

युद्धशास्त्र (धनुर्वेद) शस्त्र और अस्त्र के प्रहार के भेद से दो प्रकार का कहा गया है। पुनः उसके दो भेद हैं- सरल युद्ध और माया युद्ध ।। ७।।

क्षेपणीय आदि मन्त्रों के जप के साथ अस्त्र फैंके जाते है तो उसको मन्त्रमुक्त कहते हैं। शक्ति, तोमर पाषाण आदि हाथों से फैंके जाते है तो उसको करमुक्त कहते है ।। ८।।

जिन आयुधों को फैलाकर फैंका जाये और समेट लिया जावे (पाश, कोड़ा आदि), उनको मुक्तसन्धारित कहते हैं। खड्ग आदि अमुक्त कहलाते हैं (इनको हाथ में पकड़े पकड़े प्रहार किया जाता है)। भुजाओं से युद्ध करके शत्रु को मार दिया जावे तो यह बाहुयुद्ध है ।। ९।।

अंगुष्ठ (अंगूठा), गुल्फ (टखना), पार्ष्णि (एड़ी) और अंघ्रि (पैर) यदि सट कर मिले हुये हों, तो हे मुने! पृथक् लक्षणों के अनुसार उस स्थिाति को समपद कहते है।।१०।।

दोनों पैरों की अंगुलियां बाहर की ओर स्थित हों और दोनों घुटने भूमि तल पर रखें हो, अब यदि बाणों के छोड़ने की स्थिति बनाई जावे तो इसको अर्धहस्तान्तर कहते हैं ।। ११।।

मरालालिसमे यत्र लक्ष्यते विप्र जानुनी।
द्विहस्तपरिमाणं च मण्डलं परिकीर्त्तितम् ।। १२।।

हलाकृतिसमं यद्वत्तद्वज्जानूकदक्षत:।
तदालीढं परिख्यातं सार्द्धद्वयकरोन्मितम् ।। १३।।

विपरीतमिदं ख्यातं प्रत्यालीढमिति स्मृतम्।
वामस्तिर्यग्भवेद्यत्र दक्षिणश्चैव सङ्गत: ।। १४।।

पार्ष्णिस्थितौ तथा गुल्फौ तथा पञ्चाङ्गुलान्तरौ।
जायते च महाभाग स्थानं तद् द्वादशाङ्गुलम् ।। १५।।

प्रासारितं यत्र जानु दक्षिणमृजु[1] वामकम्।
दक्षिणं जानु कुब्जं वा पादौ दण्डायतौ भवेत्।
विकटं च तथा प्रोक्तं द्विकरान्तरमायतम् ।। १६।।

उत्तानौ चरणौ पूर्वे जानुनी द्विगुणं तथा।
इदं सम्पुटकं नाम विधिस्ते परिकीर्त्तित: ।। १७।।

समदण्डायतौ पादौ किञ्चिच्चैव निवर्त्तितौ।
विस्तारात्षोडशाङ्गुल्यमुक्तं न्यासं मुनीश्वर ।। १८।।

स्वस्तिकाकृतिनमनं कुर्याद्विवं च संस्मरन्।
धनुरुत्थाप्य सव्येनाऽपसव्येन च सायकम् ।। १९।।

उत्थितो वा स्थितो वाऽपि वैशाखे गुणयोगत:।
धनुषोऽध: कोटिरपि फलं स्थाने च पत्रिण: ।। २०।।

पृथिव्यां स्थापयित्वा तु तोलयित्वा प्रियं धनु:।
कुब्जाभ्यामथ बाहुभ्यां प्रकोष्ठाभ्यां तथैव च ।। २१।।

यस्य बाणधनु: श्रेष्ठे मुखदेशे च पत्रिण:।
विन्यासो धनुषश्चैव द्वादशाङ्गुलमन्तरम् ।। २२।।

गुणावशिष्ट: कर्तव्यो नाऽतिहीनो न चाऽधिक:।
धनुर्निविश्य नाभ्यां च कण्ठे वै सशरं करम् ।। २३।।

श्रुतिनेत्रान्तरेणाऽऽशु हस्तं वर्त्तिनमुत्क्षिपेत्।
पूर्वेण मुष्टिना ग्राह्यं स्तनाग्रे दक्षिणे शर: ।। २४।।

नमनं चैव कृत्वा च पूर्वं चैव प्रसारिते।
नाभ्यन्तरा नैव बाह्या[2] नोर्ध्वकाराधना तथा ।। २५।।

---

१. दक्षिणश्चर्ज   २. नार्द्धकारो

हे विप्र ! जबकि दोनों घुटनों को हंसपंक्ति के समान करके दो हाथ के बराबर मण्डल बनाया जावे तो इसको द्विहस्तपरिमाणमण्डल कहते हैं ।। १२ ।।

यदि इस स्थिति में दायें घुटने को उठाकर हल की आकृति के समान स्थित कर लिया, तब यह मण्डल २½ हाथ परिमाण का होता है और इस स्थिति को आलीढ कहते हैं ।। १३ ।।

इससे विपरीत यदि स्थिति हो, दायां घुटना भूमि पर रखा हो और बायां घुटना तिरछा हलाकृति उठा हो तो इसको प्रत्यालीढ कहते हैं ।। १४ ।।

हे महाभाग ! जबकि दोनों गुल्फ (टखने), पार्ष्णि (एड़ी) पर पांच-पांच अंगुल का अन्तर देकर टिकाये जावें, तब वह स्थिति द्वादशांगुल होती है ।। १५ ।।

जबकि दायें घुटने को फैला दिया गया है और बायां सरल रेखा में हो, अथवा इस स्थिति में दाहिने घुटने को कुबड़ा मोड़कर पैरों को दंड के समान सीधा कर लिया जावे तो दो हाथ की आयताकार स्थिति को विकट कहते है ।। १६ ।।

यदि दोनों पैरों को घुटनों से दुगना ऊपर उठा लें तो इस स्थिति की विधि को संपुटक कहते है ।। १७ ।।

हे मुनीश्वर नारद ! यदि दोनों पैरों को दण्डाकार सम सीधा करके तदनन्तर कुछ मोड़ लें और इनमें १६ अंगुल के विस्तार का अन्तर रखें तो इस स्थिति को षोडशाङ्गुल्यमुक्त कहते हैं ।। १८ ।।

युद्ध करने वाला इस स्थिति में स्वस्तिक के आकार में होकर झुके और देव शिव का स्मरण करके वह बायें हाथ से धनुष को और दायें हाथ से बाण को उठावे ।। १९ ।।

खड़े होकर अथवा बैठकर वैशाख नामक पैतरा बनाकर (एक पैर पीछे को तना कर तथा दूसरा कुछ आगे झुकाकर) धनुष पर डोरी चढाकर बाण की नोक को लक्ष्य पर साधे ।। २० ।।

भुजाओं और प्रकोष्ठों (कोहनी से नीचे का हाथ का भाग) को कुब्ज आकार का करके उनसे प्रिय धनुष को पृथिवी पर टिका कर संतुलित करे ।। २१ ।।

बाण और धनुष उसके श्रेष्ठ होने चाहियें। बाण के मुख भाग पर पंख लगे होने चाहियें। बाण और धनुष के विन्यास में १२ अंगुल का अन्तर होना चाहिये ।। २२ ।।

धनुष पर डोरी को चढाना चाहिये। धनुष न तो अधिक छोटा हो और न अधिक बड़ा हो। नाभि में धनुष को और कण्ठ में बाण सहित हाथ को निविष्ट करें ।।२३ ।।

हाथ में स्थित अस्त्र को शीघ्र ही कनपटी (श्रुतिनेत्रान्तर) तक उठाना चाहिये। धनुष को पहले मुट्ठी से पकड़ना चाहिये। बाण को दाहिने चूचुक (स्तनाग्र) पर टिकाना चाहिये ।। २४ ।।

पहले से फैलाये गये धनुष को कुछ झुका लें। यह नाभि पर टिका हो। न अधिक अन्दर हो, न बाहर हो और न ऊपर हो ।। २५ ।।

न वक्रा न तथोत्ताना नाऽतिवेष्टनशीलिता।
समा स्थैर्यगुणोपेता प्रोक्ता दण्ड इवायता ।। २६।।

लक्षञ्च छादयित्वा वै मुष्टिना दृढकृष्टिना।
उरू जान्वन्विते यत्नात्त्रिकोणावनतः[1] स्थितः ।। २७।।

त्रस्ताङ्गो निश्चलग्रीवो मयूराञ्चितमस्तकः।
ललाटनामा वक्राङ्गः कूर्परश्च समं भवेत् ।। २८।।

अन्तरं त्र्यङ्गुलं प्रोक्तं विकृष्यांशं करस्य च।
प्रथमं त्र्यङ्गुलं ज्ञेयं द्वितीयं द्व्यङ्गुलं तथा ।। २९।।

एकाङ्गुलं तृतीयं तु व्यायतं ज्यायतं तथा।
सङ्गृह्य सायकं पुङ्खात्तर्जन्याङ्गुष्ठकेन च ।। ३०।।

अनामया पुनर्गृह्य तथा मध्यमयापि च।
तावदाकर्षयेत्पूर्णं यावद् बाणः स पूरितः ।। ३१।।

एवं विधिमुपक्रम्य क्षेप्तव्यो विधिवत्खगः।
दृष्टिमुष्टिकृतं लक्ष्यं भिन्द्याद् बाणेन सत्वरम् ।। ३२।।

मुक्त्वा तु पश्चिमं हस्तं प्रक्षिपेद्वेगतः स्थितः।
एतत्प्रभेदकं प्रोक्तं जानीहि द्विजपुङ्गव ।। ३३।।

कूर्परात्तदधः कार्यं धनुषाकृष्य तं शरम्।
ऊर्ध्वं विमुक्तके कार्यं पक्षश्लिष्टं तु मध्यमम् ।। ३४।।

ज्येष्ठं प्रकृष्टं कर्तव्यं विज्ञेयं द्विजपुङ्गव।
श्रेष्ठो बाणो द्विषणमुष्टिरेकहीनस्तु मध्यमः ।। ३५।।

दशमुष्टिर्विकृष्टस्तु त्रयो भेदाः शरस्य वै।
त्रिविधं कार्मुकं प्रोक्तं चतुर्हस्तं वरं स्मृतम् ।। ३६।।

सार्द्धत्रयान्मध्यमं तु त्रिहस्तं तु कनिष्ठकम्।
एवमेव रथेऽश्वे च गजे चैव क्रमेलके ।। ३७।।

पत्तौ च द्विज तत्प्रोक्तं संस्कृतं च ततो भवेत्।
द्विजः सूर्याय तं कृत्वा ततो मासैः शतायुषः ।। ३८।।

मुनिधौतं धनुः कृत्वा यज्ञभूमिविधानवित्।
समागृह्य ततो बाणं दंशितुं सुसमाहितः ।। ३९।।

---

१. विनतः

यह न तो तिरछा हो, न ऊपर उठा हुआ हो और नाहीं बहुत अधिक मोड़ा गया हो। यह धनुष दण्ड के समान सीधा-फैला हुआ, सम और स्थिर हो ।। २६।।

दृढता से मुष्टि से धनुष पकड़कर, खींचकर और लक्ष्य को दृष्टि में रखकर जंघा और घुटनों पर टिका कर त्रिकोणाकार स्थित होवे ।। २७।।

उस समय अंग ढीले हों, ग्रीवा स्थिर हो, मस्तक मयूर के समान ऊंचा उठा हो, अंग वक्र हों तो इस स्थिति का नाम ललाट है। कूर्पर भी इसी के समान है ।। २८।।

हाथ से खींचे जाने पर तीन अंगुलों का अन्तर रहता है। पहले तीन अंगुलों तक और पुनः दो अंगुलों तक आकर्षण होना चाहिये ।। २९।।

तदनन्तर तीसरे एक अंगुल तक धनुष की डोरी को खींचा जाता है। तर्जनी अंगुलि और अगूंठे से बाण को पुंख के प्रदेश से खींचना चाहिये ।। ३०।।

तदनन्तर अनामिका अंगुलि से और मध्यमा अंगुलि से पकड़कर तब तक खींचना चाहिये, जब तक कि वह बाण पूरा आकृष्ट हो जावे ।। ३१।।

इस प्रकार से विधिवत् उपक्रम करके बाण को फैंकना चाहिये। दृष्टि और मुष्टि के द्वारा आच्छादित लक्ष्य को शीघ्र ही बाण द्वारा बींध देना चाहिये ।। ३२।।

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! बाण को छोड़कर वेग से दूसरे हाथ को पीछे स्थित कर ले। इसको प्रभेदक नाम की स्थिति कहा गया है ।। ३३।।

धनुष से बाण का आकर्षण करके उसको कोहनी से नीचा करना चाहिये। विमुक्तक स्थिति में उसे ऊपर करना चाहिये और मध्यम स्थिति में पक्षश्लिष्ट करना चाहिये।।३४।।

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! बाणों के तीन भेद किये जाते हैं- ज्येष्ठ, प्रकृष्ट और विकृष्ट। इनमें ज्येष्ठ बाण श्रेष्ठ है। इसकी लम्बाई १२ मुष्टि होती है। एक मुष्टि कम होने पर (११ मुष्टि) यह मध्यम (प्रकृष्ट) होता है ।। ३५।।

विकृष्ट बाण दस मुष्टि होता है। बाणों के निश्चय से ये तीन भेद हैं। धनुष भी तीन प्रकार के कहे गये हैं। उत्तम धनुष चार हाथ का होता है ।। ३६।।

मध्यम धनुष ३½ हाथ का और कनिष्ठ (छोटा) धनुष तीन हाथ का होता है। इस प्रकार रथ, अश्व, गज और ऊंट (क्रमेलक) के तीन तीन भेद होते हैं ।। ३७।।

हे ब्राह्मण ! पैदल सेना के भी इसी प्रकार तीन भेद हैं। इनका संस्कार (युद्धाभ्यास) किया जाता है। सूर्य के लिये नमस्कार करके ब्राह्मण यदि इनका अभ्यास कराता है तो कुछ महीनों में ये सेनायें शतायु होती हैं ।। ३८।।

यज्ञभूमि के विधान को जानने वाला धनुष को अपामार्ग से अपमार्जन करे। तदनन्तर एकाग्र मन होकर बाण को ग्रहण करे ।। ३९।।

तृणमासाद्य बध्नीत दृढां कक्षां च दक्षिणाम्।
चापं विलक्षणमपि तत्र देवं तु संस्थितम् ।। ४०।।

ततः समुद्धरेद् बाणं तूणाद्दक्षिणपाणिना।
तेनैव सहितं मध्यशरं सङ्गृह्य धारयेत् ।। ४१।।

सम्पाद्य सिंहकल्केन पुंखेनाऽपि समे दृढम्।
वामकक्षोपरिस्थं च फलं वामस्य धारयेत् ।। ४२।।

वल्लां मध्यमया तत्र वामाङ्गुल्याऽवधारयेत्।
लक्ष्यं चैव तथा कृत्वा मुष्टिना च विधानवित् ।। ४३।।

दक्षिणे गात्रभागे तु कृत्वा वल्लां विमोक्षयेत्।
ललाटपुटसंस्थानं दण्डलक्षे निवेशयेत् ।। ४४।।

आकृष्य ताडयेत्तत्र चन्द्रकं षोडशाङ्गुलम्।
मुक्त्वा वाणं ततः पश्चाद्वल्लां चित्या तदा तया ।। ४५।।

निगृह्णीयान्मध्यमया ततोऽङ्गुल्या पुनः पुनः।
अक्षिलक्ष्यं क्षिपेद् बाणं चतुरस्रं च दक्षिणम् ।। ४६।।

चतुरस्रं गतं वेध्यमभिसंवादितः स्थितम्।
तस्मादनन्तरं तीक्ष्णं परावृत्तगतं च यत्।
निम्नमुन्नतवेध्यं च ज्याभ्यासात्क्षिप्रकं नरः ।। ४७।।

मध्यस्थाने तथैतेषु संन्यस्य पुटकाद्धनुः।
हस्तावामशतैश्चित्रैस्तर्जयेदुत्तरैरपि ।। ४८।।

अस्मिन्वेध्यगते विप्र द्वेधोध्ये दृढसंज्ञक।
द्वेविध्ये दुष्करे विप्र तथा चित्रकदुष्करे।
अन्तरस्त्रं च तीक्ष्णं च दृढवेध्यं प्रकीर्त्तितम् ।। ४९।।

अथाऽस्त्राणि प्रवक्ष्यामि सावधानोऽवधारय।
ब्रह्मास्त्रं प्रथमं प्रोक्तं द्वितीयं ब्रह्मदण्डकम्।
ब्रह्मशिरस्तृतीयं च तुर्यं पाशुपतं मम ।। ५०।।

वायव्यं पञ्चमं ज्ञेयमाग्नेयं षष्ठकं स्मृतम्।
नारसिंहं सप्तमं च तेषां भेदा ह्यनन्तकाः ।। ५१।।

ससंहारं सविक्षेपं शृणु द्रोण यथातथम्।
वेदमात्रा सर्वशास्त्रं गृह्यते क्षिप्यतेऽथ वा ।। ५२।।

तत्प्रयोगं शृणु प्राज्ञ ब्रह्मास्त्रं प्रथमं शृणु।
दादिदन्तं च सावित्रीं विपरीतां जपेत्सुधीः ।। ५३।।

तिनकों की रस्सी को दाहिनी ओर घुमा कर कमर में मजबूती से बांधे। वहां देवता की स्थापना करके विलक्षण धनुष को लावे ।। ४०।।

तदनन्तर तरकस से दाहिने हाथ से बाण को निकाले। उस हाथ से ही उसको धनुष के मध्य में रखे ।। ४१।।

उस बाण को पुंख पर्यन्त सम्पूर्ण रूप से सिंहोड़ के कल्क से संसिक्त करके बाईं कोख के ऊपर फलक को दृढता से रखकर धारण करे ।। ४२।।

शस्त्र के विधान को जानने वाला शिक्षार्थी तदनन्तर बायें हाथ की मध्य की अंगुलि से और मुष्टि से डोरी को पकड़ कर लक्ष्य का अवधारण करे ।।४३।।

इसको शरीर के दांये भाग में लाकर डोरी को छोड़ना चाहिये। धनुष के दण्ड के लक्ष्य को माथे की सीध में रखना चाहिये ।। ४४।।

डोरी को १६ अंगुल तक आकृष्ट करके चन्द्राकार बनाकर प्रहार करना चाहिये। तदनन्तर उस डोरी से बाण को छोड़े ।। ४५।।

तदनन्तर मध्यमा अंगुलि से डोरी को बार-बार पकड़ना चाहिये। दाहिनी ओर चौकोर लक्ष्य बनाकर आंख से सीध करके बाण को छोड़ना चाहिये ।। ४६।।

जिस प्रकार कहा गया है, चतुरस्त्र स्थिति में बाण से बेधन करना चाहिये। इसके पश्चात् तेजी से घूम कर नीचा-ऊंचा करके बेधन करना चाहिये। इस प्रकार मनुष्य को तेजी से धनुष के निशाने का अभ्यास करना चाहिये ।। ४७।।

इस प्रकार अभ्यास करते हुये धनुष को मध्य स्थान में स्थित करके वामहस्त के आधार पर उत्तरोत्तर अभ्यास करना चाहिये ।। ४८।।

हे विप्र ! इस प्रकार दृढसंज्ञक वेधन के अभ्यास में दो गति हो जाती हैं- एक तो दुष्कर और दूसरी चित्राकार। इनके तीन प्रकार कहे गये है-अन्तरस्त्र, तीक्ष्ण और दृढवेध्य ।। ४९।।

मैं अब अस्त्रों (दिव्य) के विषय में कहूंगा, उसको सावधान होकर सुनो। पहला ब्रह्मास्त्र, दूसरा ब्रह्मदण्ड, तीसरा ब्रह्मशिरस् और चौथा मेरा पाशुपत अस्त्र होता है।।५०।।

पांचवां वायव्य, छठा आग्नेय और सातवां नारसिंह अस्त्र होता है। उनके अनन्त भेद होते हैं ।। ५१।।

हे द्रोण ! अस्त्रों की संहार करने एवं विक्षेप करने की विधि को ठीक सुनो। इस सम्पूर्ण शास्त्र को भली प्रकार से जान लो कि किस प्रकार ये अस्त्र ग्रहण किये जाते हैं और छोड़े जाते हैं ।। ५२।।

हे बुद्धिमान् द्रोण ! तुम उनके प्रयोग को सुनो। पहले तुम ब्रह्मास्त्र के प्रयोग को सुनो। बुद्धिमान् धनुर्वेद-ज्ञाता योद्धा सावित्री मन्त्र (ओऽम् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुवरिण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।।) का द का आदि एव अन्त में उच्चारण करके विपरीत क्रम से जप करे ।। ५३।।

जप्तां पूर्व निखर्व[1] चाऽभिमन्त्र्य विधिवच्छरम्।
प्रक्षिप्ते शत्रवः कृत्स्ना: नश्यन्ते सर्वजातयः ।। ५४ ।।

बाला वृद्धाश्च गर्भस्था ये च योद्धुं समागताः।
सर्वे ते नाशमायन्ति मम चैव प्रसादतः ।। ५५ ।।

यथाक्रमं दादिदन्तं जपेत्संहारसिद्धये।
ब्रह्मदण्डं प्रवक्ष्यामि पूर्व प्रणवमुच्चरेत् ।। ५६ ।।

ततः प्रचोदयाज्ज्ञेयं ततो नो यो धियः क्रमात्।
ततो धीमहि देवस्य ततो भर्गो वरेणियम् ।। ५७ ।।

सवितुस्तच्च योक्तव्यं मम शत्रूंस्तथैव च।
ततो हन हन हुं[2] फट् जप्त्वा पूर्वं द्विलक्षकम्।
अभिमंत्र्य शरं तद्वत्प्रक्षिपेच्छत्रुषु द्रुतम् ।। ५८ ।।

नश्यन्ति शत्रवः सर्वे यमतुल्या अपि ध्रुवम्।
एतदेव विपर्यस्तं जपेत्संहारसिद्धये ।। ५९ ।।

ब्रह्मशिरः प्रवक्ष्यामि प्रणवं पूर्वमुद्धरेत्।
धियो यो नः प्रचोदयाद् भर्गो देवस्य धीमहि ।। ६० ।।

तत्सवितुर्वरेणियं शत्रून्मे हन हनेति च।
हुं फट् चैव प्रयोक्तव्यं क्षिपेद् ब्रह्मशिरस्ततः ।। ६१ ।।

पुरश्चर्य्यां पुरा कृत्वा त्रिलक्षं नियतः शुचिः।
नश्यन्ति सर्वे रिपवः सर्वे देवासुरा अपि ।। ६२ ।।

इदमेव विपर्यस्तं प्रयोक्तव्यं विकर्षणे ।। ६३ ।।

अतः परं प्रवक्ष्यामि शस्त्रं पाशुपतं मम।
यस्य विज्ञानमात्रेण नश्यन्ते सर्वशत्रवः ।। ६४ ।।

दादिदन्तं च सावित्रीं प्रोच्य प्रणवमेव च।
श्लीं पशु हूं फट् अमुकशत्रून्हन हन हूं फट्।
जप्त्वा पूर्व द्विलक्षं च ततः पाशुपतं क्षिपेत् ।। ६५ ।।

पुनस्तदेव व्यस्तं स्यात्संहारे संनियोजयेत्।
एतत्पाशुपतं शस्त्रं सर्वशत्रुनिवारणम् ।। ६६ ।।

वच्मि वायव्यशस्त्रं च नश्यन्ते येन शत्रवः ।। ६७ ।।

---

१. निषर्व २. ततो हन हुं

पहले सावित्री मन्त्र का दस हजार जप करके, तदनन्तर बाण को अभिमन्त्रित करके शत्रुओं पर फैंकने पर सब जाति के शत्रु नष्ट हो जाते हैं ।। ५४।।

बालक हों, वृद्ध हों और गर्भ में स्थित हों, जो भी युद्ध करने के लिये आते हैं, वे सब इस अस्त्र और मेरी कृपा से नष्ट हो जाते हैं ।। ५५।।

शत्रुओं के संहाररूप कार्य की सिद्धि के लिये सावित्री मन्त्र का द का आदि और अन्त में उच्चारण करे। अब मैं ब्रह्मदण्ड अस्त्र की विधि बताऊंगा। पहले प्रणव (ओंकार) का उच्चारण करे ।। ५६।।

तदनन्तर वह पहले "प्रचोदयात्" जपे, तदनन्तर क्रमश: "नो यो धिय:" जपे। तदनन्तर "धीमहि देवस्य" जपे और उसके बाद "भर्गो वरेणियम्" जपे ।। ५७।।

तदनन्तर "सवितु:" का जप करे। इस प्रकार कहना चाहिये- "यह अस्त्र मेरे शत्रुओं पर लगे"। तदनन्तर "हन हन हुं फट्" जप करे। पहले ही दोनों और लक्ष्यों को देखकर बाण को उसी प्रकार मन्त्र से अभिमन्त्रित करके शीघ्र ही शत्रुओं पर फैंक दे ।। ५८।।

इस प्रकार करने पर यम के समान भी सब शत्रु निश्चय से नष्ट हो जाते हैं। अस्त्र के संहार (वापस लौटाना) की सिद्धि के लिये इस मन्त्र को ही उलटा करके जप करे ।। ५९।।

अब मैं ब्रह्मशिरस् अस्त्र के प्रयोग को बताऊंगा। पहले प्रणव (ओ३म्) का उच्चारण करके, तदनन्तर "धियो यो न: प्रचोदयात् भर्गो देवस्य धीमहि.... ।। ६०।।

तत्सवितुर्वरेणियम्" का जप करके, मेरे शत्रुओं को मारो मारो, "हन हन हुं फट्" के जप का प्रयोग करना चाहिये। तदनन्तर ब्रह्मशिरस् अस्त्र को फैंकना चाहिये। ।६१।।

अपने को नियन्त्रित करके पवित्र आचरण वाला वह योद्धा पहले पुरश्चरण करके तीन लाख मन्त्रों का जप करे। इससे सभी शत्रु, सब देव-असुर भी नष्ट हो जाते हैं। ।६२।।

इस अस्त्र के विकर्षण (वापिस लौटाना) के लिये इस मन्त्र का ही उलटा पाठ करना चाहिये ।। ६३।।

इसके बाद मैं अपने पाशुपत अस्त्र के प्रयोग को बताऊंगा। इस पाशुपत अस्त्र के जानने से ही सब शत्रु नष्ट हो जाते हैं ।। ६४।।

सावित्री मन्त्र का दादिदन्त (द का आदि एवं अन्त में) उच्चारण करके प्रणव (ओ३म्) का उच्चारण करे। उसके पश्चात् "श्लीं पशु हूं फट्" अमुक शत्रुओं को "हन हन हूं फट्" का जप करके दोनों ओर के लक्ष्यों को लक्षित करके तदनन्तर पाशुपत अस्त्र को फैंके ।। ६५।।

उस पाशुपत अस्त्र के संहार (वापिस लौटाना) के लिये पहले के समान ही उस मन्त्र का विपरीत क्रम से उच्चारण करे। यह पाशुपत अस्त्र सब शत्रुओं का निवारण करता है ।। ६६।।

अब मैं वायव्य अस्त्र का प्रयोग कहता हूं, जिससे सब शत्रु नष्ट हो जाते हैं। ।६७।।

ॐ वायव्ययावायव्यया¹रायौर्वाययावातथा।
अमुक शत्रून्हन हन हूं फट् चैव प्रकीर्त्तयेत् ।। ६८।।

पूर्वमेव तदा जप्त्वा नियुतद्वितयं तथा।
पुनः संहाररूपेण संहारं च प्रकल्पयेत् ।। ६९।।

अस्त्रं वायव्यकं नाम देवानामपि वारणम्।
आग्नेयं सम्प्रवक्ष्यामि यतः परभयं ददेत् ।। ७०।।

ओमाग्निस्त्यता ऋद्रुभूं च शिवं वनाश्वाविणि च।
ऋगादुतिदशकपनः सेदवेति ततः क्रमात्।
हादतितोयतिराम तथा मसोहिवानसु ।। ७१।।

सेदवेदया च वदेत् अमुकादींस्ततो वदेत्।
पूर्वोक्तां च पुनश्चर्यां कृत्वा शस्त्रेऽभियोजयेत् ।। ७२।।

इमं मन्त्रं पुनर्व्यस्तं संहारे चैव योजयेत्।
ॐ वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हूं फट् ।। ७३।।

पूर्वं जप्त्वा च लक्षं हि नारसिंहे च योजयेत्।
सिंहरूपास्तथा बाणाः पतन्ति शात्रवे बले ।। ७४।।

पूर्वोक्तेन प्रकारेण संहारं च प्रकल्पयेत्।
संक्षेपतो महाभाग तवोक्तानि महामते ।। ७५।।

त्वदाश्रममिदं पुण्यं ये वसिष्यन्ति मानवाः।
मुक्ताः प्रयान्तु मद्देहं धन्याः पापविवर्जिताः ।। ७६।।

इति ते कथितो विप्र धनुर्वेदः सुपुण्यदः।
नश्यन्ति तस्य रिपवो येऽप्येनं लोचयन्ति च ।। ७७।।

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे उत्तरभागे शस्त्रविद्या-
निरुक्तिर्नाम षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।

सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

देवेश्वरनवदोलाजाबालीश्वरसर्वकुष्ठापहाद्यनेकतीर्थनिरूपणम्

स्कन्द उवाच-

ईश्वरोऽपि महाभाग दत्त्वा वरमनुत्तमम्।
देवधारे गिरौ देवस्तत्रैवान्तरधीयत ।। १।।

---

१. रोयोर्वा

इसके लिये पहले "ॐ वायव्यया, वायव्यया रायौर्वा ययावा" इस मन्त्र का जप करके "अमुकशत्रून् हन हन हूं फट्" इन पदों का उच्चारण करे ।। ६८।।

पहले के समान ही इस मन्त्र का दो लाख जप करके इस संहाररूपी अस्त्र से शत्रुओं के संहार की कल्पना करे।।६९।।

यह वायव्य नाम का अस्त्र देवताओं को भी रोक देता है। अब मैं आग्नेय अस्त्र का प्रयोग बताऊंगा, जो शत्रुओं में भय उत्पन्न करता है।। ७०।।

पहले "ॐ अग्निस्त्यता ऋदुभूं च शिवं वनाश्वाविणि ऋगादुति दशकपनः सेदवेति" इस मन्त्र का क्रमशः उच्चारण करके "हादतितोयतिराम तथा मसोहिवानसु सेदवेदया" मन्त्र का उच्चारण करके तदनन्तर "अमुकशत्रून् हन हन हूं फट्" इन पदों का उच्चारण करे। तदनन्तर पूर्वोक्त पुरश्चरण करके शास्त्रोक्त विधि से आग्नेय अस्त्र का अभियोजन करना चाहिये ।। ७१-७२।।

पुनः इस अस्त्र का संहार (वापस लौटाना) करने के लिए मन्त्र को उलटे क्रम से पढे। "ॐ वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हूं फट्" (वज्र के समान जिसके नाखून और ढाढें है, ऐसे महासिंह नरसिंहावतारधारी विष्णु के लिये)....... ।। ७३।।

इस प्रकार लक्ष्य की ओर पहले अभिमुख होकर, मन्त्र का जाप करके नारसिंह अस्त्र का प्रयोग करे। इससे शत्रुओं की सेना पर सिंह की आकृति वाले बाण गिरते है।।७४।।

नारसिंह अस्त्र के संहार (वापस लौटाना) के लिये भी पहले कही गई विधि की कल्पना करे। हे महाभाग महामते ! मैंने तुमको संक्षेप से धनुर्वेद का उपदेश कर दिया है ।। ७५।।

तुम्हारा यह आश्रम पुण्यशाली है। जो धन्य मनुष्य इस आश्रम में निवास करेंगे, वे पापों से रहित मुक्त होकर मेरे लोक को जायेंगे ।। ७६।।

हे विप्र द्रोण! मैंने उत्तम पुण्यों को देने वाले धनुर्वेद का तुमको उपदेश कर दिया हैं। जो भी व्यक्ति इसको सीखते तथा देखते हैं, उनके शत्रु नष्ट हो जाते हैं ।। ७७।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड के उत्तर भाग में
शस्त्रविद्यानिरुक्ति नाम का १२६ वां अध्याय पूरा हुआ ।।

अध्याय-१२७

देवेश्वर, नवदोला, जाबालीश्वर, सर्वकुष्ठापह आदि अनेक तीर्थों का निरूपण

स्कन्द ने कहा-

हे महाभाग नारद ! इस प्रकार देवधार पर्वत पर देव ईश्वर इस श्रेष्ठ वर को देकर वहीं अर्न्तधान हो गये ।। १।।

सोऽपि द्रोणो महाभाग प्राप्य वेदं महेशतः।
कृत्वा बहूनि कर्माणि रणे देवत्वमागतः ।। २।।

इति ते कथितो देव देवधारस्य वैभवः।
देवेश्वर इति ख्यातो लिङ्गरूपी सदाशिवः ।। ३।।

तस्य दर्शनमात्रेण मुच्यते सर्वपातकैः।
देवजन्यां नदीं स्नात्वा हयमेधफलं लभेत् ।। ४।।

देवधाराचलस्याऽपि स्थानं पश्चिमदेशतः।
नवदोलेति विख्याता पुरन्ध्री ह्यभवत्पुरा ।। ५।।

तपस्तप्तं तया ह्यत्र शिवो देवः प्रसाधितः।
अददच्च वरं तस्यै सौभाग्यं पतिना सह ।। ६।।

ततोऽवधि परं तीर्थं नवदोलेति सञ्ज्ञितम्।
तत्र धारात्रयं ख्यातं जटाजूटाद्विनिर्गतम् ।। ७।।

त्रिपथेति समाख्याता धारात्रितयसंयुता।
पुरा तत्र बभूवाऽथ विप्रो जाबालिसञ्ज्ञितः ।। ८।।

तेनाऽपि परमेशानो भक्तियुक्तेन चेतसा।
आराधितो महाबाहो द्रष्टुं त्रिपथगां पराम्।। ९।।

तपो वर्षशतं सोग्रं निराहारेण तेन वै।
ततः कतिपयाहेन दर्शिता जाह्नवी परा ।। १०।।

जटाजूटाटवीजटान्निर्गता बिन्दुरूपिणी।
ततोऽवधि परा गङ्गा धारारूपेण तिष्ठति ।। ११।।

तस्याः सन्दर्शनादेव परं ब्रह्माधिगच्छति।
शिवलिङ्गं च तत्रैव जाबालीश्वरसञ्ज्ञितम् ।। १२।।

तस्य दर्शनमात्रेण पशुमेधफलं लभेत्।
तत उत्तरदिग्भागे माने वै सार्द्धयोजने।
सर्वकुष्ठापहं तीर्थं भक्तिगम्यं दुरासदम् ।। १३।।

यस्य दर्शनमात्रेण सर्वरोगविनाशनम्।
इह चैव परो भोगः परत्र च परा गतिः।। १४।।

तत्र धेनुवनं नाम क्षेत्रं दुरितदुर्लभम्।
धेनुगङ्गेति विख्याता स्पर्शनात्पापनाशिनी ।। १५।।

धेनुप्रस्वेदसम्भूता धेनुगङ्गा समीरिता।
नन्दिनी नाम विख्याता प्रसन्ना यत्र चाऽभवत् ।। १६।।

हे महाभाग ! वे द्रोण भी शिव से धनुर्वेद की शिक्षा को प्राप्त करके बहुत से कार्यो को करके युद्ध में देवत्व को प्राप्त हुये ।। २।।

हे देव नारद ! इस प्रकार मैंने तुमसे देवधार पर्वत के माहात्म्य को कह दिया है। यहां देवेश्वर नाम से प्रसिद्ध लिङ्गरूपी सदाशिव निवास करते हैं ।। ३।।

उनके दर्शनमात्र से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है। देवजन्या नदी में स्नान करके अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त करता है ।। ४।।

देवधार पर्वत से पश्चिम देश की ओर एक स्थान है। वहां पहले समय में नवदोला नाम से प्रसिद्ध एक स्त्री थी ।। ५।।

उसने यहां तप किया था और देव शिव को प्रसन्न किया था। शिव ने उसको वर दिया था कि पति के साथ उसका सौभाग्य अचल रहेगा ।। ६।।

तब से लेकर वह परम तीर्थ नवदोला नाम से प्रसिद्ध हुआ। वहां शिव के जटाजूट से निकली हुई तीन धारायें प्रसिद्ध हैं ।। ७।।

तीनों धारायें मिलकर त्रिपथगा नाम से प्रसिद्ध हैं। वहां पहले समय में जाबालि नाम के ब्राह्मण हुये थे ।। ८।।

हे महाबाहो नारद ! उस जाबालि ने श्रेष्ठ त्रिपथगा धारा का दर्शन करने के लिये भक्ति से युक्त मन से परम ईशान शिव की आराधना की थी ।। ९।।

उसने सौ वर्ष तक निराहार रह कर कठोर तपस्या की। तब कुछ दिन बाद उसने श्रेष्ठ जाह्नवी (त्रिपथगा) के दर्शन किये ।। १०।।

शिव के जटाजूटरूपी जंगल की जटाओं से वह बिन्दुओं के रूप में निकली थी। तब से लेकर वह धारा श्रेष्ठ गंगा के रूप में विद्यमान है ।। ११।।

उसका दर्शन करने से मनुष्य परम ब्रह्म को प्राप्त करता हैं। वहीं पर जाबालीश्वर नाम का शिवलिङ्ग है ।। १२।।

उसके देखने मात्र से पशुमेध यज्ञ का फल मिलता है। उससे उत्तर दिशा में १ ½ योजन की दूरी पर सब कुष्ठ रोगों को दूर करने वाला तीर्थ है। यह दुष्प्राप्य है और भक्तिभाव से ही प्राप्त हो सकता है ।। १३।।

यह दर्शन करने मात्र से सब रोगों को नष्ट करता है। इसके दर्शन से इस लोक में श्रेष्ठ भोग प्राप्त होते हैं और परलोक में परम गति मिलती है ।। १४।।

वहां धेनुवन नाम का क्षेत्र है। यह पापियों को दुर्लभ है। वहां धेनुगंगा नाम से प्रसिद्ध नदी है। स्पर्श करने से यह पापों को नष्ट करती है ।। १५।।

यहां नन्दिनी नाम की गौ प्रसन्न हुई थी, अतः उस गौ (धेनु) के पसीने से यह नदी उत्पन्न हुई और धेनुगंगा कहलाई ।। १६।।

तदादीदं परं क्षेत्रं सर्वपापप्रणाशनम्।
धेनुगङ्गां सकृत्स्नात्वा पुनर्जन्म न चाप्नुयात् ।। १७।।

ततः पूर्वदिशि ब्रह्मन्नाम्ना काकाचलोऽर्थदः।
यत्र दाशरथी रामो नेत्रं काकस्य नाशयत् ।। १८।।

ततः काकाचलः ख्यातो यमलोकनिवारकः।
नदी करेणुका नाम्नी पश्चिमे तस्य भूभृतः ।। १९।।

पूर्वे पर्यङ्किनी ख्याता नदीद्वयमिदं स्मृतम्।
एतयोः सङ्गमे स्नात्वा वसुलोकं प्रगच्छति ।। २०।।

तस्मिन्काकाचले पीठं यत्र गत्वाऽर्थवान्भवेत्।
तत्र पुष्पेश्वरो देवः सर्वापत्तिनिवारकः ।। २१।।

देवधारोत्तरे ख्याता तीर्थपङ्क्तिर्महार्थदा।
श्रुत्वा स्नानफलं तत्र पठित्वाऽपि तदाऽऽप्नुयात्।। २२।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे द्रोणतीर्थमाहात्म्येऽनेकतीर्थाभिधानं
नाम सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।

अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

वामतनुवैश्यस्य तपसा वामनदिग्गजत्वप्राप्तिः, नागपर्वते
प्रसन्नतया शिवेन नागेश्वरनाम्ना स्वलिङ्गस्थापनं
चन्द्रवने चन्द्रेश्वरलिङ्गरूपेण शिवस्थापनं सुहवन-
नदतीरेऽङ्गुष्ठप्रमाणानां मुनीनामिन्द्रप्रतिकूलतया
तपश्चरणम्

स्कन्द उवाच-
देवधाराचलात्तीर्थादाग्नेय्यां च महार्थदः।
क्रोशे च क्रोशखण्डे च नागाचल इतीरितः ।। १।।

यत्र नागो वामनश्च पुरा जप्त्वा महत्तपः।
दिग्गजत्वं तथा प्राप तीर्थवर्ये महामते ।। २।।

नारद उवाच-
कोऽसौ वामनको नाम गजः परमपुण्यभाक्।
दिग्गजत्वं कथं प्राप्तं तेन तत्र वद प्रभो।। ३।।

स्कन्द उवाच-
शृणु विप्र कथामेतां पापघ्नीं सर्वकामदाम्।
सप्तजन्मार्जितैः पापैर्मुच्यते नाऽत्र संशयः ।। ४।।

वहां से लेकर सारा यह क्षेत्र सब पापों को नष्ट करने वाला है। धेनुगंगा में एक बार स्नान करने वाले का पुनर्जन्म नहीं होता ।। १७।।

हे ब्रह्मन् ! यहां से पूर्व दिशा में धन को देने वाला काकाचल है। यहां दशरथ के पुत्र राम ने काक (काकरूपधारी इन्द्रपुत्र जयन्त) के नेत्र को नष्ट किया था ।। १८।।

वहां प्रसिद्ध है कि काकाचल यमलोक का निवारण करता है। उस पर्वत के पश्चिम की ओर करेणुका नाम की नदी है ।। १९।।

पूर्व दिशा में पर्यङ्किनी नदी है। इस प्रकार यहां दो नदियां हैं। इन दोनों के संगम पर स्नान करने वाला वसुलोक को प्राप्त करता है ।। २०।।

उस काकाचल पर सिद्धपीठ है। यहां जाने पर धन प्राप्त होता है। वहां सब आपत्तियों का निवारण करने वाले पुष्पेश्वर महादेव हैं ।। २१।।

देवधार पर्वत के उत्तर दिशा में महान् धनों को देने वाली तीर्थो की पंक्ति है। उनके माहात्म्य को सुन कर और पढ कर व्यक्ति वहां स्नान के फल को प्राप्त करता है ।। २२।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में द्रोणतीर्थमाहात्म्य प्रकरण में अनेकतीर्थ नाम का १२७ वां अध्याय पूरा हुआ ।।

अध्याय-१२८

तपस्या द्वारा वामतनु वैश्य को वामन नामक दिग्गज के पद की प्राप्ति, शिव द्वारा प्रसन्न होकर नागपर्वत पर नागेश्वर नाम से अपने लिङ्ग की स्थापना करना, चन्द्रवन में चन्द्रेश्वर लिङ्ग रूप से शिव की स्थापना, सुहवन नदी के तट पर अङ्गुष्ठप्रमाण मुनियों का इन्द्र के विरुद्ध तप करना

स्कन्द ने कहा-

देवधार पर्वत के तीर्थ से आग्नेयी दिशा में १½ कोस दूर महान् धनों को देने वाला नागाचल नाम का पर्वत है ।। १।।

हे महामते नारद ! इस श्रेष्ठ तीर्थ में पहले समय में वामन नाम के हाथी (नाग) ने महाजप करके दिग्गज होने का वर प्राप्त किया था ।। २।।

नारद ने कहा-

वह परमपुण्यशाली वामन नाग का हाथी कौन था? हे प्रभो! उसने वहां दिग्गजत्व को कैसे पाया ? यह बात बताओ ।। ३।।

स्कन्द ने कहा-

हे विप्र ! पापों को नष्ट करने वाली और सब कामनाओं को देनेवाली इस कथा को सुनो। यहां आकर मनुष्य सात जन्मों में अर्जित पापों से मुक्त हो जाता है ।।४।।

इन्द्रप्रस्थे पुरा ह्यासीद्वैश्यो वामतनुर्द्विज।
सैकदा धनहीनो वै भाग्ययोगादजायत ।। ५।।

निर्विण्णो ह्यभवद्विप्र धनलोभपराङ्मुखः।
समाययौ तपस्तप्तुं गङ्गाद्वाराद्धि वारुणे ।। ६।।

संस्थाप्य शिवलिङ्गं वै तत्र पर्वतसत्तमे।
पूजयामास विधिवदभिषेकैर्महामते ।। ७।।

इति वै तपतस्तस्य तृणाहारस्य धीमतः।
सोग्रं वर्षशतं जातं शिवसंन्यस्तचेतसः ।। ८।।

ततः प्रसन्नो भगवान् दर्शनं प्रददौ स्वकम्।
भूतिभूषितसर्वाङ्गं जटामुकुटमण्डितम् ।। ९।।

व्याघ्रचर्मपरीधानं व्यालयज्ञोपवीतिनम्।
कृत्तिप्रच्छन्नतटकं चन्द्रार्द्धकृतशेखरम् ।। १०।।

दृष्ट्वा तु सहसा वैश्यो वामनो मृळतत्परः।
पपात सहसा भूमौ दण्डवद् बहुवारकम् ।। ११।।

प्रदक्षिणां च शतशः प्रचकार महामतिः।
उवाच वचनं तद्वद्धन्योऽस्मीति पुनः पुनः ।। १२।।

उवाच च परो देवो धन्योऽसीति पुनः पुनः।
वरं वरय भद्रं ते यद्वै मनसि वर्त्तते ।। १३।।

सोऽब्रवीद्वामनो नाम त्वत्पादमिह संश्रये।
यत्र गत्वा न शोचामि परब्रह्म सनातनम् ।। १४।।

पुनः संसारकूपेऽस्मिन्न निक्षिप्यो दयानिधे।
इदं क्षेत्रं तवाऽऽवासो नित्यमस्तु जगत्पते ।। १५।।

प्रसन्नो भगवान् वैश्यं जगाद वचनं हितम्।
पृथिव्या धारको भूया दिगगजो दक्षिणां गतः[1] ।। १६।।

कल्पान्ते परमं स्थानं प्राप्स्यसि त्वं न संशयः।
इदं स्थानं ममाऽऽवासो भविष्यति तवापि च ।। १७।।

यस्मान्नागत्वमापन्नो गिरावस्मिन् महामते।
ततोऽयं नागनामा च पर्वतश्च न संशयः ।। १८।।

---

१. ततः

हे द्विज ! पहले समय में इन्द्रप्रस्थ नगर में वामतनु (वामन) नाम का वैश्य था। भाग्यवश वह एक बार धनहीन हो गया ।। ५।।

हे विप्र ! वह उदासीन हो गया और धन के लालच से पराङ्मुख होकर तपस्या करने के लिये गंगाद्वार से आगे वारुण पर्वत पर गया ।। ६।।

हे महामते ! उसने उस श्रेष्ठ पर्वत पर शिवलिंग को स्थापित करके अभिषेकों से उसका विधिवत् पूजन किया ।। ७।।

इस प्रकार शिव के प्रति मन को निहित करके केवल तिनकों का भोजन करके कठोर तप करते हुये उस बुद्धिमान् को सौ वर्ष से अधिक हो गये ।। ८।।

तब प्रसन्न होकर भगवान् शिव ने उसको स्वयं दर्शन दिये। उनके सारे अंग राख से विभूषित थे और जटारूपी मुकुट से सुशोभित थे ।। ९।।

उनका परिधान व्याघ्र के चर्म का था और यज्ञोपवीत सर्प का था। शरीर पर गजचर्म ओढ रखा था। आधा चन्द्र उनका शिरोभूषण था ।। १०।।

शिव को सहसा देखकर वह वैश्य उनकी प्रशंसा करने लगा। वह अनेक बार भूमि पर सहसा दण्डवत् गिरा ।। ११।।

उस महामति वैश्य ने सैंकड़ों बार प्रदशिणा की। उसने पुनः पुनः यह वचन कहा "मैं धन्य हो गया हूं" ।। १२।।

परम देव शिव ने भी उससे यह पुनः पुनः कहा कि तुम धन्य हो गये हो। जो कुछ तुम्हारे मन में है, निश्चय से उस भद्र वर को तुम मांग लो ।। १३।।

उस वामन नाम के वैश्य ने कहा- मैं आपके चरणों का आश्रय लेता हूं। मैं परब्रह्म सनातन आपको प्राप्त करूं, जहां जाकर मुझको शोक न रहे ।। १४।।

हे दयानिधे ! मुझको इस संसार रूपी कूप में पुनः पुनः न डालना। हे जगत् के स्वामिन्! इस स्थान पर नित्य तुम्हारा निवास होवे ।। १५।।

प्रसन्न होकर भगवान् शिव ने वैश्य से हितकारी वचन कहा। तुम पृथिवी को धारण करने वाले एवं दक्षिण दिशा के दिग्गज हो जाओ ।। १६।।

प्रलय होने पर तुम निस्सन्देह मेरे परम धाम को प्राप्त करोगे। यह स्थान मेरा और तुम्हारा आवास होगा ।। १७।।

हे महामते ! क्योंकि तुम इस पर्वत पर नागत्व को प्राप्त हुये हो (दिग्गज बने हो), अतः इस पर्वत का नाम निस्सन्देह नागपर्वत होगा ।। १८।।

अत्र नागेश्वरं लिङ्गं मम चैव भविष्यति।
करिष्यन्ति महाभागा दर्शनं पूजनं च मे।
न ते संसारदुःखौघपराभूता न संशयः ।। १९ ।।

नागाचलस्य ये मर्त्याः करिष्यन्ति परिक्रमाम्।।
परिक्रान्ता धरा तैस्तु गच्छेयुश्च परं पदम् ।। २० ।।

ततः पश्चिमतो विप्र नदी परमपावनी।
शुभस्त्रवेति विख्याता दर्शनाच्छुभदायिनी ।। २१ ।।

स्नानात्पानाद् दिवं याति यावदाभूतसम्प्लवम्।
शुभस्त्रवा परं तीर्थं शुभस्त्रवा परं तपः।
शुभस्त्रवा परं दानं किञ्चिन्नास्ति ततः परम् ।। २२ ।।

देवधारगिरौ पश्चाद्योजने मुनिसेविते।
नाम्ना चन्द्रवनं ख्यातं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।। २३ ।।

यत्र चन्द्रश्च विप्रेश नित्यं वसति भूतिदः।
तत एव परं प्राप शिवशेखरवासकम् ।। २४ ।।

इदं परं शिवस्थानं यत्र सन्निहितः सदा।
चन्द्रेश्वर इति ख्यातः पापिनामपि मुक्तिदः ।। २५ ।।

तत्र चन्द्रसरो दिव्यं दिव्याम्भः पुण्यदं महत्।
तत्र वै स्नानमात्रेण लभते परमं पदम् ।। २६ ।।

यः करोति नरः स्नानं सोमवारे महामते।
इह लोके वरान्भोगान्प्राप्य चान्ते शिवं लभेत् ।। २७ ।।

यदि भाग्येन लभते सोमो मासं युतं मुने।
कृतकृत्यो भवेन्मर्त्यो देवदेवपुरे वसेत् ।। २८ ।।

कृतं येनाऽत्र दर्शे वै सोमवारेण संयुतम्।
श्राद्धं च श्रद्धया विप्र पितरोऽमृतमाप्नुयुः ।। २९ ।।

येन दत्तं सुवर्णं च यथाशक्तिमितं द्विजे।
तेन दत्तं भवेत्सर्वं भूमण्डलमिदं शुभम् ।। ३० ।।

यदि भाग्येन लभ्येत चन्द्रपर्व महामते।
कुरुक्षेत्राच्छतगुणं फलं प्राप्नोति मानवः ।। ३१ ।।

त्रिरात्रं यो जिताहारो जपते शिवमच्युतम्।
परमं शिवमाप्नोति शिवस्य वचनं त्विदम् ।। ३२ ।।

यहां मेरा नागेश्वर नाम का लिंग होगा। जो महाभाग मनुष्य यहां इस लिंग का दर्शन और पूजन करेंगे, वे संसार के दु:खों के समूह से पराभूत नहीं होंगे, इसमें सन्देह नहीं है ।। १९ ।।

जो मनुष्य नागाचल की परिक्रमा करेंगे, उन्होंने मानो पृथिवी की परिक्रमा कर ली है। वे परम पद को प्राप्त करेंगे ।। २० ।।

हे विप्र! तदनन्तर पश्चिम की ओर परमपावनी नदी है। यह शुभस्रवा नाम से प्रसिद्ध है और देखने मात्र से शुभ को प्रदान करती है ।। २१ ।।

इस नदी में स्नान करने से और इसका जल पीने से मनुष्य प्रलय पर्यन्त स्वर्ग में जाता है। शुभस्रवा नदी परम तीर्थ है, शुभस्रवा परम तप है, शुभस्रवा परम दान है। इससे अधिक श्रेष्ठ कुछ नहीं है ।। २२ ।।

मुनियों से सेवित देवधार पर्वत पर ही उस शुभस्रवा नदी से पीछे एक योजन दूर चन्द्रवन नाम से प्रसिद्ध वन है। यह भोगों और मोक्ष को देने वाला है ।। २३ ।।

हे विप्रेश नारद ! यहां ऐश्वर्य को देने वाला चन्द्रमा नित्य निवास करता है। यहीं पर चन्द्रमा ने शिव के शिरोभूषण के रूप में परम निवास को पाया था ।। २४ ।।

यह शिव का परम स्थान है, जहां वे सदा सन्निहित रहते हैं। यहां वे चन्द्रेश्वर नाम से प्रसिद्ध हैं और पापियों को भी मुक्ति प्रदान करते हैं ।। २५ ।।

यहां दिव्य जल से भरा, पुण्य देने वाला महान् दिव्य चन्द्र सरोवर है। वहां स्नानमात्र से मनुष्य परम पद प्राप्त करता है ।। २६ ।।

हे महामते ! जो मनुष्य यहां सोमवार को स्नान करता है, वह इस लोक में उत्तम भोगों को प्राप्त करके, मरने पर शिव को प्राप्त करता है ।। २७ ।।

हे महामुने ! जो मनुष्य भाग्य से एक मास तक सोम (चन्द्रमा) का ध्यान करता है, वह कृतकृत्य हो जाता है और शिवलोक में निवास करता है ।। २८ ।।

हे विप्र ! जो मनुष्य सोमवार को चन्द्रेश्वर महादेव का दर्शन करते हैं और श्रद्धा से श्राद्ध करते हैं, उनके पितर अमृत्व (मोक्ष) को प्राप्त करते हैं ।। २९ ।।

जो व्यक्ति यहां अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मण के लिये सुवर्ण का दान करता है, उसने मानो सम्पूर्ण शुभ पृथिवी का ही दान कर दिया है ।। ३० ।।

हे महामते ! यदि भाग्य से यहां उसको चन्द्रपर्व (पूर्णिमा) हो जावे, तो उसको कुरुक्षेत्र की अपेक्षा सौ गुना फल मिलता है ।। ३१ ।।

जो मनुष्य भोजन का परित्याग करके यहां अच्युत शिव का जप करता है, वह परम शिव को प्राप्त करता है, यह शिव का वचन है ।। ३२ ।।

तत्र वामप्रदेशे हि क्रोशार्द्धे मुक्तिदायिनी।
नदी चन्द्रवती ख्याता सर्ववाञ्छितदायिनी ।। ३३।।

तस्या वै दक्षिणे पार्श्वे विष्णुपादः प्रतिष्ठितः।
शम्भुशर्मा यत्र विप्रो विष्णुमाराधयद् व्रती ।। ३४।।

दत्तं स्वदर्शनं तत्र तदादीदं पदद्वयम्।
तस्य पूर्वोत्तरे पार्श्वे नदो नाकप्रदो नृणाम् ।।३५।।

नाम्ना सुहवनो विप्र ख्यातः सर्वत्र मङ्गलः।
यस्य तीरे नरः स्नात्वा सर्वयज्ञफलं लभेत् ।। ३६।।

यत्र वै मुनयो विप्र यज्ञं चक्रुः पुरातनम्।
अङ्गुष्ठप्रतिमाः क्रुद्धा इन्द्रवाक्येन नारद ।। ३७।।

नारद उवाच-

इन्द्रेण किं कृतं तेषां मुनीनामूर्ध्वरेतसाम्।
यदर्थं क्रतुरारब्धस्तेषां यज्ञेन किं फलम् ।। ३८।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे द्रोणाश्रममाहात्म्यवर्णनं
नामाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।

एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

दक्षयज्ञार्थमिन्धनानयनाय गतस्येन्द्रस्य स्वप्रतिकूल-
यज्ञवार्ताश्रवणाद् ब्रह्मणा चाङ्गुष्ठप्रमाणानां मुनीनां
प्रार्थनया शक्रप्रतिकूलस्य यज्ञस्य वारणं ततश्च
गरुडोत्पत्तिः

स्कन्द उवाच-

शृणु विप्र पुरावृत्तं गङ्गाद्वारे विमुक्तिदम्।
दक्षो नाम महातेजा ब्रह्मपुत्रः प्रजापतिः।
प्रजावृद्ध्यर्थकं यज्ञं चकार सह दैवतैः ।। १।।

सभागान् सर्वशश्चक्रे देवैर्मुनिभिरेव च।
इन्धनार्थं गताः केचित्केचित्पुष्पार्थकं सुराः ।। २।।

यज्ञवृक्षार्थमपरेऽपरे विप्रनिमन्त्रणे।
इति तेषां सुराणां हि वासवो वृत्रसूदनः।
जगाम विपिने घोरे सर्वदेवैरधिष्ठिते ।। ३।।

भारं सङ्गृह्य काष्ठानामाययौ वृत्रसूदनः।
यावदायाति विपिने दृष्टवान् मुनिसत्तमान् ।। ४।।

वहां बायें प्रदेश में आधे कोस की दूरी पर मुक्ति को देने वाली चन्द्रवती नाम से प्रसिद्ध नदी है। वह सभी कामनाओं को प्रदान करती है ।। ३३।।

उस नदी के दक्षिणी पार्श्व में विष्णु के चरण प्रतिष्ठित हैं। यहां व्रत धारण करने वाले शम्भुशर्मा नाम के ब्राह्मण ने विष्णु की आराधना की थी ।। ३४।।

यहां विष्णु ने उसको अपने दर्शन दिये थे। तब से लेकर यहां विष्णु के ये दो पद प्रतिष्ठित हैं। उसके पूर्वोत्तर पार्श्व में मनुष्यों को स्वर्ग देने वाला नद है ।। ३५।।

हे विप्र ! इस नद का नाम सुहवन प्रसिद्ध है। यह सर्वत्र मंगलकारी है। इसके तट पर स्नान करके मनुष्य सब यज्ञों के फल को प्राप्त करता है ।। ३६।।

हे विप्र नारद ! यहां अंगूठे के आकार वाले मुनियों (बालखिल्य) ने इन्द्र के कहने से कुपित होकर पुरातन यज्ञ किया था ।। ३७।।

नारद ने कहा-

इन्द्र ने उन ऊर्ध्वरेता मुनियों का क्या किया था, जिसके कारण उन्होंने यज्ञ को प्रारम्भ किया। उस यज्ञ से क्या फल हुआ ।। ३८।।

इस प्रकार श्री स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में द्रोणाश्रममाहात्म्य वर्णन नाम का १२८ वां अध्याय पूरा हुआ ।।

अध्याय-१२९

दक्ष के यज्ञ के लिये ईंधन लाने के लिये गये हुये इन्द्र का अपने विरुद्ध यज्ञ की वार्ता सुनकर ब्रह्मा से प्रार्थना करना, ब्रह्मा द्वारा अङ्गुष्ठप्रमाण मुनियों की प्रार्थना करके इन्द्र के विरुद्ध यज्ञ का निवारण, तदनन्तर गरुड की उत्पत्ति

स्कन्द ने कहा-

हे विप्र नारद ! इस गंगाद्वार के मुक्ति देने वाले पुराने वृत्तान्त को सुनो। ब्रह्मा के पुत्र महातेजस्वी प्रजापति दक्ष नाम के थे। उन्होंने प्रजाओं की वृद्धि के लिये देवताओं के साथ मिलकर यज्ञ किया ।। १।।

उसने सभी देवताओं और मुनियों को उसमें भाग दिया। उनमें कुछ देवता तो ईंधन लेने के लिये और कुछ पुष्प लेने गये ।। २।।

अन्य देवता यज्ञ-वृक्ष लेने गये। दूसरे देवता ब्राह्मणों को निमन्त्रित करने गये। उन देवताओं में वृत्र का वध करने वाला वासव इन्द्र सब देवताओं से अधिष्ठित घोर वन में गया ।। ३।।

वृत्रासुर का वध करने वाला इन्द्र लकड़ियों के भार को लेकर आ रहा था। आते हुये उसने वन में श्रेष्ठ मुनियों को देखा ।। ४।।

पलाशवृन्तसंलग्नानानेकान्भारपीडितान्।
गोष्पदं तर्तुमिच्छन्तो वर्षापानीयपूरितम् ।। ५।।

दृष्ट्वा तांस्तादृशान्विप्रानङ्गुष्ठसमदेहकान्।
अहासीदल्पवीर्यांश्च किं करिष्यन्त्युवाच ह ।। ६।।

दृष्ट्वा हास्यं महाभागा मुनयः संशितव्रताः।
मदोन्मत्तं परं ज्ञात्वाऽन्यमिन्द्रं कर्तुमुद्यताः ।। ७।।

क्रोधाविष्टा महात्मानस्तत्र चन्द्रवने मुने।
संभारान्साधयामासुर्यज्ञार्थं वरवर्णिनः ।। ८।।

चक्रुर्यज्ञं महाभाग वासवार्थं महोद्यमा।
इन्द्रमन्यं करिष्यामः पतिष्यति शठो ह्ययम् ।। ९।।

इत्येतदद्भुतं कर्म दृष्ट्वा तत्र महात्मनाम्।
ब्रह्माणं शरणं देवो जगामाऽतिभयातुरः ।। १०।।

उवाच वचनं तत्र ब्रह्माणं कमलासनम्।
प्रमादिना मया देव क्रोधिताः परमर्षयः ।। ११।।

ते चेन्द्रं कर्त्तुमुद्युक्ता यज्ञेन कमलासन।
श्रुत्वा ब्रह्माऽपि वृत्तान्तमिन्द्रतः करुणोदयम्।
जगाम दैवतैः सार्द्धं यत्र ते मुनयः स्थिताः ।। १२।।

तुष्टाव तान्महाभाग मुनीन्वेदपरायणान्।
नाऽन्यथा कर्तुमीहन्ते ब्रह्मणा निर्मितं तु यत् ।। १३।।

अकाले देवराजे वै न दूरं कर्त्तुमर्हथ।
पक्षीन्द्रो भवतु क्षिप्रं भवतां वै प्रसादतः ।। १४।।

स वै कार्यकरोऽस्माकं विष्णोश्चैव सुवाहनम्।
प्रसन्ना भवथ क्षिप्रं याचध्वं मां पुनः सुरान् ।। १५।।

इति तस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मणो मुनिसत्तम।
धर्मात्प्रस्वेदपूर्णेभ्यो गात्रेभ्यः स्वेदसम्भवः ।। १६।।

सोऽयं सुहवनः ख्यातो नदः परमपुण्यदः।
कृतवन्तो महायज्ञं पक्षीन्द्रश्च बभूव ह ।। १७।।

कश्यपस्य प्रिया भार्या विनतेति परिश्रुता।
तस्यां पूर्वं रवेर्विप्रोऽरुणः सारथिसत्तमः ।। १८।।

गरुडश्च ततो जज्ञे पक्षीन्द्रः सम्बभूव ह।
सर्वेषां सुरवर्याणां कार्यकर्त्ता बभूव ह ।। १९।।

अनेक भारों से पीड़ित वे पत्तों के वृन्तों से लटके हुये थे और वर्षा के जल से भरे गोष्पद गढे को तैरकर पार करने की इच्छा कर रहे थे ।। ५।।

उस प्रकार के, अंगूठे के बराबर शरीर वाले एवं अल्प वीर्य उन ब्राह्मणों को देखकर इन्द्र हंसने लगा, कि ये क्या कार्य करेंगे ।। ६।।

व्रत को धारण करने वाले वे महाभाग मुनि इन्द्र की हंसी को देखकर और उसको मद से बहुत अधिक उन्मत्त जानकर दूसरे इन्द्र की रचना करने के लिये उद्यत हो गये।।७।।

हे मुने ! क्रोध से आविष्ट होकर वे ब्राह्मण महात्मा वहां चन्द्रवन में यज्ञ करने के लिये सामग्रियों को एकत्रित करने लगे ।। ८।।

हे महाभाग नारद ! महान् उद्यम करने वाले उन मुनियों ने अन्य इन्द्र की रचना के लिये यज्ञ किया कि हम अन्य इन्द्र बनायेंगे। यह शठ इन्द्र पतित होगा ।। ९।।

वहां उन महात्माओं के इस अद्भुत कर्म को देखकर और अत्यधिक भय से आतुर होकर वह वासव इन्द्र ब्रह्मा की शरण में गया ।। १०।।

वहां उसने कमलासन पर स्थित ब्रह्मा से यह वचन कहा- "मुझ प्रमादी ने उत्तम ऋषियों को क्रोधित कर दिया है ।। ११।।

हे कमलासन ! वे यज्ञ के द्वारा अन्य इन्द्र को बनाने को उद्यत हो गये हैं।" करुणा को उत्पन्न करने वाले इन्द्र के वृत्तान्त को सुनकर ब्रह्मा भी देवताओं के साथ वहां गये, जहां कि वे मुनि स्थित थे ।। १२।।

हे महाभाग ! नारद ! ब्रह्मा ने वेदपरायण मुनियों को सन्तुष्ट किया। उन्होंने कहा कि ब्रह्मा द्वारा निर्मित सृष्टि से भिन्न दूसरी सृष्टि की रचना वे नहीं कर सकते।।१३।।

असमय में उनको देवराज को दूर नहीं करना चाहिये। क्योंकि आपने यज्ञ किया है, अतः आपकी कृपा से शीघ्र ही पक्षियों का इन्द्र (राजा) उत्पन्न होगा ।। १४।।

वह हमारा कार्य करने वाला होगा और विष्णु का वाहन होगा। आप शीघ्र प्रसन्न हो जाओ और मुझसे एवं पुनः देवताओं से जो चाहो मांग लो ।। १५।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! उस ब्रह्मा के इस वचन को सुनकर उन मुनियों के गरमी के कारण पसीने से भरे हुये शरीर से पसीना बहने लगा ।। १६।।

उससे यह परम पुण्यों को देने वाला सुहवन नाम से प्रसिद्ध नद हुआ। उन मुनियों ने महायज्ञ किया और उससे पक्षियों का इन्द्र उत्पन्न हुआ ।। १७।।

कश्यप प्रजापति की विनता नाम की प्रिय पत्नी थी। उसका जो पहला पुत्र अरुण हुआ, वह सूर्य का श्रेष्ठ सारथि था ।। १८।।

तदनन्तर गरुड उत्पन्न हुआ, जो पक्षियों का राजा बना। वह सभी श्रेष्ठ देवताओं का कार्य करने वाला हुआ ।। १९।।

पक्षिराजोऽभिषिक्तश्च मुनिभिश्च सुरासुरैः।
बलवान्सत्त्वसम्पन्नो वेगवानमितद्युतिः ।। २० ।।

जहार यो महातेजा अमृतं वृत्रसूदनात्।
निर्जित्य तं महातेजा ऋषिवाक्यमनुस्मरन्।
जिता देवगणास्तेन दानवाश्च महामते ।। २१ ।।

विष्णुस्त्रैलोक्यनाथश्च सङ्गरे निर्जितः मुने।
प्रसन्नश्च महाविष्णुः प्रोवाच गरुडं तदा ।। २२ ।।

वरं वरय भद्रं ते प्रसन्नोऽस्मि तवाधुना।
अहं कर्ता च हर्त्ता च त्रिलोकानां त्वया जितः ।। २३ ।।

वरं ददामि ते प्रीतो यद्यन्मनसि वर्त्तते।
विहस्य गरुडोऽप्याह हरिं लोकपरायणम् ।। २४ ।।

त्वमेव हि हरे ब्रूहि वरं त्रैलोक्यदुर्लभम् ।।
वाहनत्वं तदा वव्रे वरं नारायणः स्वयम् ।। २५ ।।

वह मां वैनतेय त्वं प्रसन्नश्च यतो मयि ।
तथेति सोऽपि गरुडो जगाद हरिमच्युतम् ।। २६ ।।

इति दत्त्वा वरं तस्मै गरुडो वेगसंयुतः।
गृहीत्वा कलशं तस्य पीयूषस्य मुदा ययौ ।। २७ ।।

यत्र दासत्वमापन्ना क्रुद्धा वै मुनिसत्तम।
अदार्सी मातरं चक्रे यत्पीयूषप्रदानतः ।। २८ ।।

इति ते कथितो दिव्यो नदस्य परमाद्भुतम्।
सुहवनस्य च ख्यातं सर्वपापहरं मुने ।। २९ ।।

पक्षीन्द्रोऽपि तपस्तप्तुं ययौ कैलासमन्दिरे।
इति पुण्यतमं स्थानं देवानामपि दुर्लभम् ।। ३० ।।

चन्द्रवतीसुहवनयोः सङ्गमोऽतीव पुण्यदः।
नदीत्रयं च शाकिन्या यत्र पुण्ये सुसङ्गता ।। ३१ ।।

तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या शिवसायुज्यमाप्नुयात्।
इदं पुण्यतमाख्यानं श्रुत्वा पापैः प्रमुच्यते ।। ३२ ।।

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे सुहवननदोत्पत्तिवर्णनं
नामैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः।

मुनियों और देव-दानवों ने उसका पक्षिराज के पद पर अभिषेक किया। वह बलवान्, सत्त्व से सम्पन्न, वेगवान् और अमित कान्तिमान् था ।। २०।।

उस महातेजस्वी ने उस इन्द्र को जीतकर उस वृत्रसूदन से अमृत को छीन लिया था। हे महामते नारद ! ऋषि के वाक्य को स्मरण करते हुये उसने देवताओं और दानवों को जीत लिया था ।। २१।।

हे मुने! उसने युद्ध में तीनों लोकों के स्वामी विष्णु को जीत लिया था। तब प्रसन्न होकर विष्णु ने गरुड से कहा ।। २२।।

मैं तुमसे अब प्रसन्न हूं। मुझसे तुम कल्याणकारी वर मांगो। तीनों लोकों के कर्ता और हर्ता विष्णु को तुमने जीत लिया है ।। २३।।

तुमसे मैं प्रसन्न हूं। जो-जो तुम्हारे मन में है, वह वर तुम मांग लो। हंस कर गरुड ने भी लोक का पालन करने वाले विष्णु से कहा ।। २४।।

हे विष्णो ! तुम ही मुझ से तीनों लोकों में दुर्लभ वर मांग लो। तब स्वयं नारायण ने उस गरुड से वर मांगा कि तुम मेरे वाहन बन जाओ ।। २५।।

हे विनता के पुत्र गरुड ! यदि तुम मुझ पर प्रसन्न हो तो मेरे वाहन बनो। ऐसा ही हो, ऐसा गरुड ने अच्युत हरि से कहा ।। २६।।

इस प्रकार उस विष्णु को वर देकर, वेगशाली गरुड उस अमृत के घट को लेकर प्रसन्नता से चले गये ।। २७।।

हे मुनिश्रेष्ठ नारद ! वे वहां गये, जहांकि दासी बनी हुई उनकी क्रुद्धा माता थीं। उस अमृत को देकर उन्होंने उस माता को दासत्व से मुक्त किया ।। २८।।

हे मुने नारद ! इस प्रकार मैंने सब पापों को हरने वाले सुहवन नाम से प्रसिद्ध दिव्य नद का परम अद्‌भुत वृत्तान्त कह दिया है ।। २९।।

पक्षिराज गरुड भी तपस्या करने के लिये कैलास पर्वत पर चले गये। यह पुण्यतम स्थान देवताओं को भी दुर्लभ है ।। ३०।।

यहां चन्द्रवती नदी और सुहवन नद का संगम अति पुण्यप्रद है। इस पुण्यशाली संगम में शाकिनी नाम की तीसरी नदी भी मिलती है ।। ३१।।

वहां भक्तिभाव से स्नान करके मनुष्य शिव के सायुज्य को प्राप्त करता है। इस पुण्यतम आख्यान को सुनकर मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है ।। ३२।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में सुहवन नद की उत्पत्ति का वर्णन नाम का १२९ वां अध्याय पूरा हुआ ।।

त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

गणकुञ्जरपर्वते चण्डिकास्वर्णेश्वराम्रातकवनशाकम्भर्यादितीर्थ-कथनपूर्वकं देवशर्मानीतगङ्गाप्रवाहादिपुण्यतरतीर्थवर्णनम्

स्कन्द उवाच-

ततो वै पश्चिमे भागे योजने पर्वतोत्तमे।
गणकुञ्जरनामा वै भैरवो भीमविक्रमः ।। १।।

तन्नाम्ना पर्वतश्चापि गणकुञ्जरसञ्ज्ञकः।
गणधारा नदी ख्याता शिवलोकप्रदायिनी ।। २।।

यस्तत्र पर्वतश्रेष्ठे पश्येद्वै गणकुञ्जरम्।
कुञ्जराकृतिदेहं च शिवसायुज्यमाप्नुयात् ।। ३।।

यद्यदिच्छति मर्त्यो वै तत्तत्प्राप्नोति तत्र वै।
महापुण्यतमं पीठं त्रिरात्रात्सिद्धिदायकम् ।। ४।।

तन्मूर्ध्नि चण्डिका ख्याता गणकुञ्जरसेविता
चतुर्दश्यां भाद्रपदे पुण्यकृद्भिः प्रदृश्यते ।। ५।।

तत आयाति परमा गणधारा नदी वरा।
स्नानमात्रेण तस्यां हि लभते परमं पदम् ।। ६।।

तत उत्तरदिग्भागे शिवः परमसुन्दरः।
स्वर्णेश्वर इति ख्यातः पापानामपि मुक्तिदः ।। ७।।

ततः क्रोशार्द्धखण्डे वै देवगर्भा नदी वरा।
सा यत्र सङ्गता विप्र तथा शङ्करबल्लभा।
तयोः सुसङ्गमे स्नात्वा वाजपेयशतं लभेत् ।। ८।।

अथ पश्चिमदिग्भागे देवधारगिरौ शुभे।
चन्द्रारण्यात्परे भागे योजनद्वयसम्मिते।
गङ्गा च यमुना तत्र सङ्गतेऽतीव पुण्यदे ।। ९।।

देवशर्मेति विख्यातो ब्राह्मणो वेदपारगः।
उपासिता पुरा तेन गङ्गा भागीरथी परा ।। १०।।

गङ्गाप्रवाहः पतितस्ततोऽत्र द्विजपुङ्गव।
तदादीदं महापुण्यं जातं वैकुण्ठधामदम् ।। ११।।

गङ्गाप्रवाह इति वै नाम तस्य बभूव ह।
स्नानं कुर्वन्ति ये तत्र शतयज्ञफलं भवेत् ।। १२।।

अध्याय-१३०

गणकुञ्जर पर्वत पर चण्डिका, स्वर्णेश्वर, आम्रातक वन, शाकम्भरी आदि तीर्थों का कथन, देवशर्मा द्वारा लाये गये गङ्गाप्रवाह आदि अधिक पुण्यशाली तीर्थों का वर्णन

स्कन्द ने कहा-

उस स्थान से पश्चिमी भाग में एक योजन दूर उत्तम पर्वत है। यहां भयानक पराक्रमी गणकुञ्जर नाम के भैरव रहते हैं ।।१।।

उनके नाम से पर्वत का नाम भी गणकुंजर हुआ। वहां गणधारा नाम से प्रसिद्ध नदी शिवलोक को देने वाली है ।। २।।

उस श्रेष्ठ पर्वत पर जो कोई गणकुंजर भैरव का दर्शन कर लेता है, वह कुंजर (हाथी) के शरीर की आकृति को और शिव के सायुज्य को प्राप्त करता है ।। ३।।

मनुष्य यहां जो-जो चाहता है, उस-उसको प्राप्त करता है। इस महापुण्यतम पीठ में तीन रातों में सिद्धि प्राप्त होती है ।। ४।।

उस पर्वत के शिखर पर चण्डिका देवी प्रसिद्ध हैं। गणकुंजर भैरव उनकी सेवा करता है। भाद्रपद मास की चतुर्दशी तिथि को वे पुण्यशालियों को दिखाई देती हैं।।५।।

उस गणकुंजर पर्वत से गणधारा नाम की उत्तम नदी आती है। उसमें स्नान करने मात्र से मनुष्य परम पद को प्राप्त करता है ।। ६।।

इससे उत्तर दिशा में स्वर्णेश्वर नाम के परम सुन्दर शिव हैं, जो पापियों को भी मुक्ति देते हैं ।। ७।।

उससे आधे कोस की दूरी पर श्रेष्ठ देवगर्भा नाम की नदी है। हे विप्र ! वहां वह शंकरबल्लभा नाम की नदी से मिलती है। उनके उत्तम संगम में स्नान करके मनुष्य १०० वाजपेय यज्ञों का फल प्राप्त करता है ।। ८।।

उससे पश्चिम दिशा में, शुभ देवधार पर्वत पर चन्द्रवन से परे प्रदेश में दो योजन दूर पुण्य को देने वाली गंगा और यमुना का संगम होता है ।। ९।।

पहले समय में वेदों में पारङ्गत देवशर्मा नाम से प्रसिद्ध ब्राह्मण था। उसने पवित्र भागीरथी गंगा की उपासना की थी ।। १०।।

हे ब्राह्मण श्रेष्ठ नारद ! तदनन्तर वहां गंगा का प्रवाह बहने लगा। तब से लेकर यह स्थान बैकुण्ठ धाम को देने वाला महापुण्यशाली हो गया ।। ११।।

उस प्रवाह का नाम गंगाप्रवाह हुआ। जो मनुष्य यहां स्नान करते हैं, उनको सौ यज्ञों का फल प्राप्त होता है ।। १२।।

यत्र देशे सूर्यजायां सङ्गता जाह्नवी परा।
तत्र पुण्यतमं स्थानं सूर्यलोकप्रदायकम् ।। १३।।

स्नानं दानं जपं होमं स्वाध्यायं पितृतर्पणम्।।
कुर्वन्ति ये महाभाग फलमश्नुवतेऽक्षयम् ।। १४।।

यमुनाया: पूर्वभागे सूर्यकुण्डमिति स्मृतम्।
य: स्नाति तत्र विप्रेश सूर्यलोके महीयते ।। १५।।

तत्र दिव्यशिला नाम स्पर्शनान्मुक्तिदायिनी।
कलौ धर्मविहीना: ये पूजां कुर्वन्ति मानवा:।
न तेषां तद्भयं विद्याद्दर्शनात्पूजनादपि ।। १६।।

तत उत्तरदिग्भागे विष्णुकुण्डं शरद्वये।
यत्र पीतं जलं याति यत्र वज्रशिलार्थदा ।। १७।।

विष्णुकुण्डे सकृत्स्नातो विष्णुलोके महीयते ।। १८।।

तत: क्रोशे महापुण्यमाम्रातकवनं महत्।
तत्राऽप्यथ त्रिरात्रं तु जप्त्वा शिवमनुत्तमम्।
सिद्धिमाप्नोति परमां सत्यमेव शिवोदितम् ।। १९।।

तत उत्तरदिग्भागे ढक्काहस्तो गणाधिप:।
महादेवस्य पुरतो ढक्कावादनतत्पर: ।। २०।।

तस्य स्थानमिदं पुण्यं सर्वकामफलप्रदम्।
ततो वै दक्षिणे भागे त्रियोजनमिते स्थले।
शाकम्भरीति विख्याता सर्वकामेश्वरी वरा ।। २१।।

तस्या: सन्दर्शनादेव सर्वपापै: प्रमुच्यते।
शाकेश्वरो महादेव: प्रत्यक्षं सिद्धिदायक: ।। २२।।

पुराऽत्रैव महादेवी मुनीस्तपसि चाऽऽश्रितान्।
विग्रहे शतवार्षिक्ये शाकै: स्वाङ्गसमुद्भवै: ।। २३।।

भरयामास परमा तत: शाकम्भरी मता।
प्रत्यक्षसिद्धिदा देवी दर्शनात्पापनाशिनी ।। २४।।

इति ते कथितं क्षेत्रं द्रोणर्षेस्तपस: स्थलम्।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नाऽत्र संशय: ।। २५।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे द्रोणतीर्थमाहात्म्यवर्णनं
नाम त्रिंशदधिकशततमोऽध्याय:।।

जिस स्थान पर परम पवित्र जाह्नवी का सूर्यपुत्री यमुना में संगम होता है, वह पुण्यतम स्थान सूर्यलोक को देने वाला है ।। १३।।

हे महाभाग ! जो मनुष्य यहां स्नान, दान, जप, हवन, स्वाध्याय और पितृतर्पण करते हैं, वे उसका अविनाशी फल प्राप्त करते हैं ।। १४।।

हे विप्रेश ! यमुना के पूर्वभाग में सूर्यकुण्ड है। जो मनुष्य वहां स्नान करता है, वह सूर्यलोक में जाकर महिमा को प्राप्त करता है ।। १५।।

वहां दिव्यशिला नाम की शिला है। वह स्पर्श करने से मोक्ष प्रदान करती है। कलियुग में धर्म से रहित भी जो मनुष्य वहां स्नान करते हैं, दर्शन करते हैं और पूजा करते हैं, उनको कलियुग का भय नहीं रहता ।। १६।।

उससे उत्तर दिशा में दो शरविक्षेप दूर विष्णुकुण्ड है। उसका पीला जल बह कर वहां जाता है, जहां कि धन को देने वाली बज्रशिला है ।। १७।।

विष्णुकुण्ड में एक बार स्नान करके मनुष्य विष्णुलोक में जाकर महिमा को प्राप्त करता है ।। १८।।

उससे एक कोस दूर महापुण्यशाली विशाल आम्रातक वन (आंवड़ा वृक्षों का वन) है। वहां तीन रात रहकर उत्तम शिव का जप करने से मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त करता है। शिव ने यह सत्य कहा है ।। १९।।

उससे उत्तर दिशा में ढक्काहस्त नाम का शिव का गणाधिप है। वह महादेव के समक्ष ढक्का बजाने में तत्पर रहता है ।। २०।।

उसका यह पुण्यशाली स्थान सब कामनाओं के फल को देता है। उससे दक्षिण दिशा में तीन योजन की दूरी पर प्रसिद्ध शाकम्भरी पीठ है। वह श्रेष्ठ देवी सब कामनाओं की स्वामिनी हैं ।। २१।।

उनके दर्शनमात्र से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है। वहां शाकेश्वर महादेव हैं, जो प्रत्यक्ष रूप से सिद्धि देने वाले हैं ।। २२।।

पहले समय में महादेवी ने इसी स्थान पर सौ वर्ष की अवधि की तपस्या करते हुये मुनियों का अपने अङ्गों से उत्पन्न हुये शाकों से.......... ।। २३।।

भरण-पोषण किया था। तबसे वे परम देवी शाकम्भरी कहलाईं। वे प्रत्यक्ष होकर सिद्धि देने वाली हैं। दर्शन देकर वे पापों को नष्ट करती हैं ।। २४।।

इस प्रकार मैंने तुमसे द्रोण ऋषि की तपस्या के स्थल के क्षेत्र का वर्णन कर दिया है। इस वर्णन को सुनकर मनुष्य निस्सन्देह सब पापों से मुक्त हो जाता है ।। २५।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में द्रोणतीर्थमाहात्म्यवर्णन नाम का १३० वां अध्याय पूरा हुआ।।

एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कालेश्वरीकालेश्वरमाहात्म्यवर्णनपुरस्सरं देवजुष्टांसरिदादि-तीर्थकथने यमुनाया विशेषेण माहात्म्यवर्णनम्

स्कन्द उवाच-

अथ कालेश्वरी देवी प्रोच्यते भक्तवत्सला।
यमुनापश्चिमे भागे सर्वसिद्धिप्रदायिनी ।। १।।

तत्र कालेश्वरो नाम महादेवो महार्थदः।
तस्य दर्शनमात्रेण कैलासनिलये वसेत् ।। २।।

देवजुष्टा नदी तत्र पुण्यगम्या शिवप्रदा।
यमुनासङ्गता यत्र क्षेत्रं पुण्यतमं स्मृतम् ।। ३।।

यत्रर्षयः पुरा सर्वे शिवपूजनतत्पराः।
लेभिरे सर्वविद्याश्च ततः पुण्यतमं स्मृतम् ।। ४।।

यमुनास्नानमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः।
येनैकवारमपि वै कृतं स्नानमिह द्विज।
यमलोकं न गच्छेत् स पश्येच्च परमं पदम् ।। ५।।

यमुनायां तथा स्नात्वा सन्तर्प्य पितृदेवताः।
सूर्यलोकं समासाद्य ब्रह्मलोके महीयते ।। ६।।

गङ्गा च यमुना चैव समे त्रैलोक्यपावने।
ययोर्दर्शनमात्रेण शिवतां याति मानवः ।। ७।।

शतजन्मार्जितैः पापैर्मुच्यते नाऽत्र संशयः।
यस्य भाग्यवशान्मृत्युर्यमुनायास्तटे भवेत्।
स लभेद् ब्रह्मसायुज्यं न स भूयोऽभिजायते ।। ८।।

प्रसङ्गाद्वा बलात्काराद् भक्त्याऽभक्त्यापि मानवः।
यो गच्छेद्यमुनां धीरो नाऽस्ति तत्सदृशो भुवि ।। ९।।

तावद् गर्जन्ति पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।
यावन्न जायते स्नानं यमुनायां महामते ।। १०।।

अध्याय-१३१

कालेश्वरी और कालेश्वर के माहात्म्य का वर्णन, देवजुष्टा नदी आदि तीर्थों के वर्णन में विशेष रूप से यमुना के माहात्म्य का वर्णन

स्कन्द ने कहा-

अब भक्तवत्सल कालेश्वरी देवी का वर्णन किया जाता है। यमुना के पश्चिम भाग में स्थित वे देवी सब सिद्धियों को प्रदान करने वाली हैं ।। १।।

वहां कालेश्वर नाम के महादेव महान् धन देने को वाले हैं। उनके दर्शन मात्र से मनुष्य कैलास पर्वत पर निवास करता है ।। २।।

वहां देवजुष्टा नदी शिव को देने वाली है। वहां पुण्यों से ही पहुंचा जा सकता है। वह जहां यमुना से मिलती है, वह क्षेत्र पुण्यतम माना गया है ।। ३।।

यहां प्राचीन समय में शिव की पूजा में तत्पर सब ऋषियों ने सब विद्याओं को प्राप्त किया था। अतः यह स्थान पुण्यतम माना गया है ।। ४।।

यमुना में स्नान करने मात्र से मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। हे द्विज ! जिसने एक बार भी वहां स्नान कर लिया है, यह यमलोक को नहीं जाता और परम पद का दर्शन करता है ।। ५।।

यमुना में स्नान करके और पितर देवताओं का सन्तर्पण करके मनुष्य सूर्यलोक को प्राप्त करके ब्रह्मलोक में जाकर महिमा को प्राप्त करता है ।। ६।।

गङ्गा और यमुना समान रूप से तीनों लोकों को पवित्र करती हैं, जिनके दर्शन मात्र से मनुष्य शिवत्व को प्राप्त करता है ।। ७।।

यहां रह कर मनुष्य १०० जन्मों में अर्जित पापों से भी मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। जिसकी मृत्यु भाग्यवश यमुना के तट पर होती है, वह ब्रह्म के सायुज्य को प्राप्त करता है। उसका पुनः जन्म नहीं होता।। ८।।

चाहे किसी प्रसङ्गवश, चाहे बलपूर्वक, चाहे भक्ति से, चाहे भक्ति के विना भी, जो धीर मनुष्य यमुना नदी पर जाता है, उसके समान मनुष्य इस पृथिवी पर नहीं है।।९।।

हे महामते! ब्रह्महत्या आदि पाप तभी तक गरजते हैं, जब तक कि मनुष्य सूर्य-पुत्री यमुना में स्नान नहीं करता है ।। १०।।

तावद्यमः प्रभवति श्रेष्ठः पापाद्धि शासितुम्।
यावच्च सूर्यजास्नानं न करोति महामते ।। ११।।

यदि भाग्येन लभते सूर्यग्रहणपूर्वकम्।
कुरुक्षेत्राभिधात्काश्याः फलं कोटिगुणं लभेत् ।। १२।।

त्रुटिमात्रमपि स्वर्णं ददाति द्विजमूर्त्तये।
स याति परमांल्लोकान्दरिद्रो न भवेत्पुनः ।। १३।।

पितृवंश्याश्च ये केचिन्मातृवंश्यास्तथापरे।
गुरुश्वशुरबन्धूनां तथा वंश्या महामुने।
प्रयांति परमं स्थानं प्राप्य पिण्डोदकेऽत्र वै ।। १४।।

यमुनास्नानमाहात्म्यं वक्तुं केनाऽपि शक्यते।
नाऽहं वर्षशतैर्वक्तुं शक्नोमि मुनिवंदित ।। १५।।

यत्र कुत्राऽपि संदृष्टा यस्मिन् कस्मिन्नपि क्षणे।
स्नाताऽवगाहिता पीता दृष्टा पापप्रणाशिनी ।। १६।।

इति ते कथितं दिव्यं यमुनावैभवं वरम्।
यस्य श्रवणमात्रेण यमुनास्नानजं फलम्।
लभते सुतरां विप्र मृतो ब्रह्मपुरे बसेत् ।। १७।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे यमुनामाहात्म्यवर्णनं
नामैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।

द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

योनितीर्थमाहात्म्यवर्णनप्रसङ्गात्तत्रत्ययवनेशपीठ-योनिपर्वतशरभङ्गवसिष्ठब्रह्मनदादितीर्थवर्णनम्

स्कन्द उवाच-

यमुनायाः पूर्वभागे पीठं परमसुन्दरम्।
चतुर्योजनविस्तारायामं चाघनिवारणम् ।। १।।

नाम्ना यवनेशपीठं सर्वदुःखनिवारणम्।
पीठं वै यवनेश्वर्य्याः सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।। २।।

हे महामते ! श्रेष्ठ यम पापों पर शासन करने में तभी तक समर्थ रहता है, जब तक कि मनुष्य सूर्यपुत्री यमुना में स्नान नहीं करता ।। ११।।

यदि मनुष्य को भाग्यवश सूर्यग्रहण के समय यमुना में स्नान करने का अवसर मिलता है, तो उसको कुरुक्षेत्र एवं काशी में स्नान करने के फल से १०० गुना फल प्राप्त होता है ।। १२।।

जो यहां कणमात्र भी स्वर्ण को ब्राह्मणों के लिये दान करता है, वह परम लोकों में जाता है और पुनः दरिद्र नहीं होता ।। १३।।

हे मुने नारद ! यहां पिण्डदान को प्राप्त करने से पिता के वंश के पूर्वज, माता के वंश के पूर्वज, गुरु के वंश के पूर्वज, श्वसुर के वंश के पूर्वज और अन्य बन्धुओं के वंश के पूर्वज पित्तर परम स्थान पर जाते हैं ।। १४।।

हे वन्दनीय मुने ! यमुना के स्नान के माहात्म्य का वर्णन कोई सौ वर्ष में भी नहीं कर सकता। मैं भी नहीं कर सकता ।। १५।।

यमुना का जिस किसी भी क्षण में जहां कहीं भी दर्शन कर लिया जावे, उसमें स्नान-अवगाहन कर लिया जावे, दर्शन करके जल पी लिया जावे, वह पापों को नष्ट करती है।। १६।।

इस प्रकार मैंने तुमसे यमुना के उत्तम दिव्य वैभव को कह दिया है। इसके सुनने मात्र से ही यमुना-स्नान का तुरन्त फल प्राप्त होता है और मरने पर मनुष्य ब्रह्मलोक में निवास करता है ।। १७।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में यमुनामाहात्म्यवर्णन
नाम का १३१वां अध्याय पूरा हुआ।।

अध्याय-१३२

योनितीर्थ के माहात्म्य का वर्णन, वहां के यवनेशपीठ, योनिपर्वत, शरभङ्ग, वसिष्ठ, ब्रह्मनद आदि तीर्थों का वर्णन

स्कन्द ने कहा-

यमुना नदी के पूर्वी भाग में चार योजन क्षेत्र के विस्तार वाला और पापों को दूर करने वाला परम सुन्दर पीठ है ।। १।।

यह यवनेश नाम का पीठ सब दुःखों का निवारण करता है। यहीं सब सिद्धियों को देने वाला यवनेश्वरी पीठ है ।। २।।

एतत्क्षेत्रसमं क्षेत्रं सद्यः प्रत्ययकारकम्।
त्रैलोक्ये नाऽस्ति विप्रेश सत्यमेव न संशयः ।। ३।।

यदन्यत्र महाभाग वर्षात्सिद्ध्यति कारकम्।
तदत्र दिवसेनैव सिद्धिमेष्यत्यसंशयम् ।। ४।।

योनिपर्वतमारूढो यदि देवीमुपासते।
धन्यो भवति लोकेषु तेनैवैकेन कर्मणा ।। ५।।

यदत्र संस्थिता भूता देवीलोकाधिवासिनः।
अरिमन्त्रोऽपि सञ्जप्तो देशेऽस्मिन्योनिपर्वते ।। ६।।

सिद्धिं प्रलभते पूर्णां सुरैरपि सुदुर्लभाम्।
राजानो वश्यतां यान्ति नश्यन्ति सर्वशत्रवः ।। ७।।

नारद उवाच-

योनिपर्वतमाहात्म्यं सोद्भवं वक्तुमर्हसि।
यवनेशस्य पीठस्य प्रभावं च तथा वद ।। ८।।

स्कन्द उवाच-

शृणु विप्र समुत्पत्तिं योनिक्षेत्रस्य तद्गिरेः।
माहात्म्यं विस्तराद्वच्मि सावधानोऽवधारय ।। ९।।

पुरा दक्षमहायज्ञे सती देहं मुमोच ह।
तद्देहं शिरसा धृत्वा प्रचचार महीमिमाम् ।। १०।।

शिवस्य मोहनाशार्थं विष्णुश्चक्रेण नारद।
चकर्त्त खण्डशो देहं देव्याश्चैव महामते ।। ११।।

योनिखण्डं च पतितमत्र वै पर्वतोत्तमे।
तत्र संस्थापयामासुरीश्वरीं देवतागणाः ।। १२।।

तदादीदं परं पीठं सद्यः प्रत्ययकारकम्।
महादेवोऽपि तत्रैव संस्थितो लिङ्गरूपधृक् ।।। १३।।

योनीश्वर इति ख्यातः सर्वसिद्धिप्रदायकः।
देव्यास्तु दक्षिणे भागे कालियो नाम नागराट् ।। १४।।

हे विप्रेश नारद ! इस क्षेत्र के समान तत्काल ज्ञान देने वाला क्षेत्र तीनों लोकों में नहीं है। यह बात सत्य है और इसमें सन्देह नहीं है ।। ३।।

हे महाभाग ! जो कार्य दूसरे स्थान पर एक वर्ष में सिद्ध होता है, वह यहां निस्सन्देह रूप से एक दिन में सिद्ध हो जाता है ।। ४।।

जो मनुष्य योनि पर्वत पर चढकर देवी की उपासना करता है, वह उस एक कर्म से ही लोकों में धन्य हो जाता है ।। ५।।

देवी के लोक में निवास करने वाले भी यहां स्थित होकर यदि इस योनि पर्वत के प्रदेश में अरिमन्त्र का जप करते हैं ।। ६।।

तो देवताओं से भी दुर्लभ पूर्ण सिद्धि को प्राप्त करते हैं। राजा उनके वश में हो जाते हैं और सब शत्रु नष्ट हो जाते हैं ।। ७।।

नारद ने कहा-

योनि पर्वत के माहात्म्य का उत्पत्ति-सहित वर्णन कीजिये और यवनेश पीठ के माहात्म्य को भी बताइये ।। ८।।

स्कन्द ने कहा-

हे विप्र ! योनि पर्वत के क्षेत्र की उत्पत्ति का वृत्तान्त सुनो। उसके माहात्म्य को भी विस्तार से कहता हूं। सावधान होकर सुनो ।। ९।।

पहले समय में दक्ष के महायज्ञ में सती ने शरीर को छोड़ दिया था। उस सती के शरीर को सिर पर रखकर वे महादेव इस पृथिवी पर भटकने लगे ।। १०।।

हे नारद महामते ! शिव के मोह को नष्ट करने के लिये विष्णु ने अपने सुदर्शनचक्र से सती देवी के शरीर को खण्ड-खण्ड कर दिया ।। ११।।

जिस उत्तम पर्वत पर योनि-खण्ड गिरा था, वहां देवताओं ने आसुरीश्वरी (यवनेश्वरी) पीठ की स्थापना की ।। १२।।

तबसे लेकर यह पीठ तत्काल ज्ञान को प्रदान करने वाला हुआ। महादेव भी वहां लिङ्ग के रूप को धारण करके स्थित हो गये ।। १३।।

सब सिद्धियों को प्रदान करने वाले महादेव योनीश्वर (यवनेश) नाम से प्रसिद्ध हुये। यवनेश्वरी देवी के दक्षिण भाग में कालिय नाम का नागराज........ ।। १४।।

समायाति सदा तत्र येन केनापि हेतुना।
देवीं सम्पूज्य विधिवत्प्रयाति श्वभ्रके वरे ।। १५ ।।

पुराऽत्र कालयवनस्तपस्तप्तुं समागतः।
देवीमाराधयामास विविधैश्चोपचारकैः ।। १६ ।।

यवनेशी ततः प्रोक्ता सर्वदारिद्र्यनाशिनी।
तत्र ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्रश्चैव तथा त्रयः।
संस्थिता नदरूपेण तस्मिन्नेव नगोत्तमे ।। १७ ।।

तस्य वै दक्षिणे भागे नाम्ना ब्रह्मनदो मुने।
तत्र संस्नाति यो मर्त्यो ब्रह्मलोके महीयते ।। १८ ।।

तस्योत्तरप्रदेशे हि नदो वै रुद्रसञ्ज्ञकः।
तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि येन सञ्ज्ञायते नरैः ।। १९ ।।

तस्य दक्षिणभागे हि जलं भस्ममयं महत्।
तत्रैकं शिवलिङ्गं च स्फाटिकाभं सुनिर्मलम् ।। २० ।।

तस्य दर्शनमात्रेण शिवलोके महीयते।
यत्र देव्यः सञ्चरन्ति डाकिनीरूपमाश्रिताः ।। २१ ।।

नानावेषधराः कामरूपा वै डाकिनीगणाः।
सार्द्धद्वयाक्षरं मन्त्रं प्रजपति च तत्र ताः ।। २२ ।।

तत्प्रभावेण विप्रर्षे परमां सिद्धिमागताः।
प्रच्छन्नरूपास्ताः सर्वा विचरन्ति महीतले ।। २३ ।।

अञ्जनाकर्षणाद्याश्च खेचरीप्रमुखा मुने।
सिद्धयः करगास्तासां यत्नतः[1] प्राविशेन्नरः ।। २४ ।।

गिरेश्च पूर्वभागे हि नाम्ना विष्णुनदो मुने।
पादुके विष्णुना त्यक्ते पुरा वै तत्र पर्वते ।। २५ ।।

तत्पूर्वोत्तरप्रदेशाद्धि समायाति रमा नदी।
तयोस्तु सङ्गमं पुण्यं विष्णुतीर्थमनुत्तमम् ।। २६ ।।

---
१. प्रविशन्ति हि

वहां सदा जिस-किसी भी कारण से आता है। वह देवी का विधिवत् पूजन करके अपने उत्तम बिल में चला जाता है ।। १५ ।।

पहले यहां कालयवन नाम का असुर तपस्या करने आया था। उसने विविध उपचारों से देवी की आराधना की थी ।। १६ ।।

तबसे सब दरिद्रताओं को नष्ट करने वाली ये देवी यवनेश्वरी कहलाईं। वहां उसी उत्तम योनि पर्वत पर ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये तीनों देवता नद के रूप में स्थित हैं ।। १७ ।।

हे मुने! वहां उस योनि पर्वत के दक्षिण भाग में ब्रह्म नद है। जो मनुष्य उसमें स्नान करता है, वह ब्रह्मलोक में जाकर महिमा को प्राप्त करता है ।। १८ ।।

उस योनिपर्वत के उत्तर भाग में रुद्र नाम का नद (रुद्रनद) है। मैं उसके चिह्न को बताऊंगा, जिससे कि मनुष्य उसको पहचान लें ।। १९ ।।

उस रुद्र नद के दक्षिण भाग में भस्ममय प्रचुर जल है। वहां स्फटिक के समान कान्ति वाला अति निर्मल शिवलिङ्ग है ।। २० ।।

उसके दर्शनमात्र से मनुष्य शिवलोक में जाकर महिमा को प्राप्त करता है। यहां डाकिनी के रूप को धारण करके देवियां विचरण करती हैं ।। २१ ।।

यहां इच्छानुसार विविध रूपों को धारण करने वाली वे डाकिनियां २½ अक्षर के मन्त्र का जप करती है ।। २२ ।।

हे विप्रर्षे नारद ! उस मन्त्र के प्रभाव से उन्होंने परम सिद्धि को प्राप्त किया है। वे प्रच्छन्न रूप से पृथिवीतल पर विचरण करती हैं ।। २३ ।।

हे मुने ! अञ्जनाकर्षण आदि और खेचरी आदि सिद्धियां उनको हस्तगत हैं। अतः मनुष्य वहां प्रयत्न एवं सावधानी से प्रवेश करे ।। २४ ।।

हे मुने ! योनिपर्वत के पूर्व भाग में विष्णु नाम का नद है। वहां उस पर्वत पर विष्णु द्वारा छोड़ी गई उनकी पादुकायें हैं ।। २५ ।।

उस स्थान के पूर्वोत्तर प्रदेश से रमा नाम की नदी आती है। उन दोनों का पुण्यशाली संगम उत्तम विष्णुतीर्थ कहलाता है ।। २६ ।।

तत्र स्नात्वा नरो याति विष्णुलोकं न संशयः।
ततः पश्चिमदिग्भागे यमुनायास्तटे शुभे।
शिवतीर्थमिति ख्यातं शिवलोकप्रदायकम् ।। २७।।

ऋषिकुण्डं च तत्रैव सर्वपापक्षयङ्करम्।
तत्र स्नात्वा नरो याति शिवलोकं न संशयः ।। २८।।

तस्य वामप्रदेशे हि शरभङ्गस्य तीर्थकम्।
तत्र स्नात्वा दिवं याति यावदाभूतसम्प्लवम् ।। २९।।

ततः शरद्वयेऽत्यर्थं वासिष्ठं तीर्थमुत्तमम्।
यत्राऽऽयाति नदश्रेष्ठो ब्रह्मेति परिकीर्तितः ।। ३०।।

वसिष्ठेश्वरस्तु तत्रैव शिवः परमसुन्दरः।
तत ऊर्ध्वं पर्वते वै सप्तधाराः पतन्ति हि ।। ३१।।

तासां संस्पर्शनादेव यमलोकं न गच्छति।
इति ते कथितं गुह्यं पीठं परमकं पितुः ।। ३२।।

नित्यं सन्निहितो यत्र देव्या सह सदाशिवः।
इदं क्षेत्रस्य माहात्म्यं यः शृणोति पठेदपि।
स याति परमांल्लोकान् यत्र गत्वा न शोचति ।। ३३।।

इति श्रीस्कन्दपुराणे केदारखण्डे योनितीर्थमाहात्म्य-
वर्णनं नाम द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः।

त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

हिमवद्दक्षिणप्रदेशे सुरकूटगिरौ सुरेश्वरीमाहात्म्य-
वर्णनपुरस्सरं कालिकाया वर्णनम्

नारद उवाच-

हिमवद्दक्षिणे भागे यानि पीठानि सन्ति हि।
तानि सर्वाणि भगवन् देव विस्तरतो वद ।। १।।

केषु सर्वेण भावेन शर्वेण सह पार्वती।
निरन्तरं प्रवसते तद्गदस्व महामुने ।। २।।

वहां स्नान करके मनुष्य निस्सन्देह विष्णुलोक में जाता है। वहां से पश्चिमी दिशा में यमुना के शुभ तट पर शिवलोक को प्रदान करने वाला प्रसिद्ध शिवतीर्थ है ।।२७।।

वहीं पर सब पापों को नष्ट करने वाला ऋषिकुण्ड है। उसमें स्नान करने से मनुष्य निस्सन्देह शिवलोक को जाता है ।। २८।।

उस शिवतीर्थ के बांये प्रदेश में शरभङ्ग का तीर्थ है। उसमें स्नान करके मनुष्य प्रलय पर्यन्त स्वर्गलोक में जाता है ।। २९।।

उस शरभंग तीर्थ से दो शरविक्षेप दूर उत्तम वसिष्ठ तीर्थ है। वहाँ ब्रह्मनद नाम से प्रसिद्ध श्रेष्ठ नद आता है ।। ३०।।

वहां वसिष्ठेश्वर नाम से प्रसिद्ध परम सुन्दर शिव रहते हैं। उससे ऊपर पर्वत पर सात धारायें गिरती हैं ।। ३१।।

उनका स्पर्श करने मात्र से मनुष्य यमलोक को नहीं जाता। इस प्रकार मैंने तुम्हारे पिता के (ब्रह्मा) परम पवित्र गुप्त पीठ का वृत्तान्त कह दिया है ।। ३२।।

यहां देवी पार्वती के साथ सदाशिव नित्य सन्निहित रहते हैं। इस क्षेत्र के माहात्म्य को जो भी सुनता है और पाठ करता है, वह उन परम लोकों में जाता है, जहां जाकर शोक नहीं रहता ।। ३३।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखंड में योनितीर्थमाहात्म्य वर्णन नाम का १३२ वां अध्याय पूरा हुआ ।।

अध्याय-१३३

हिमालय के दक्षिण प्रदेश में सुरकूट पर्वत पर सुरेश्वरी के माहात्म्य का वर्णन और कालिका देवी का वर्णन

नारद ने कहा-

हे भगवन् देव स्कन्द! हिमालय के दक्षिण भाग में जो पीठ हैं, उन सबका वर्णन विस्तार से करिये ।। १।।

हे महामुने ! किन पीठों में पार्वती सब भावनाओं से युक्त शिव के साथ निरन्तर प्रवास करती है, यह बताइये ।। २।।

घोरे कलियुगे तत्र नराः पुण्यविवर्जिताः।
स्वप्नेऽपि तेषां सिद्धिर्हि दुर्लभा नाऽत्र संशयः ।। ३।।

कथं तेषां गतिर्देव काम्यसिद्धिश्च षण्मुख।
केदारमण्डलेऽन्यानि देवीक्षेत्राणि मे वद ।। ४।।

येषां स्वल्पप्रयासेन सुखिनः स्युर्नरा विभो।
येषां सन्दर्शनादेव पापराशिर्विनश्यति ।। ५।।

तानि मे शंस भगवन्नगोप्यं ब्रह्मबन्धुषु।
शृण्वतस्ते मुखाम्भोजात्तृप्तिर्मे जायते न हि।। ६।।

स्कन्द उवाच-

साधु साधु द्विजश्रेष्ठ यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽनघ।
सर्वं ते कथयिष्यामि सावधानोऽवधारय ।। ७।।

पृथिव्यां यानि तीर्थानि तत्र स्नात्वाऽत्र सम्भवेत्।
कर्माऽत्र सुकृतं कृत्वा परब्रह्माधिगच्छति ।। ८।।

स्वर्गभूमिरियं ख्याता यतस्तत्सरणिस्तथा।
अत्र वै वासमात्रेण लभते परमं पदम् ।। ९।।

शृण्वत्र परमं पीठं सद्यः प्रत्ययकारकम्।
गङ्गायाः पश्चिमे भागे सुरकूटगिरिः स्थितः ।। १०।।

तत्र सुरेश्वरी नाम्नी सर्वसिद्धिप्रदायिनी।
यस्याः सन्दर्शनादेव शिवलोके महीयते ।। ११।।

शार्दूलोपरि संरूढा भ्रमते तद्वने परा।
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां चार्द्धरात्रिके।
सर्वे देवाः समायान्ति दर्शनार्थं महामते ।। १२।।

तथा बहुविधा शब्दाः श्रूयन्ते पुण्यकृज्जनैः।
नृत्यन्त्यप्सरसस्तत्र गीतं कुर्वन्ति गीतिनः ।। १३।।

घोर कलियुग में पुण्य से रहित मनुष्यों को स्वप्न में भी सिद्धि मिलना दुर्लभ है, इसमें सन्देह नहीं है ।। ३।।

हे छः मुखों वाले देव स्कन्द ! किस प्रकार की उन मनुष्यों को गति मिलती है और उनकी कामनायें सिद्ध होती हैं ? केदारमण्डल में अन्य देवी-क्षेत्रों को मुझको बताइये।।४।।

हे विभो स्कन्द ! जिस प्रकार से कि मनुष्य स्वल्प प्रयासों से ही सुखी हो सकें तथा जिन पीठों के दर्शन मात्र से ही पापों की राशि नष्ट हो जाती है..... ।। ५।।

हे भगवन् ! ब्राह्मणों के बन्धुओं से न छिपाने योग्य उन पीठों का वृत्तान्त मुझसे कहिये। तुम्हारे मुखरूपी कमल से सुनते हुये मुझको तृप्ति नहीं हो रही ।। ६।।

स्कन्द ने कहा-

हे निष्पाप श्रेष्ठ ब्राह्मण नारद ! साधु, साधु। जो कुछ तुमने पूछा है, वह सब मैं तुमसे कहूंगा। सावधान होकर सुनो ।। ७।।

पृथिवी पर जितने तीर्थ हैं, वहां स्नान करके मनुष्य इस संसार में पुनः उत्पन्न हो सकता है। परन्तु इन तीर्थों में पुण्य कर्म करके मनुष्य परब्रह्म को प्राप्त करता है ।।८।।

इस भूमि को स्वर्ग भूमि कहा जाता है, क्योंकि यहां से उस स्वर्ग का मार्ग है। यहां निवास करने मात्र से मनुष्य परम पद को प्राप्त करता है ।। ९।।

तुरन्त ज्ञान प्राप्त कराने वाले यहां के परम पवित्र पीठ का वर्णन सुनो। गङ्गा के पश्चिम प्रदेश में सुरकूट नाम का पर्वत स्थित है ।। १०।।

वहां सब सिद्धियों को देने वाली सुरेश्वरी नाम की देवी हैं। उनके दर्शन करने ही मनुष्य शिवलोक में जाकर महिमा को प्राप्त करता है ।। ११।।

वे परम देवी सिंह पर आरूढ होकर अष्टमी, नवमी और चतुर्दशी की आधी रात में उस वन में भ्रमण करती हैं । हे महामते ! उनका दर्शन करने के लिये सब देवता आते हैं ।। १२।।

वहां पुण्य कर्म करने वाले लोगों को अनेक प्रकार के शब्द सुनाई देते हैं। वहां अप्सरायें नृत्य करती हैं और गीत गाने वाले (गन्धर्व) गीत गाते हैं ।। १३।।

सुरेश्वरी समुद्दिष्टा कुष्ठादिगदनाशिनी।
सुरकूटे गिरौ विप्र या या धारा पतन्ति हि।
ताः सर्वाः सदृशा ज्ञेया गङ्गाया नाऽत्र संशयः ।। १४।।

एकाकी यस्तत्र गच्छेत्संसारपरमास्थितः।
स्वयं वा म्रियते तत्र निःसन्तानोऽथवा भवेत् ।। १५।।

तस्मादस्मिन्वरे पीठे सद्यः प्रत्ययकारके।
जितेन्द्रियः सत्यवचाः प्रगच्छेन्मानवर्जितः ।। १६।।

एतत्पीठसमं पीठं त्रैलौक्ये न हि विद्यते।
यस्त्वत्र जापी विप्रेश त्रिरात्रं नियतेन्द्रियः।
प्राप्नोति परमां सिद्धिं सत्यमेव न संशयः ।। १७।।

तस्मिन्नेव महाभाग तथा शौचविवर्जितः।
गच्छति ब्राह्मणश्रेष्ठ पुनरावर्त्तते गृहे ।। १८।।

तस्या वै पश्चिमे भागे कालिका नाम विश्रुता।
यस्य तद्दर्शनं विप्र जायते स मृतिं स्मरेत् ।। १९।।

सिंहव्याघ्राश्च महिषा भल्लूका वनकुक्कुटाः।
वसन्ति तत्र पीठे हि ज्ञेया दुर्जनभीषकाः ।। २०।।

तत्तद्रूपं समास्थाय गणास्ते नाऽत्र संशयः।
निवारयन्ति दुष्टान्वै स्त्रीसुरद्वेषिणस्तथा ।। २१।।

देवीभक्तिं व्यक्तिक्रम्येतरदेवमुपासते।
ब्राह्मणेतरवर्णाश्च सुरया रहिता मुने ।। २२।।

ब्राह्मणेन न कर्तव्यं सुरापानं कदापि वै।
यो मोहादपि चाज्ञानात् सुरापानं करोति वै।
देवीशापमवाप्नोति परत्र नरके व्रजेत् ।। २३।।

यत्र चाऽऽवश्यकं कर्म सुरया विप्रसत्तम।
तत्र मिथ्या वदेद्धीमान् दुग्धे वा लवणं क्षिपेत् ।। २४।।

सुरेश्वरीं महादेवीं वासवो वृत्रसूदनः।
आराधयामास हरी राज्यभ्रष्टो महामते ।। २५।।

सुरेश्वरी देवी को कुष्ठ आदि रोगों को नष्ट करने वाली कहा गया है। हे विप्र नारद ! सुरकूट पर्वत पर जो जो धारायें गिरती हैं, उन सबको गङ्गा के समान जानना चाहिये। इसमें संशय नहीं है ।। १४ ।।

जो मनुष्य इस संसार में आसक्त होकर अकेला वहां जाता है, वह मानो स्वयं मर जाता है, अथवा सन्तानरहित होता है ।। १५ ।।

अत: तत्काल ज्ञान प्रदान करने वाले इस श्रेष्ठ पीठ में इन्द्रियों को जीतकर, सत्यवादी होकर और अभिमान को छोड़कर जावे ।। १६ ।।

इस पीठ के समान पीठ तीनों लोकों में नहीं है। हे विप्रेश नारद ! जो मनुष्य इन्द्रियों को नियन्त्रित कर तीन रातों तक यहां जप करता है, वह सत्य ही परम सिद्धि को प्राप्त करता है। इसमें संशय नहीं है ।। १७ ।।

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ महाभाग नारद ! उसी स्थान पर यदि कोई पवित्रता से रहित होकर जाता है, तो उसको पुन: घर लौटना पड़ता है ।। १८ ।।

उस सुरकूट पर्वत के ही पश्चिम भाग में कालिका देवी है, यह प्रसिद्ध है। हे विप्र ! जिसको उसका दर्शन हो जाता है, वह अपने मरण को ही स्मरण करता है ।।१९ ।।

इस पीठ के क्षेत्र में दुर्जनों को डराने वाले सिंह, बाघ, भैंसे, भालू और जंगली मुर्गे रहते हैं, यह जानना चाहिये ।। २० ।।

वे गण यहां उस-उस रूप को धारण करके दुष्टों का और स्त्री एवं देवताओं से द्वेष करने वालों का निवारण करते हैं, इसमें सशंय नहीं है ।। २१ ।।

यहां कुछ लोग देवी के प्रति भक्ति का उल्लंघन करके अन्य देवता की उपासना करते हैं। हे मुने ! यहां ब्राह्मणेतर वर्णों को भी सुरा (शराब) से रहित रहना चाहिये ।।२२ ।।

ब्राह्मण को कभी भी सुरापान नहीं करना चाहिये। जो व्यक्ति यहां मोह से अथवा अज्ञान से भी सुरापान करता है, वह देवी के शाप को पाता है और परलोक में नरक में आता है।। २३ ।।

हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! यदि किसी कर्म में सुरा आवश्यक भी हो, तो बुद्धिमान् को वहां मिथ्या बोल देना चाहिये, अथवा दूध में नमक डाल देना चाहिये ।। २४ ।।

हे महामते नारद ! वृत्रहन्ता वासव इन्द्र ने राज्य से भ्रष्ट होकर सुरेश्वरी महादेवी की आराधना की थी ।। २५ ।।

तत: सुरेश्वरी ख्याता सर्वापत्तिविनाशिनी।
तत्रैव शिवलिङ्गं वै सुरेश्वरमिति स्फुटम् ।। २६।।

इति श्रीस्कांदे केदारखंडे सुरेश्वरीमाहात्म्यवर्णनं
नाम त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्याय: ।।

चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्याय:

चन्द्रवंश्यरजिनृपाख्यानम्

दैत्यपराजितशक्रप्रार्थनया रजिनाऽसुरद्रावणं स्वर्गराज्योद्धारश्च

नारद उवाच-

राज्यभ्रष्ट: कथं जात: शक्रो देवपतिर्विभो।
कथं राज्यं च सम्प्राप्तं तत्र सम्पूज्य चेश्वरीम् ।। १।।

स्कन्द उवाच-

पुरा रजिर्महाराजश्चन्द्रान्वयसमुद्भव:।
पृथिव्या: सागरान्ताया: पतिरासीन्महामते ।। २।।

कन्दर्प इव रूपाढ्यो दाने वै बलिनोपम:।
कालदण्ड इवासीत्स सङ्गरे नियत: शुचि: ।। ३।।

पालयामास धर्मेण प्रजा: पुत्रानिवौरसान्।
नाकालमरणं राज्ये तस्य राज्ञो बभूव ह ।। ४।।

कालवर्षी च पर्जन्य: औषध्य: फलपूजिता:।
एवं शासति पृथ्वीन्द्रे रजौ राजनि नारद।
दैवतै: सह सङ्ग्रामो दैत्यानामभवन्मुने ।। ५।।

दैत्यैरिन्द्रो निजस्थानाच्चालितो द्विजपुङ्गव।
जगाम शरणं तस्य रजिराज्ञो महात्मन:।
उवाच वचनं चेदं प्रार्थयन्बहुशस्तदा ।। ६।।

रजे राज्यं हि देवानां हृतं दैत्यैर्महामते।
साहाय्यं मे महाबाहो कर्त्तुमर्हसि मानद ।। ७।।

तदनन्तर सब आपत्तियों का विनाश करने वाली वह देवी सुरेश्वरी नाम से प्रसिद्ध हुई। वहीं पर सुरेश्वर नाम का लिंग प्रकट दृष्टिगोचर होता है ।। २६।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखंड में सुरेश्वरीमाहात्म्यवर्णन
नाम का १३३वां अध्याय पूरा हुआ।।

अध्याय-१३४

चन्द्रवंशी राजा रजि का उपाख्यान

दैत्यों से पराजित इन्द्र की प्रार्थना पर रजि द्वारा असुरों को भगा देना और स्वर्ग के राज्य का उद्धार करना

नारद ने कहा-

हे विभो ! देवताओं के पति इन्द्र राज्य से भ्रष्ट कैसे हो गये? वहां सुरेश्वरी देवी का पूजन करके उन्होंने राज्य को किस प्रकार प्राप्त किया ।। १।।

स्कन्द ने कहा-

हे महामते नारद ! प्राचीन समय में चन्द्रवंश में उत्पन्न तथा समुद्रों पर्यन्त पृथिवी के स्वामी रजि नाम के महाराजा थे ।। २।।

वे सौन्दर्य में कामदेव के समान और दान देने में बलि के समान थे। नियम का पालन करने वाले और पवित्र वे राजा युद्ध में कालदण्ड के समान थे ।। ३।।

वे धर्म का पालन करते हुये प्रजा का औरस पुत्रों के समान पालन करते थे। उस राजा के राज्य में अकाल-मृत्यु नहीं होती थीं ।। ४।।

हे नारद ! इस प्रकार उस रजि नामक राजा के शासन करने पर समय पर वर्षा होती थी और वनस्पतियां फलों से भरती थीं। हे मुने! एक बार देवताओं के साथ दैत्यों का युद्ध हुआ ।। ५।।

हे द्विजश्रेष्ठ ! दैत्यों ने इन्द्र को अपने स्थान से च्युत कर दिया। तब वह इन्द्र उस महात्मा राजा रजि की शरण में गया। बहुत बार प्रार्थना करते हुये उसने रजि से यह वचन कहा ।। ६।।

हे महामते रजे ! देवताओं का राज्य दैत्यों ने छीन दिया है। शत्रुओं के अभिमान को खण्डित करने वाले हे महाबाहो ! तुम्हें मेरी सहायता करनी चाहिये ।। ७।।

त्वं श्रेष्ठेन्द्रपदे राजन्दैत्यानां नाशनं कुरु।
इति तद्वेदितं श्रुत्वा रजिर्नाम महायशाः।
दैत्यान्योद्धुं मनश्चक्रे स्पृहन्निन्द्रपदं महत् ।। ८।।

जगाम सहसा तत्र चतुरङ्गबलान्वितः।
युयुधे दानवैः सार्द्धं पञ्चवर्षशतं समाः ।। ९।।

हताश्च तेन दैत्येशा हतशेषा ययुस्तलम्।
पदं जिगमिषू राजा रजिर्नाम दिवस्पतेः ।। १०।।

विज्ञापितो महाराजो बद्धाञ्जलिपुटेन हि।
वासवेन महाभाग बहुशो धरणीहरिः ।। ११।।

पुत्रोऽहं तव भूमीन्द्र मां राज्ये ह्यभिषेचय।
जनको व्रतदश्चैव विद्यादाता तु यो भवेत् ।। १२।।

यस्याऽन्नं भुज्यते नित्यं भयेभ्यो यश्च रक्षति।
पञ्चैते पितरः प्रोक्तास्तेषां त्वं पञ्चमो ह्यसि ।। १३।।

इति तद्वचनं श्रुत्वा करुणं करुणानिधिः।
तमेव स्थापयामास देवेन्द्रमतिनम्रकम् ।। १४।।

एवं बहुतिथे काले व्यतीते दैवतेश्वरे।
दिवं शशास विप्रेश रजिर्वृद्धो बभूव ह ।। १५।।

रजेः पञ्चशतं पुत्रा ह्यासन्नप्रभवो मुने।
रजिर्ययौ हिमवति तपसे धृतमानसः ।। १६।।

ते वै पञ्चशतं पुत्रा इन्द्रराज्ये मनो दधुः।
ऊचुश्च वासवं ते वै पित्राऽस्माकं जितं पुरा ।। १७।।

स्वर्गाधिपत्यं देवेश प्रयच्छेति हि नः परम्।
इति तेषां दूतमुखाच्छ्रुत्वा पौरुषमाशु वै।
आदिदेश तदा युद्धं राज्योन्मादो[1] हि वासवः ।। १८।।

युद्धोद्योगं तेऽपि श्रुत्वा सन्नद्धा वै समाययुः।
यत्रेन्द्रो भगवानिन्द्रः सर्वदेवैरनुष्ठितः ।। १९।।

---

१. मत्तो

हे राजन् ! तुम श्रेष्ठ इन्द्र के पद पर रहकर दैत्यों का नाश करो। इस प्रकार इन्द्र के उस निवेदन को सुन कर महायशस्वी रजि ने इन्द्र के महान् पद की आकांक्षा करते हुये दैत्यों से युद्ध करने का मन बनाया ।। ८।।

चतुरंगिणी सेना से युक्त वह राजा रजि सहसा वहां गया और उसने ५०० वर्षों तक दैत्यों के साथ युद्ध किया ।। ९।।

उसने दैत्य सेनापतियों को मार डाला। जो मरने से बच गये, वे पाताल में चले गये। तब जबकि राजा रजि इन्द्र के पद को प्राप्त करने की इच्छा कर रहा था.।। १०।।

हे महाभाग नारद ! तब अंजलि को जोड़कर इन्द्र ने पृथिवी के हरि रजि महाराज से बार बार निवेदन किया ।। ११।।

हे पृथिवी के राजा रजे ! मैं तुम्हारा पुत्र हूं। मुझको अपने राज्य में अभिषिक्त कर दो। जो उत्पन्न करने वाला, व्रत को देने वाला और विद्या को देने वाला है........।।१२।।

जिसके अन्न का नित्य उपभोग किया जाता है और जो भय से रक्षा करता है, ये पांच प्रकार के व्यक्ति पिता ही कहलाते हैं। तुम इनमें से पांचवें हो ।। १३।।

इस प्रकार इन्द्र के करुण वचन को सुनकर करुणा के निधि राजा रजि ने अति विनम्र उस देवराज इन्द्र को ही स्वर्ग के राज्य में स्थापित कर दिया ।। १४।।

हे विप्रेश नारद ! इस प्रकार बहुत समय व्यतीत होने पर देवराज इन्द्र जबकि स्वर्ग पर शासन कर रहे थे, रजि वृद्ध हो गया ।। १५।।

हे मुने नारद ! रजि के पांच सौ सामर्थ्यशाली पुत्र थे। मन में वैराग्य धारण करके रजि तपस्या करने के लिये हिमाचल पर चला गया ।। १६।।

रजि के वे ५०० पुत्र इन्द्र के राज्य पर मन रखने लगे। उन्होंने वासव इन्द्र से कहा कि पहले हमारे पिता ने यह राज्य जीता था ।। १७।।

हे देवराज ! स्वर्ग के इस श्रेष्ठ राज्य को हमें दे दो। उन रजि-पुत्रों के इस वचन को दूतों के मुख से सुनकर तुरन्त पराक्रम को प्राप्त हुये राज्य के मद से उन्मत्त वासव इन्द्र ने युद्ध करने का आदेश दिया ।। १८।।

इन्द्र के युद्ध के उद्योग को सुनकर वे रजिपुत्र भी युद्ध के लिये सन्नद्ध होकर वहां आ गये, जहां सब देवताओं से घिरे हुये भगवान् इन्द्र विद्यमान थे ।। १९।।

इन्द्रोऽपि दैवतैः सार्द्धं युद्धायाऽऽशु समाययौ ।।
युयुधुः सङ्गरे तत्र रजिपुत्रास्तथाऽमराः ।। २० ।।

प्रबलै रजिपुत्रैश्च जितो वृत्रनिषूदनः ।
राज्यभ्रष्टो ययौ क्षीरसमुद्रान्तर्जलाशये ।। २१ ।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे सुरेश्वरीमाहात्म्ये इन्द्रपराजयो नाम चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।

पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

रजिनृपसुतपराभूतस्य देवेन्द्रस्य विष्णवाराधनाय सुरगुरूपदेशः, देवेन्द्रस्तुतिपरमतुष्टविष्णोर्वचनतो हिमवति जगदम्बाराधनाय शक्रगमनम्

स्कन्द उवाच-

इन्द्रोऽपि तत्र गत्वा हि क्षीराब्धेर्द्वीप उत्तमे ।
सरोवरान्तरे पद्मकर्णिकायां विवेश ह ।। १ ।।

सन्त्रस्तो रजिपुत्रैः स उद्भटैरुरुविक्रमैः ।
एवं बहुतिथे काले याते देवगुरुः स्वयम् ।। २ ।।

जगाम यत्र देवेशो भयलीनोऽब्जकोटरे ।
तत्र गत्वा गुरुर्विप्र वासवं प्रजगाद ह ।। ३ ।।

वासव क्व गतोऽसि त्वमित्युच्चैर्वचसां पतिः ।
पुनः पुनरुवाचेदं तत्र द्वीपेऽब्धिमध्यगे ।। ४ ।।

ज्ञात्वा बृहस्पतिं तत्र ह्यागतं मुनिसत्तम ।
मन्दमन्दमुवाचेदं कर्णिकायामिहाऽस्मि वै ।। ५ ।।

रजिपुत्रभयाक्रान्तो न बहिर्गन्तुमुत्सहे ।
इति तद्भाषितं श्रुत्वा वासवस्य गुरुः पुनः ।।
उवाचेदं महादेव बहिरागन्तुमर्हसि ।। ६ ।।

इन्द्र भी देवताओं को साथ लेकर शीघ्र युद्ध के लिये आ गया। वहां युद्ध क्षेत्र में रजिपुत्रों और देवताओं ने युद्ध किया ।। २०।।

प्रबल रजिपुत्रों ने वृत्रहन्ता इन्द्र को जीत लिया। राज्य से भ्रष्ट होकर इन्द्र क्षीरसागर के अन्दर जलाशय में चला गया ।। २१।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में सुरेश्वरी-माहात्म्य प्रकरण में इन्द्रपराजय नाम का १३४ वां अध्याय पूरा हुआ।।

अध्याय-१३५

राजा रजि के पुत्रों से पराजित होकर देवराज इन्द्र को देवगुरु बृहस्पति द्वारा विष्णु की आराधना करने के लिये उपदेश देना, देवराज की स्तुति से परम सन्तुष्ट विष्णु के कहने से जगदम्बा की आराधना करने के लिये इन्द्र का हिमालय पर जाना

स्कन्द ने कहा-

इन्द्र भी वहां क्षीरसागर के उत्तम द्वीप में जाकर सरोवर के मध्य में कमल के बीजकोष (कर्णिका) के भीतर प्रविष्ट हो गया ।। १।।

वह महान् पराक्रमी उद्भट रजि के पुत्रों से डरा हुआ था। इस प्रकार बहुत समय व्यतीत हो जाने पर स्वयं देवगुरु बृहस्पति......... ।। २।।

वहां गये, जहांकि भय के कारण देवराज इन्द्र कमल के कोटर में छिपे थे। वहां जाकर, हे विप्र नारद ! देवगुरु ने इन्द्र से कहा ।। ३।।

वाणियों के स्वामी बृहस्पति ने उच्च स्वर से कहा-"हे इन्द्र ! तुम कहां चले गये हो?" इस प्रकार से उन्होंने समुद्र के मध्य स्थित द्वीप में पुनः पुनः कहा ।। ४।।

हे मुनिश्रेष्ठ नारद ! बृहस्पति को वहां आया जान कर इन्द्र ने धीरे-धीरे यह कहा कि मैं यहां कमल की कर्णिका (बीजकोष) में हूं ।। ५।।

रजि के पुत्रों के भय से आक्रान्त होकर बाहर आने का साहस नहीं कर रहा। इन्द्र के इस कथन को सुनकर गुरु बृहस्पति ने कहा- हे महादेव इन्द्र ! तुम बाहर आओ ।।६।।

अहं तव प्रियं वच्मि यथा तेऽधिपता भवेत्।
ततो मनोहरा वाचो गुरोः श्रुत्वा दिवस्पतिः।
आजगाम बहिस्तूर्णं प्रपपात पदोस्तथा ।। ७।।

तमुत्थाप्य देवराजं वाचस्पतिरुदारधीः।
उवाच वचनं चेदं विष्णुं भज महामते ।। ८।।

स ते राज्याप्तये नूनं हितं तव वदिष्यति।
इत्युक्तः सहसा जिष्णुर्विष्णुं स्तोतुं प्रचक्रमे ।। ९।।

इन्द्र उवाच-

नमः सहस्रशीर्षाय सहस्रपादे नमोनमः।
सहस्राक्षाय देवाय भूमिं स्पृष्ट्वा तिष्ठते ।। १०।।

नमो देवाधिदेवाय यदूनां पतये नमः।
देवकीगर्भवासाय वासुदेवाय ते नमः ।। ११।।

नमो मत्स्यस्वरूपाय कूर्मरूपाय ते नमः।
नमः कोलस्वरूपाय हिरण्याक्षविमर्दिने ।। १२।।

नरसिंहस्वरूपाय दैत्योरःस्थलपाटिने।
नमो वामनरूपाय बलिं छलयते नमः।
जामदग्न्यस्वरूपाय क्षत्रियान्तकृते नमः ।। १३।।

नमः पौलस्त्यनाशाय नमस्ते रामरूपिणे।
बलभद्रस्वरूपाय प्रलम्बनिधनाय ते ।। १४।।

नमो बदरिवासाय नमस्ते शुद्धरूपिणे।
नमो म्लेच्छप्रहर्त्रे ते कल्किरूपाय ते नमः ।। १५।।

हयग्रीवाय देवाय देवानां पतये नमः।
सृष्टिकर्त्रे नमस्तुभ्यं सृष्टिं पालयते नमः ।। १६।।

नमस्तुभ्यं सृष्टिहर्त्रे वेदगम्याय ते नमः।
वेदान्तप्रतिपाद्याय बुधानां बुद्धिदायिने ।। १७।।

नमः किञ्जल्कवासाय जगद्वासाय ते नमः।
नमो नीरदघोषाय नमो नीरदरूपिणे ।। १८।।

मैं तुमसे वह प्रिय बात कहता हूँ, जिससे कि तुमको पुन: राज्य मिल जावे। तदनन्तर गुरु की मनोहर वाणी को सुन कर इन्द्र शीघ्र ही बाहर आ गया और तुरन्त उनके पैरों पर गिर पड़ा ।। ७।।

उस देवराज इन्द्र को उठाकर उदार बुद्धि वाले बृहस्पति ने यह वचन कहा- "हे महामते ! विष्णु का भजन करो ।। ८।।

वह तुमको राज्य की प्राप्ति के लिये निश्चय से हितकारी बात कहेंगे"। यह कहने पर इन्द्र ने सहसा विष्णु की स्तुति करना प्रारम्भ कर दिया ।। ९।।

इन्द्र ने कहा-

सहस्र सिरों वाले तुमको नमस्कार है, सहस्र पैरों वाले तुमको नमस्कार है, सहस्र आंखों वाले देव! तुमको नमस्कार है। तुम भूमि का स्पर्श करके स्थित रहते हो ।।१०।।

देवताओं के भी देव तुमको नमस्कार है। यदुवंश के स्वामी तुमको नमस्कार है। देवकी के गर्भ में निवास करने वाले वासुदेव तुमको नमस्कार है ।। ११।।

मत्स्य का अवतार धारण करने वाले तुमको नमस्कार है। कूर्म अवतार धारण करने वाले तुमको नमस्कार है। कोल (वराह) अवतार धारण करने वाले तुमको नमस्कार है। हिरण्याक्ष का वध करने वाले तुमको नमस्कार है ।। १२।।

दैत्य हिरण्यकशिपु का वक्ष:स्थल विदीर्ण करने के लिये नरसिंह स्वरूप धारण करने वाले तुमको नमस्कार है। वामन रूप धारण करने वाले तुमको नमस्कार है। बलि को छलने वाले तुमको नमस्कार है। क्षत्रियों का अन्त करने के लिये परशुराम का अवतार लेने वाले तुमको नमस्कार है ।। १३।।

पुलस्त्य-पुत्र रावण का वध करने के लिये राम अवतार लेने वाले तुमको नमस्कार है। प्रलम्ब असुर का वध करने के लिये बलराम का अवतार लेने वाले तुमको नमस्कार है ।। १४।।

बदरीविशाल में निवास करने वाले तुमको नमस्कार है। शुद्ध रूप वाले तुमको नमस्कार है। म्लेच्छों का विनाश करने के लिये कल्कि अवतार लेने वाले तुमको नमस्कार है ।। १५।।

हयग्रीव का वध करने वाले तुम देव को नमस्कार है। देवताओं के स्वामी तुमको नमस्कार है। सृष्टि की रचना करने वाले तुमको नमस्कार है। सृष्टि का पालन करने वाले तुमको नमस्कार है ।। १६।।

सृष्टि का संहार करने वाले तुमको नमस्कार है। वेदों से जानने योग्य तुमको नमस्कार है। वेदान्त (उपनिषद्) से प्रतिपादित तुमको नमस्कार है। विद्वानों को बुद्धि देने वाले तुमको नमस्कार है ।। १७।।

कमलों के केसर में निवास करने वाले तुमको नमस्कार है। जगत् में व्याप्त रहने वाले तुमको नमस्कार है। मेघ के समान ध्वनि वाले तुमको नमस्कार है। मेघ के समान रूप (वर्ण) वाले तुमको नमस्कार है ।। १८।।

निरञ्जनाय शुद्धाय निर्विकाराय ते नमः।
नमो वेदस्वरूपाय वेदवन्द्याय ते नमः ।। १९।।

नमस्ते कमलाकान्त विश्वाधार नमोऽस्तु ते।
नमः पीतसमुद्राय पीतवासाय ते नमः ।। २०।।

वनमालाविशोभाय नमः कोटीनतेजसे।
नमः प्रचलनेत्राय नारायण नमोऽस्तु ते।
लक्ष्मीपते नमस्तुभ्यं सर्वशत्रुनिषूदिने ।। २१।।

स्कन्द उवाच-

इति स्तुतः स भगवानाविरासीन्महामते।
कोटिसूर्यप्रतीकाशो युगांन्ताग्निविलोचनः।। २२।।

सनकादिमुनीन्द्रैश्च सेव्यमानो रमापतिः।
गरुडाचलमारूढो नवनीरदरूपधृक् ।। २३।।

पीतवासाश्चतुर्बाहुः शङ्खचक्राम्बुजैर्यतः।
मेघगम्भीरया वाचा जगाद बलसूदनम् ।। २४।।

श्रीभगवानुवाच-

बलाराते च हृदये यदस्ति तद् भविष्यति।
माया या परामाया च श्रीमदभगवती परा ।। २५।।

तयैव सृज्यते सर्वं जगदेतच्चराचरम्।
सैव पालयते देवी सैव नाशयतेतराम् ।। २६।।

तयैव मोहितो जन्तुर्ब्रह्माणं सृजकं तथा।
पालकं मां च जानाति नाशकं रुद्रसञ्ज्ञितम् ।। २७।।

एताभिः सर्वमूर्तीभिर्जगत्पालयते परा।
चौरराजाग्निरूपेण दुनोति च तथा त्रयम् ।। २८।।

वर्षते मेघरूपेण तपते सूर्यरूपतः।
शोषते वायुरूपेग क्लेदते जलरूपतः ।। २९।।

सैव सर्वङ्करी देवी तां भजस्व भयापहाम्।
नारायणीं हिमवतः[1] शुभे केदारमण्डले ।। ३०।।

१. हिमवतो

रूपरहित, शुद्ध और निर्विकार तुमको नमस्कार है। वेदस्वरूप तुमको नमस्कार है। वेदों से वन्दित तुमको नमस्कार है ।। १९ ।।

कमला (लक्ष्मी) के पति तुमको नमस्कार है। विश्व के आधार तुमको नमस्कार है। समुद्र का पान करने वाले अगस्त्यरूप तुमको नमस्कार है। पीले वस्त्र पहनने वाले तुमको नमस्कार है ।। २० ।।

वनमाला से शोभित रहने वाले तुमको नमस्कार है। करोड़ों सूर्यो के समान तेज वाले तुमको नमस्कार है। चंचल नेत्रों वाले तुमको नमस्कार है। हे नारायण ! तुमको नमस्कार है। हे लक्ष्मी के स्वामिन् ! तुमको नमस्कार है। सब शत्रुओं का विनाश करने वाले तुमको नमस्कार है ।। २१ ।।

स्कन्द ने कहा-

हे महामते नारद ! इस प्रकार स्तुति करने पर वे भगवान् विष्णु आविर्भूत हो गये। वे करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान थे। उनकी आंखें प्रलयकालीन अग्नि के समान उज्ज्वल थीं ।। २२ ।।

लक्ष्मी के पति उन विष्णु की सेवा सनक आदि मुनि कर रहे थे। वे गरुड़ पर आरूढ थे और नवीन मेघ के समान रूप को धारण किये हुये थे ।। २३ ।।

वे पीला वस्त्र पहने हुये तथा चार भुजाओं वाले थे। उन्होंने हाथों में शंख-चक्र-कमल को धारण कर रखा था। उन्होंने मेघ के समान गम्भीर वाणी से बलासुर निहन्ता इन्द्र से कहा ।। २४ ।।

श्री भगवान् ने कहा-

हे बलारि इन्द्र ! जो तुम्हारे हृदय में है, वह पूरा होगा। जो माया, परामाया अथवा परा श्रीमद्भगवती हैं....... ।। २५ ।।

वे ही इस चर-अचर जगत् की सृष्टि करती हैं। वह देवी ही इस जगत् का पालन करती हैं और वही इसका विनाश करती हैं ।। २६ ।।

उनके द्वारा मोहित होकर ही प्राणी यह समझता है कि ब्रह्मा सृष्टि की रचना करता है, मैं पालन करता हूं और रुद्र विनाश करते हैं ।। २७ ।।

अपने इन सब स्वरूपों के द्वारा वह पराभगवती इस जगत् का पालन करती है। वह चोर-राजा-अग्नि के रूप में तीनों को पीडित करती है ।। २८ ।।

वही मेघ के रूप में वर्षा करती है, सूर्य के रूप में तपाती है, वायु के रूप में सुखाती है और जल के रूप में गला देती है ।। २९ ।।

वही देवी सब कुछ करने वाली है। भय को दूर करने वाली उस नारायणी देवी का ही तुम हिमालय के शुभ केदारमण्डल में भजन करो ।। ३० ।।

गङ्गायाः पश्चिमे भागे सर्वदेवैरनुष्ठिते।
तत्र सा देवता देवसर्वकामप्रदायिनी ।। ३१।।

स्कन्द उवाच-

इति तं देवनाथं स हरिरुक्त्वा तिरोहितः।
सोऽपीन्द्रो भगवान्विप्र जगाम हिमवद्गिरौ ।। ३२।।

यत्र संनिहिताः सर्वे ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकसः।
यत्र सर्वांशभावेन जगदीशः प्रतिष्ठितः ।। ३३।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे सुरेश्वरीमाहात्म्ये कैलासगमनं
नाम पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।

षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

देवेन्द्रस्तुतिसन्तुष्टभगवतीप्रभावतो मायामोहितरजिसुतविनाशः

स्कन्द उवाच-

गङ्गायाः पश्चिमे भागे सुरकूटगिरौ हरिः।
जगाम प्रवरे धाम्नि देवगन्धर्वसेविते ।। १।।

अस्तौषीद्वाग्भिरग्र्याभिरिन्द्रो देवगृहच्युतः।
रजिपुत्रभयाक्रान्तः प्राकृतः पुरुषो यथा ।। २।।

इन्द्र उवाच-

नारायणीं नमस्यामि सृष्टिसंहारकारिणीम्।
जगदानन्दरूपां तां जगदम्बां नतोऽस्म्यहम् ।। ३।।

जगदीशीं जगद्बीजां जनयित्रीं जरातिगाम्।
जाज्वल्यमानां वपुषा नम्रपीनपयोधराम् ।। ४।।

धनदां धनदावासां भवानीं भवनाशिनीम्।
भव्यां भावप्रतीकारां गीर्वाणगणपूजिताम् ।। ५।।

गरिष्ठां गुरुपत्नीं च गुरुविद्यां गुरूत्सवाम्।
जालपां कामधेनुं च नमस्यामि सुरेश्वरीम् ।। ६।।

सब देवताओं से सेवित हिमालय के पश्चिमी भाग में वह सब देवताओं की कामनाओं को पूरा करने वाली देवी विद्यमान है ।। ३१।।

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार देवराज इन्द्र से कह कर वे विष्णु तिरोहित हो गये। हे विप्र! वे भगवान् इन्द्र भी हिमालय पर्वत पर चले गये ।। ३२।।

जहांकि ब्रह्मा आदि सब देवता सन्निहित थे और जगदीश विष्णु सम्पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित थे ।। ३३।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में सुरेश्वरीमाहात्म्य प्रकरण में कैलासगमन नाम का १३५ वां अध्याय पूरा हुआ ।।

अध्याय-१३६

देवराज इन्द्र की स्तुति से सन्तुष्ट भगवती के प्रभाव से रजिपुत्रों का माया से मोहित होकर विनाश

स्कन्द ने कहा-

गङ्गा के पश्चिमी भाग में देवों और गन्धर्वों से सेवित श्रेष्ठ धाम सुरकूट पर्वत पर इन्द्र गये ।। १।।

स्वर्ग से च्युत हुये और रजिपुत्रों के भय से आक्रान्त इन्द्र ने सामान्य पुरुष के समान उत्तम वाणियों से देवी की स्तुति की ।। २।।

इन्द्र ने कहा-

सृष्टि का संहार करने वाली नारायणी को मैं नमस्कार करता हूं। जगत् की आनन्दस्वरूप उस जगदम्बा के प्रति मैं प्रणत हूं ।। ३।।

जगत् की स्वामिनी, जगत् की बीजरूप, जगत् को उत्पन्न करने वाली, कभी वृद्धा न होने वाली, शरीर से चमकती हुई और झुके-मोटे स्तनों वाली सुरेश्वरी देवी को नमस्कार करता हूं ।। ४।।

धन देने वाली, धनद (कुबेर) को आवास देने वाली, भवानी, संसार का संहार करने वाली, भव्य, भावों के वशीभूत होने वाली और देवताओं से पूजित सुरेश्वरी देवी को नमस्कार करता हूं ।। ५।।

सबसे श्रेष्ठ, गुरु के सदा साथ रहने वाली, गुरुविद्या, गुरूत्सव, जालपा, कामधेनुरूप, सुरेश्वरी देवी को नमस्कार करता हूं ।। ६।।

प्रकृतिं पुरुषाकारां हिमालयकृतालयाम्।
निरञ्जनां निर्विकारां निर्गुणां विरुपद्रवाम् ।। ७।।

कोटिसूर्यप्रतीकाशां कोटिचन्द्राननां भजे।
धारिर्णीं धीरसेव्यां च चराचरगुरुं भजे ।। ८।।

नारदाद्यैः सेव्यमानां सहस्त्राक्षां महेश्वरीम्।
नमस्यामि महामायां जगन्मोहनकारिणीम् ।। ९।।

सरस्वतीं च सावित्रीं रुद्राणीं रुद्रवन्दिताम्।
नमस्यामि नराकारां निराकारां परेश्वरीम् ।। १०।।

स्कन्द उवाच-

इति संस्तुवतस्तस्य मायां भगवतीं पराम्।
निराकाराऽपि सहसा दर्शयामास स्वं वपुः ।। ११।।

कोटिसूर्यप्रतीकाशं चन्द्रसूर्याग्निलोचनम्।
जाज्वल्यमानं तरसा चन्द्राग्निकृतशेखरम् ।। १२।।

दिव्यसिंहसमारूढं पीनोन्नतपयोधरम्।
मणिग्रैवेयहारैश्च भूषितं परमेश्वरम् ।। १३।।

सहस्त्रबाहुसंयुक्तं सहस्त्राक्षं महाप्रभम्।
दिव्यायुधैः समायुक्तं दिव्यचन्दनभूषितम् ।। १४।।

दृष्ट्वा तत्सहसा तस्याः पादयोः प्रपपात ह।
उवाच वचनं तं च देवी देवगणार्चिता ।। १५।।

श्रीदेव्युवाच-

प्रसन्नाऽस्मि महाबाहो दुर्लभं न हि ते क्वचित्।
ध्रुवं प्राप्स्यसि स्वं राज्यं विक्रमान्नैव संशयः ।। १६।।

अहं तान्मोहयिष्यामि नयिष्यामि कुमार्गकम्।
वीर्यक्षयश्च भविता तेषां शीघ्रं दुरात्मनाम् ।। १७।।

इदं मे परमं पीठं सद्यः प्रत्ययकारकम्।
अत्र ये मां देवदेव भजिष्यन्ति महेश्वरीम् ।। १८।।

प्रकृति, पुरुष के आकार वाली, हिमालय को अपना निवास बनाने वाली, निराकार, निर्विकार, निर्गुण और उपद्रवों का नाश करने वाली सुरेश्वरी देवी को मैं नमस्कार करता हूं ।। ७।।

करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान, करोड़ों चन्द्रमाओं के समान कान्तिमान् मुखवाली, सबको धारण करने वाली, धीर मनुष्यों द्वारा सेवनीय और चर-अचर जगत् की गुरु सुरेश्वरी देवी का मैं भजन करता हूं ।। ८।।

नारद आदि ऋषियों द्वारा सेवित, सहस्र आंखों वाली, महेश्वरी, महामाया और जगत् को मोहित करने वाली सुरेश्वरी देवी को मैं नमस्कार करता हूं ।। ९।।

सरस्वती, सावित्री, रुद्राणी, रुद्रवन्दित, नराकार, निराकार, परेश्वरी, सुरेश्वरी देवी को मैं नमस्कार करता हूं ।। १०।।

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार जबकि इन्द्र उस माया परा भगवती की स्तुति कर रहे थे, उसने निराकार होते हुये भी अपने शरीर का दर्शन कराया ।। ११।।

उसका यह शरीर करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान था, तेज से जलता हुआ सा था, चन्द्र और सूर्य उसके नेत्र थे, चन्द्र और अग्नि शिरोभूषण के रूप में थे ।। १२।।

वह दिव्य सिंह पर आरूढ थी, पयोधर पीन और उन्नत थे, परम ऐश्वर्य से युक्त यह शरीर मणिजटित ग्रीवा में पड़े हारों से अलङ्कृत था ।। १३।।

वह शरीर हजारों भुजाओं से युक्त था, हजार आंखों वाला था, महती प्रभा से युक्त था, दिव्य आयुधों से युक्त था और दिव्य चन्दन से अलंकृत था ।। १४।।

उसको देखकर वह इन्द्र सहसा उसके पैरों पर गिर पड़ा। देवताओं से अर्चित देवी ने उस इन्द्र से यह वचन कहा ।। १५।।

श्री देवी ने कहा-

हे महाबाहो इन्द्र ! मैं तुमसे प्रसन्न हूं। तुम्हारे लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है। तुम अपने राज्य को पराक्रम से ही प्राप्त करोगे, इसमें संशय नहीं है ।। १६।।

मैं उन रजिपुत्रों को मोहित कर दूंगी, उनको बुरे मार्ग पर ले जाऊंगी और शीघ्र ही उन दुष्टों के पराक्रम का नाश हो जायेगा ।। १७।।

यह मेरा परम पीठ तत्काल ज्ञान उत्पन्न करने वाला होगा। हे देवराज ! यहां जो मुझ महेश्वरी का भजन करेंगे.......... ।। १८।।

अनेन स्तवराजेन त्वत्प्रोक्तेन सुरेश्वर।
कृतकृत्यो विधानाद्धि तस्य सर्वं ददाम्यहम् ।। १९ ।।

धूपदीपैश्च नैवेद्यैर्बलिभिर्मेषवर्करैः।
माहिषैश्च महाभाग सुरया च द्विजेतरः ।। २० ।।

पूजयिष्यति यो मर्त्यो राज्यं दास्यामि तस्य वै।
अपुत्रो लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ।। २१ ।।

कन्यार्थी लभते कन्यां स्वर्गार्थी स्वर्गमाप्नुयात्।
मोक्षार्थी लभते मोक्षं सर्वो धन्यतरो भवेत् ।। २२ ।।

त्वं च शीघ्रं तथा देव लभिष्यसि स्वकं पदम्।
गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ निष्कण्टं राज्यमाप्नुहि ।। २३ ।।

स्कन्द उवाच-

इत्युक्त्वा तं देवराजं तत्रैवान्तरधीयत।
सोऽपि वृत्रहरो देवो देवसैन्येन संवृतः ।। २४ ।।

मायया मोहितांस्तूर्णं कुमार्गनिरतांस्तथा।
जघान रजिपुत्रांश्च वज्रेण द्विजपुङ्गव ।। २५ ।।

प्राप स्वं परमं स्थानं सुरेश्वर्याः प्रसादतः।
इति ते कथितं[1] दिव्यं सुरेश्वर्याः प्रभावकम् ।। २६ ।।

यच्छ्रुत्वाऽपि महाभाग सकलां सिद्धिमाप्नुयात्।
इदं परमकं पीठं सुगोप्यं दुष्टजन्तुषु ।। २७ ।।

भ्रष्टराज्यो नृपस्तत्र[2] लभते स्वं पदं महत्।।
यद्यदिच्छति वै कामं तत्तत्प्राप्नोत्यसंशयम् ।। २८ ।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे श्रीसुरेश्वरीमाहात्म्ये इन्द्रस्वस्थान-
प्राप्तिवर्णनं नाम षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।

---

१. सर्वं २. नरस्

हे देवराज ! तुम्हारे द्वारा कहे गये इस उत्तम स्तोत्र से जो विधिवत् भजन करेंगे, वे कृतकृत्य होंगे और उनको मैं सब कुछ दूंगी ।। १९ ।।

धूप, दीप, नैवेद्य, बलि, भेड़ों, बकरों और भैसों से तथा हे महाभाग ! द्विजेतर लोग सुरा से ..... ।। २० ।।

इस प्रकार जो मनुष्य मेरा पूजन करेगा, उसको मैं राज्य प्रदान करूंगी। पुत्ररहित व्यक्ति मेरे पूजन से पुत्र प्राप्त करता है और धन की इच्छा करने वाला धन को प्राप्त करता है ।। २१ ।।

कन्या की इच्छा करने वाला कन्या को पाता है, स्वर्ग चाहने वाला स्वर्ग को प्राप्त करता है और मोक्ष का अभिलाषी मोक्ष को प्राप्त करता है। ये सब धन्य हो जाते हैं ।। २२ ।

हे देव ! तुम शीघ्र अपने पद को प्राप्त करोगे। हे सुरश्रेष्ठ इन्द्र! तुम जाओ और निष्कण्टक राज्य को प्राप्त करो ।। २३ ।।

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार देवराज इन्द्र से कहकर वह देवी वहीं अन्तर्धान हो गई।वृत्रहन्ता उस देवराज इन्द्र ने भी देव सेनाओं को साथ लेकर........ ।। २४ ।।

हे द्विजश्रेष्ठ नारद ! माया से मोहित और कुमार्ग पर चलने वाले रजिपुत्रों को शीघ्र ही वज्र से मार डाला ।। २५ ।।

सुरेश्वरी की कृपा से उसने अपने परम स्थान को प्राप्त किया था। इस प्रकार से मैंने तुमसे सुरेश्वरी के दिव्य प्रभाव को कह दिया है ।। २६ ।।

हे महाभाग ! इस वर्णन को सुनकर भी मनुष्य सारी सिद्धियों को प्राप्त करता है। इस परम माहात्म्यशाली पीठ को दुष्ट प्राणियों से गुप्त रखना चाहिये ।। २७ ।।

राज्य से भ्रष्ट राजा भी वहां जाकर अपने महान् पद को प्राप्त करता है। वह जिस-जिस वस्तु की कामना करता है, उस-उसको निस्सन्देह प्राप्त करता है ।। २८ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में सुरेश्वरी-
माहात्म्यप्रकरण में इन्द्र द्वारा स्वस्थानप्राप्तिवर्णन नाम का
१३६ वां अध्याय समाप्त हुआ ।।

सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मकूटगिरौ हैमवतीब्रह्मपुत्रीनदीसङ्गमे सुन्दर्यभिध-देवीपीठकथनं सुन्दरीशशिवलिङ्गवर्णनञ्च

स्कन्द उवाच-

अथाऽन्यत्ते प्रवक्ष्यामि पीठं परमदुर्लभम्।
बह्मकूटगिरौ विप्र पश्चिमोत्तरयोर्दिशि ।। १।।

सुन्दरीति च विख्यातां देवदानवसेविता।
तत्र ब्रह्मपुरी दिव्यां यत्राऽऽस्ते भगवानजः ।। २।।

आराधयामास यत्र देवीं त्रैलोक्यसुन्दरीम्।
रहस्यं परमं पीठं सद्यः प्रत्ययकारकम् ।। ३।।

सृष्टिकर्तृत्वसामर्थ्यं यत्र प्राप प्रजापतिः।
तत्र सन्निहिता नित्यमिन्द्राद्यास्त्रिदिवौकसः ।। ४।।

नमस्कारान्प्रकुर्वन्तः सृष्टिसंहारकारिणीम्।
महादेवमुखात्प्रीत्या श्रुतमेतन्महामुने ।। ५।।

तत्प्रोक्तं ते मया गुह्यं यत्र नित्यं स्थिता शिवा।
यस्या दर्शनमात्रेण नश्यन्ते पापकोटयः ।। ६।।

पूजनाद् बलिभिर्धूपैः सुरया च विशेषतः।
सन्तुष्टा सा भवेद्देवी सर्वकामप्रदायिनी ।। ७।।

यस्या दर्शनमात्रेण लभते परमं पदम्।
एतत्पीठसमं पीठं त्रैलौक्ये दुर्लभं परम्।। ८।।

ब्रह्मपुत्री नदी तत्र सर्वसौभाग्यदायिनी।
तस्यां स्नात्वा नरो याति ब्रह्मलोकं महामते ।। ९।।

सुन्दरीपूजनाद्ध्यानाल्लभते परमं पदम्।
तत्रैव शिवलिङ्गं वै सुन्दरीशमिति स्मृतम् ।। १०।।

अध्याय-१३७

ब्रह्मकूट पर्वत पर हेमवती-ब्रह्मपुत्री नदियों के सङ्गम पर सुन्दरी नाम की देवी के पीठ का वर्णन, सुन्दरीश शिव के लिङ्ग का वर्णन

स्कन्द ने कहा-

हे विप्र नारद ! अब मैं तुमको अन्य परम दुर्लभ पीठ का वृत्तान्त बताऊंगा। ब्रह्मकूट पर्वत पर पश्चिम-उत्तर दिशा में........ ।। १।।

देव-दानवों से सेवित सुन्दरी नाम से प्रसिद्ध पीठ है। वहां दिव्य ब्रह्मपुरी है, जहां भगवान् विष्णु (अज) निवास करते हैं ।। २।।

यहां उन्होंने त्रैलोक्यसुन्दरी (त्रिपुरसुन्दरी) देवी की आराधना की थी। यह परम रहस्य पीठ तत्काल ज्ञान को प्राप्त कराने वाला है ।। ३।।

जहां प्रजापति ने सृष्टि की रचना करने के सामर्थ्य को प्राप्त किया था, वहां इन्द्र आदि देवता नित्य सन्निहित रहते हैं ।। ४।।

वे सृष्टि का संहार करने वाली देवी को नमस्कार करते रहते हैं। हे महामुने नारद ! यह बात मैंने महादेव के मुख से प्रेम से सुनी है ।। ५।।

उस गुप्त बात को मैंने तुमसे कह दिया है, जहांकि नित्य शिवा निवास करती हैं। इनके दर्शन मात्र से करोड़ों पाप नष्ट हो जाते हैं ।। ६।।

सब कामनाओं को प्रदान करने वाली वह देवी बलि और धूप से तथा विशेष रूप से सुरा से पूजन करने से सन्तुष्ट होती है ।। ७।।

इसके दर्शनमात्र से मनुष्य परम पद को प्राप्त करता है। इस पीठ के समान परम माहात्म्यशाली पीठ तीनों लोकों में दुर्लभ है ।। ८।।

वहां सब सौभाग्यों को देने वाली ब्रह्मपुत्री नाम की नदी है। हे महामते नारद ! उस नदी में स्नान करके मनुष्य ब्रह्मलोक को जाता है ।। ९।।

सुन्दरी (त्रिपुरसुन्दरी) देवी की पूजा करने से और ध्यान करने से मनुष्य परम पद को प्राप्त करता है। वहीं पर सुन्दरीश नाम से प्रसिद्ध शिवलिङ्ग है ।। १०।।

तस्य दर्शनमात्रेण सदाशिवगणो भवेत्।
यस्त्रिरात्रं व्रती भूत्वा जपते परमाक्षरम्।
असाध्यमपि भूतेशीप्रसादात्साधयेन्नरः ।। ११।।

यश्चाऽर्पयति विप्रेश महिषं बलिरूपिणम्।
स याति परमं स्थानं यत्र देवी महेश्वरी ।। १२।।

छागं वापि नरो दद्यात्स्वकार्यपरिपूर्तये।
यो नरं बलिरूपेण सुन्दर्यै वै प्रयच्छति।।
प्राप्नोति पृथिवीं सर्वां सशैलवनकाननाम् ।। १३।।

अधीते यो नरो धीमान्देवीसूक्तं त्र्यहं शतम्।
साधयेत्सर्वकार्याणि किमन्यैर्बहुभाषितैः ।। १४।।

सुन्दरीनिलये यो वै देवीसाम पठेत्सुधीः।
तस्य सर्वाणि कार्याणि सिद्धयन्ते नाऽत्र संशयः ।। १५।।

इत्युक्तं सुन्दरीपीठं ब्रह्मकूटे गिरौ स्मृता।
नदी हैमवती चैव ब्रह्मपुत्री तथैव च ।। १६।।

एतयोः सङ्गमे स्नात्वा ब्रह्मलोके महीयते।
सुन्दरीपीठमाहात्म्यं श्रुत्वा पापैः प्रमुच्यते ।। १७।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे सुन्दरीपीठमहिमा-
वर्णनं नाम सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।

अष्टात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

शिवकूटगिरौ हैमवतीतटस्थितभगवदीश्वर-शिवलिङ्गस्थानवर्णनम्

स्कन्द उवाच-

अथाऽन्यच्च प्रचक्ष्यामि पीठं परमकं मुने।
तस्य दक्षिणतो विप्र शिवो[1] भगवदीश्वरः ।। १।।

---
१. नाम्ना

उनके दर्शनमात्र से मनुष्य सदाशिव का गण बन जाता है। जो मनुष्य व्रत धारण करके तीन रात्रियों तक उन परम अक्षर शिव का जप करता है, वह भूतेशी देवी की कृपा से असाध्य कार्य भी सिद्ध कर लेता है ।। ११।।

हे विप्रेश नारद ! जो देवी के लिये बलि के रूप में भैंसे को देता है, वह उस परम स्थान को प्राप्त करता है, जहां देवी महेश्वरी हैं ।। १२।।

अपने कार्य की पूर्ति के लिये मनुष्य बकरे की भी बलि दे सकता है। जो मनुष्य सुन्दरी देवी के लिये मनुष्य की बलि देता है, वह पर्वतों और वनों सहित सारी पृथिवी को प्राप्त करता है ।। १३।।

जो बुद्धिमान् मनुष्य देवीसूक्त का ३०० दिन तक अध्ययन करता है, बहुत कहने से क्या लाभ, वह अपने सब कार्यों को सिद्ध कर लेता है ।। १४।।

जो बुद्धिमान् मनुष्य सुन्दरी देवी के मन्दिर में देवीसूक्त का पाठ करता है, उसके सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है ।। १५।।

इस प्रकार मैंने ब्रह्मकूट पर्वत पर सुन्दरी पीठ का वर्णन कर दिया है। वहां हैमवती और ब्रह्मपुत्री नदियां हैं ।। १६।।

इन दोनों नदियों के संगम पर स्नान करके मनुष्य ब्रह्मलोक में महिमा को प्राप्त करता है। सुन्दरी पीठ के माहात्म्य को सुनकर मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है ।।१७।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में सुन्दरीपीठमहिमावर्णन
नाम का १३७ वां अध्याय समाप्त हुआ ।।

अध्याय-१३८

शिवकूट पर्वत पर हैमवती नदी के तट पर स्थित भगवदीश्वर नाम के शिवलिङ्ग के स्थान का वर्णन

स्कन्द ने कहा-

हे विप्र मुनि नारद! मैं एक अन्य परमपीठ का वर्णन करूंगा। उस सुन्दरी पीठ की दक्षिण दिशा में भगवदीश्वर शिव का पीठ है ।। १।।

शिवकूटगिरिर्यत्र हैमवत्यास्तटे शुभे।
तत्र पूर्वं महादेवः संस्तुतो हरिणा यतः।
ततोऽयं शंसितो विप्र नाम्ना भगवदीश्वरः ।। २।।

तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि येन तज्ज्ञायते शुभम्।
तत्राऽस्ति बिल्ववृक्षो वै मुक्ताफलफलोपमः ।। ३।।

ततोऽधो दक्षिणे भागे पीतवर्णं जलं शुभम्।
तस्मिन्नेव प्रदेशे तु शिवो भगवदीश्वरः।
तस्य दर्शनमात्रेण लभते परमं पदम् ।। ४।।

ततः पश्चिमतो विप्र धारा पञ्चशिखा मता।
तस्यां स्नात्वा नरो भक्त्या शिवसायुज्यमाप्नुयात् ।। ५।।

सम्पूज्य भगवदीशं स्नात्वा हैमवतीतटे।
शिवसायुज्यमाप्नोति सत्यमेव महामुने ।। ६।।

शिवतीर्थाज्जलं गृह्य गच्छेद् भगवदीश्वरम्।
स्नापयेद्रुद्रजाप्येन सर्वाभीष्टं लभेन्नरः ।। ७।।

इति ते भगवदीशमाहात्म्यं शुभदायकम्।
श्रुत्वाऽपि परमं स्थानं लभते नाऽत्र संशयः ।। ८।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भगवदीशमाहात्म्यवर्णनं
नामाष्टात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।

एकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

गङ्गाहैमवतीसङ्गमे भूतीश्वराभिधशिवसन्निधौ शिवतीर्थकथनम्

नारद उवाच-

शिवतीर्थं वद प्राज्ञ श्रवणेच्छा प्रवर्त्तते।
कुत्र तद्विद्यते क्षेत्रं शिवलोकप्रदायकम् ।। १।।

स्कन्द उवाच-

शृणु क्षेत्रं महाभाग सर्वपापक्षयावहम्।
यस्य दर्शनमात्रेण कोटिजन्मसमुद्भवैः।
पापैः प्रमुच्यते देही नाऽत्र कार्या विचारणा ।। २।।

शिवकूट पर्वत पर, जहांकि हैमवती नदी का शुभ तट है, वहां पहले समय में क्योंकि विष्णु ने महादेव की स्तुति की थी, अत: इसको भगवदीश्वर नाम से कहा गया ।। २।।

मैं उसका चिह्न कहूंगा, जिससे कि तुम उस शुभ पीठ को पहचान लोगे। वहां एक मोतियों के सदृश फल वाला बिल्व वृक्ष है ।। ३।।

उसके नीचे के भाग में पीले रंग का शुभ जल हैं। उसी प्रदेश में भगवदीश्वर शिव हैं। उनके दर्शनमात्र से मनुष्य परम पद पाता है ।। ४।।

हे विप्र ! उसके पश्चिम भाग में पंचशिखा नाम की धारा है। उसमें भक्तिभाव से स्नान करने से मनुष्य शिव के सायुज्य को प्राप्त करता है ।। ५।।

हे महामुने ! भगवदीश्वर का पूजन करके और हैमवती के तट पर स्नान करके मनुष्य शिव के सायुज्य को प्राप्त करता है, यह सत्य है ।। ६।।

शिवतीर्थ से जल लेकर भगवदीश्वर के पास जावे। उनको स्नान करावे और रुद्र का जप करे। इससे मनुष्य अभीष्टों को प्राप्त करता है ।। ७।।

भगवदीश्वर का यह माहात्म्य शुभदायक है। इसको सुनकर भी मनुष्य निस्सन्देह परम स्थान को प्राप्त करता है ।। ८।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में भगवदीश्वर-
माहात्म्यवर्णन नाम का १३८ वां अध्याय पूरा हुआ।।

अध्याय-१३९

गङ्गा-हैमवती के सङ्गम पर भूतीश्वर नाम के शिव के समीप शिवतीर्थ का वर्णन

नारद ने कहा-

हे बुद्धिमान् स्कन्द ! शिवतीर्थ को बताइये। मेरी सुनने की इच्छा है। वह शिवलोक को देने वाला क्षेत्र कहां है? ।। १।।

स्कन्द ने कहा-

हे महाभाग ! सब पापों को नष्ट करने वाले शिवतीर्थ के क्षेत्र का वर्णन सुनो, जिसके दर्शन करने से ही मनुष्य करोड़ों जन्मों में उत्पन्न हुये पापों से मुक्त हो जाता है। इस विषय में विचार नहीं करना चाहिये ।। २।।

गङ्गाहैमवतीसङ्गे सर्वपापक्षयावहे।
शिवतीर्थमिति ख्यातं शिवलोकप्रदायकम् ।। ३।।

ब्रह्मघ्नो वा सुरापो वा स्वर्णचौरोऽथवा भवेत्।
सोऽपि शुद्धो मुनिश्रेष्ठ शिवतीर्थनिमज्जनात् ।। ४।।

अस्मिन्कृतं महाभाग वज्रलेपाय कर्मकृत्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तस्मिन्पापं न संचरेत् ।। ५।।

केदाराद्वै शतगुणं शिवतीर्थनिमज्जनम्।
यस्तत्र मुञ्चते प्राणान् पञ्चरात्रोषितो नरः।
शिवसायुज्यमाप्नोति सत्यमेव शिवोदितम् ।। ६।।

गङ्गाहैमवतीसङ्गे स्नातः शिवपुरे वसेत्।
यद्यत्कामयते कामं तत्तत्साधयतेऽत्र वै ।। ७।।

धन्यानामत्र मरणं जायते मुनिवन्दित।
प्रसङ्गाद्वा बलात्कारादायात्यत्र शिवस्थले।
कोटिजन्मार्जितैः पापैर्मुच्यते नाऽत्र संशयः ।। ८।।

तत्र भूतीश्वरो देवो दर्शनाद् गतिदो महान्।
बृहद्रथन्तराभ्यां यः पूजयेत्तं महेश्वरम्।
स वै शिवपुरे कल्पं नानाभोगो वसेदरम् ।। ९।।

शतकृत्वस्तु यो मर्त्यो रुद्रसाम जपेदिह।
सर्वयज्ञेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम्।
तत्फलं प्राप्नुयाद्देव रुद्रनाम्ना तथार्चनात् ।। १०।।

बृहतश्च तथा साम्नः शतकृत्वो महामुने।
पठेद्वा पाठयेच्चापि तत्कर्मकृतमक्षयम् ।। ११।।

यं यं कामयते कामं तं तं प्राप्नोति मानवः।
य इच्छेद्विपुलान्भोगानिह चैव परत्र च।
पाठयेच्च पठेच्चापि बृहच्चैव रथन्तरम् ।। १२।।

महारुद्रं जपन् यस्तु स्नापयेद् गाङ्गवारिणा।
भूतीश्वरं महादेवं सर्वभूतीर्लभेन्नरः ।। १३।।

सब पापों को नष्ट करने वाले गङ्गा-हैमवती के संगम पर शिवलोक को देनेवाला प्रसिद्ध शिवतीर्थ है ।। ३।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! चाहे ब्रह्महत्यारा हो, चाहे सुरापान करने वाला हो अथवा चाहे स्वर्ण को चुराने वाला हो, शिवतीर्थ में स्नान करने से वह भी शुद्ध हो जाता है ।।४।।

हे महाभाग ! इस क्षेत्र में किया गया काम वज्रलेप के समान हो जाता है। अतः मनुष्य को चाहिये कि सब प्रकार का प्रयत्न करके उसमें पाप न करे ।। ५।।

शिवतीर्थ में स्नान करना केदारनाथ में स्नान करने से १०० गुना फलदायक है। जो मनुष्य पांच रात्रियों तक उपवास करके वहां प्राणों का परित्याग करता है, वह शिव के सायुज्य को प्राप्त करता है। शिव ने यह सत्य ही कहा है ।। ६।।

गङ्गा-हैमवती के संगम पर स्नान करने वाला शिवलोक में निवास करता है। वह जिस-जिस वस्तु की कामना करता है, उसको यहां निश्चय से सिद्ध कर लेता है।।७।।

हे मुनियों से वन्दनीय नारद ! यहां धन्य व्यक्तियों की ही मृत्यु होती है। जो किसी प्रसंगवश या बलपूर्वक भी इस स्थल पर आ जाता है, वह करोड़ जन्मों में भी अर्जित पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है ।। ८।।

वहां भूतीश्वर महादेव हैं, जो दर्शन से ही ऐश्वर्य (भूति) को प्रदान करते हैं। जो बृहत् और रथंतर सूक्तों के द्वारा महेश्वर की पूजा करता है, वह शीघ्र ही शिवपुर में निवास करके प्रलय पर्यन्त नाना भोगों का उपभोग करता है ।। ९।।

हे देव ! जो मनुष्य यहां १०० बार रुद्रसूक्त का जाप करता है, सब यज्ञों का जो फल है और सब तीर्थों का जो फल है, वह उस फल को रुद्र के नाम की उस प्रकार से पूजा करने से प्राप्त कर लेता है ।। १०।।

हे महामुने ! जो रुद्र के बृहत् एवं साम सूक्तों का १०० बार पाठ करता है अथवा पाठ कराता है, उसका वह कर्म अक्षय होता है ।। ११।।

वह मनुष्य जिस-जिस वस्तु की कामना करता है, उस-उस वस्तु को प्राप्त करता है। यदि मनुष्य इस लोक में और परलोक में विपुल भोगों की इच्छा करता है, तो वह बृहत् एवं रथंतर सूक्तों का पाठ करे ।। १२।।

महारुद्र का जप करते हुये जो मनुष्य भूतीश्वर महादेव को गङ्गा के जल से स्नान कराता है, वह सब ऐश्वर्यों को प्राप्त करता है ।। १३।।

शिवरात्रिदिने यस्तु स्नात्यत्र भगवत्प्रियः।
संसारबन्धनं तस्य छिनत्ति जगदीश्वरः ।। १४।।

चतुर्दश्यां तु कस्याञ्चिद्दर्शनं प्रकरोति यः।।
तस्य पुण्यफलं विप्र हयमेधादिकं भवेत् ।। १५।।

सोमवारे शुक्रवारे नक्षत्रे रौद्रसञ्ज्ञिते।
यत्कर्म कुरुते ह्यत्र तत्सर्वं स्यादनन्तकम् ।। १६।।

शिवतीर्थं परं तीर्थं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्।
यस्य वै दर्शनासक्ताः शक्राद्यास्त्रिदिवौकसः ।। १७।।

सङ्गमात्पूर्वभागे तु दण्डषट्कै परं मुने।
इन्द्रकुण्डमिति ख्यातं इन्द्रलोकप्रदायकम् ।। १८।।

तस्य वै दक्षिणे भागे चक्रतीर्थमुदाहृतम्।
तत्र वै स्नानमात्रेण विष्णुलोके महीयते ।। १९।।

तत ईशानदिग्भागे रुद्रधारेति विश्रुता।
सकृदाचम्य सलिलं रुद्रलोके वसेच्चिरम् ।। २०।।

ततः पूर्वं महाभाग गङ्गातीरे महामते।
त्रिशूलतीर्थमाख्यातं सर्वपापक्षयङ्करम् ।। २१।।

तत ऊर्ध्वं गिरौ विप्र त्रिशूलांकितभूमिका।
पूर्वं संरोप्य शूलं वै गङ्गातीरे शिवो ययौ ।। २२।।

इत्येतद्वै समाख्यातं शिवतीर्थमाहात्म्यकम्।
एतच्छ्रुत्वाऽपि पापेभ्यो मुच्यते नाऽत्र संशयः ।। २३।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे शिवतीर्थमाहात्म्यवर्णनं
नामैकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः।

जो भगवान् का प्रिय मनुष्य यहां शिवरात्रि के दिन स्नान करता है, जगदीश्व शिव उसके भव-बन्धन को काट देते हैं ।। १४ ।।

हे विप्र ! जो मनुष्य किसी चतुर्दशी में उस शिवलिंग के दर्शन करता है, उसक पुण्य फल अश्वमेध आदि यज्ञ के फल के समान होता है ।। १५ ।।

सोमवार में, शुक्रवार में और रुद्रनक्षत्र में मनुष्य इस लोक में जो कर्म करता है वह निश्चय से अनन्त फल देने वाला होता है ।। १६ ।।

भोग और मोक्ष को देने वाला शिवतीर्थ परम तीर्थ है। इन्द्र आदि देवता भी उसवे दर्शन की लालसा रखते हैं ।। १७ ।।

हे मुने ! संगम से पूर्व दिशा में ६ दण्ड दूर इन्द्रलोक को देने वाला प्रसिद्ध इन्द्रकुण्ड है ।। १८ ।।

उसके दक्षिण दिशा में चक्रतीर्थ है। उसमें स्नान करने से ही मनुष्य विष्णुलोक में महिमा को प्राप्त करता है ।। १९ ।।

उससे ईशान दिशा में प्रसिद्ध रुद्रधारा है। उसके जल का एक बार आचमन करके मनुष्य चिरकाल तक रुद्रलोक में निवास करता है ।। २० ।।

हे महाभाग महामते ! उससे पूर्व दिशा में गङ्गा के तट पर सब पापों को नष्ट करने वाला त्रिशूल तीर्थ कहा गया है ।। २१ ।।

हे विप्र ! उससे ऊपर पर्वत पर त्रिशूल से अंकित भूमि है। पूर्व समय में शूल को रोपित कर शिव गङ्गा के तट पर गये थे ।। २२ ।।

यह मैंने शिवतीर्थ के माहात्म्य को सुना दिया है। इसको सुनकर भी मनुष्य पापों से छूट जाता है। इसमें सन्देह नहीं है ।। २३ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में शिवतीर्थमाहात्म्यवर्णन नाम का १३९ वां अध्याय पूरा हुआ ।।

चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

लोहादिधातुस्वर्णत्वप्रदशैलोदाख्यसरःसन्निधौ कुमारीपीठकथनम् तत्रैव शैलेश्वरशिवलिङ्गकथनम् तदुत्तरतो देवलेश्वरस्थानकथनम्

स्कन्द उवाच-

तस्मात्पश्चिमदिग्भागे शृणु दिव्यं शुभप्रदम्।
महत्कुमारिका पीठं सद्यः प्रत्ययकारकम् ।। १।।

तत्र सर्वे देवगणा निवसन्ति तदर्चकाः।
इदं कुमारिकास्थानं न त्यजन्ति महामुने ।। २।।

शृणु चिह्नं प्रवक्ष्यामि येन ते प्रत्ययो भवेत्।
तत्राऽस्ति दिव्यं सलिलं शैलोदमिति विश्रुतम् ।। ३।।

लौहाद्या धातवो येन स्वर्णतां यान्ति साधनात्।
यदत्र पतते विप्र सर्वं ग्रावसमं भवेत् ।। ४।।

इयं कुमारिका देवी भवमुक्तिप्रदायिनी।
यस्या दर्शनमात्रेण शिवं च लभते परम् ।। ५।।

धन्याः सुकृतिनो लोके कुमारीपूजका मुने।
तेषां वै दर्शनादेव पापं वर्षकृतं दहेत् ।। ६।।

तत्र शैलेश्वरो देवो महादेवः सदा स्थितः।
पश्यन्ति ये सुकृतिनस्तं न तेषां पराभवः ।। ७।।

भूमिं गां च तथा रत्नं यश्चाऽर्पयति भक्तितः।
तेन दत्तं हि सकलं भूतलं रत्नपूरितम् ।। ८।।

यस्तत्र स्नापयेद्देवं शैलेशं तीर्थवारिभिः।
स याति परमांल्लोकान्पुनर्नावर्त्तते यतः ।। ९।।

शिवस्तोत्रं पठेदत्र पाठयेद्वापि नारद।
पुरुषत्वं लभेत्सत्यं सौन्दर्यञ्च विशेषतः ।। १०।।

अध्याय-१४०

लौह आदि धातुओं को स्वर्ण बना देने वाले शैलोद नाम के जलाशय के समीप कुमारी पीठ का वर्णन, वहीं शैलेश्वर शिवलिङ्ग का वर्णन, उसके उत्तर में देवलेश्वर के स्थान का वर्णन

स्कन्द ने कहा-

हे नारद ! सुनो । उस शिवतीर्थ से पश्चिम दिशा में दिव्य, शुभप्रद, महान् कुमारिका पीठ है। वह तत्काल ज्ञान को उत्पन्न कराने वाला है ।। १।।

वहां उस कुमारी देवी की अर्चना करने वाले सब देवगण निवास करते हैं। हे महामुने ! वे इस कुमारी पीठ को छोड़ते नहीं हैं ।। २।।

मैं तुमको उस कुमारी पीठ का चिह्न बताऊंगा, जिससे कि तुम उसको पहचान लोगे। वहां शैलोद नाम से प्रसिद्ध दिव्य जल है ।। ३।।

इस जल से सिद्ध करने पर लोह आदि धातुयें स्वर्ण बन जाती है। हे विप्र ! जो कुछ वस्तु इसमें गिरती है, वह सब पत्थर के समान हो जाती है ।। ४।।

यह कुमारिका भव-बन्धन से मुक्त कराने वाली है। इसके दर्शनमात्र से मनुष्य परम शिवत्व को प्राप्त करता है ।। ५।।

हे मुने ! कुमारी देवी का पूजन करने वाले पुण्यशाली मनुष्य धन्य हैं। उन मनुष्यों के दर्शन से ही एक वर्ष में किये गये पाप जल जाते हैं ।। ६।।

वहां देव शैलेश्वर महादेव सदा स्थित रहते हैं। जो पुण्यशाली जन उनका दर्शन कर लेते हैं, उनकी पराजय नहीं होती ।। ७।।

जो यहां भूमि, गौ तथा रत्न का दान भक्ति से करता है, उसने मानों रत्नों से भरी हुई सारी पृथिवी को दान कर दिया है ।। ८।।

जो यहां शैलेश्वर महादेव को तीर्थों के जल से स्नान कराता है, वह परम लोकों में जाता है और वहां से पुनः वापिस नहीं आता ।। ९।।

हे नारद ! जो मनुष्य यहां शिवस्तोत्र का पाठ करता है अथवा पाठ कराता है, वह सत्य ही पुरुषत्व को, और विशेष रूप से सौन्दर्य को प्राप्त करता है ।। १०।।

पाठकेभ्यो ददेत्तत्र गोभूरत्नादिकं वसु।
ब्राह्मणान्भोजयेच्चैव पायसेन घृतेन च।। ११।।

एवं यः कुरुते विप्र सोऽमरत्वं लभेन्मुने।
इह लोके चैव वरान् भोगानाप्नोति दुर्लभान् ।। १२।।

नदी बालवती तत्र स्पर्शनात्पापनाशिनी।
तस्यां यो कुरुते माघे स्नानं नियमपूर्वकम् ।। १३।।

वन्ध्याऽपि लभते पुत्रं विख्यातं कुलदीपकम्।
भर्तृहीना तु या कन्या पत्यर्थं स्नानमाचरेत्।
पतिं वै लभते तूर्णं सुन्दरं सुकुलं प्रियम् ।। १४।।

विवाहार्थमपि मुने विवाह्यः स्नानमाचरेत्।
स्त्रियं वै लभते हृद्यां कुलीनां प्रियवादिनीम् ।। १५।।

मूढोऽपि लभते विद्यां बृहस्पतिसमो भवेत्।
गत्वा कुमारिकापीठं जपेन्मन्त्रं षडर्णकम् ।। १६।।

निराहारो जितात्मा च लभते परमं पदम्।
तथा रोगग्रहग्रस्तो रिपुभिश्च पराजितः ।। १७।।

सप्तरात्रं वसेदत्र जपेत्पञ्चाक्षरं मनुम्।
मुच्यते सहसा दुःखाच्छत्रूञ्जयति सत्वरम् ।। १८।।

तस्मादुत्तरभागे हि कुञ्जकूट इति स्मृतः।
तत्र वै संस्थिता बाला सर्वसिद्धिप्रदायिनी ।। १९।।

धन्यानां गोचरा[1] सा स्यान्माणिक्याभा महेश्वरी।
तत्र यस्त्रिदिनं बालामन्त्रराजं जपेन्नरः।
प्राप्नोति परमां सिद्धिं महादेव्याः प्रसादतः।।२०।।

ततो वायव्यके कोणे नाम्ना तित्तिरपर्णिका।
मणिपर्णी च तत्रैव सङ्गमः पुण्यदस्तयोः ।। २१।।

स्नानं करोति यस्तत्र स्वर्गलोके वसेच्चिरम्।
कर्मक्षयादिहागत्य राजा भवति धार्मिकः ।। २२।।

१. गोचरे

यहां शिवस्तोत्र का पाठ करने वालों के लिये गो-भूमि-रत्न आदि धन का दान करे। ब्राह्मणों को खीर और घी से युक्त भोजन करावे ।। ११।।

हे विप्र मुने नारद ! जो इस प्रकार के कर्म करता है, वह अमरत्व को पाता है और इसी लोक में दुर्लभ, श्रेष्ठ भोगों को प्राप्त करता है ।। १२।।

वहां बालवती नाम की नदी है, जो स्पर्श करने से ही पापों का नाश करती है। उसमें जो नियमपूर्वक माघ मास में स्नान करता है उसके पाप नष्ट हो जाते हैं ।।१३।।

यहां बांझ औरत भी कुल के दीपक एवं प्रसिद्धि प्राप्त करने वाले पुत्र को पाती है। पति से रहित जो कन्या यहां पति को पाने के लिये स्नान करती है, वह शीघ्र ही उत्तम कुल के सुन्दर प्रिय पति को पाती है ।। १४।।

विवाह के योग्य जो मनुष्य विवाह करने के लिये यहां स्नान करता है, वह सुन्दर, कुलीन और प्रिय बोलने वाली स्त्री को प्राप्त करता है ।। १५।।

कुमारीपीठ में जाकर जो छः अक्षरों वाले मन्त्र का जाप करता है, वह मूर्ख भी विद्या को प्राप्त करता है और बृहस्पति के समान हो जाता है ।। १६।।

जितात्मा मनुष्य निराहार रह कर यहां परम पद को प्राप्त करता है। रोगों और ग्रहों से ग्रस्त एवं शत्रुओं से पराजित मनुष्य............ ।। १७।।

यदि यहां सात रात्रियों तक निवास करे और पंचाक्षर मन्त्र का जप करे, तो सहसा सब दुःखों से छूट जाता है और शत्रुओं को जीत लेता है ।। १८।।

उस कुमारी-पीठ से उत्तर भाग में कुंजकूट पर्वत है। वहां सब सिद्धियों को देने वाली बाला देवी स्थित हैं ।। १९।।

माणिक्य के समान कान्ति वाली वह महेश्वरी बालादेवी धन्य मनुष्यों को ही दृष्टिगोचर होती हैं। जो मनुष्य वहां रह कर तीन दिन तक बाला देवी का मन्त्र जपता है, वह महादेवी की कृपा से परम सिद्धि को प्राप्त करता है ।। २०।।

उससे वायव्य कोण में तित्तिरपर्णिका और मणिपर्णी नाम की नदियां हैं। उन दोनों का संगम पुण्य को देने वाला है ।। २१।।

जो वहां स्नान करता है, वह चिरकाल तक स्वर्ग में निवास करता है। यहां आकर उसके कर्मों का क्षय होकर वह धार्मिक राजा होता है ।। २२।।

सम्भुज्य पृथ्वीमेनां तदन्ते मोक्षमाप्नुयात् ।। २३।।

ततो वै दक्षिणे भागे स्वर्णधारा परा स्मृता।
तदम्भः स्पर्शमात्रेण ब्रह्मलोके महीयते ।। २४।।

तत उत्तरदिग्भागे वेगवर्णाभिधा नदी।
तत्सङ्गमे नरः स्नात्वा नाकपृष्ठे वसेच्चिरम् ।। २५।।

ततः पश्चिमदिग्भागे नाम्ना देवलपर्वते।
नदी देवलकी नाम गङ्गास्नानफलप्रदा ।। २६।।

तत उत्तरदिग्भागे शिवो वै देवलेश्वरः।
तस्य सन्दर्शनादेव सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। २७।।

ततश्च पूर्वदिग्भागे दुग्धधाराभिधा मता।
तज्जलस्पर्शनादेव श्वेतद्वीपेश्वरो भवेत् ।। २८।।

इति तत्परमं क्षेत्रं कथितं ते मयाऽनघ।
श्रुत्वाऽपीदं महाभाग तत्तत्स्नानफलं लभेत् ।। २९।।

इह लोके वरान् भोगान्प्राप्य चान्ते शिवं लभेत् ।। ३०।।

इति श्रीस्कन्दपुराणे केदारखण्डे कुमारीपीठमाहात्म्यवर्णनं
नाम चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

गङ्गापूर्वभागे चन्द्रकूटगिरौ भुवनेश्वरीपीठकथनम्
तदुपाख्यानपूर्वकमाहात्म्यकथनम्

स्कन्द ने कहा-

अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि पीठं सिद्धिप्रदायकम्।
नाम्ना वै भौवनं ख्यातं सद्यः प्रत्ययकारकम् ।। १ ।।

गङ्गायाः पूर्वभागे हि चन्द्रकूटो गिरिः स्मृतः।
तस्याऽपि दर्शनादेव मुच्यते जन्मपातकात् ।। २ ।।

वह इस पृथिवी का भोग करके मृत्यु होने पर मोक्ष पाता है ।। २३।।

उस संगम से दक्षिण भाग में श्रेष्ठ स्वर्णधारा है। उसके जल का स्पर्श करने मात्र से मनुष्य ब्रह्मलोक में महिमा को प्राप्त करता है ।। २४।।

उससे उत्तर दिशा में देववर्णा नाम की नदी है। उसके संगम में स्नान करके मनुष्य चिरकाल तक स्वर्ग में निवास करता है ।। २५।।

उससे पश्चिम दिशा में देवल नाम के पर्वत पर देवलकी नाम की नदी है। उसमें स्नान करने से गङ्गा-स्नान का फल मिलता है ।। २६।।

उससे उत्तर दिशा में देवलेश्वर महादेव हैं। उनके दर्शनों से ही मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है ।। २७।।

उससे पूर्व दिशा में दुग्धधारा नाम की नदी है। उसके जल का स्पर्श करने मात्र से मनुष्य श्वेतद्वीप का राजा हो जाता है ।। २८।।

हे निष्पाप नारद ! इस प्रकार मैंने उस परम पुण्य क्षेत्र का वर्णन कर दिया है। हे महाभाग ! इसको सुनकर भी मनुष्य उसमें स्नान के फल को पाता है ।। २९।।

वह मनुष्य इस लोक में उत्तम भोगों को प्राप्त करके अन्त में शिव को प्राप्त करता है ।। ३०।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में कुमारीपीठमाहात्म्यवर्णन नाम का १४० वां अध्याय पूरा हुआ ।। ३१।।

अध्याय-१४१

गङ्गा के पूर्व भाग में चन्द्रकूट पर्वत पर भुवनेश्वरी पीठ का वर्णन, इसके उपाख्यान के साथ माहात्म्य का वर्णन

स्कन्द ने कहा-

मैं तुमको सिद्धि प्रदान करने वाले अन्य पीठ को बताऊंगा। वह भौवन (भुवनेश्वरी) नाम से प्रसिद्ध है और तत्काल ज्ञान प्रदान करता है ।। १।।

गङ्गा के पूर्वी भाग में चन्द्रकूट नाम का पर्वत है। उसके दर्शन से ही मनुष्य इस जन्म के पापों से छूट जाता है ।। २।।

नृत्यन्त्यप्सरसो यत्र गायन्ते चैव किन्नराः।
भुवनेशी यत्र देवी ख्याता शङ्करबल्लभा ।। ३।।

यत्र वै भैरवो देवो द्वाःस्थले चाऽभिरक्षितः।
अतितुङ्गतमे स्थाने संस्थितां परमेश्वरीम्।।
नमस्कारं प्रकुर्वन्ति न च तेषां पराभवः ।। ४।।

अत्र पूर्वं महारुद्रो रुरोद विरहातुरः।
देव्याः कलेवरोत्सर्गे स्मृत्वा तन्मुखचन्द्रकम् ।। ५।।

विरहाक्रान्तहृदयो लोकं तदनुवर्त्तयन्।
नित्यामपि महामायां शुशोच भृशदुःखितः ।। ६।।

ततो मुने जगत्सर्वं सन्तप्ते जगदीश्वरे।
सन्तप्तं चाऽभवत्सर्वं तथा स्थावरजंगमम् ।। ७।।

सन्तप्ताश्चाऽभवन्देवा ब्रह्माद्या मुनिसत्तम।
आजग्मुर्यत्र कैलासे रुद्रो रोदनसंस्थितः ।। ८।।

तुष्टुवुः स्मारयन्तो वै परं भावं महेशितुः।
सम्बद्धाञ्जलयः सर्वे नमस्कारानतकन्धराः।
मुनयश्चापि सिद्धाश्च गन्धर्वाः किन्नरास्तथा ।। ९।।

देवा ऊचुः-

प्रकृत्यै ते नमस्तेऽस्तु भिन्नायै पुरुषान्नमः।
सृष्टिकर्त्र्यै सृष्टिहर्त्र्यै देव्यै तस्यै नमोनमः ।। १०।।

अनादिनिधनो देवो यया मोहं प्रवेशितः।
किमुत प्राकृता देव्यै नारायण्यै नमोनमः ।। ११।।

येन सृष्टं जगत्सर्वं त्रैलोक्यं सन्निधिर्यया।
विमोहितः प्राकृतवत्तस्यै देव्यै नमोनमः ।। १२।।

यया संसारिवद्देवो मुग्धो प्राकृतवद्धरः।
निर्ममोऽपि परानन्दो तस्यै देव्यै नमोनमः ।। १३।।

यहां अप्सरायें नृत्य करती हैं और किन्नर गाना गाते हैं। यहां शंकर की प्रिया भुवनेश्वरी देवी प्रसिद्ध हैं ।। ३ ।।

यहां द्वार के स्थल पर रक्षा करने वाले भैरव देव रहते हैं। अति ऊंचे स्थान पर स्थित परमेश्वरी को जो नमस्कार करते हैं, उनकी कभी पराजय नहीं होती ।। ४ ।।

यहां पहले समय में सती देवी द्वारा शरीर को छोड़ देने पर उसके मुख-चन्द्र का स्मरण करके विरह से आतुर महादेव रोये थे ।। ५ ।।

विरह से आक्रान्त हृदय वाले महादेव लोक-धर्म का पालन करते हुये महामाया के नित्य होने पर भी, बहुत दुःखी होकर रोये थे ।। ६ ।।

हे मुने ! तदनन्तर जगदीश्वर महादेव के सन्तप्त होने पर सारा जगत् संतप्त हो गया। स्थावर-जंगम सभी सन्तप्त हो गये ।। ७ ।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! ब्रह्मा आदि सभी देवता सन्तप्त हो गये। वे वहां कैलास पर्वत पर आये जहाँ रोते हुये रुद्र स्थित थे ।। ८ ।।

अंजलि को बांधकर और नमस्कार करने के लिये गरदनों को झुका कर सब मुनियों, सिद्धों, गन्धर्वों और किन्नरों ने, महेश को परम भाव का स्मरण दिलाते हुये उनकी स्तुति आरम्भ की ।। ९ ।।

देवताओं ने कहा-

प्रकृति रूप उस देवी के लिये नमस्कार है। पुरुष से भिन्न उस देवी के लिये नमस्कार है। सृष्टि की रचना करने वाली और सृष्टि का संहार करने वाली उस देवी के लिये नमस्कार है ।। १० ।।

जिनका कभी आदि और अन्त नहीं है, ऐसे देव को भी जिस देवी ने मोहित कर लिया है, सामान्य मनुष्यों का तो कहना ही क्या है, उस नारायणी देवी के लिये नमस्कार है ।। ११ ।।

जिसने सारे जगत् की सृष्टि की है, जिसने तीनों लोकों को सन्निहित किया हुआ है, जिसने आपको सामान्य जन के समान मोहित कर लिया है, उस देवी के लिये नमस्कार है ।। १२ ।।

जिसने कि ममत्व भावना से रहित परमानन्द स्वरूप शिव को भी सांसारिक मनुष्यों के समान और सामान्य मनुष्य के समान मोहित कर लिया है, उस देवी के लिये नमस्कार है ।। १३ ।।

विष्णुर्यया महादेव्या सङ्क्षिप्तो योनिसङ्कटे।
अनेकविषयासक्तस्तस्यै देव्यै नमोनमः ।। १४।।

यया ब्रह्मा त्रिजगतां कर्त्ता वेदनिधिः पुरा।
आत्मजासक्तहृदयः कृतस्तस्यै नमोनमः ।। १५।।

द्विजराजो यया[1] देव्या मोहितो गुरुकामिनीम्।
अन्वगच्छत्तु[2] कामान्धस्तस्यै देव्यै नमोनमः ।। १६।।

इन्द्रो यया मोहितस्तु गौतमस्य प्रियां शुभाम्।
अधर्षयन्नगणयन्पापं तस्यै देव्यै नमोनमः ।। १७।।

यन्मोहितं जगत्सर्वं कुरुते कर्म दुष्कृतम्।
सुकृतं वाऽपि सकलं तस्यै देव्यै नमोनमः ।। १८।।

यया सम्मोहितो जन्तुः पुत्रान् दारान् बिभर्ति हि।
जानन्नप्यप्रतीकारं तस्यै देव्यै नमोनमः ।। १९।।

यया संमोहितो जन्तुर्ममेदं च वदत्यहो।
गच्छन्नपि प्रेतभावं तस्यै देव्यै नमोनमः ।। २०।।

यया सम्मोहितः प्राणी पुत्रदारधनादिकम्।
अनित्यमपि नित्यं हि मन्यते ते नमोनमः ।। २१।।

मृतांश्च म्रियमाणांश्च मर्तुं चैव समुद्यतान्।
दृष्ट्वाऽपि जीवितुं काङ्क्षंस्तस्यै देव्यै नमोनमः ।। २२।।

अनित्यां धनसम्पत्तिं दृष्ट्वाऽपि च तथाविधाम्।
न खादति न वै दत्ते यया तस्यै नमोनमः ।। २३।।

स्कन्द उवाच-

हराग्रे संस्तुता देवी महादेवविमोहिनी।
दर्शयामास स्वं रूपं सर्वैर्देवैरगोचरम् ।। २४।।

सिन्दूरपूररक्ताङ्गीं त्रिनेत्रां चन्द्रशेखराम्।
स्थितशोभापरिक्रान्तपीयूषां भक्तवत्सलाम् ।। २५।।

---

१. ययौ २. अनुगच्छति

जिस महादेवी ने अनेक विषयों में आसक्त विष्णु को भी योनि के संकट में (गर्भावस्था में) डाल दिया था, उस देवी को नमस्कार है ।। १४ ।।

जिसने तीनों लोकों की रचना करने वाले एवं वेदों के निधि ब्रह्मा के हृदय को अपनी पुत्री के प्रति आसक्त कर दिया था, उस देवी को नमस्कार है ।। १५ ।।

जिस देवी ने द्विजराज चन्द्रमा को गुरु की पत्नी के प्रति मोहित कर दिया था और वह काम से अन्धा होकर उसके पीछे चलने लगा था, उस देवी को नमस्कार है ।।१६ ।।

पाप की भावना को न दबाते हुये और उसकी गणना न करते हुये इन्द्र को जिसने गौतम की सुन्दर पत्नी अहिल्या के प्रति मोहित कर दिया था, उस देवी को नमस्कार है ।। १७ ।।

जिस देवी से मोहित होकर सारा जगत् सब दुष्कर्मों को और सुकर्मों को करता है, उस देवी के लिये नमस्कार है ।। १८ ।।

यह जानते हुये भी कि इसका कोई प्रतीकार नहीं है, जिससे संमोहित होकर प्राणी पुत्रों और पत्नी का भरण-पोषण करता है, उस देवी के लिये नमस्कार है ।। १९ ।।

जिस देवी से संमोहित होकर प्राणी मरते हुये भी कहता है कि यह वस्तु मेरी है, उस देवी के लिये नमस्कार है ।। २० ।।

जिससे संमोहित होकर प्राणी अनित्य भी पुत्र-पत्नी आदि को नित्य मानता है, उस देवी के लिये नमस्कार है ।। २१ ।।

जिससे मोहित होकर प्राणी मृतकों को, मरते हुओं को और मरने के लिये उद्यत हुओं को भी देखकर जीवित रहने की आकांक्षा करता है, उस देवी के लिये नमस्कार है ।। २२ ।।

जिस देवी से मोहित हुआ मनुष्य उस प्रकार की अनित्य धन-सम्पत्ति को देखकर भी न तो उसका भोग करता हैं और नाहीं दान करता है, उस देवी के लिये नमस्कार है ।। २३ ।।

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार शिव के आगे स्तुति की गई, महादेव को विमोहित करने वाली देवी ने अपने स्वरूप को दिखाया और वह सब देवताओं को दृष्टिगोचर हुई ।। २४ ।।

उसके अंग सिन्दूर से भरे लाल थे, तीन नेत्र थे, सिर पर चन्द्रमा का भूषण था, सौन्दर्य से उसने अमृत को पराजित कर दिया था और भक्तवत्सल थी ।। २५ ।।

चषकं चैकहस्तेन बिभ्रतीं कमलं[1] परे।
पीनस्तनस्फुरद्रत्नहारावलिविराजिताम् ।। २६।।

दृष्ट्वा तां चन्द्रवदनां[2] विश्वानन्दनतत्पराम्।।
रत्नपूरघटस्थां च कोटिबालार्कसन्निभाम् ।। २७।।

मोहं तत्याज भगवान् स्वस्थश्चैवाऽभवत्क्षणात्।।
श्रुत्वा मायावैभवं च किमहो किमहो वदन् ।। २८।।

देवाश्च तां परिक्रम्य प्रणम्य च पुनः पुनः।
ययुर्यथागतं विप्र तथाऽन्ये मुनिसत्तमाः ।। २९।।

तदादीदं परं पीठं महादेवश्च संस्थितः।
यदन्यत्र त्रिभिर्वर्षैस्तदत्र दिनरात्रितः।
सिद्ध्यते नाऽत्र सन्देहो मया शिवमुखाच्छ्रुतम् ।। ३०।।

त्रिरात्रं यो महाभाग फलमूलकृताशनः।
निवसेच्च जपेद्देवीं साधयेत्सिद्धिमुत्तमाम् ।। ३१।।

यदत्र दीयते दानं तत्सर्वं कोटिसङ्ख्यकम्।
नाऽस्मात्परतरं पीठं त्रैलोक्ये मुनिवन्दित ।। ३२।।

दुर्भावं यः समाश्रित्य गच्छतेऽस्मिंस्थले शुभे।।
स हन्यतेतरां विप्र वज्रपातैर्न संशयः ।। ३३।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन न दुष्टं भावमाश्रयेत् ।। ३४।।

देवीसूक्तेन यस्तत्र संस्तौति जगदीश्वरीम्।
सर्वान्कामानवाप्नोति प्रेत्य ब्रह्मणि लीयते ।। ३५।।

इदं क्षेत्रं परं स्थानं सद्यः प्रत्ययकारकम्।
यद्दर्शनादपि नरो देवीलोके महीयते ।। ३६।।

आभद्रसेनं वसति तथा लगुडसानु वै।
यत्रोत्तरगतिर्गङ्गा पञ्चयोजनसम्मितम्।
पीठं परमकं ख्यातं तथा भास्करक्षेत्रकम् ।। ३७।।

१. कमले २. वदनीं

वह एक हाथ में चषक को और दूसरे हाथ में कमल को धारण किये थी। मोटे स्तनों पर चमकते हुये रत्नों की मालायें सुशोभित थीं ।। २६।।

चन्द्रमा के समान मुख वाली, विश्व को आनन्दित करने में तत्पर, रत्नों से भरे हुये घट वाली और करोड़ों बाल-सूर्यों के समान तेजस्विनी उस देवी को देखकर।।२७।।

माया के वैभव को सुनकर, अहो यह क्या है, अहो यह क्या है, यह कहते हुये भगवान् शिव ने मोह का त्याग कर दिया और वे उसी क्षण स्वस्थ हो गये ।। २८।।

हे विप्र नारद ! देवता और दूसरे श्रेष्ठ मुनि उसी देवी की परिक्रमा करके और उसको पुनः पुनः प्रणाम करके जैसे आये थे, वैसे ही चले गये ।। २९।।

तब से लेकर यह स्थान परम पीठ हुआ और महादेव यहां स्थित हो गये। जो कार्य दूसरे स्थानों पर तीन वर्षों में सिद्ध होते हैं। वे यहां दिन-रात में सिद्ध हो जाते हैं। इसमें सन्देह नहीं है। यह बात मैंने शिव के मुख से सुनी है ।। ३०।।

हे महाभाग ! जो यहां तीन रातों तक फल-मूल का भोजन करते हुये निवास करता है और देवी का जप करता है, वह उत्तम सिद्धि को प्राप्त करता है ।। ३१।।

यहां जो दान दिया जाता है, उसका फल करोड़ गुना होता है। हे मुनियों से वन्दित नारद ! तीनों लोकों में इससे बड़ा पीठ नहीं है ।। ३२।।

हे विप्र ! जो मनुष्य दुर्भावना का आश्रय लेकर इस शुभ स्थल पर जाता है, वह वज्रपातों से मारा जाता है, इसमें सन्देह नहीं है ।। ३३।।

इसलिये इस स्थान पर सभी प्रकार के प्रयत्नों से दुष्ट भाव का आश्रय न ले।।३४।।

जो मनुष्य यहां जगदीश्वरी की देवीसूक्त से स्तुति करता है, वह लोक में सभी कामनाओं को प्राप्त करता है और परलोक में जाकर ब्रह्म में लीन हो जाता है ।।३५।।

यह क्षेत्र परम स्थान है और तत्काल ज्ञान प्राप्त कराता है। इसका दर्शन करके भी मनुष्य देवी लोक में महिमा को प्राप्त करता है ।। ३६।।

भद्रसेन ग्राम से लेकर लगुडशिखर पर्यन्त एवं उत्तर में गङ्गा नदी पर्यन्त पांच योजन विस्तार का भास्कर क्षेत्र है। उसमें यह प्रसिद्ध परम पीठ स्थित है ।। ३७।।

यस्तत्र वसते मर्त्यो देवलोकपरिच्युतः।
गन्ताग्रे मुक्तिभवनं ज्ञेयोऽसौ ब्रह्मनन्दन ।। ३८।।

स्थावराः पक्षिकीटाद्यास्तत्तद्रूपसमाश्रिताः।
इमे देवा परिच्छन्ना वसन्ते मुनिवन्दित ।। ३९।।

अत्र दिव्यानि पीठानि देवतायतनानि च।
सद्यः प्रत्ययकारीणि तथा चैव सरित्तमाः ।। ४०।।

श्रुत्वाऽप्येतानि पापेभ्यो मुच्यते नाऽत्र संशयः ।। ४१।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भुवनेश्वरीपीठमाहात्म्यवर्णनं
नामैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भोगवतीनदीतीरे दुष्करतपोनिष्ठैर्नागैः स्थापितस्य नागेश्वराख्यशिवलिङ्गस्य माहात्म्यकथनम्

नारद उवाच-

अत्र चान्यानि तीर्थानि तथा च सरिदुत्तमाः।
शिवालयांश्च विविधान्वद स्कन्द सविस्तरात् ।। १।।

स्कन्द उवाच-

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि [1]पुण्यान्यायतनानि च ।
येषां श्रवणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। २।।

तस्मादेव महापीठाद्दक्षिणस्यां समीपतः।
नागेश्वरो महादेवः सर्वसम्पत्तिवर्द्धनः ।। ३।।

तत्र नागाः पुरा विप्र तपस्तेपुः सुदुष्करम्।
महादेवपरा दान्ताः परमं तप आस्थिताः ।। ४।।

प्रापुः परमिकां सिद्धिमत्र पीठे सदाशिवम्[2]।
दृष्टवन्तो[3] महात्मानस्तस्मान्नागेश्वरो मतः ।। ५।।

---

१. पुण्यानां २. पाठ सन्दिग्ध है ३. पाठ सन्दिग्ध है

हे ब्रह्मा के पुत्र नारद ! देवलोक से परिच्युत होकर जो मनुष्य इस क्षेत्र में निवास करता है, वह मुक्तिलोक में जायेगा, यह समझना चाहिये ।। ३८।।

मुनियों से वन्दित हे नारद ! स्थावर पदार्थ, पक्षी, कीट आदि के रूप को धारण करके यहां प्रच्छन्न रूप में देवता निवास करते हैं ।। ३९।।

यहां दिव्य पीठ हैं, देवताओं के मन्दिर हैं और उत्तम नदियां हैं, जो तत्काल ज्ञान प्राप्त कराते हैं ।। ४०।।

इनका वर्णन सुन कर भी मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है।।४१।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में भुवनेश्वरीपीठमाहात्म्यवर्णन नाम का १४१ वां अध्याय पूरा हुआ।।

अध्याय-१४२

भोगवती नदी के किनारे दुष्कर तपस्या करने वाले नागों द्वारा स्थापित नागेश्वर नाम के शिवलिङ्ग के माहात्म्य का वर्णन

नारद ने कहा-

हे स्कन्द ! यहां और जो अन्य तीर्थ हैं, उत्तम नदियां है और विविध शिवालय हैं, उनका विस्तार से वर्णन कीजिये ।। १।।

स्कन्द ने कहा-

हे विप्र नारद ! सुनो। मैं अन्य पुण्य स्थानों का वर्णन करूंगा, जिनके सुनने मात्र से मनुष्य सारे पापों से मुक्त हो जाता है ।। २।।

उस महापीठ के समीप ही दक्षिण दिशा में सब सम्पत्तियों को बढाने वाले नागेश्वर महादेव हैं ।। ३।।

हे विप्र ! वहां प्राचीन समय में महादेव के प्रति भक्ति रखकर, इन्द्रियों का दमन करके और परम तप में स्थित होकर नागों ने अति दुष्कर तप किया था ।। ४।।

उन महात्मा नागों ने इस पीठ में परम सिद्धि को प्राप्त किया था और सदाशिव के दर्शन किये थे। अतः इसको नागेश्वर कहा गया ।। ५।।

यत्र सन्ति महात्मानो मुनयः सिद्धचारणाः।
देवाश्च शक्तिसहितास्तत्र पीठे शुभप्रदे ।। ६।।

यस्तत्र रुद्रमन्त्रैस्तु समाधिस्थो जितेन्द्रियः।
सम्पूजयति नागेशं तस्य पुण्यफलं शृणु ।। ७।।

सर्वयज्ञेषु यत्पुण्यं हयमेधादिषु द्विज।
यत्तीर्थगमनैः शश्वत्तथाम्बुधिनिमज्जनैः।
तत्पुण्यं कोटिगुणितं भवेदत्र न संशयः ।। ८।।

यथाशक्त्या रुद्रसंख्यां करोतीशाभिषेचनम्।
तथा कारयतेऽन्यस्मात्सोऽपि सोऽपि महामते ।। ९।।

सर्वरोगैः परित्यक्तः सर्वैश्वर्यसमन्वितः।
पुत्रपौत्रादिभिर्युक्तो भवेत्सुचिरजीवनः ।। १०।।

सम्भुज्य भोगान्विविधानन्ते शिवलयं व्रजेत् ।। ११।।

तत्र भोगवती नाम धारा परमपाविनी।
तत्पयःपानमात्रेण लभते परमं पदम् ।। १२।।

संस्तौति यो रुद्रमन्त्रै रुद्रं त्रिभुवनेश्वरम्।
स याति परमं स्थानं यत्र देवः सदाशिवः ।। १३।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भुवनेशीपीठमाहात्म्यवर्णनं
नाम द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

निखिलविद्याप्राप्तये तपस्यत आङ्गिरसस्य शिववद्वागीशत्वलाभः, तत्रैव वागीशाख्यशिवलिङ्ग-कथनम्, तदुत्तरे गर्दभासुरपर्वते कालिकावस्थितिकथनम्

स्कन्द उवाच-

अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि तस्य वै पश्चिमोत्तरे।
नाम्ना वागीश्वरः ख्यातः सर्वसिद्धिप्रदायकः ।। १।।

वहां बायें प्रदेश में आधे कोस की दूरी पर मुक्ति को देने वाली चन्द्रवती नाम से प्रसिद्ध नदी है। वह सभी कामनाओं को प्रदान करती है ।। ३३।।

उस नदी के दक्षिणी पार्श्व में विष्णु के चरण प्रतिष्ठित हैं। यहां व्रत धारण करने वाले शम्भुशर्मा नाम के ब्राह्मण ने विष्णु की आराधना की थी ।। ३४।।

यहां विष्णु ने उसको अपने दर्शन दिये थे। तब से लेकर यहां विष्णु के ये दो पद प्रतिष्ठित हैं। उसके पूर्वोत्तर पार्श्व में मनुष्यों को स्वर्ग देने वाला नद है ।। ३५।।

हे विप्र ! इस नद का नाम सुहवन प्रसिद्ध है। यह सर्वत्र मंगलकारी है। इसके तट पर स्नान करके मनुष्य सब यज्ञों के फल को प्राप्त करता है ।। ३६।।

हे विप्र नारद ! यहां अंगूठे के आकार वाले मुनियों (बालखिल्य) ने इन्द्र के कहने से कुपित होकर पुरातन यज्ञ किया था ।। ३७।।

नारद ने कहा-

इन्द्र ने उन ऊर्ध्वरेता मुनियों का क्या किया था, जिसके कारण उन्होंने यज्ञ को प्रारम्भ किया। उस यज्ञ से क्या फल हुआ ।। ३८।।

इस प्रकार श्री स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में द्रोणाश्रममाहात्म्य वर्णन नाम का १२८ वां अध्याय पूरा हुआ ।।

अध्याय-१२९

दक्ष के यज्ञ के लिये ईंधन लाने के लिये गये हुये इन्द्र का अपने विरुद्ध यज्ञ की वार्ता सुनकर ब्रह्मा से प्रार्थना करना, ब्रह्मा द्वारा अङ्गुष्ठप्रमाण मुनियों की प्रार्थना करके इन्द्र के विरुद्ध यज्ञ का निवारण, तदनन्तर गरुड की उत्पत्ति

स्कन्द ने कहा-

हे विप्र नारद ! इस गंगाद्वार के मुक्ति देने वाले पुराने वृत्तान्त को सुनो। ब्रह्मा के पुत्र महातेजस्वी प्रजापति दक्ष नाम के थे। उन्होंने प्रजाओं की वृद्धि के लिये देवताओं के साथ मिलकर यज्ञ किया ।। १।।

उसने सभी देवताओं और मुनियों को उसमें भाग दिया। उनमें कुछ देवता तो ईंधन लेने के लिये और कुछ पुष्प लेने गये ।। २।।

अन्य देवता यज्ञ-वृक्ष लेने गये। दूसरे देवता ब्राह्मणों को निमन्त्रित करने गये। उन देवताओं में वृत्र का वध करने वाला वासव इन्द्र सब देवताओं से अधिष्ठित घोर वन में गया ।। ३।।

वृत्रासुर का वध करने वाला इन्द्र लकड़ियों के भार को लेकर आ रहा था। आते हुये उसने वन में श्रेष्ठ मुनियों को देखा ।। ४।।

पलाशवृन्तसंलग्नानेकान्भारपीडितान्।
गोष्पदं तर्तुमिच्छन्तो वर्षापानीयपूरितम् ।। ५।।

दृष्ट्वा तांस्तादृशान्विप्रानङ्गुष्ठसमदेहकान्।
अहासीदल्पवीर्यांश्च किं करिष्यन्त्युवाच ह ।। ६।।

दृष्ट्वा हास्यं महाभागा मुनयः संशितव्रताः।
मदोन्मत्तं परं ज्ञात्वाऽन्यमिन्द्रं कर्तुमुद्यताः ।। ७।।

क्रोधाविष्टा महात्मानस्तत्र चन्द्रवने मुने।
संभारान्साधयामासुर्यज्ञार्थं वरवर्णिनः ।। ८।।

चक्रुर्यज्ञं महाभाग वासवार्थं महोद्यमा।
इन्द्रमन्यं करिष्यामः पतिष्यति शठो ह्ययम् ।। ९।।

इत्येतदद्भुतं कर्म दृष्ट्वा तत्र महात्मनाम्।
ब्रह्माणं शरणं देवो जगामार्ऽतिभयातुरः ।। १०।।

उवाच वचनं तत्र ब्रह्माणं कमलासनम्।
प्रमादिना मया देव क्रोधिताः परमर्षयः ।। ११।।

ते चेन्द्रं कर्त्तुमुद्युक्ता यज्ञेन कमलासन।
श्रुत्वा ब्रह्माऽपि वृत्तान्तमिन्द्रतः करुणोदयम्।
जगाम दैवतैः सार्द्धं यत्र ते मुनयः स्थिताः ।। १२।।

तुष्टाव तान्महाभाग मुनीन्वेदपरायणान्।
नाऽन्यथा कर्तुमीहन्ते ब्रह्मणा निर्मितं तु यत् ।। १३।।

अकाले देवराजे वै न दूरं कर्त्तुमर्हथ।
पक्षीन्द्रो भवतु क्षिप्रं भवतां वै प्रसादतः ।। १४।।

स वै कार्यकरोऽस्माकं विष्णोश्चैव सुवाहनम्।
प्रसन्ना भवथ क्षिप्रं याचध्वं मां पुनः सुरान् ।। १५।।

इति तस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मणो मुनिसत्तम।
धर्मात्प्रस्वेदपूर्णेभ्यो गात्रेभ्यः स्वेदसम्भवः ।। १६।।

सोऽयं सुहवनः ख्यातो नदः परमपुण्यदः।
कृतवन्तो महायज्ञं पक्षीन्द्रश्च बभूव ह ।। १७।।

कश्यपस्य प्रिया भार्या विनतेति परिश्रुता।
तस्यां पूर्वं रवेर्विप्रोऽरुणः सारथिसत्तमः ।। १८।।

गरुडश्च ततो जज्ञे पक्षीन्द्रः सम्बभूव ह।
सर्वेषां सुरवर्याणां कार्यकर्त्ता बभूव ह ।। १९।।

अनेक भारों से पीड़ित वे पत्तों के वृन्तों से लटके हुये थे और वर्षा के जल से भरे गोष्पद गढे को तैरकर पार करने की इच्छा कर रहे थे ।। ५ ।।

उस प्रकार के, अंगूठे के बराबर शरीर वाले एवं अल्प वीर्य उन ब्राह्मणों को देखकर इन्द्र हंसने लगा, कि ये क्या कार्य करेंगे ।। ६ ।।

व्रत को धारण करने वाले वे महाभाग मुनि इन्द्र की हंसी को देखकर और उसको मद से बहुत अधिक उन्मत्त जानकर दूसरे इन्द्र की रचना करने के लिये उद्यत हो गये ।।७ ।।

हे मुने ! क्रोध से आविष्ट होकर वे ब्राह्मण महात्मा वहां चन्द्रवन में यज्ञ करने के लिये सामग्रियों को एकत्रित करने लगे ।। ८ ।।

हे महाभाग नारद ! महान् उद्यम करने वाले उन मुनियों ने अन्य इन्द्र की रचना के लिये यज्ञ किया कि हम अन्य इन्द्र बनायेंगे। यह शठ इन्द्र पतित होगा ।। ९ ।।

वहां उन महात्माओं के इस अद्भुत कर्म को देखकर और अत्यधिक भय से आतुर होकर वह वासव इन्द्र ब्रह्मा की शरण में गया ।। १० ।।

वहां उसने कमलासन पर स्थित ब्रह्मा से यह वचन कहा- "मुझ प्रमादी ने उत्तम ऋषियों को क्रोधित कर दिया है ।। ११ ।।

हे कमलासन ! वे यज्ञ के द्वारा अन्य इन्द्र को बनाने को उद्यत हो गये हैं ।" करुणा को उत्पन्न करने वाले इन्द्र के वृत्तान्त को सुनकर ब्रह्मा भी देवताओं के साथ वहां गये, जहां कि वे मुनि स्थित थे ।। १२ ।।

हे महाभाग ! नारद ! ब्रह्मा ने वेदपरायण मुनियों को सन्तुष्ट किया। उन्होंने कहा कि ब्रह्मा द्वारा निर्मित सृष्टि से भिन्न दूसरी सृष्टि की रचना वे नहीं कर सकते ।।१३ ।।

असमय में उनको देवराज को दूर नहीं करना चाहिये । क्योंकि आपने यज्ञ किया है, अतः आपकी कृपा से शीघ्र ही पक्षियों का इन्द्र (राजा) उत्पन्न होगा ।। १४ ।।

वह हमारा कार्य करने वाला होगा और विष्णु का वाहन होगा। आप शीघ्र प्रसन्न हो जाओ और मुझसे एवं पुनः देवताओं से जो चाहो मांग लो ।। १५ ।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! उस ब्रह्मा के इस वचन को सुनकर उन मुनियों के गरमी के कारण पसीने से भरे हुये शरीर से पसीना बहने लगा ।। १६ ।।

उससे यह परम पुण्यों को देने वाला सुहवन नाम से प्रसिद्ध नद हुआ । उन मुनियों ने महायज्ञ किया और उससे पक्षियों का इन्द्र उत्पन्न हुआ ।। १७ ।।

कश्यप प्रजापति की विनता नाम की प्रिय पत्नी थी। उसका जो पहला पुत्र अरुण हुआ, वह सूर्य का श्रेष्ठ सारथि था ।। १८ ।।

तदनन्तर गरुड उत्पन्न हुआ, जो पक्षियों का राजा बना। वह सभी श्रेष्ठ देवताओं का कार्य करने वाला हुआ ।। १९ ।।

पक्षिराजोऽभिषिक्तश्च मुनिभिश्च सुरासुरैः।
बलवान्सत्त्वसम्पन्नो वेगवानमितद्युतिः ।। २०।।

जहार यो महातेजा अमृतं वृत्रसूदनात्।
निर्जित्य तं महातेजा ऋषिवाक्यमनुस्मरन्।
जिता देवगणास्तेन दानवाश्च महामते ।। २१।।

विष्णुस्त्रैलोक्यनाथश्च सङ्गरे निर्जितः मुने।
प्रसन्नश्च महाविष्णुः प्रोवाच गरुडं तदा ।। २२।।

वरं वरय भद्रं ते प्रसन्नोऽस्मि तवाधुना।
अहं कर्ता च हर्त्ता च त्रिलोकानां त्वया जितः ।। २३।।

वरं ददामि ते प्रीतो यद्यन्मनसि वर्त्तते।
विहस्य गरुडोऽप्याह हरिं लोकपरायणम् ।। २४।।

त्वमेव हि हरे ब्रूहि वरं त्रैलोक्यदुर्लभम्।।
वाहनत्वं तदा वव्रे वरं नारायणः स्वयम् ।। २५।।

वह मां वैनतेय त्वं प्रसन्नश्च यतो मयि ।
तथेति सोऽपि गरुडो जगाद हरिमच्युतम् ।। २६।।

इति दत्त्वा वरं तस्मै गरुडो वेगसंयुतः।
गृहीत्वा कलशं तस्य पीयूषस्य मुदा ययौ ।। २७।।

यत्र दासत्वमापन्ना क्रुद्धा वै मुनिसत्तम।
अदासीं मातरं चक्रे यत्पीयूषप्रदानतः ।। २८।।

इति ते कथितो दिव्यो नदस्य परमाद्भुतम्।
सुहवनस्य च ख्यातं सर्वपापहरं मुने ।। २९।।

पक्षीन्द्रोऽपि तपस्तप्तुं ययौ कैलासमन्दिरे।
इति पुण्यतमं स्थानं देवानामपि दुर्लभम् ।। ३०।।

चन्द्रवतीसुहवनयोः सङ्गमोऽतीव पुण्यदः।
नदीत्रयं च शाकिन्या यत्र पुण्ये सुसङ्गता ।। ३१।।

तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या शिवसायुज्यमाप्नुयात्।
इदं पुण्यतमाख्यानं श्रुत्वा पापैः प्रमुच्यते ।। ३२।।

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे सुहवननदोत्पत्तिवर्णनं
नामैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः।

मुनियों और देव-दानवों ने उसका पक्षिराज के पद पर अभिषेक किया। वह बलवान्, सत्त्व से सम्पन्न, वेगवान् और अमित कान्तिमान् था ।। २० ।।

उस महातेजस्वी ने उस इन्द्र को जीतकर उस वृत्रसूदन से अमृत को छीन लिया था। हे महामते नारद! ऋषि के वाक्य को स्मरण करते हुये उसने देवताओं और दानवों को जीत लिया था ।। २१ ।।

हे मुने! उसने युद्ध में तीनों लोकों के स्वामी विष्णु को जीत लिया था। तब प्रसन्न होकर विष्णु ने गरुड से कहा ।। २२ ।।

मैं तुमसे अब प्रसन्न हूं। मुझसे तुम कल्याणकारी वर मांगो। तीनों लोकों के कर्ता और हर्ता विष्णु को तुमने जीत लिया है ।। २३ ।।

तुमसे मैं प्रसन्न हूं। जो-जो तुम्हारे मन में है, वह वर तुम मांग लो। हंस कर गरुड ने भी लोक का पालन करने वाले विष्णु से कहा ।। २४ ।।

हे विष्णो! तुम ही मुझ से तीनों लोकों में दुर्लभ वर मांग लो। तब स्वयं नारायण ने उस गरुड से वर मांगा कि तुम मेरे वाहन बन जाओ ।। २५ ।।

हे विनता के पुत्र गरुड! यदि तुम मुझ पर प्रसन्न हो तो मेरे वाहन बनो। ऐसा ही हो, ऐसा गरुड ने अच्युत हरि से कहा ।। २६ ।।

इस प्रकार उस विष्णु को वर देकर, वेगशाली गरुड उस अमृत के घट को लेकर प्रसन्नता से चले गये ।। २७ ।।

हे मुनिश्रेष्ठ नारद! वे वहां गये, जहांकि दासी बनी हुई उनकी क्रुद्धा माता थीं। उस अमृत को देकर उन्होंने उस माता को दासत्व से मुक्त किया ।। २८ ।।

हे मुने नारद! इस प्रकार मैंने सब पापों को हरने वाले सुहवन नाम से प्रसिद्ध दिव्य नद का परम अद्भुत वृत्तान्त कह दिया है ।। २९ ।।

पक्षिराज गरुड भी तपस्या करने के लिये कैलास पर्वत पर चले गये। यह पुण्यतम स्थान देवताओं को भी दुर्लभ है ।। ३० ।।

यहां चन्द्रवती नदी और सुहवन नद का संगम अति पुण्यप्रद है। इस पुण्यशाली संगम में शाकिनी नाम की तीसरी नदी भी मिलती है ।। ३१ ।।

वहां भक्तिभाव से स्नान करके मनुष्य शिव के सायुज्य को प्राप्त करता है। इस पुण्यतम आख्यान को सुनकर मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है ।। ३२ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में सुहवन नद की उत्पत्ति का वर्णन नाम का १२९ वां अध्याय पूरा हुआ ।।

त्रिंशदधिकशततमोऽध्याय:

गणकुञ्जरपर्वते चण्डिकास्वर्णेश्वराम्रातकवनशाकम्भर्यादितीर्थ-कथनपूर्वकं देवशर्मानीतगङ्गाप्रवाहादिपुण्यतरतीर्थवर्णनम्

स्कन्द उवाच-

ततो वै पश्चिमे भागे योजने पर्वतोत्तमे।
गणकुञ्जरनामा वै भैरवो भीमविक्रम: ।। १।।

तन्नाम्ना पर्वतश्चापि गणकुञ्जरसञ्ज्ञक:।
गणधारा नदी ख्याता शिवलोकप्रदायिनी ।। २।।

यस्तत्र पर्वतश्रेष्ठे पश्येद्वै गणकुञ्जरम्।
कुञ्जराकृतिदेहं च शिवसायुज्यमाप्नुयात् ।। ३।।

यद्यदिच्छति मर्त्यो वै तत्तत्प्राप्नोति तत्र वै।
महापुण्यतमं पीठं त्रिरात्रात्सिद्धिदायकम् ।। ४।।

तन्मूर्ध्नि चण्डिका ख्याता गणकुञ्जरसेविता
चतुर्दश्यां भाद्रपदे पुण्यकृद्भि: प्रदृश्यते ।। ५।।

तत आयाति परमा गणधारा नदी वरा।
स्नानमात्रेण तस्यां हि लभते परमं पदम् ।। ६।।

तत उत्तरदिग्भागे शिव: परमसुन्दर:।
स्वर्णेश्वर इति ख्यात: पापानामपि मुक्तिद: ।। ७।।

तत: क्रोशार्द्धखण्डे वै देवगर्भा नदी वरा।
सा यत्र सङ्गता विप्र तथा शङ्करबल्लभा।
तयो: सुसङ्गमे स्नात्वा वाजपेयशतं लभेत् ।। ८।।

अथ पश्चिमदिग्भागे देवधारगिरौ शुभे।
चन्द्रारण्यात्परे भागे योजनद्वयसम्मिते।
गङ्गा च यमुना तत्र सङ्गतेऽतीव पुण्यदे ।। ९।।

देवशर्मेति विख्यातो ब्राह्मणो वेदपारग:।
उपासिता पुरा तेन गङ्गा भागीरथी परा ।। १०।।

गङ्गाप्रवाह: पतितस्ततोऽत्र द्विजपुङ्गव।
तदादीदं महापुण्यं जातं वैकुण्ठधामदम् ।। ११।।

गङ्गाप्रवाह इति वै नाम तस्य बभूव ह।
स्नानं कुर्वन्ति ये तत्र शतयज्ञफलं भवेत् ।। १२।।

अध्याय-१३०

गणकुञ्जर पर्वत पर चण्डिका, स्वर्णेश्वर, आम्रातक वन, शाकम्भरी अदि तीर्थों का कथन, देवशर्मा द्वारा लाये गये गङ्गाप्रवाह आदि अधिक पुण्यशाली तीर्थों का वर्णन

स्कन्द ने कहा-

उस स्थान से पश्चिमी भाग में एक योजन दूर उत्तम पर्वत है। यहां भयानक पराक्रमी गणकुञ्जर नाम के भैरव रहते हैं ।। १।।

उनके नाम से पर्वत का नाम भी गणकुंजर हुआ। वहां गणधारा नाम से प्रसिद्ध नदी शिवलोक को देने वाली है ।। २।।

उस श्रेष्ठ पर्वत पर जो कोई गणकुंजर भैरव का दर्शन कर लेता है, वह कुंजर (हाथी) के शरीर की आकृति को और शिव के सायुज्य को प्राप्त करता है ।। ३।।

मनुष्य यहां जो-जो चाहता है, उस-उसको प्राप्त करता है। इस महापुण्यतम पीठ में तीन रातों में सिद्धि प्राप्त होती है ।। ४।।

उस पर्वत के शिखर पर चण्डिका देवी प्रसिद्ध हैं। गणकुंजर भैरव उनकी सेवा करता है। भाद्रपद मास की चतुर्दशी तिथि को वे पुण्यशालियों को दिखाई देती हैं।।५।।

उस गणकुंजर पर्वत से गणधारा नाम की उत्तम नदी आती है। उसमें स्नान करने मात्र से मनुष्य परम पद को प्राप्त करता है ।। ६।।

इससे उत्तर दिशा में स्वर्णेश्वर नाम के परम सुन्दर शिव हैं, जो पापियों को भी मुक्ति देते हैं ।। ७।।

उससे आधे कोस की दूरी पर श्रेष्ठ देवगर्भा नाम की नदी है। हे विप्र ! वहां वह शंकरबल्लभा नाम की नदी से मिलती है। उनके उत्तम संगम में स्नान करके मनुष्य १०० वाजपेय यज्ञों का फल प्राप्त करता है ।। ८।।

उससे पश्चिम दिशा में, शुभ देवधार पर्वत पर चन्द्रवन से परे प्रदेश में दो योजन दूर पुण्य को देने वाली गंगा और यमुना का संगम होता है ।। ९।।

पहले समय में वेदों में पारङ्गत देवशर्मा नाम से प्रसिद्ध ब्राह्मण था। उसने पवित्र भागीरथी गंगा की उपासना की थी ।। १०।।

हे ब्राह्मण श्रेष्ठ नारद ! तदनन्तर वहां गंगा का प्रवाह बहने लगा। तब से लेकर यह स्थान बैकुण्ठ धाम को देने वाला महापुण्यशाली हो गया ।। ११।।

उस प्रवाह का नाम गंगाप्रवाह हुआ। जो मनुष्य यहां स्नान करते हैं, उनको सौ यज्ञों का फल प्राप्त होता है ।। १२।।

यत्र देशे सूर्यजायां सङ्गता जाह्नवी परा।
तत्र पुण्यतमं स्थानं सूर्यलोकप्रदायकम् ।। १३।।

स्नानं दानं जपं होमं स्वाध्यायं पितृतर्पणम्।।
कुर्वन्ति ये महाभाग फलमश्नुवतेऽक्षयम् ।। १४।।

यमुनाया: पूर्वभागे सूर्यकुण्डमिति स्मृतम्।
य: स्नाति तत्र विप्रेश सूर्यलोके महीयते ।। १५।।

तत्र दिव्यशिला नाम स्पर्शनान्मुक्तिदायिनी।
कलौ धर्मविहीना: ये पूजां कुर्वन्ति मानवा:।
न तेषां तद्भयं विद्याद्दर्शनात्पूजनादपि ।। १६।।

तत उत्तरदिग्भागे विष्णुकुण्डं शरद्वये।
यत्र पीतं जलं याति यत्र वज्रशिलार्थदा ।। १७।।

विष्णुकुण्डे सकृत्स्नातो विष्णुलोके महीयते ।। १८।।

तत: क्रोशे महापुण्यमाम्रातकवनं महत्।
तत्राऽप्यथ त्रिरात्रं तु जप्त्वा शिवमनुत्तमम्।
सिद्धिमाप्नोति परमां सत्यमेव शिवोदितम् ।। १९।।

तत उत्तरदिग्भागे ढक्काहस्तो गणाधिप:।
महादेवस्य पुरतो ढक्कावादनतत्पर: ।। २०।।

तस्य स्थानमिदं पुण्यं सर्वकामफलप्रदम्।
ततो वै दक्षिणे भागे त्रियोजनमिते स्थले।
शाकम्भरीति विख्याता सर्वकामेश्वरी वरा ।। २१।।

तस्या: सन्दर्शनादेव सर्वपापै: प्रमुच्यते।
शाकेश्वरो महादेव: प्रत्यक्षं सिद्धिदायक: ।। २२।।

पुराऽत्रैव महादेवी मुनींस्तपसि चाऽऽश्रितान्।
विग्रहे शतवार्षिक्ये शाकै: स्वाङ्गसमुद्भवै: ।। २३।।

भरयामास परमा तत: शाकम्भरी मता।
प्रत्यक्षसिद्धिदा देवी दर्शनात्पापनाशिनी ।। २४।।

इति ते कथितं क्षेत्रं द्रोणर्षेस्तपस: स्थलम्।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नाऽत्र संशय: ।। २५।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे द्रोणतीर्थमाहात्म्यवर्णनं
नाम त्रिंशदधिकशततमोऽध्याय:।।

जिस स्थान पर परम पवित्र जाह्नवी का सूर्यपुत्री यमुना में संगम होता है, वह पुण्यतम स्थान सूर्यलोक को देने वाला है ।। १३।।

हे महाभाग ! जो मनुष्य यहां स्नान, दान, जप, हवन, स्वाध्याय और पितृतर्पण करते हैं, वे उसका अविनाशी फल प्राप्त करते हैं ।। १४।।

हे विप्रेश ! यमुना के पूर्वभाग में सूर्यकुण्ड है। जो मनुष्य वहां स्नान करता है, वह सूर्यलोक में जाकर महिमा को प्राप्त करता है ।। १५।।

वहां दिव्यशिला नाम की शिला है। वह स्पर्श करने से मोक्ष प्रदान करती है। कलियुग में धर्म से रहित भी जो मनुष्य वहां स्नान करते हैं, दर्शन करते हैं और पूजा करते हैं, उनको कलियुग का भय नहीं रहता ।। १६।।

उससे उत्तर दिशा में दो शरविक्षेप दूर विष्णुकुण्ड है। उसका पीला जल बह कर वहां जाता है, जहां कि धन को देने वाली बज्रशिला है ।। १७।।

विष्णुकुण्ड में एक बार स्नान करके मनुष्य विष्णुलोक में जाकर महिमा को प्राप्त करता है ।। १८।।

उससे एक कोस दूर महापुण्यशाली विशाल आम्रातक वन (आंवड़ा वृक्षों का वन) है। वहां तीन रात रहकर उत्तम शिव का जप करने से मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त करता है। शिव ने यह सत्य कहा है ।। १९।।

उससे उत्तर दिशा में ढक्काहस्त नाम का शिव का गणाधिप है। वह महादेव के समक्ष ढक्का बजाने में तत्पर रहता है ।। २०।।

उसका यह पुण्यशाली स्थान सब कामनाओं के फल को देता है। उससे दक्षिण दिशा में तीन योजन की दूरी पर प्रसिद्ध शाकम्भरी पीठ है। वह श्रेष्ठ देवी सब कामनाओं की स्वामिनी हैं ।। २१।।

उनके दर्शनमात्र से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है। वहां शाकेश्वर महादेव हैं, जो प्रत्यक्ष रूप से सिद्धि देने वाले हैं ।। २२।।

पहले समय में महादेवी ने इसी स्थान पर सौ वर्ष की अवधि की तपस्या करते हुये मुनियों का अपने अङ्गों से उत्पन्न हुये शाकों से.......... ।। २३।।

भरण-पोषण किया था। तबसे वे परम देवी शाकम्भरी कहलाईं। वे प्रत्यक्ष होकर सिद्धि देने वाली हैं। दर्शन देकर वे पापों को नष्ट करती हैं ।। २४।।

इस प्रकार मैंने तुमसे द्रोण ऋषि की तपस्या के स्थल के क्षेत्र का वर्णन कर दिया है। इस वर्णन को सुनकर मनुष्य निस्सन्देह सब पापों से मुक्त हो जाता है ।। २५।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में द्रोणतीर्थमाहात्म्यवर्णन नाम का १३० वां अध्याय पूरा हुआ।।

एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कालेश्वरीकालेश्वरमाहात्म्यवर्णनपुरस्सरं देवजुष्टांसरिदादि-तीर्थकथने यमुनाया विशेषेण माहात्म्यवर्णनम्

स्कन्द उवाच-

अथ कालेश्वरी देवी प्रोच्यते भक्तवत्सला।
यमुनापश्चिमे भागे सर्वसिद्धिप्रदायिनी ।। १।।

तत्र कालेश्वरो नाम महादेवो महार्थदः।
तस्य दर्शनमात्रेण कैलासनिलये वसेत् ।। २।।

देवजुष्टा नदी तत्र पुण्यगम्या शिवप्रदा।
यमुनासङ्गता यत्र क्षेत्रं पुण्यतमं स्मृतम् ।। ३।।

यत्रर्षयः पुरा सर्वे शिवपूजनतत्पराः।
लेभिरे सर्वविद्याश्च ततः पुण्यतमं स्मृतम् ।। ४।।

यमुनास्नानमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः।
येनैकवारमपि वै कृतं स्नानमिह द्विज।
यमलोकं न गच्छेत् स पश्येच्च परमं पदम् ।। ५।।

यमुनायां तथा स्नात्वा सन्तर्प्य पितृदेवताः।
सूर्यलोकं समासाद्य ब्रह्मलोके महीयते ।। ६।।

गङ्गा च यमुना चैव समे त्रैलोक्यपावने।
ययोर्दर्शनमात्रेण शिवतां याति मानवः ।। ७।।

शतजन्मार्जितैः पापैर्मुच्यते नाऽत्र संशयः।
यस्य भाग्यवशान्मृत्युर्यमुनायास्तटे भवेत्।
स लभेद् ब्रह्मसायुज्यं न स भूयोऽभिजायते ।। ८।।

प्रसङ्गाद्वा बलात्काराद् भक्त्याऽभक्त्यापि मानवः।
यो गच्छेद्यमुनां धीरो नाऽस्ति तत्सदृशो भुवि ।। ९।।

तावद् गर्जन्ति पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।
यावन्न जायते स्नानं यमुनायां महामते ।। १०।।

अध्याय-१३१

कालेश्वरी और कालेश्वर के माहात्म्य का वर्णन, देवजुष्टा नदी आदि तीर्थों के वर्णन में विशेष रूप से यमुना के माहात्म्य का वर्णन

स्कन्द ने कहा-

अब भक्तवत्सल कालेश्वरी देवी का वर्णन किया जाता है। यमुना के पश्चिम भाग में स्थित वे देवी सब सिद्धियों को प्रदान करने वाली हैं ।। १।।

वहां कालेश्वर नाम के महादेव महान् धन देने को वाले हैं। उनके दर्शन मात्र से मनुष्य कैलास पर्वत पर निवास करता है ।। २।।

वहां देवजुष्टा नदी शिव को देने वाली है। वहां पुण्यों से ही पहुंचा जा सकता है। वह जहां यमुना से मिलती है, वह क्षेत्र पुण्यतम माना गया है ।। ३।।

यहां प्राचीन समय में शिव की पूजा में तत्पर सब ऋषियों ने सब विद्याओं को प्राप्त किया था। अत: यह स्थान पुण्यतम माना गया है ।। ४।।

यमुना में स्नान करने मात्र से मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। हे द्विज ! जिसने एक बार भी वहां स्नान कर लिया है, यह यमलोक को नहीं जाता और परम पद का दर्शन करता है ।। ५।।

यमुना में स्नान करके और पितर देवताओं का सन्तर्पण करके मनुष्य सूर्यलोक को प्राप्त करके ब्रह्मलोक में जाकर महिमा को प्राप्त करता है ।। ६।।

गङ्गा और यमुना समान रूप से तीनों लोकों को पवित्र करती हैं, जिनके दर्शन मात्र से मनुष्य शिवत्व को प्राप्त करता है ।। ७।।

यहां रह कर मनुष्य १०० जन्मों में अर्जित पापों से भी मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। जिसकी मृत्यु भाग्यवश यमुना के तट पर होती है, वह ब्रह्म के सायुज्य को प्राप्त करता है। उसका पुन: जन्म नहीं होता।। ८।।

चाहे किसी प्रसङ्गवश, चाहे बलपूर्वक, चाहे भक्ति से, चाहे भक्ति के विना भी, जो धीर मनुष्य यमुना नदी पर जाता है, उसके समान मनुष्य इस पृथिवी पर नहीं है।।९।।

हे महामते! ब्रह्महत्या आदि पाप तभी तक गरजते हैं, जब तक कि मनुष्य सूर्य-पुत्री यमुना में स्नान नहीं करता है ।। १०।।

तावद्यमः प्रभवति श्रेष्ठः पापाद्धि शासितुम् ।
यावच्च सूर्यजास्नानं न करोति महामते ।। ११ ।।

यदि भाग्येन लभते सूर्यग्रहणपूर्वकम् ।
कुरुक्षेत्राभिधात्काश्याः फलं कोटिगुणं लभेत् ।। १२ ।।

त्रुटिमात्रमपि स्वर्णं ददाति द्विजमूर्त्तये ।
स याति परमांल्लोकान्दरिद्रो न भवेत्पुनः ।। १३ ।।

पितृवंश्याश्च ये केचिन्मातृवंश्यास्तथापरे ।
गुरुश्वशुरबन्धूनां तथा वंश्या महामुने ।
प्रयांति परमं स्थानं प्राप्य पिण्डोदकेऽत्र वै ।। १४ ।।

यमुनास्नानमाहात्म्यं वक्तुं केनाऽपि शक्यते ।
नाऽहं वर्षशतैर्वक्तुं शक्नोमि मुनिवंदित ।। १५ ।।

यत्र कुत्राऽपि संदृष्टा यस्मिन् कस्मिन्नपि क्षणे ।
स्नाताऽवगाहिता पीता दृष्टा पापप्रणाशिनी ।। १६ ।।

इति ते कथितं दिव्यं यमुनावैभवं वरम् ।
यस्य श्रवणमात्रेण यमुनास्नानजं फलम् ।
लभते सुतरां विप्र मृतो ब्रह्मपुरे बसेत् ।। १७ ।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे यमुनामाहात्म्यवर्णनं
नामैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।

द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

योनितीर्थमाहात्म्यवर्णनप्रसङ्गात्तत्रत्ययवनेशपीठ-योनिपर्वतशरभङ्गवसिष्ठब्रह्मनदादितीर्थवर्णनम्

स्कन्द उवाच-

यमुनायाः पूर्वभागे पीठं परमसुन्दरम् ।
चतुर्योजनविस्तारायामं चाघनिवारणम् ।। १ ।।

नाम्ना यवनेशपीठं सर्वदुःखनिवारणम् ।
पीठं वै यवनेश्वर्य्याः सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।। २ ।।

हे महामते ! श्रेष्ठ यम पापों पर शासन करने में तभी तक समर्थ रहता है, जब तक कि मनुष्य सूर्यपुत्री यमुना में स्नान नहीं करता ।। ११।।

यदि मनुष्य को भाग्यवश सूर्यग्रहण के समय यमुना में स्नान करने का अवसर मिलता है, तो उसको कुरुक्षेत्र एवं काशी में स्नान करने के फल से १०० गुना फल प्राप्त होता है ।। १२।।

जो यहां कणमात्र भी स्वर्ण को ब्राह्मणों के लिये दान करता है, वह परम लोकों में जाता है और पुन: दरिद्र नहीं होता ।। १३।।

हे मुने नारद ! यहां पिण्डदान को प्राप्त करने से पिता के वंश के पूर्वज, माता के वंश के पूर्वज, गुरु के वंश के पूर्वज, श्वसुर के वंश के पूर्वज और अन्य बन्धुओं के वंश के पूर्वज पितर परम स्थान पर जाते हैं ।। १४।।

हे वन्दनीय मुने ! यमुना के स्नान के माहात्म्य का वर्णन कोई सौ वर्ष में भी नहीं कर सकता। मैं भी नहीं कर सकता ।। १५।।

यमुना का जिस किसी भी क्षण में जहां कहीं भी दर्शन कर लिया जावे, उसमें स्नान-अवगाहन कर लिया जावे, दर्शन करके जल पी लिया जावे, वह पापों को नष्ट करती है।। १६।।

इस प्रकार मैंने तुमसे यमुना के उत्तम दिव्य वैभव को कह दिया है। इसके सुनने मात्र से ही यमुना-स्नान का तुरन्त फल प्राप्त होता है और मरने पर मनुष्य ब्रह्मलोक में निवास करता है ।। १७।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में यमुनामाहात्म्यवर्णन
नाम का १३१वां अध्याय पूरा हुआ।।

अध्याय-१३२

योनितीर्थ के माहात्म्य का वर्णन, वहां के यवनेशपीठ, योनिपर्वत, शरभङ्ग, वसिष्ठ, ब्रह्मनद आदि तीर्थों का वर्णन

स्कन्द ने कहा-

यमुना नदी के पूर्वी भाग में चार योजन क्षेत्र के विस्तार वाला और पापों को दूर करने वाला परम सुन्दर पीठ है ।। १।।

यह यवनेश नाम का पीठ सब दु:खों का निवारण करता है। यहीं सब सिद्धियों को देने वाला यवनेश्वरी पीठ है ।। २।।

एतत्क्षेत्रसमं क्षेत्रं सद्यः प्रत्ययकारकम्।
त्रैलोक्ये नाऽस्ति विप्रेश सत्यमेव न संशयः ।। ३ ।।

यदन्यत्र महाभाग वर्षात्सिद्ध्यति कारकम्।
तदत्र दिवसेनैव सिद्धिमेष्यत्यसंशयम् ।। ४ ।।

योनिपर्वतमारूढो यदि देवीमुपासते।
धन्यो भवति लोकेषु तेनैवैकेन कर्मणा ।। ५ ।।

यदत्र संस्थिता भूता देवीलोकाधिवासिनः।
अरिमन्त्रोऽपि सञ्जप्तो देशेऽस्मिन्योनिपर्वते ।। ६ ।।

सिद्धिं प्रलभते पूर्णां सुरैरपि सुदुर्लभाम्।
राजानो वश्यतां यान्ति नश्यन्ति सर्वशत्रवः ।। ७ ।।

नारद उवाच-

योनिपर्वतमाहात्म्यं सोद्भवं वक्तुर्महसि।
यवनेशस्य पीठस्य प्रभावं च तथा वद ।। ८ ।।

स्कन्द उवाच-

शृणु विप्र समुत्पत्तिं योनिक्षेत्रस्य तद्गिरेः।
माहात्म्यं विस्तराद्वच्मि सावधानोऽवधारय ।। ९ ।।

पुरा दक्षमहायज्ञे सती देहं मुमोच ह।
तद्देहं शिरसा धृत्वा प्रचचार महीमिमाम् ।। १० ।।

शिवस्य मोहनाशार्थं विष्णुश्चक्रेण नारद।
चकर्त्त खण्डशो देहं देव्याश्चैव महामते ।। ११ ।।

योनिखण्डं च पतितमत्र वै पर्वतोत्तमे।
तत्र संस्थापयामासुरीश्वरीं देवतागणाः ।। १२ ।।

तदादीदं परं पीठं सद्यः प्रत्ययकारकम्।
महादेवोऽपि तत्रैव संस्थितो लिङ्गरूपधृक् ।।। १३ ।।

योनीश्वर इति ख्यातः सर्वसिद्धिप्रदायकः।
देव्यास्तु दक्षिणे भागे कालियो नाम नागराट् ।। १४ ।।

हे विप्रेश नारद ! इस क्षेत्र के समान तत्काल ज्ञान देने वाला क्षेत्र तीनों लोकों में नहीं है। यह बात सत्य है और इसमें सन्देह नहीं है ।। ३।।

हे महाभाग! जो कार्य दूसरे स्थान पर एक वर्ष में सिद्ध होता है, वह यहां निस्सन्देह रूप से एक दिन में सिद्ध हो जाता है ।। ४।।

जो मनुष्य योनि पर्वत पर चढकर देवी की उपासना करता है, वह उस एक कर्म से ही लोकों में धन्य हो जाता है ।। ५।।

देवी के लोक में निवास करने वाले भी यहां स्थित होकर यदि इस योनि पर्वत के प्रदेश में अरिमन्त्र का जप करते हैं ।। ६।।

तो देवताओं से भी दुर्लभ पूर्ण सिद्धि को प्राप्त करते हैं। राजा उनके वश में हो जाते हैं और सब शत्रु नष्ट हो जाते हैं ।। ७।।

नारद ने कहा-

योनि पर्वत के माहात्म्य का उत्पत्ति-सहित वर्णन कीजिये और यवनेश पीठ के माहात्म्य को भी बताइये ।। ८।।

स्कन्द ने कहा-

हे विप्र ! योनि पर्वत के क्षेत्र की उत्पत्ति का वृत्तान्त सुनो। उसके माहात्म्य को भी विस्तार से कहता हूं। सावधान होकर सुनो ।। ९।।

पहले समय में दक्ष के महायज्ञ में सती ने शरीर को छोड़ दिया था। उस सती के शरीर को सिर पर रखकर वे महादेव इस पृथिवी पर भटकने लगे ।। १०।।

हे नारद महामते ! शिव के मोह को नष्ट करने के लिये विष्णु ने अपने सुदर्शनचक्र से सती देवी के शरीर को खण्ड-खण्ड कर दिया ।। ११।।

जिस उत्तम पर्वत पर योनि-खण्ड गिरा था, वहां देवताओं ने आसुरीश्वरी (यवनेश्वरी) पीठ की स्थापना की ।। १२।।

तबसे लेकर यह पीठ तत्काल ज्ञान को प्रदान करने वाला हुआ। महादेव भी वहां लिङ्ग के रूप को धारण करके स्थित हो गये ।। १३।।

सब सिद्धियों को प्रदान करने वाले महादेव योनीश्वर (यवनेश) नाम से प्रसिद्ध हुये। यवनेश्वरी देवी के दक्षिण भाग में कालिय नाम का नागराज........ ।। १४।।

समायाति सदा तत्र येन केनापि हेतुना।
देवीं सम्पूज्य विधिवत्प्रयाति श्वभ्रके वरे ।। १५।।

पुराऽत्र कालयवनस्तपस्तप्तुं समागतः।
देवीमाराधयामास विविधैश्चोपचारकैः ।। १६।।

यवनेशी ततः प्रोक्ता सर्वदारिद्र्यनाशिनी।
तत्र ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्रश्चैव तथा त्रयः।
संस्थिता नदरूपेण तस्मिन्नेव नगोत्तमे ।। १७।।

तस्य वै दक्षिणे भागे नाम्ना ब्रह्मनदो मुने।
तत्र संस्नाति यो मर्त्यो ब्रह्मलोके महीयते ।। १८।।

तस्योत्तरप्रदेशे हि नदो वै रुद्रसञ्ज्ञकः।
तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि येन सञ्ज्ञायते नरैः ।। १९।।

तस्य दक्षिणभागे हि जलं भस्ममयं महत्।
तत्रैकं शिवलिङ्गं च स्फाटिकाभं सुनिर्मलम् ।। २०।।

तस्य दर्शनमात्रेण शिवलोके महीयते।
यत्र देव्यः सञ्चरन्ति डाकिनीरूपमाश्रिताः ।। २१।।

नानावेषधराः कामरूपा वै डाकिनीगणाः।।
सार्द्धद्वयाक्षरं मन्त्रं प्रजपति च तत्र ताः ।। २२।।

तत्प्रभावेण विप्रर्षे परमां सिद्धिमागताः।
प्रच्छन्नरूपास्ताः सर्वा विचरन्ति महीतले ।। २३।।

अञ्जनाकर्षणाद्याश्च खेचरीप्रमुखा मुने।
सिद्धयः करगास्तासां यत्नतः[1] प्राविशेन्नरः ।। २४।।

गिरेश्च पूर्वभागे हि नाम्ना विष्णुनदो मुने।
पादुके विष्णुना त्यक्ते पुरा वै तत्र पर्वते ।। २५।।

तत्पूर्वोत्तरप्रदेशाद्धि समायाति रमा नदी।
तयोस्तु सङ्गमं पुण्यं विष्णुतीर्थमनुत्तमम् ।। २६।।

१. प्रविशन्ति हि

तदनन्तर यह माल्यवती का स्थान भोग और मोक्ष को देने वाला हुआ। यहां पूर्वकाल में ब्रह्मा ने अष्टमूर्ति (पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र और यजमान) रूप महादेव के दर्शन किये थे।।३१।।

पृथिवी आदि आठ मूर्तियों वाले परम ईश्वर महादेव को जहां देवताओं में ज्येष्ठ ब्रह्मा ने प्रसन्नता से देखा था, वहां उन्होंने अष्टमूर्ति शिव की स्थापना की।।३२।।

ब्रह्मा ने वहां पृथिवी पर अष्ट मूर्तीश्वर शिव की स्थापना की।।३३।।

उससे पश्चिम दिशा में कूटाद्रि के निकट परम माहात्म्य वाली रौद्री नाम की शिला है। यह सब मंगलों को देने वाली है।।३४।।

उससे दक्षिण दिशा में यक्षराज मणिभद्र की तपस्या का स्थल है। पूर्वकाल में यहां मणिभद्र यक्ष ने प्रसन्नता से शिव की आराधना की थी।।३५।।

वह यक्षिणी का जप और तप का स्थान शुभदायक है। वहां ग्रीष्म ऋतु में भी अति शीतल रहने वाला दिव्य जल का स्थान है।।३६।।

सब पापों का विनाश करने वाला वह दिव्य जल हेमन्त ऋतु में उष्ण रहता है।

उस दिव्य जल के पश्चिम दिशा में पर्वत के शिखर पर पर्णवन नाम से प्रसिद्ध वन है। उसमें उमापति शिव के चरण निहित हैं।।३७।।

मुनियों से वन्दित हे नारद ! वहां देवी अपर्णा (पार्वती) ने निश्चय से क्रीडा की थी, अत: उसका नाम पर्णवन प्रसिद्ध हुआ। यह दिव्य भोगों को देने वाला है।।३८।।

उससे उत्तर दिशा में विरागिणी की तपस्या का स्थल है। उत्तम कुल में उत्पन्न, धर्म में तत्पर कोई ब्राह्मणी विरागिणी नाम से प्रसिद्ध हुईं उसने यहां पूर्व काल में तप किया था।।३९।।

उससे ऊपर पर्वत पर शूलेश्वरी देवी हैं। उसके दर्शन मात्र से मनुष्य सब सिद्धियों का स्वामी हो जाता है।।४०।।

उससे भी उत्तर देश में गोवर्धन नाम का पर्वत है। वहां सबके द्वारा नमस्कार किये जाने वाले गोवर्धन शिव रहते हैं।।४१।।

उनके पूजन से मनुष्य रुद्रलोक में महिमा को प्राप्त करता है। पापों को नष्ट करने वाला यह सारा पवित्र वृत्तान्त मैंने तुमसे कह दिया है।।४२।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में माल्यवतीश्वर-माहात्म्यवर्णन नाम का १४७ वां अध्याय समाप्त हुआ ।।

अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भास्करक्षेत्रस्थितभास्करेश्वरमाहात्म्यकथनम्, महातपोमुनितपःसन्तुष्टायाः गङ्गायाः गोमुखनिःसरणात् गोमुखेति प्रथां गतस्य तत्क्षेत्रस्य माहात्म्यकथनम्

स्कन्द उवाच-

अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि भास्करं क्षेत्रमुत्तमम्।
ततो वै दक्षिणे भागे गव्यूतिपरिनिष्ठिलम्।।१।।

पुरा तत्र महादेवः संस्तुतः परमेश्वरः।
भास्करेण महाभाग दिव्यवर्षसहस्रकम्।।२।।

सन्तुष्टश्च तदा तस्मै ददौ नेत्रस्थितिं मुने।
गङ्गायाः पश्चिमे तीरे तीर्थं पापप्रणाशनम्।।३।।

तत्रैव भास्करं कुण्डं यत्र वै स्नानमात्रतः।
रविलोकं मुने गत्वा ततः शिवपुरे वसेत्।।४।।

इदं वै भास्करं क्षेत्रं शिवस्थानं स्मृतं परम्।
नाम्ना तत्र महादेवो विप्रर्षे भास्करेश्वरः।।५।।

पूजयित्वा विधानेन शतरुद्रियकेन वै।
प्राप्नोति परमं स्थानं महाराजस्ततो भवेत्।।६।।

ततो वै दक्षिणे भागे विष्णुकुण्डमिति स्मृतम्।
तत्र स्नानान्नरो याति वैकुण्ठं स्थानमच्युतम्।।७।।

तत्रैव दण्डषट्के वै ब्रह्मकुण्डमिति स्मृतम्।
स्नानमात्रेण तत्राऽपि ब्रह्मलोके महीयते।।८।।

ततो दक्षिणके भागे नवला च नदी स्मृता।
सूर्यलोकमवाप्नोति तस्यां यः स्नानमाचरेत्।।९।।

इदं परमसंस्थानं महादेवस्य नारद।
एतन्न त्यजते विप्र चरमेऽपि युगे शिवः।।१०।।

अध्याय - १४८

भास्कर क्षेत्र स्थित भास्करेश्वर के माहात्म्य का वर्णन, महातपा नाम के मुनि के तप से सन्तुष्ट गङ्गा के यहां गोमुख से निकलने के कारण गोमुख नाम से प्रसिद्धि। उस क्षेत्र के माहात्म्य का कथन

स्कन्द ने कहा-

अब मैं तुमसे उत्तम भास्कर क्षेत्र का वृत्तान्त वर्णित करूंगा। यह माल्यवतीश्वर से दक्षिण भाग में एक गव्यूति क्षेत्र में फैला हुआ है।।१।।

पूर्वकाल में वहां, हे महाभाग नारद ! भास्कर (सूर्य) ने एक सहस्त्र दिव्य वर्षों तक परमेश्वर महादेव की स्तुति की थी।।२।।

हे मुने ! तब सन्तुष्ट होकर शिव ने उसको नेत्रों में स्थिति प्रदान की (सूर्योदय होने पर ही मनुष्य नेत्रों से देख सकते हैं)। गङ्गा के पश्चिमी तट पर वह पापों को नष्ट करने वाला तीर्थ है।।३।।

हे मुने ! वहीं पर भास्कर कुण्ड है। उसमें स्नान करने से ही मनुष्य पहले सूर्यलोक में जाकर तदनन्तर शिवलोक में निवास करता है।।४।।

यह भास्कर क्षेत्र निश्चय से शिव का परम स्थान है। हे विप्रर्षे ! यहां महादेव भास्करेश्वर नाम से स्थित हैं।।५।।

यहां शतरुद्रिय मन्त्रों से विधिपूर्वक शिव का पूजन करके मनुष्य परम स्थान को प्राप्त करता है। तदनन्तर वह महाराज होता है।।६।।

उससे दक्षिण दिशा में विष्णुकुण्ड है। वहां स्नान करने से मनुष्य विष्णु के पास वैकुण्ठलोक में जाता है।।७।।

वहीं पर छः दण्ड दूर ब्रह्मकुण्ड है। वहां स्नान करने से मनुष्य ब्रह्मलोक में जाकर महिमा को प्राप्त करता है।।८।।

उससे दक्षिण दिशा में नवला नाम की नदी है। उसमें स्नान करने वाला व्यक्ति सूर्यलोक को प्राप्त करता है।।९।।

हे नारद ! यह महादेव का परम स्थान है। हे विप्र ! शिव इस स्थान को कलियुग में भी नहीं छोड़ते।।१०।।

अत्र स्नानात्तथा दानात्तथा मन्त्रजपान्मुने।
अधिकं पुण्यमाप्नोति क्षेत्राद्देवप्रयागतः।।११।।

ततो वै पूर्वदिग्भागे महादेव्याश्च दक्षिणे।
महातपा मुनिस्तत्र गङ्गामाराधयत्पुरा।।१२।।

तपस्तेपे दुराधर्षं दुर्गम्यं प्राकृतैर्जनैः।
ततः कतिपयैर्वर्षैस्सन्तुष्टा जाह्नवी परा।।१३।।

गोमुखान्निस्सृता गङ्गा सर्वपापप्रणाशिनी।
ऋषीणां पश्यतां तत्र जातमद्भुतकं महत्।।१४।।

इति तत्परमाश्चर्यं दृष्ट्वा विस्मयमाययुः।
क्षेत्रनाम च सञ्चक्रुर्यस्माद् गोमुखतो गता।
तस्माद्गोमुखकं क्षेत्रं सर्वपापप्रणाशनम्।।१५।।

नारद उवाच-

अस्ति किञ्चित्परं स्थानं नाम्ना देवप्रयागकम्।
यत्त्वया कथितं पुण्यमत्र स्नानात्ततोऽधिकम्।।१६।।

कुत्र तद्विद्यते क्षेत्रं महादेवस्य सुप्रियम्।
कस्य स्थानं तदाख्यातं तन्मे वद सुविस्तरात्।।१७।।

स्कन्द उवाच-

इदं परमकं क्षेत्रं गुह्यं नैव प्रकाशितम्।
यत्र तप्त्वा बलिः पूर्वं प्राप चैन्द्रं पदं महत्।।१८।।

यत्र ब्रह्मादयो देवाः सङ्गता मुक्तिलालसाः।
शिवतीर्थमिति ख्यातं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्।।१९।।

यत्र दर्शनमात्रेण नश्यन्ते पापराशयः।
किं पुनः सेवनात्तस्य क्षेत्रराजस्य नारद।।२०।।

सीता भगवती साक्षात्तथा नारायणः स्वयम्।
यत्रास्ते सर्वदेवानां पूजिताङ्घ्रिसरोरुहः।।२१।।

हे मुने ! यहां स्नान करने, दान देने और मन्त्र का जप करने से मनुष्य देवप्रयाग क्षेत्र से भी अधिक पुण्य प्राप्त करता है।।११।।

उस भास्कर क्षेत्र से पूर्व दिशा में और महादेवी के क्षेत्र से दक्षिण दिशा में पूर्वकाल में महातपा नाम के मुनि ने गङ्गा की आराधना की थी।।१२।।

उसने सामान्य जनों के लिये दुर्लभ कठोर तप किया था। तदनन्तर कुछ वर्षों में परा जाह्नवी प्रसन्न हुईं।।१३।।

वहां ऋषियों के देखते देखते यह अद्भुत बात हुई कि सब पापों का विनाश करने वाली गङ्गा गोमुख पर्वत से निकली।।१४।।

इस परम आश्चर्य की बात को देखकर सब विस्मित हो गये। क्योंकि वहां गङ्गा गोमुख के आकार के पर्वत से निकली थीं, अत: उन्होंने इस क्षेत्र का नाम गोमुख क्षेत्र रखा। यह सब पापों को नष्ट करने वाला है।।१५।।

नारद ने कहा-

कोई देवप्रयाग नाम का परम स्थान है, जिसके लिये तुमने कहा है कि नवला नदी में स्नान करने से वहां से भी अधिक पुण्य मिलता है।।१६।।

महादेव का अति प्रिय वह क्षेत्र कहां है ? वह किसका स्थान कहा गया है ? इस बात को तुम मुझे विस्तार से बताओ।।१७।।

स्कन्द ने कहा-

यह परम क्षेत्र गुप्त रखने योग्य है, प्रकाशित नहीं हुआ है। पूर्वकाल में यहां बलि ने तपस्या करके इन्द्र का पद पाया था।।१८।।

यहां मुक्ति की अभिलाषा करने वाले ब्रह्मा आदि देवता एकत्रित हुये थे। यह शिवतीर्थ कहा गया है, जो सब उत्तम तीर्थों में भी उत्तम है।।१९।।

हे नारद ! जिस तीर्थराज के दर्शन मात्र से ही सब पापों की राशियां नष्ट हो जाती हैं, उसके सेवन करने का तो कहना ही क्या है ?।।२०।।

सब देवताओं द्वारा जिनके चरण-कमलों का पूजन किया जाता है, ऐसी भगवती सीता और साक्षात् स्वयं नारायण यहां विद्यमान हैं।।२१।।

अन्यैश्च भातृभिः सार्द्धं तथा हनुमता द्विज।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च त्रयो देवा इह स्थिताः।।२२।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे भास्करक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं
नामाऽष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।

एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

भास्करक्षेत्रस्य पश्चिमभागे घण्टाकर्णभैरवस्य स्थानस्य कथनम्, गङ्गाद्वारपूर्वतोऽलकनन्दागङ्गासङ्गमे च देवप्रयागमाहात्म्यकथनम्

स्कन्द उवाच-

ततो वै पश्चिमे भागे घण्टाकर्ण इति स्मृतः।
भैरवो भीषणाकारः सर्वसत्त्वभयङ्करः।।१।।

तस्य पूजनमात्रेण सर्वसम्पन्मयो भवेत्।।२।।

पूर्वभागेऽपि तस्याऽपि पर्वताऽधो व्यवस्थिता।
नाम्ना कन्दुमती ख्याता सर्वपापप्रणाशिनी।।३।।

तत्रैका च महाभाग शिला ब्राह्मी परा मता।
तस्या दर्शनमात्रेण ब्रह्मलोके महीयते।।४।।

ततो वै पश्चिमे याम्ये नदी मोक्षवती परा।
गङ्गायां सङ्गमे यत्र मोक्षतीर्थं तु तत्स्मृतम्।।५।।

तत्र स्नानान्नरो याति परब्रह्मणि लीनताम्।
तत्र मोक्षेश्वरं लिङ्गं भक्तमोक्षप्रदायकम्।।६।।

तस्य दर्शनमात्रेण नरो ब्रह्मत्वमाप्नुयात्।।७।।

सूत उवाच-

श्रुत्वा धर्म्माश्च माहात्म्यं तीर्थानां मुनिसत्तमाः।
स्कन्दं वै पार्वतीपुत्रं पुनः पप्रच्छ नारदः।।८।।

हे द्विज नारद ! वे रामरूप नारायण यहां अन्य भाइयों एवं हनूमान के साथ रहते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र तीनों देव यहां स्थित हैं।।२२।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में भास्करक्षेत्रमाहात्म्यवर्णन नाम का १४८ वां अध्याय पूरा हुआ।।

अध्याय - १४९

भास्कर क्षेत्र के पश्चिम भाग में घण्टाकर्ण नाम के भैरव के स्थान का वर्णन, गङ्गाद्वार के पूर्व में अलकनन्दा-गङ्गा के सङ्गम पर देवप्रयाग के माहात्म्य का कथन

स्कन्द ने कहा-

उस देवप्रयाग क्षेत्र से पश्चिम भाग में भीषण आकार का और सब प्राणियों में भयंकर घण्टाकर्ण नाम का भैरव है।।१।।

उसका पूजन करने से मनुष्य को सब सम्पत्तियां प्राप्त होती हैं।।२।।

उसके पूर्वभाग में पर्वत के नीचे स्थित, सब पापों को नष्ट करने वाली कन्दुमती नाम की नदी बहती है।।३।।

हे महाभाग नारद ! वहाँ ब्राह्मी नाम की एक परम माहात्म्य वाली शिला है। उसका दर्शन करने से मनुष्य ब्रह्मलोक में महिमा को प्राप्त करता है।।४।।

उस ब्राह्मी शिला से पश्चिम-दक्षिण दिशा में मोक्षवती नाम की नदी है। उसका जहां गङ्गा में संगम होता है, उस स्थान को मोक्षतीर्थ कहते हैं।।५।।

वहां स्नान करने से मनुष्य परब्रह्म में लीन हो जाता है। वहां मोक्षेश्वर नाम का लिंग है। वह भक्तों को मोक्ष प्रदान करता है।।६।।

उसके दर्शनमात्र से मनुष्य ब्रह्मत्व को प्राप्त करता है।।७।।

सूत ने कहा-

धार्मिक वृत्तान्तों को और तीर्थों के माहात्म्य को सुन कर, हे मुनिश्रेष्ठो ! नारद ने पार्वतीपुत्र स्कन्द से पुनः पूछा।।८।।

नारद उवाच-

श्रुतास्त्वयोदिता धर्मा माहात्म्यानि श्रुतानि वै।
शंस मे देवशार्दूल यत्पृच्छामि भवापहम्।।९।।

प्रश्नवाक्यं महाभाग पुनाति च जगत्त्रयम्।
वक्तारं पृच्छकं वाऽपि श्रोतारं भगवत्प्रिय।।१०।।

स्वल्पाद्वै दर्शनाद्यस्य नरो याति परां गतिम्।
अपि पातकयुक्तो हि जायते भगवद्गतिः।।११।।

यत्र नित्यं दाशरथिर्वसते सीतया सह।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा भरतेन हनूमता।।१२।।

शत्रुघ्नेन च सर्वैश्च भक्तैर्मुनिगणैस्तथा।
स्थले वै देवशार्दूल रामो नारायणः स्वयम्।।१३।।

तद्वदस्व महाभाग तीर्थानां तीर्थमुत्तमम्।
यस्य दर्शनमात्रेण नश्यन्ति दुरितानि वै।।१४।।

तीर्थानां पुण्यमाहात्म्यं वक्ता नान्योऽस्ति कुत्रचित्।।
शिष्योऽहं तव हे स्कन्द दयां कुरु गणेश्वर।।१५।।

स्कन्द उवाच-

धन्योऽसि मुनिशार्दूल भक्तो नाऽन्यो भवादृशः।
यस्येयं नैष्ठिकी बुद्धिर्जाता वै तीर्थसेवने।।१६।।

यत्र सन्निहितो रामस्तद्वदामि महामुने।
नानारूपेण भगवान् मायया बहुरूपया।।१७।।

अयोध्या मथुरा काशी द्वारका सेतुबन्धकः।
काञ्ची गया कुरुक्षेत्रं बदर्याश्रम एव च।।१८।।

गङ्गाद्वारं प्रयागश्च मायाक्षेत्रं तथैव च।
देवप्रयागतीर्थं च तीर्थानां तीर्थमुत्तमम्।।१९।।

एवमादीनि तीर्थानि वर्त्तन्ते मुनिसत्तम।
हरेर्वासस्थलान्येव कथितानि मयाऽनघ।।२०।।

नारद ने कहा-

देवताओं में श्रेष्ठ हे स्कन्द ! तुम्हारे द्वारा कहे गये धर्म के वृत्तान्तों को और तीर्थों के माहात्म्यों को मैंने सुना है। अब भव-बन्धन को दूर करने वाली जो बात मैं पूछता हूं, उसको कहो।।९।।

हे भगवत्प्रिय स्कन्द महाभाग ! यह प्रश्न वाक्य तीनों लोकों को पवित्र करता है। यह कहने वाले को, पूछने वाले को और श्रोता को, सभी को पवित्र करता है।।१०।।

जिसके स्वल्प दर्शन से भी मनुष्य को परम गति मिलती है। पापी मनुष्य भी यहां भगवान् को प्राप्त करता है।।११।।

जहां सीता, लक्ष्मण, भाई भरत और हनुमान् के साथ दशरथ-पुत्र राम नित्य निवास करते हैं।।१२।।

हे देवताओं में श्रेष्ठ स्कन्द ! यहां देवप्रयाग क्षेत्र में शत्रुघ्न के साथ, सब भक्तों और मुनियों के साथ स्वयं नारायण राम निवास करते हैं।।१३।।

हे महाभाग ! इसलिये तीर्थों में उत्तम तीर्थ देवप्रयाग का वर्णन कीजिये, जिसके दर्शनमात्र से सब पाप-कष्ट नष्ट हो जाते है।।१४।।

तीर्थों का माहात्म्य का वर्णन करने वाला तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है। हे गणेश्वर स्कन्द ! मैं तुम्हारा शिष्य हूँ। मुझ पर दया करो।।१५।।

स्कन्द ने कहा-

हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम धन्य हो। तुम्हारे समान अन्य भक्त नहीं है, जिसकी तीर्थों का सेवन करने के लिये इस प्रकार की नैष्ठिक बुद्धि हुई है।।१६।।

हे महामुने ! जहां कि विविध रूप से बहुत रूपों वाली माया से भगवान् राम सन्निहित रहते हैं, उस देवप्रयाग क्षेत्र का मैं वर्णन करूंगा।।१७।।

अयोध्या, मथुरा, काशी, द्वारका, सेतुबन्ध रामेश्वर, काञ्ची, गया, कुरुक्षेत्र और बदरिकाश्रम......।।१८।।

गङ्गाद्वार (हरिद्वार), प्रयाग, मायाक्षेत्र और देवप्रयाग ये तीर्थ सभी तीर्थों में उत्तम हैं।।१९।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार ये और अन्य सब उत्तम तीर्थ हैं। हे निष्पाप नारद ! हरि के निवास स्थल इन तीर्थों का मैंने वर्णन कर दिया है।।२०।।

नारद उवाच-

त्वत्तः श्रुतानि देवेश माहात्म्यानि बहूनि च।
तीर्थानां पार्वतीपुत्र कष्टदानां महामते।।२१।।

विनाऽऽयासेन देवेश नरो याति परां गतिम्।
यत्र देवो जगन्नाथो नित्यं सन्निहितो भवेत्।।२२।।

कथयस्व प्रसादेन यदि भक्तेषु ते दया।
शृण्वन्वै तीर्थमाहात्म्यं तृप्तिर्मे जायते न हि।।२३।।

स्कन्द उवाच-

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि तीर्थानां तीर्थमुत्तमम्।
यस्य दर्शनमात्रेण हरौ भक्तिः प्रजायते।।२४।।

गङ्गाद्वारात्पूर्वभागे श्रीगङ्गाऽलकनन्दयोः।
सङ्गमो यत्र देशे तु देवप्रयागसञ्ज्ञकः।
वदंति मुनयः सर्वे हरिभक्तिपरायणाः।।२५।।

यस्य दर्शनमात्रेण स्मरणादपि नारद।
पातकानि प्रणश्यन्ति ब्रह्महत्यासमानि वै।
सूर्योदयादन्धकारं यथाग्नेस्तूलराशयः।।२६।।

यथा नदीनां गङ्गा हि पर्वतानां हिमालयः।
अरण्यानां तथाऽरण्यं नैमिषारण्यमुच्यते।।२७।।

शिलानां च यथा विप्र शालिग्रामशिला किल।
देवानां च यथा विष्णुर्वैष्णवानां यथा भवान्।।२८।।

तपतां तु यथा सूर्यो नक्षत्राणां यथा शशी।
चतुष्पदां यथा गावो नराणां ब्राह्मणः स्मृतः।।२९।।

तथा वै सर्वतीर्थानां देवतीर्थं प्रशस्यते।
अहोभाग्यमहोभाग्यं वसतां देवतीर्थके।।३०।।

अस्मिंस्तीर्थे महाभाग कृतं तत्सर्वमक्षयम्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नाऽस्मिन्पापं समाचरेत्।।३१।।

नारद ने कहा-

हे देवेश महामते पार्वतीपुत्र ! मैंने कष्ट देने वाले भी तीर्थों के बहुत से माहात्म्यों को आपसे सुन लिया है।।२१।।

हे देवेश ! जहां जगन्नाथ विष्णु राम सदा सन्निहित रहते हैं, वहां मनुष्य विना प्रयास के भी परम गति को प्राप्त करता है।।२२।।

यदि भक्तों पर तुमको दया है, तो कृपा करके कहिये। तीर्थों के माहात्म्य को सुनते हुये मुझको तृप्ति नहीं हो रही है।।२३।।

स्कन्द ने कहा-

हे विप्र नारद ! सुनो। मैं तीर्थों में उत्तम तीर्थ देवप्रयाग का वर्णन करूंगा, जिसके दर्शनमात्र से विष्णु के प्रति भक्ति उत्पन्न होती है।।२४।।

विष्णु के प्रति भक्ति रखने वाले सब मुनि यह कहते हैं कि गङ्गाद्वार के पूर्व में श्रीगङ्गा और अलकनन्दा का संगम है। इस देश का नाम देवप्रयाग है।।२५।।

हे नारद ! जिस प्रकार सूर्योदय से अन्धकार और अग्नि से रुई के ढेर नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार उस देवप्रयाग क्षेत्र के दर्शनमात्र से और स्मरण करने से भी ब्रह्महत्या के समान भी पाप निश्चय से नष्ट हो जाते हैं।।२६।।

जिस प्रकार नदियों में गङ्गा, पर्वतों में हिमालय और अरण्यों में नैमिषारण्य को श्रेष्ठ कहा जाता है।।२७।।

हे विप्र ! जिस प्रकार शिलाओं में शलिग्राम शिला, देवताओं में विष्णु और वैष्णवों में आपको श्रेष्ठ कहा जाता है।।२८।।

तपने वालों में सूर्य, नक्षत्रों में चन्द्रमा, चौपायों में गौ और मनुष्यों में ब्राह्मण को श्रेष्ठ कहा जाता है।।२९।।

उसी प्रकार तीर्थों में देवप्रयाग तीर्थ की प्रशंसा की जाती है। देवप्रयाग तीर्थ में रहने वालों का अहोभाग्य है, अहोभाग्य है।।३०।।

हे महाभाग नारद ! इस तीर्थ में किये गये सब कार्य अक्षय होते हैं। अतः सब प्रकार से प्रयत्न करके यहां पाप का आचरण न करे।।३१।।

यैः कृतं पिण्डदानं हि तीर्थे देवप्रयागके।
पितृकार्यं मुनिश्रेष्ठ कर्तव्यं न हि विद्यते।।३२।।

चातुर्मास्यं तु यैः स्नातं तीर्थेऽस्मिन्प्रवरे मुने।
ते वै रघुवरश्रेष्ठा भाग्यवन्तो भवन्ति हि।।३३।।

अस्य तीर्थस्य माहात्म्यं वक्तुं शतमुखैरपि।
क्षमो न हि त्रिलोकेऽस्मिन्विद्यते मुनिसत्तम।।३४।।

यत्र वै जाह्नवी साक्षादलकनन्दा समन्विता।
यत्र रामः स्वयं साक्षात्ससीतश्च सलक्ष्मणः।।३५।।

तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं वक्तुं को वा क्षमो भवेत्।
सममनेन तीर्थेन न भूतो न भविष्यति।।३६।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कलावेतदुपाश्रयेत्।
अज्ञानाज्ज्ञानतो वाऽपि स्नानमात्रेण नारद।
शुद्ध्यन्ति पापिनः सर्वे हन्तारोऽपि तपस्विनाम्।।३७।।

मासमात्रेण[1] यः कश्चिद्रामं ज्ञात्वा हृदीश्वरम्।
स्नानं करोति गङ्गायां नरो नाके महीयते।।३८।।

तत्र धन्यं महाभाग भारतं वर्षमीरितम्।
तत्र धन्यो महाभाग हिमवद्देशसञ्ज्ञकः।।३९।।

तत्राऽपि धन्या ते देशा यत्र गङ्गा सरिद्वरा।
हरेः सान्निध्यकं स्थानं तत्राऽपि हि मुनीश्वर।।४०।।

एतत्सर्वं महाभाग देवतीर्थे हि विद्यते।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तीर्थमेतदुपाश्रयेत्।।४१।।

ब्रह्मकुण्डे नरः स्नात्वा जायते न च जन्मने।
यत्र ब्रह्मा महाभाग तपः कृत्वा सुदारुणम्।
नाम चक्रेऽस्य तीर्थस्य ब्रह्मकुण्डेति विश्रुतम्।।४२।।

शिवं तीर्थं मुने ख्यातं गङ्गाया उत्तरे तटे।
सङ्गमाच्छरविक्षेपमात्रं तद्विद्यते बुध।।४३।।

---

१. मात्रे तु

हे मुनिश्रेष्ठ नारद ! जिन्होंने देवप्रयाग तीर्थ में पितरों के लिये पिण्डदान कर लिया है, उनको अन्य कोई कार्य अवशिष्ट नहीं रह जाता।।३२।।

हे मुने ! जो मनुष्य इस श्रेष्ठ तीर्थ में चातुर्मास स्नान कर लेते हैं, वे भगवान् रघुवर राम के श्रेष्ठ भक्त हैं और निश्चय से भाग्यवान् हैं।।३३।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! तीनों लोकों में कोई भी व्यक्ति इस तीर्थ के माहात्म्य को सौ मुखों से भी कहने में समर्थ नहीं है।।३४।।

जहांकि साक्षात् जाह्नवी और अलकनन्दा का संगम हुआ है, जहांकि सीता और लक्ष्मण के साथ साक्षात् राम स्वयं निवास करते हैं।।३५।।

उस तीर्थ के माहात्म्य का कथन करने में कौन समर्थ हो सकता है? इस तीर्थ के समान अन्य तीर्थ न तो हुआ है और न होगा।।३६।।

इसलिये कलियुग में सब प्रकार से प्रयत्न करके इसका आश्रय लेना चाहिये। हे नारद ! जान कर अथवा अनजाने भी इसमें स्नान करने से तपस्वियों की हत्या करने वाले सब पापी भी शुद्ध हो जाते हैं।।३७।।

राम को हृदय का ईश्वर मानकर जो मनुष्य एक मास तक भी गङ्गा में स्नान करता है, वह स्वर्गलोक में महिमा को प्राप्त करता है।।३८।।

हे महाभाग नारद ! वहां भी भारतवर्ष को धन्य कहा गया है। हे महाभाग ! वहां भी हिमालय देश को धन्य माना गया है।।३९।।

हे मुनीश्वर नारद ! वहां भी वे देश धन्य हैं, जहां नदियों में श्रेष्ठ गङ्गा है। वहां भी वह स्थान धन्य है, जहां विष्णु का सान्निध्य होता है।।४०।।

हे महाभाग ! यह सब देवप्रयाग तीर्थ में विद्यमान है। अतः सब प्रकार के प्रयत्नों से देवप्रयाग तीर्थ का आश्रय लेना चाहिये।।४१।।

ब्रह्मकुण्ड में स्नान करने पर मनुष्य का पुनर्जन्म नहीं होता। हे महाभाग ! यहां ब्रह्मा ने अति कठोर तप करके इस तीर्थ का नाम रखा था, अतः यह ब्रह्मकुण्ड नाम से प्रसिद्ध हुआ।।४२।।

हे मुने ! गङ्गा के उत्तरी तट पर शिवतीर्थ प्रसिद्ध है। हे विद्वान् नारद ! वह संगम से एक शरविक्षेप दूर है।।४३।।

तन्मज्जनान्मुनिश्रेष्ठ कीटोऽपि शिवतां व्रजेत्।
यत्र साक्षान्महादेवो नित्यं वसति पापहा।।४४।।

गङ्गाया मध्यदेशे तु शतहस्तप्रमाणतः।
स्वयम्भूः शिवलिङ्गं वै दृश्यते पुण्यकर्मभिः।।४५।।

उदग्देशे तु गङ्गायाः शिला वैतालिकी स्मृता।
शिवतीर्थात् क्रोशखण्डप्रमाणे हि निगद्यते।।४६।।

दर्शनात्स्पर्शनात्तस्या महापातकवानपि।
सद्यः शुद्धिं प्रयात्येव सलिलाद् वसनानि वै।।४७।।

तत्रैवाऽऽस्ते महाभाग कुण्डं वेतालसञ्ज्ञकम्।
तत्र स्नात्वा दिनानां तु पञ्चकं शुद्धिमाप्नुयात्।।४८।।

तस्मात्पृषत्कमात्रं[1] तु सूर्यकुण्डमिति स्मृतम्।
यत्र मेधातिथिर्नाम ब्राह्मणो मुनिसत्तमः।
चकार सुतपस्तीव्रं ध्यायन्वै मनसा रविम्।।४९।।

सन्तुष्टो भास्करः प्रादाद् वरं त्रैलोक्यदुर्लभम्।
सूर्यकुण्डे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते।।५०।।

एतत्ते सर्वमाख्यातं गङ्गाया उत्तरे तटे।
तीर्थानि प्रवराण्येव कथितानि मया मुने।।५१।।

अथ दक्षिणदिग्भागे गङ्गायाः मुनिसत्तम।
ब्रह्मकुण्डादूर्ध्वभागे चतुर्हस्तप्रमाणतः।
वासिष्ठं तीर्थमाख्यातं भुक्तिमुक्तिप्रदं मुने।।५२।।

वासिष्ठतीर्थादुपरि वाराहमिति विश्रुतम्।
विंशतिर्गुणिना चेदं तावद्धस्तप्रमाणके।।५३।।

गङ्गामध्ये तु वाराही शिला स्पर्शाद्विमुक्तिदा।
तां दृष्ट्वाऽपि नरो भक्त्या लोकानाप्नोति शाश्वतान्।।५४।।

सूर्यकुण्डमिति ख्यातं तस्माद्दण्डचतुष्टये।
यत्र सूर्यः स्वयं ब्रह्मन् वसतीति श्रुतं मया।।५५।।

---
१ मात्रे

हे मुनिश्रेष्ठ ! वहां स्नान करने से कीड़ा भी शिवत्व को प्राप्त करता है। यहां पापों को नष्ट करने वाले महादेव नित्य निवास करते हैं।।४४।।

गङ्गा के मध्य भाग में सौ हाथ नाप का स्वयम्भू शिवलिंग है, जो पुण्यकर्म करने वालों को ही दिखाई देता है।।४५।।

वहां से गङ्गा की उत्तर दिशा में वैताल शिला है। यह शिवतीर्थ से एक कोस दूर है।।४६।।

जिस प्रकार जल से वस्त्र स्वच्छ हो जाते हैं, इसी प्रकार वैताल शिला के स्पर्श करने और दर्शन करने से महापापी मनुष्य भी तत्काल शुद्ध हो जाता है।।४७।।

हे महाभाग नारद ! वहीं वेताल नाम का कुण्ड है। वहां पांच दिन स्नान करके मनुष्य शुद्ध हो जाता है।।४८।।

उससे एक पृषत्क (शरविक्षेप) दूर सूर्यकुण्ड है। यहां मेधातिथि नाम के श्रेष्ठ मुनि ने मन से सूर्य का ध्यान करते हुये कठोर तप किया था।।४९।।

सन्तुष्ट होकर सूर्य ने उसको तीनों लोकों में दुर्लभ वर दिया था। सूर्यकुण्ड में स्नान करके मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है।।५०।।

हे मुने ! यह मैंने गङ्गा के उत्तरी तट पर सब प्रधान तीर्थों का तुमसे वर्णन कर दिया है।।५१।।

हे मुनिश्रेष्ठ नारद ! गङ्गा के दक्षिणी तट पर ब्रह्मकुण्ड से ऊपर के भाग में चार हाथ प्रमाण का वासिष्ठ तीर्थ कहा गया है। हे मुने ! यह तीर्थ भोगों और मोक्ष का देने वाला है।।५२।।

वासिष्ठ तीर्थ से ऊपर के भाग में वाराह तीर्थ है। वह बीस हाथ प्रमाण का है।।५३।।

गङ्गा के मध्य में वहां वाराही शिला है। स्पर्श करने से यह मोक्ष प्रदान करती है। जो मनुष्य भक्ति-भाव से इसका दर्शन भी कर लेता है, वह शाश्वत लोकों को प्राप्त करता है।।५४।।

इस वाराही शिला से चार दण्ड दूर सूर्यकुण्ड प्रसिद्ध है। हे ब्रह्मन् नारद ! मैंने सुना है कि यहां स्वयं सूर्य निवास करते हैं।।५५।।

यत्र स्नात्वा महाभाग मुक्तिं प्राप द्विजाधमः।
चाण्डाल्या सह भो ब्रह्मन् कृतपरिग्रहोऽपि सन्।।५६।।

ततोऽपि मुनिशार्दूल शरविक्षेपमात्रके।
पौष्पमालमिति ख्यातं तीर्थानां तीर्थमुत्तमम्।।५७।।

पुष्पमालेति नाम्ना वै किन्नरी प्रमदोत्तमा।
प्राप मोक्षं तु वै धात्रा यत्र ब्राह्मणशापिता।।५८।।

प्राप वै मज्जनासक्ता तद्विष्णोः परमं पदम्।।५९।।

तदूर्ध्वं दण्डषट्के हि इन्द्रद्युम्नतपःस्थलम्।
यत्र तप्त्वा मुनिश्रेष्ठस्तपः परमदारुणम्।
नाम चक्रेऽस्य तीर्थस्य इन्द्रद्युम्नमिति श्रुतम्।।६०

यन्मज्जनान्मुनिश्रेष्ठ पापानां च विनाशनम्।।६१।।

बिल्वतीर्थं मुने ख्यातं क्रोशार्द्धे शिवदायकम्।
यत्र साक्षान्महादेवः स्वयं वसति सर्वदा।।६२।।

शिवमन्त्रं जपन्विप्र स्नात्वा वै जाह्नवीजले।
दशरात्रेण लभते सिद्धिं नारददुर्लभाम्।।६३।।

इति ते कथिताऽन्यत्र गङ्गोर्ध्वे तीर्थकानि हि।
अधो भागे तु सङ्गम्य तीर्थानि प्रवराणि च।
सङ्गमाद् गव्यूतिमात्रं त्वधोभागो निगद्यते।।६४।।

देवप्रयागके क्षेत्रमूर्ध्वभागं तथा स्मृतम्।
एतत्पुण्यतमं स्थानमेवमाह सदाशिवः।।६५।।

सूत उवाच-

इत्युक्त्वा विररामाऽथ कार्त्तिकेयो महाद्युतिः।
पुनः पप्रच्छ वैधात्रो विस्तरेण तपोधनाः।।६६।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे देवप्रयागमाहात्म्यवर्णनं
नाम एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।।

हे ब्रह्मन् महाभाग ! चाण्डाली के साथ विवाह करके भी नीच ब्राह्मण ने यहां स्नान करके मुक्ति को प्राप्त किया था।।५६।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! वहां से एक शरविक्षेप दूर पौष्पमाल नाम का तीर्थ है, जो सब तीर्थों में उत्तम तीर्थ है।।५७।।

यहां पुष्पमाला नाम की सुन्दर किन्नरी प्रमदा ने ब्राह्मण से शाप पाने के उपरान्त विधाता की कृपा से मोक्ष पाया था।।५८।।

उसने यहां निमज्जन करके विष्णु के परम पद को प्राप्त किया था।।५९।।

उससे ऊपर छः दण्ड दूर इन्द्रद्युम्न की तपस्या का स्थल है। यहां उस मुनिश्रेष्ठ ने परम दारुण तप किया था और इस तीर्थ का नाम इन्द्रद्युम्न रखा था, यह सुना जाता है।।६०।।

हे मुनिश्रेष्ठ नारद ! इस तीर्थ में स्नान करने से पाप नष्ट हो जाते हैं।।६१।।

हे मुने ! इससे आधे कोस दूर शिव को प्रदान करने वाला बिल्वतीर्थ प्रसिद्ध है। यहां साक्षात् महादेव सदा स्वयं निवास करते हैं।।६२।।

हे विप्र नारद ! शिव का मन्त्र जपते हुये जाह्नवी के जल में स्नान करके मनुष्य दस रात्रियों में दुर्लभ सिद्धि को प्राप्त करता है।।६३।।

इस प्रकार मैंने तुमसे गङ्गा के ऊपर के भाग के तीर्थों को कह दिया है। संगम से नीचे के भाग में भी श्रेष्ठ तीर्थ हैं। संगम से एक गव्यूति (दो कोस) की दूरी तक का भाग अधोभाग कहलाता है।।६४।।

देवप्रयाग में जो ऊर्ध्व भाग है, वह अधिक पुण्यतम स्थान है, ऐसा सदाशिव कहते हैं।।६५।।

सूत ने कहा-

इस प्रकार वर्णन करके महातेजस्वी कार्तिकेय चुप हो गये। हे तपस्वियो! विधाता के पुत्र नारद ने पुनः विस्तार से पूछा।।६६।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में देवप्रयाग-
माहात्म्यवर्णन नाम का १४९ वां अध्याय पूरा हुआ।।

पञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय:

देवशर्मद्विजकामनापूरणाय श्रीरामस्य तदाश्रमनिवासेनाऽस्य भूभागस्य देवप्रयागेति नामनिरुक्तिः, तन्माहात्म्यवर्णन-प्रसङ्गेन चण्डवर्मनृपचरित्रवर्णनम्

नारद उवाच-

भगावञ्छ्रोतुमिच्छामि तीर्थानां तीर्थमुत्तमम्।
देवप्रयाग इति यद् भवता परिकीर्त्तितम्।।१।।

माहात्म्यं क्षेत्रराजस्य तस्योत्पत्तिं च मे वद।
तृप्तिर्न जायते स्वामिन् पायं पायं वचोऽमृतम्।।२।।

स्कन्द उवाच-

साधु साधु महाबाहो भक्तोऽसि मम सुव्रत।
लोकानां हितकामाय श्रीरामचरणाप्तये।
यत्त्वया परिपृष्टोऽहं विस्तरेण वदामि ते।।३।।

एकान्तस्थितयो: पित्रोर्मुखाद्यद्वै परिश्रुतम्।
तच्छृणुष्व महाप्राज्ञ स्थिरं कृत्वा मनो मुने।।४।।

कैलासशिखरासीनं देवं पृच्छति पार्वती।।५।।

देव्युवाच-

देव देव जगन्नाथ सुरासुरनिषेवित।
अनेकविधतीर्थानां क्षेत्राणां च मया प्रभो।
श्रुतानि त्वन्मुखादेव माहात्म्यानि सदाशिव।।६।।

श्रुतं वाशिष्ठकं तीर्थं धर्मक्षेत्रं तथैव च।
नद्यश्च पर्वतांश्चैव शिवो वर्णी मया प्रभो।।७।।

इदानीं श्रोतुमिच्छामि क्षेत्रराजं महेश्वर।
देवप्रयाग इति वै श्रूयते क्षेत्रमुत्तमम्।।८।।

तस्योत्पत्तिं च माहात्म्यं शिव विस्तरतो वद।।९।।

अध्याय - १५०

देवशर्मा नाम के ब्राह्मण की कामना को पूरा करने के लिये श्रीराम द्वारा वहां निवास करने से इस भूभाग का नाम देवप्रयाग प्रसिद्ध होना, उसके माहात्म्य का वर्णन करने के प्रसङ्ग में राजा चण्डवर्मा के चरित्र का वर्णन

नारद ने कहा-

हे भगवन् ! आपने जिस देवप्रयाग का वर्णन किया है, उस तीर्थों में उत्तम तीर्थ के विषय में विस्तार से सुनना चाहता हूँ। ।१। ।

इस क्षेत्रराज के माहात्म्य और उत्पत्ति के वृत्तान्त का वर्णन कीजिये। हे स्वामिन् ! आपके वचनरूपी अमृत को पी-पी कर भी मुझको तृप्ति नहीं हो रही है। ।२। ।

स्कन्द ने कहा-

हे महाबाहो ! साधु साधु। हे सुव्रत ! तुम मेरे भक्त हो। लोकों के हित की कामना से, श्रीराम के चरणों को प्राप्त करने के लिये, जो तुमने पूछा है, उसको विस्तार से कहता हूं। ।३। ।

एकान्त में स्थित माता-पिता के मुख से जो मैंने सुना है, हे महाप्राज्ञ मुने ! मन को स्थिर करके तुम उसको सुनो। ।४। ।

कैलाश के शिखर पर स्थित महादेव से पार्वती पूछती हैं। ।५। ।

देवी ने कहा-

देवदेव, जगन्नाथ, देव-दानवों से सेवित, प्रभो सदाशिव ! मैंने तुम्हारे मुख से ही अनेकविध तीर्थों के और क्षेत्रों के माहात्म्य को सुना है। ।६। ।

वर्णन करने वाले हे प्रभो हे शिव ! मैंने वासिष्ठ तीर्थ, धर्मक्षेत्र, नदियों और पर्वतों के तथा ब्रह्मचर्य व्रतधारी शिव के विषय में सुना है। ।७। ।

हे महेश्वर ! अब मैं क्षेत्रराज देवप्रयाग के विषय में सुनना चाहती हूं। देवप्रयाग को उत्तम क्षेत्र सुना जाता है। ।८। ।

हे शिव ! उसकी उत्पत्ति और माहात्म्य को विस्तार से कहिये। ।९। ।

कथं तस्याभिधेयं वै देवप्रयाग उच्यते।
प्रशंसन्ति कथं सर्वे रामभक्तिपरायणाः।।१०।।

यथा सन्निहितो रामस्तत्र वै केन हेतुना।
इति मे संशयं छिन्धि यदि चेन्मयि ते दया।।११।।

ईश्वर उवाच-

देवप्रयागसञ्ज्ञस्य माहात्म्यं शृणु सुव्रते।
देवदेवि महाभागे धन्याऽसि त्वं हि शैलजे।।१२।।

परोपकरणे जातं यदीयं मानसं शिवे।
देवप्रयागसञ्ज्ञस्य देवस्य वरवर्णिनि।।१३।।

दर्शनात्स्मरणाद्ध्यानात्तथा नामप्रकीर्तनात्।
पापानि प्रशमं यान्ति नराणां पापकर्मणाम्।।१४।।

अपि पापैः समायुक्तो ब्रह्महत्यामुखैः किल।
तत्क्षेत्रं तु नरः स्पृष्ट्वा सद्यः शुद्धिमवाप्नुयात्।।१५।।

विरञ्चिप्रमुखा देवा नित्यमायान्ति तत्र वै।
सेवनाय ससीतं वै रामं लक्ष्मणपूर्वजम्।
सुग्रीवादिमहाभक्तैर्युतं मुनिगणैस्तथा।।१६।।

अथ रामनिवासस्य कारणं तत्र वच्म्यहम्।
शृणु पार्वति भक्त्या वै मनः कृत्वा सुनिश्चलम्।।१७।।

पुरा कृतयुगे देवी बभूव मुनिसत्तमः।
देवशर्मेति विख्यातः सुहृत्सज्जनवत्सलः।।१८।।

दयासत्यतपश्शीलो ज्ञानवान् धर्मसंयुतः।
देवप्रयागके तीर्थे तीर्थानामुत्तमोत्तमे।
स चकार तपस्तीव्रं देवैरपि सुदुश्चरम्।।१९।।

गच्छञ्जपंस्तथा भुञ्जंश्चिन्तयन्मनसा हरिम्।
केवलं वैष्णवी भक्तिर्जाता तस्य महात्मनः।।२०।।

नारायण दयासिन्धो गोविन्देति वदेत्तदा।
पुष्पैर्धूपैस्तथा दीपैर्नैवेद्यैर्विविधैः शुभैः।
स्तुतिभिर्नतिभिश्चैव तोषयामास वै हरिम्।।२१।।

उसका यह नाम कैसे हुआ ! उसको देवप्रयाग क्यों कहा जाता है ? राम की भक्ति में परायण सब भक्त उसकी क्यों प्रशंसा करते हैं ?।।१०।।

वहां राम किस कारण से सदा सन्निहित रहते हैं ? यदि तुम्हारी मुझ पर दया है, तो मेरे इस संशय का छेदन कीजिये।।११।।

ईश्वर ने कहा-

हे सुव्रते, देवदेवि, महाभागे ! तुम देवप्रयाग नाम के तीर्थ के माहात्म्य को सुनो। हे पर्वतपुत्रि ! तुम धन्य हो।।१२।।

हे शिवे ! जो तुम्हारा मन परोपकार करने में लगा है। हे सुन्दरि ! देवताओं के स्थान देवप्रयाग नामक तीर्थ के....।।१३।।

दर्शन करने, स्मरण करने, ध्यान करने और नाम का कीर्तन करने से पापी मनुष्यों के भी पाप शान्त हो जाते हैं।।१४।।

ब्रह्महत्या आदि प्रमुख पापों से युक्त होकर भी मनुष्य उस क्षेत्र का स्पर्श करके तत्काल शुद्ध हो जाता है।।१५।।

सीता और लक्ष्मण के साथ विद्यमान तथा सुग्रीव आदि महाभक्तों और मुनियों से युक्त उस राम की सेवा करने के लिये वहां ब्रह्मा आदि प्रमुख देवता निश्चय से नित्य आते हैं।।१६।।

वहां राम किस कारण निवास करते हैं, इसको मैं कहता हूं। हे पार्वति ! भक्ति से मन को ठीक प्रकार से निश्चल करके सुनो।।१७।।

हे देवि ! पहले समय में सत्ययुग में मित्रों से स्नेह करने वाला, देवशर्मा नाम से प्रसिद्ध ब्राह्मण हुआ था।।१८।।

वह दया, सत्य, तप, शील, ज्ञान और धर्म से युक्त था। उसने तीर्थों में उत्तमोत्तम तीर्थ देवप्रयाग में देवताओं से भी जो दुष्कर था, ऐसा तप किया था।।१९।।

वह चलते हुये, जप करते हुये, और भोजन करते हुये मन से हरि का चिन्तन करता था। उस महात्मा को केवल विष्णु के प्रति ही भक्ति थी।।२०।।

वह सदा नारायण, दयासिन्धो, गोविन्द इस प्रकार के शब्द ही बोलता था। वह विविध पुष्पों, धूपों, दीपों, नैवेद्यों, स्तुतियों और प्रणामों से विष्णु को प्रसन्न करता था।।२१।।

एवं द्वादशवर्षेषु कृतवान्स महामतिः।
ततो दशसहस्राणि वर्षाणां सुरवन्दिते।
पर्णाशनोऽभवद्योगी यमैः स नियमैर्युतः।।२२।।

सहस्रमेकं वर्षाणां पादेन कृतवांस्तपः।
ततो ददर्श गोविन्दं शंखचक्रगदाधरम्।।२३।।

पद्मेन पद्मालयया दीप्यमानं महाद्युतिम्।
किरीटिनं कुण्डलिनं वनमालाविभूषितम्।।२४।।

श्रीवत्साङ्कं महाबाहुं कोटिसूर्यसमप्रभम्।
पीताम्बरं त्रिलोकेशं गरुडोपरि संस्थितम्।।२५।।

सनकादिमुनीन्द्रैश्च सेव्यमानं सुरासुरैः।
लोकानां सृष्टिकर्त्तारं त्रयीरूपं गुणात्मकम्।।२६।।

दृष्ट्वा तं स्तुतिमारेभे देवशर्मा द्विजोत्तमः।।२७।।

देवशर्मोवाच-

नमस्ते ब्रह्मरूपाय सृष्टिकर्त्रे गुणात्मने।
नानारूपाय जगतो हन्त्रे पालयते नमः।।२८।।

नमो वेदान्तवेद्याय निर्गुणाय महात्मने।
विभवे ज्ञानरूपाय मत्स्यरूपाय ते नमः।।२९।।

शङ्खासुरनिहन्त्रे च वेदोद्धरणहेतवे।
कूर्मरूपेण पृथिवीं धारयित्रे नमोनमः।।३०।।

नेदिष्ठाय नमस्तेऽस्तु क्षोदिष्ठाय नमोनमः।
कोलरूपाय वै तुभ्यं हिरण्याक्षविमर्दिने।।३१।।

नृसिंहाय नमस्तेऽस्तु भीमनादाय ते नमः।
खराग्रैर्नखराग्रैर्हि भित्वा वक्षःस्थलं दृढम्।
हिरण्यकशिपोरन्त्रमालिने परमात्मने।।३२।।

नमः प्रह्लादगुरवे सुराऽसुरगणैः स्तुत।
नारायण नमस्तेस्तु वामनाय नमो नमः।।३३।।

वह महामति देवशर्मा इस प्रकार १२ वर्षों तक हरि का भजन करता रहा। हे देवताओं से वन्दित पार्वति ! तदनन्तर यमों और नियमों का पालन करते हुये वह योगी देवशर्मा दस हजार वर्षों तक केवल पत्तों का भोजन करता रहा। ।२२। ।

तदनन्तर एक हजार वर्ष तक वह एक पैर से खड़ा होकर तप करता रहा। तदनन्तर उसने शंख-चक्र-गदा को धारण करने वाले गोविन्द के दर्शन किये। ।२३। ।

वे विष्णु कमल से और लक्ष्मी से दीप्तिशाली थे। किरीट और कुण्डल धारण किये हुये थे। वनमाला से विभूषित थे। ।२४। ।

वे श्रीवत्स के चिह्न से चिह्नित थे। महाबाहु थे। उनकी कान्ति करोड़ों सूर्यों के समान थी। पीला वस्त्र पहने थे। तीनों लोकों के स्वामी थे और गरुड के ऊपर आरूढ थे। ।२५। ।

सनक आदि श्रेष्ठ मुनि और सुर-असुर उनकी सेवा कर रहे थे। वे लोकों की सृष्टि करने वाले थे। वे वेदत्रयी रूप थे और त्रिगुणात्मक थे। ।२६। ।

उनको देखकर द्विजश्रेष्ठ देवशर्मा ने स्तुति करना प्रारम्भ कर दिया ।।२७। ।

देवशर्मा ने कहा-

त्रिगुणात्मक ब्रह्मा के रूप में सृष्टि-रचना करने वाले तुमको नमस्कार है। विविध रूपों वाले तथा सृष्टि का पालन और विनाश करने वाले तुमको नमस्कार है। ।२८। ।

वेदान्तों (उपनिषदों) से जानने योग्य, निर्गुण, महान् आत्मरूप तुमको नमस्कार है। ऐश्वर्य सम्पन्न, ज्ञानरूप और मत्स्यावतार धारण करने वाले तुमको नमस्कार है। ।२९। ।

वेदों का उद्धार करने के लिये शंखासुर का वध करने वाले तुमको नमस्कार है। कूर्म के रूप में पृथिवी को धारण करने वाले तुमको नमस्कार है। ।३०। ।

समीप रहने वाले तुमको नमस्कार है। दूर रहने वाले तुमको नमस्कार है। हिरण्याक्ष का वध करने लिये वराहरूप अवतार लेने वाले तुमको नमस्कार है। ।३१। ।

नृसिंह अवतार लेकर भीम नाद करके तीक्ष्ण नाखूनों के अग्र भागों से हिरण्यकशिपु के दृढ वक्षःस्थल को विदीर्ण करके उसकी अंतड़ियों की माला धारण करने वाले तुम परमात्मा को नमस्कार है। ।३२। ।

सुर-असुरों से स्तुति किये जाने वाले हे विष्णो ! प्रह्लाद के गुरु तुमको नमस्कार है। हे नारायण ! तुमको नमस्कार है। वामन अवतार धारण करने वाले तुमको नमस्कार है। ।३३। ।

त्रिविक्रमाय बलिने बलिं छलयते नमः।
जामदग्न्य नमस्तेऽस्तु नमः क्षत्रियमर्दिने।।३४।।

रावणादिनिहन्त्रे च सीतायाः पतये नमः।
नमो लक्ष्मणरूपाय नमो दशरथात्मज।।३५।।

नमस्ते रेवतीकान्त नमो लाङ्गलधारिणे।
नमस्ते वासुदेवाय यमुनाकर्षकाय ते।।३६।।

नीलाम्बराय कृष्णाय वनमालाधराय च।
कंसहर्त्रे नमस्तेऽस्तु देवकीनन्दनाय ते।।३७।।

गोपनाथाय देवाय गोपीनां पतये नमः।
सद्वंशिने केशिहन्त्रे मयूरपिच्छधारिणे।।३८।।

बौद्धरूप नमस्तेऽस्तु सुकृपाय दयानिधे।
शान्ताय ज्ञानरूपाय नित्यं योगरताय ते।।३९।।

म्लेच्छहन्त्रे नमस्तेस्तु नमस्ते कल्किरूपिणे।
त्वमेव जगतां पाता स्थितिकर्त्ता त्वमेव हि।
लयरूपस्त्वमेवाऽसि दाता भोक्ता त्वमेव हि।।४०।।

सूक्ष्मरूपं तु ते ब्रह्मन् विचिन्वन्तो मुनीश्वराः।
न विदुस्तेऽपि भगवन्मनुष्याणां तु का कथा।।४१।।

वैराजं तव रूपं तु भावयामि सदा हृदि।
पातालं ते पादमूलं पार्ष्णिस्ते सुतलं स्मृतम्।।४२।।

जङ्घे ते वितलं प्रोक्तं जानुनी ते तलातलम्।
कटिस्ते पृथिवी प्रोक्ता नाभिस्ते गगनं स्मृतम्।।४३।।

वदन्ति तव मूर्द्धानं द्यां वै तत्त्वविदो जनाः।
सूर्याचन्द्रमसौ प्रोक्ते तव नेत्रे परात्पर।।४४।।

श्रुती ते ककुभः प्रोक्ते मुखं वैश्वानरः स्मृतम्।
निमिषोन्मेषणे रात्रिवासरौ ते दयानिधे।।४५।।

नाथ त्वद्व्यतिरिक्तं वै नास्त्यन्यद्वस्तु केशव।
दृश्यते श्रूयते यच्च भुज्यते तत्त्वमेव हि।।४६।।

वराह अवतार के रूप में तीन विक्रमों (पगों) से भूमि को नाप कर बलि असुर को छलने वाले तुमको नमस्कार है। क्षत्रियों का मर्दन करने के लिये जमदग्निपुत्र परशुराम का अवतार लेने वाले तुमको नमस्कार है।।३४।।

रावण आदि राक्षसों का वध करने वाले एवं सीता के पति तुमको नमस्कार है। लक्ष्मण के रूप में तुमको नमस्कार है। दशरथ के पुत्र के रूप में तुमको नमस्कार है।।३५।।

हल को धारण करने वाले रेवती-पति बलराम के रूप वाले ! तुमको नमस्कार है। यमुना का आकर्षण करने वाले वासुदेव कृष्ण के रूप में तुमको नमस्कार है।।३६।।

देवकी के पुत्र, नील वस्त्र को धारण करने वाले, वनमाला धारण करने वाले और कंस का वध करने वाले कृष्णावतार के रूप में तुमको नमस्कार है।।३७।।

उत्तम वंश में उत्पन्न हुये, मयूरपिच्छ को धारण करने वाले, केशि दैत्य का वध करने वाले, गोपों और गोपियों के पति तुम देव के लिये नमस्कार है।।३८।।

प्रचुर कृपा से भरे हुये, दया की निधि, शान्त स्वभाव वाले, ज्ञानरूप और नित्य योग में रत बुद्ध का अवतार लेने वाले तुमको नमस्कार है।।३९।।

म्लेच्छों का वध करने वाले तुमको नमस्कार है। कल्कि अवतार लेने वाले तुमको नमस्कार है। तुम ही लोकों के पालन करने वाले हो। तुम ही स्थिति करने वाले हो। तुम ही लयरूप हो। तुम ही दाता हो और तुम ही भोक्ता हो।।४०।।

हे ब्रह्मन् भगवन् ! तुम्हारे सूक्ष्म रूप का चिन्तन करते हुये भी मुनीश्वरों ने उसको नहीं जाना था, मनुष्यों का तो कहना ही क्या है।।४१।।

हे भगवन् ! हृदय में मैं तुम्हारे विराट् रूप का सदा चिन्तन करता हूं। तुम्हारा पादमूल तो पाताललोक है, तुम्हारा पार्ष्णि (टखना) सुतललोक है।।४२।।

तुम्हारी जंघायें (पिण्डली) वितल लोक हैं ओर तुम्हारे घुटने तलातल लोक हैं। तुम्हारी कटि पृथिवी है और तुम्हारी नाभि आकाश है।।४३।।

तुम्हारा सिर द्युलोक है। हे परम से परम भगवन् ! तत्त्व को जानने वाले मनीषी जनों का कथन है कि सूर्य और चन्द्रमा तुम्हारे दो नेत्र हैं।।४४।।

तुम्हारे कान दिशायें हैं। अग्नि तुम्हारा मुख है। हे दयानिधे ! तुम्हारे निमेष और उन्मेष (आंखों का बन्द करना और खोलना) रात और दिन हैं।।४५।।

हे नाथ केशव ! तुमसे अतिरिक्त इस लोक में और कोई वस्तु नहीं है। इस लोक में जो कुछ दिखाई देता है, सुना जाता है, और जो कुछ भोग किया जाता है, वह तुम ही हो।।४६।।

तवैवावयवाः सर्वे देवा मर्त्याः सुरद्विषः ।
भूता यक्षाश्च पशवस्तथाऽन्ये जीवजन्तवः ।।४७।।

वेदान्तादिषु शास्त्रेषु त्वमेव प्रतिपद्यसे ।
किं बहूक्तेन हे देव त्वमेव सकलं हरे ।।४८।।

श्रीईश्वर उवाच-

इति स्तुतो महाभागे प्रसन्नोऽभूज्जनार्दनः ।
उवाच देवशर्माणं प्रीत्या मधुरया गिरा ।।४९।।

श्रीभगवानुवाच-

त्वदुक्तस्तवराजेन प्रसन्नोऽहं महाशय ।
वरं वरय हे विप्र यत्ते मनसि वर्त्तते ।।५०।।

अदेयमपि दास्यामि वरं त्रैलोक्यदुर्लभम् ।
अनेन तपसा जातं तव रूपं सुनिर्मलम् ।।५१।।

देवशर्मोवाच-

देवदेव विभो विष्णो गोविन्द करुणानिधे ।
आत्मीयचरणाम्भोजनिवासं देहि देहि मे ।।५२।।

इदं पुण्यतमं क्षेत्रं तीर्थानामुत्तमोत्तमम् ।
भविष्ये तु कलौ देव सर्वाघवनदाहकम् ।।५३।।

भक्तिर्मे सततं विष्णो त्वय्येवास्तु जनार्दन ।
अस्मिन्नेव महाक्षेत्रे निवासं कुरु सर्वदा ।।५४।।

अस्मिन्क्षेत्रे तु ये मर्त्या विष्णुपूजनकारकाः ।
सङ्गमे स्नानकर्त्तारस्तेऽपि यान्तु परां गतिम् ।।५५।।

श्रीईश्वर उवाच-

इति तस्य वचः श्रुत्वा देवदेवः सनातनः ।
भूयोऽपि देवशर्माणं प्रोवाच सुरपूजितः ।।५६।।

श्रीभगवानुवाच-

देवशर्मन् द्विजश्रेष्ठ त्वया निगदितं हि यत् ।
तत्तथैव करिष्यामि लोकानां हितकाम्यया ।।५७।।

सब देवता, मनुष्य, दैत्य, भूत, यक्ष, पशु और अन्य जीव-जन्तु तुम्हारे ही अवयव हैं।।४७।।

वेदान्त आदि शास्त्रों में तुम्हारा ही प्रतिपादन किया जाता है। बहुत कहना क्या? हे देव विष्णो ! तुम ही सब कुछ हो।।४८।।

श्रीईश्वर ने कहा-

हे महाभागे पार्वति ! इस प्रकार स्तुति करने पर विष्णु प्रसन्न हो गये। उन्होंने प्रेम से मधुर वाणी से देवशर्मा से कहा।।४९।।

श्रीभगवान् ने कहा-

हे महाशय ! तुम्हारे द्वारा कही गई उत्तम स्तुति से मैं प्रसन्न हूँ। हे विप्र ! जो तुम्हारे मन में है। वह वर मांग लो।।५०।।

मैं तुमको तीनों लोकों में दुर्लभ अदेय वर को भी दूंगा। इस तपस्या से तुम्हारा रूप सुन्दर-निर्मल हो गया है।।५१।।

देवशर्मा ने कहा-

हे देवदेव, विभो, गोविन्द, करुणानिधे, विष्णो ! तुम मुझको अपने चरण-कमलों में निवास दे दो, दे दो।।५२।।

हे देव ! तीर्थों में उत्तमोत्तम यह क्षेत्र आने वाले कलियुग में सब पाप रूप वन को जलाने वाला हो।।५३।।

हे जनार्दन विष्णो ! मेरी तुम्हारे प्रति भक्ति सदा बनी रहे। तुम इसी क्षेत्र में सदा निवास करो।।५४।।

इस क्षेत्र में जो मनुष्य विष्णु की पूजा करने वाले हों और संगम में स्नान करने वाले हों, वे भी परम गति को प्राप्त होवें।।५५।।

श्रीईश्वर ने कहा-

उस देवशर्मा के इस वचन को सुनकर देवताओं से पूजित सनातन देवदेव विष्णु ने देवशर्मा से पुनः कहा।।५६।।

श्रीभगवान् ने कहा-

ब्राह्मणों में श्रेष्ठ हे देवशर्मन् ! तुमने जैसा कहा है, लोकों के हित की कामना से मैं वैसा ही करूंगा।।५७।।

त्रेतायुगे दाशरथी रामो भूत्वा महामते।
रावणादीन्महादैत्यान् कुम्भकर्णमुखांस्तथा।
वधिष्यामि द्विजश्रेष्ठ धर्मसंरक्षणाय वै।।५८।।

अयोध्यायां कियत्कालं स्थास्यामि नरपुङ्गव।
तत्रैव च करिष्यामि राज्यभोगं सुदुर्लभम्।।५९।।

लोकानां व्यवहारार्थं भुक्त्वा भोगानशाश्वतान्।
आयास्यामि च क्षेत्रेऽस्मिंस्तावत् त्वं तिष्ठ सुव्रत।।६०।।

पुनर्मे दर्शनं प्राप्य गमिष्यसि परां गतिम्।
ततो देवप्रयागेति त्वन्नामलक्षणान्वितम्।
ख्यातिमेतन्महत्तीर्थं गमिष्यति द्विजोत्तम।।६१।।

यस्मात् त्वया तपस्तप्तमस्मिन्क्षेत्रे महामते।
तस्मात्पुण्यतमं तीर्थं भविष्यति निरन्तरम्।।६२।।

अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यं को वा वक्तुं क्षमो भवेत्।
अमुं तीर्थं सकृद् दृष्ट्वा नरो याति परां गतिम्।।६३।।

अत्र दत्तं तपस्तप्तं सर्वं भवति चाऽक्षयम्।।६४।।

नमो नारायणायेति मन्त्रं प्रणवपूर्वकम्।
अस्मिन्क्षेत्रे तु यो मर्त्यो जपेन्मासचतुष्टयम्।
हविष्यभुग् ब्रह्मचारी नरो याति परां गतिम्।।६५।।

अस्मिन्क्षेत्रे कृतं पापं वज्रलेपाय जायते।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पापं नैवाऽत्र सञ्चरेत्।।६६।।

उपानद्गूढपादस्तु ब्रजेद्यस्तु ममाऽऽलयम्।
ममाऽपराधी मर्त्यः स नरके परिपच्यते।।६७।।

दन्तकाष्ठमखादित्वा यस्तु मामुपसर्पति।
सर्वकालकृतं कर्म तेन चैकेन नश्यति।।६८।।

पिण्याकं भक्षयित्वा तु यस्तु मामुपसर्पति।
स पतत्यन्धतामिस्त्रं दशवर्षाणि पञ्च च।।६९।।

हे महामते द्विजश्रेष्ठ ! मैं त्रेतायुग में रामं का अवतार रखकर धर्म की स्थापना के लिये प्रमुख कुम्भकर्ण और रावण आदि महादैत्यों का वध करूंगा।।५८।।

हे नरश्रेष्ठ ! मैं कुछ समय तक अयोध्या में रहूंगा और वहां अति दुर्लभ राज्य के भोगों का उपभोग करूंगा।।५९।।

लोक-व्यवहार का पालन करने के लिये अनित्य भोगों का उपभोग करके इसी क्षेत्र में आऊंगा। हे सुव्रत ! तब तक तुम यहीं ठहरो।।६०।।

पुनः तुम मेरे दर्शन प्राप्त करके परम गति पाओगे। हे द्विजश्रेष्ठ ! तदनन्तर तुम्हारे नाम के लक्षण से युक्त यह महान् तीर्थ देवप्रयाग नाम से प्रसिद्ध होगा।।६१।।

हे महामते ! क्योंकि तुमने इस क्षेत्र में तपस्या की है, अतः यह निरन्तर पुण्यतम तीर्थ होगा।।६२।।

इस क्षेत्र के माहात्म्य का वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है ? इस तीर्थ को एक बार देखकर मनुष्य परम गति को प्राप्त करता है।।६३।।

यहां दिया गया दान और की गई तपस्या सब अक्षय होते हैं।।६४।।

हविष्य का भोजन करके ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला जो मनुष्य इस क्षेत्र में ॐकार (प्रणव) का पहले उच्चारण करके नमोनारायणाय (ॐनमो नारायणाय) मन्त्र का चार महीनों तक जप करता है, वह मनुष्य परम गति को पाता है।।६५।।

इस क्षेत्र में किया गया पाप वज्रलेप हो जाता है, इसलिये सब प्रकार से प्रयत्न करके यहां पाप का आचरण न करे।।६६।।

जो यहां पैरों में जूते पहन कर मेरे मन्दिर में जाता है, वह मेरा अपराधी मनुष्य नरक में पकाया जाता है।।६७।।

दन्तकाष्ठ को न खाकर (दातुन से दान्तों को स्वच्छ न करके) जो मेरे समीप आता है, उसके सब कालों में किये गये कर्म उस एक कर्म से ही नष्ट हो जाते हैं।।६८।।

जो मनुष्य पिण्याक (खली) को खाकर मेरे पास आता है, वह १५ वर्षों तक अन्धतामिस्र लोक में गिरता है।।६९।।

योनरो मैथुनं कृत्वाऽस्नातो मामुपसर्पति।
स खादेत्तु स्वमांसानि नरके प्रतिपद्यते।।७०।।

अस्मिन्क्षेत्रे महाभाग परदारान्न भाषयेत्।
तासु वै मैथुनं कृत्वा रौरवं नरकं व्रजेत्।।७१।।

कोटिवर्षसहस्राणि कोटिवर्षशतानि च।
तप्तायःस्तम्भमध्ये तु वध्यते यमकिङ्करैः।।७२।।

ततः प्रजायते कीटः पुरीषस्थो न संशयः।
ततो जायेत वै विप्र श्वानशूकरयोनिषु।।७३।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गच्छेन्नैव परस्त्रियम्।
स्वीयामेव सदा गच्छेत्पत्नीं नाऽन्यां कदाचन।।७४।।

अन्यान्यपि च पापानि सर्वथा सन्त्यजेद् बुधः।
अन्यक्षेत्रकृतं पापमस्मिन्क्षेत्रे विलीयते।।७५।।

ब्रह्महत्यादिपापाच्च तथा गोत्रजमारणात्।
नरो वै तीर्थराजस्य मुच्यते दर्शनादपि।।७६।।

चातुर्मास्यव्रतं ये तु करिष्यन्ति नरोत्तमाः।
अस्मिन्क्षेत्रे महाभाग ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयुः।।७७।।

एकतः सर्वतीर्थानि चैकतस्तीर्थराजकम्।
एकतः सर्वदानानि चैकत्राऽभयदानकम्।।७८।।

ईश्वर उवाच-

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे विष्णुः सर्वव्यापी जनार्दनः।
देवशर्मा तु तत्रैव स्थितवांश्चिन्तयन्विभुम्।।७९।।

ततो नारायणः स्वीयां प्रतिज्ञां कृतवान् शिवे।
रामावतारं चक्रे वै भूत्वा दशरथात्मजः।।८०।।

कृतवांस्तत्तथा पूर्वं यदुक्तं देवशर्मणे।
पुनर्देवप्रयागे वै यत्राऽऽस्ते देवभूसुरः।।८१।।

आययौ भगवान् विष्णू रामरूपात्मकः स्वयम्।
देवशर्मा च तं देवं दृष्ट्वा वै भक्तितत्परः।।८२।।

जो मनुष्य मैथुन करके विना स्नान किये मेरे समीप आता है, वह अपना ही मांस खाता है और नरक में गिरता है। ।७०। ।

हे महाभाग ! इस क्षेत्र में दूसरों की पत्नियों से वार्ता न करे। उनसे मैथुन करने पर वह रौरव नरक में जाता है। ।७१। ।

हजार करोड़ वर्षों तक और सौ करोड़ वर्षों तक यम के सेवक उसको गरम लोहे के खम्बे के मध्य में बांधते हैं। ।७२। ।

तदनन्तर वह निस्सन्देह रूप से पुरीष के कीड़े के रूप में जन्म लेता है। हे विप्र ! तदनन्तर वह कुत्ते और सूअर की योनियों में जन्म लेता है। ।७३। ।

इसलिये सब प्रकार से प्रयत्न करके परस्त्री में गमन न करे। सदा अपनी पत्नी में ही गमन करे, अन्य में कभी नहीं। ।७४। ।

बुद्धिमान् मनुष्य अन्य भी पापों का सर्वथा त्याग कर दे। अन्य क्षेत्रों में किया गया पाप इस क्षेत्र में जाकर विलीन हो जाता है। ।७५। ।

इस तीर्थराज के दर्शन से मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पापों से और गोत्रवध पाप से भी मुक्त हो जाता है। ।७६। ।

हे महाभाग ! जो उत्तम मनुष्य इस क्षेत्र में चातुर्मास व्रत करेंगे, वे ब्रह्म से सायुज्य को प्राप्त करेंगे। ।७७। ।

एक ओर तो अन्य सारे तीर्थ हैं और एक ओर यह तीर्थराज देवप्रयाग है। एक ओर तो अन्य सब दान हैं और एक ओर अभयदान है। ।७८। ।

ईश्वर ने कहा-

यह कह कर सर्वव्यापक जनार्दन विष्णु अन्तर्धान हो गये। देवशर्मा विभु विष्णु का चिन्तन करता हुआ वहीं स्थित रहा। ।७९। ।

हे शिवे पार्वति ! तदनन्तर नारायण विष्णु ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया। दशरथ का पुत्र होकर उन्होंने रामरूप में अवतार लिया। ।८०। ।

उन्होंने सब प्रकार से वे कार्य किये, जैसाकि पहले देवशर्मा से कहा था। पुनः निश्चय से देवप्रयाग में, जहां कि वह ब्राह्मण रह रहा था ...... ।।८१। ।

राम के रूप को धारण करने वाले भगवान् विष्णु स्वयं आये। उन विष्णु देवता को देख कर भक्ति से भरे हुये देवशर्मा ने..... ।।८२। ।

ननाम शिरसा भूयो भूयोऽपि कृतवान् स्तुतिम्।
प्रसन्नो भगवान्विष्णुर्देवशर्माणमब्रवीत्।।८३।।

श्रीराम उवाच-

भो भो द्विज मुनिश्रेष्ठ भक्तोऽसि मम सुव्रत।
त्वदीयतपसा बद्ध आगतोऽहं महामते।।८४।।

लोकानां हितकामाय ह्यत्रैव निवसाम्यहम्।
त्वमप्यत्रैव निवसन्सर्वदा मामनुस्मर।।८५।।

इतः प्रभृति लोकेऽपि ख्यातं तीर्थं भविष्यति।
त्वन्नामाङ्किकतमेतस्य कलौ नाम भविष्यति।।८६।।

देवशर्मन् मुनिश्रेष्ठ मम सायुज्यमेष्यसि।
त्वन्नामस्मरणादेव नरो याति परां गतिम्।
किं पुनर्मम नाम्ना वै किन्न याति परां गतिम्।।८७।।

ईश्वर उवाच-

इत्युक्त्वा भगवान् रामस्तस्थौ देवप्रयागके।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया सह पार्वति।।८८।।

ततः सुरगणाः सर्वे अवतीर्णास्तु तत्र वै।
केचिद्वै मृगरूपेण कपिरूपेण केचन।
सेवितुं वै दाशरथिं ससीतं हिमवत्सुते।।८९।।

गङ्गाया उत्तरे भागे दृश्यते यो महागिरिः।
तत्र राजा दशरथो नित्यं रामपरायणः।
आयाति मृगयाव्याजाद्दर्शनाय रमापतेः।।९०।।

तेनैवं तद्गिरेर्नाम दशरथाग इति स्मृतम्।
यो वै निष्कल्मषः शुद्धो निरीहो रामतत्परः।
स वै पश्यति राजानं नाम्ना दशरथं प्रभुम्[1]।।९१।।

तीर्थानां तु त्रयस्त्रिंशत् कोटिरत्र स्थिता बुधैः।
अस्य तीर्थस्य माहात्म्यं को वा वर्णयितुं क्षमः।
यत्र साक्षात्सदा रामो वसते करुणानिधिः।।९२।।

---

१. दशरथं मनोहरम्

पुनः पुनः सिर से झुक कर प्रणाम किया और स्तुति की। प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु ने देवशर्मा से कहा।।८३।।

श्रीराम ने कहा-

हे मुनिश्रेष्ठ सुव्रत द्विज ! तुम मेरे भक्त हो। हे महामते ! तुम्हारी तपस्या से बंधा हुआ मैं यहां आया हूँ।।८४।।

लोकों के हित की कामना से मैं यहां ही निवास कर रहा हूँ। तुम भी यहीं निवास करते हुये मेरा स्मरण करो।।८५।।

अब से लेकर यह तीर्थ लोक में प्रसिद्ध होगा। कलियुग में इसका नाम तुम्हारे नाम से अंकित होगा।।८६।।

हे मुनिश्रेष्ठ देवशर्मन् ! तुम मेरे सायुज्य को प्राप्त होओगे। तुम्हारे नाम के स्मरण से ही मनुष्य परम गति को प्राप्त होगा। क्या मेरे नाम से मनुष्य परम गति को प्राप्त नहीं होता ? इसी प्रकार तुम्हारे नाम से भी होगा।।८७।।

ईश्वर ने कहा-

हे पार्वति ! इस प्रकार कह कर भगवान् राम, भाई लक्ष्मण के साथ और पत्नी सीता के साथ देवप्रयाग में स्थित हो गये।।८८।।

हे हिमालय की पुत्री पार्वति ! तदनन्तर सीतासहित दशरथ-पुत्र राम की सेवा करने के लिये सब देवता वहां, कुछ तो मृगों के रूप में और कुछ वानरों के रूप में अवतीर्ण हुये।।८९।।

गङ्गा के उत्तर भाग में जो महान् पर्वत दिखाई देता है, वहां रामपरायण राजा दशरथ रमापति का दर्शन करने के लिये मृगया के बहाने से नित्य आते हैं।।९०।।

इसलिये, इस प्रकार इस पर्वत का नाम दशरथाचल कहा गया। जो कल्मष से रहित, शुद्ध, निरीह, रामभक्त होता है, वह निश्चय से दशरथ नाम के प्रभु राजा का दर्शन करता है।।९१।।

तैंतीस करोड़ देवताओं के तीर्थ यहीं स्थित हैं। इस तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन करने में कौन समर्थ है, जहांकि करुणानिधि साक्षात् राम सदा निवास करते हैं।।९२।।

अथेतिहासं वक्ष्यामि शृणु देवि पुरातनम्।
बभूव मध्यदेशे तु चण्डवर्मा नराधिपः।।९३।।

तस्य वै पट्टमहिषी मायादेवीति विश्रुता।
प्रजानां चण्डरूपो हि ब्राह्मणानां तथा स वै।।९४।।

तस्याऽपि सचिवाः सर्वे दयाहीनाश्च पापिनः।
अन्यायोपार्जितस्वेन कोशं संवर्द्धयन्ति ते।।९५।।

पापकर्मा चण्डवर्मा सुतहीनो बभूव ह।
सदा दुरितकर्माणि करोति स महीपतिः।।९६।।

बहवः शत्रवो जातास्तस्य पापस्य शैलजे।
तस्मिन् राष्ट्रे महादेवि पर्जन्यो न च वर्षति।।९७।।

सर्वे क्रूराः शठाः पापाश्चौरास्तत्र वसन्ति हि।
चण्डवर्मा हि लोकेभ्यः सदा दुखं ददाति हि।।९८।।

एवं पापस्य बाहुल्यात्सञ्जातः कोशसङ्क्षयः।
ततः कोशे क्षयं याते सन्त्यक्तश्चैव मन्त्रिभिः।।९९।।

अस्मिन्नवसरे प्राप्ते वृतो वै परिपंथिभिः।
राज्यभ्रष्टश्च वै जातस्ततः कष्टतरं गतः।।१००।।

वने जगाम दुःखार्त्तः पत्न्या च सह मायया।
खड्गचर्मधरः क्रूरो धनुर्बाणसमन्वितः।।१०१।।

महाघोरतरेऽरण्ये ऋक्षव्याघ्रादिसङ्कुले।
राक्षसानां भीमनादपूरितेऽतिभयंकरे।।१०२।।

तथा कङ्टकवृक्षैश्च संयुते भीमदर्शने।
वने तयोर्गच्छतोरग्रे राक्षसः प्रत्यदृश्यत।।१०३।।

अत्युच्चो रक्तनयनः प्रकाशितरदस्तथा।
करालवदनो दीर्घकर्णश्चैव बृहच्छिराः।।१०४।।

अनेकमानुषप्रोतशूलहस्तो नरान्तकः।
आयान्तं तं समालोक्य धनुः सज्जं चकार ह।।१०५।।

हे देवि ! अब मैं प्राचीन इतिहास को कहूंगा, सुनो। मध्य देश में चण्डवर्मा नाम का राजा था।।९३।।

उसकी पटरानी मायादेवी नाम से प्रसिद्ध थी। वह प्रजाजनों और ब्राह्मणों के लिये भयानक रूप था।।९४।।

उसके सब मन्त्री भी दया से रहित और पापी थे। अन्याय से उपार्जित धन से वे अपने कोश को बढाते थे।।९५।।

पापी चण्डवर्मा पुत्र से रहित था। वह राजा सदा पापकर्म करता था।।९६।।

हे पार्वति ! उस पापी राजा के बहुत से शत्रु हो गये । हे महादेवि ! उस राष्ट्र में मेघ नहीं बरसता था।।९७।।

सब क्रूर, शठ, पापी और चोर वहां रहते थे। चण्डवर्मा निश्चय से सब लोगों को दुःख देता था।।९८।।

इस प्रकार पापों के अधिक हो जाने से उसका कोश नष्ट हो गया। तदनन्तर कोश के नष्ट हो जाने पर उसको मन्त्रियों ने छोड़ दिया।।९९।।

तदनन्तर अवसर मिलने पर उसको शत्रुओं ने घेर लिया। तदनन्तर वह राज्य से भ्रष्ट होकर बहुत अधिक कष्ट को प्राप्त हुआ।।१००।।

वह क्रूर चण्डवर्मा दुःख से पीडित होकर, ढाल-तलवार धारण करके और धनुष-बाण से युक्त होकर पत्नी माया के साथ वन में चला गया।।१०१।।

वह वन बहुत अधिक भयानक था। रीछ-बाघ आदि जन्तुओं से संकुल था। वहां राक्षसों का अति भयंकर भीम नाद भरा हुआ था।।१०२।।

वह वन कांटेदार वृक्षों से युक्त था और देखने से ही भय उत्पन्न करता था। जब वे दोनों वन में जा रहे थे तो सामने एक राक्षस दिखाई दिया।।१०३।।

वह राक्षस बहुत लम्बा, लाल नेत्रों वाला, दान्त चमकाने वाला, भयानक मुख वाला, लम्बे कानों वाला और बड़े सिर वाला था।।१०४।।

मनुष्यों का वध करने वाले उस राक्षस के हाथ में अनेक मनुष्यों के शरीरों को पिरोये हुये शूल था। आते हुये उस राक्षस को देखकर चण्डवर्मा ने धनुष पर डोरी चढा ली।।१०५।।

आकर्णान्तं समाकृष्य बाणं तस्मिन्नियोज्य च।
स्वान्तं विदारयामास बाणेनास्य दुरात्मनः।।१०६।।

गोविन्देति वदन् रक्षः प्राणान्वै मुमुचे शिवे।
पूर्वरूपं परित्यज्य जातो गन्धर्वराट् तदा।।१०७।।

नाम्ना वै सुस्वरः ख्यातो विषमेषुरिवाऽपरः।
सुन्दरः पद्मपत्राक्षो गीते च निपुणः सुधीः।।१०८।।

ईश्वर उवाच-

इति तस्याऽतिसौन्दर्यं दृष्ट्वा वै स महीपतिः।
प्राह तं विस्मयाविष्टो गंधर्वं त्रिदिवौकसाम्।।१०९।।

चण्डवर्मोवाच-

अत्यद्भुतमिदं दृष्टं यत्त्वं गन्धर्वतां गतः।
केन वै कर्मणा पूर्वं राक्षसोऽभूद्विरूपधृक्।।११०।।

इदानीं केन पुण्येन सञ्जातोऽसि च गायकः।
देवानां हे महाभाग तन्मे विस्तरतो वद।।१११।।

गन्धर्व उवाच-

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि स्वस्य वै पूर्वकर्मणः।
चेष्टितं राजशार्दूल समासाद् गदतो मम।।११२।।

पूर्वजन्मन्यभूवं हि ब्राह्मणो वेदपारगः।
शर्मदत्त इति ख्यातो नाम्ना वै राजसत्तम।।११३।।

अधीततर्कशास्त्रेण मयाऽहङ्कारतो द्विजाः।
पराजिताः कुतर्केण विद्यावङ्तोऽतितापसाः।।११४।।

ते सर्वे दुःखिता विप्र मामित्यूचुर्नराधिप।
यतस्त्वया वयं सर्वे कुतर्केण पराजिताः।
ततस्त्वं हि महारण्ये राक्षसो वै भविष्यसि।।११५।।

ततोऽहं दुःखसन्तप्तो ब्राह्मणाञ्छरणं ययौ।
ब्राह्मणानां च पादेषु पतितोऽहं नराधिप।।११६।।

कानों तक धनुष को खींचकर उस पर बाण को नियोजित करके चण्डवर्मा ने उस दुष्ट राक्षस के हृदय को बाण से विदीर्ण कर दिया।।१०६।।

गोविन्द शब्द का उच्चारण करते हुये उस राक्षस ने शरीर को छोड़ दिया। वह तब पहले रूप को छोड़ कर गन्धर्वराज हो गया।।१०७।।

वह बुद्धिमान् गन्धर्व सुस्वर नाम से प्रसिद्ध था। वह मानो दूसरे कामदेव के समान सुन्दर था। उसकी आंखें कमलपत्र के समान थीं। वह गीत में निपुण था।।१०८।।

ईश्वर ने कहा-

इस प्रकार उसके अत्यधिक सौन्दर्य को देखकर विस्मय से आविष्ट उस राजा ने देवताओं के उस गन्धर्व से कहा।।१०९।।

चण्डवर्मा ने कहा-

मैंने यह अति अद्भुत बात देखी है, जो तुम गन्धर्व हो गये हो। तुमने पहले किस कर्म के कारण राक्षस के विकृत रूप को धारण किया था ?।।११०।।

अब तुम किस पुण्य के कारण देवताओं के गायक हो गये हो ? हे महाभाग ! उस सारी बात को मुझसे विस्तार से कहो।।१११।।

गन्धर्व ने कहा-

हे राजन् ! मैं अपने पहले समय के कर्म को संक्षेप से कहूंगा। हे श्रेष्ठ राजन् ! मेरे कथन को सुनो।।११२।।

हे श्रेष्ठ राजन् ! मैं पूर्वजन्म में वेदों में पारङ्गत ब्राह्मण था। मेरा नाम शर्मदत्त प्रसिद्ध था।।११३।।

तर्कशास्त्र का अध्ययन करके मैंने अहंकारवश कुतर्क से अति तपस्वी विद्वान् ब्राह्मणों को पराजित कर दिया।।११४।।

हे राजन् ! अत्यधिक दुःखी होकर उन सब ब्राह्मणों ने मुझसे कहा- "क्योंकि तुमने हम सब ब्राह्मणों को कुतर्क से पराजित किया है, अतः तुम महान् अरण्य में निश्चय से राक्षस हो जाओगे"।।११५।।

तब मैं दुःख से सन्तप्त होकर ब्राह्मणों की शरण में गया। हे राजन् ! मैं ब्राह्मणों के चरणों में गिर गया ।।११६।।

यूयं रक्षत मां विप्रा अपराधिनमेव च।
अतः परं हि भवतां दासोऽहं मुनिसत्तमाः।।११७।।

घोरा वै रक्षसां योनिस्तस्या मां विनिवर्त्तय।
इत्युक्त्वाऽहं पुनस्तेषां [1]चरणे पतितो नृप।।११८।।

ईश्वर उवाच-

इति वै शरणायातं दुःखार्त्तं विनये स्थितम्।
उचुर्वै ब्राह्मणाः सर्वे शापोऽस्माकं द्विजोत्तम।।११९।।

अमोघोऽयं महाभाग भविष्यत्येव वै द्विज।।१२०।।

तथाऽपि ते शापमोक्षो भविता द्रक्ष्यसे यदा।
इक्ष्वाकुवंशजं चण्डवर्माणं तीर्थसेवकम्।
तदा वै नरशार्दूल शापस्तेन गतः प्रभो।।१२१।।

स्कन्द उवाच-

इति शिववचः श्रुत्वा विस्मिता शैलजाऽभवत्।
अनाथनाथं देवेशं पुनः पप्रच्छ नारद।।१२२।।

श्रीपार्वत्युवाच-

अनाथनाथ सर्वज्ञ सर्वलोकहिते रत।
पापं नृपं कथं दृष्ट्वा भवेद्वै शापनाशनम्।।१२३।।

ईश्वर उवाच-

शृणु देवि पुरा वृत्तमस्य वै चण्डवर्मणः।।
देवदास इति ख्यातो वैश्यो धनवतां वरः।।१२४।।

तस्य पुत्रो बभूवाऽथ पूर्वजन्मनि पार्वति।
धनदेति समाख्यातः चण्डवर्मा नराधिपः।।१२५।।

राज्यार्थेऽसौ तपश्चक्रे वासिष्ठे तीर्थनायके।
केवलं राज्यलोभेन चिन्ताविष्टमना: सदा।।१२६।।

पक्षमेकं तत्र गत्वा स्नानं च हरिपूजनम्।
ततस्तीर्थवरात्पुण्यादाजगाम गृहे स्वके।।१२७।।

---

१. पादेषु

हे ब्राह्मणो ! तुम मुझ अपराधी की रक्षा करो। हे मुनिश्रेष्ठो ! इसके पश्चात् मैं आपका दास हूं। ।११७।।

राक्षसों की योनि भयानक होती है। उससे मुझको लौटा लो। हे राजन् ! यह कह कर मैं पुनः उनके चरणों में गिर गया। ।११८।।

ईश्वर ने कहा-

इस प्रकार शरण में आये हुये, दुःख से पीडित और विनीत हुये उस शर्मदत्त से सब ब्राह्मणों ने कहा- "हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! हमारा यह शाप जो है...... ।।११९।।

हे महाभाग द्विज ! निश्चय से यह अमोघ ही होगा। ।१२०।।

तथापि तुम्हारा शाप से छुटकारा तब होगा, जब तुम तीर्थों का सेवन करने आये इक्ष्वाकुवंशी राजा चण्डवर्मा को देखोगे"। हे नरश्रेष्ठ प्रभो ! इस प्रकार वह शाप अब चला गया है। ।१२१।।

स्कन्द ने कहा-

शिव के इस वचन को सुनकर पार्वती विस्मित हो गईं। हे नारद ! अनाथों के नाथ देवेश महादेव से उन्होंने पुनः पूछा। ।१२२।।

श्रीपार्वती ने कहा-

हे अनाथों के नाथ, सर्वज्ञ, लोक के हित में लगे रहने वाले शिव ! पापी राजा को देख कर भी उसका शाप कैसे नष्ट हो गया। ।१२३।।

ईश्वर ने कहा-

हे देवि ! चण्डवर्मा के प्राचीन वृत्तान्त को सुनो। धनवानों में श्रेष्ठ देवदास नाम से प्रसिद्ध वैश्य था। ।१२४।।

हे पार्वति ! यह राजा चण्डवर्मा पूर्वजन्म में धनद नाम का उसका पुत्र था। ।१२५।।

राज्य को प्राप्त करने के लिये उसने केवल राज्य के लोभ की चिन्ता से आविष्ट मन वाला होकर उत्तम वासिष्ठ तीर्थ में तप किया। ।१२६।।

वहां जाकर एक पक्ष तक उसने स्नान और हरि का पूजन किया। तदनन्तर उस श्रेष्ठ तीर्थ से वह अपने घर में आ गया। ।१२७।।

तदागत्य गृहे वैश्य: स्थितवान् कतिचित्समा:।
कदाचिद्दैवयोगेन वने निर्गतवाञ्छिवे।।१२८।।

तत्र गत्वा महादेवि ददर्श मुनिसत्तमम्।
मेधाविनं महात्मानं तप्यमानं महत्तप:।।१२९।।

तं दृष्ट्वा कृशसर्वाङ्गमस्थिशेषं जहास स:।
शान्तं वै शान्ततपसं क्रोधं कारितवान्मदी।।१३०।।

वैश्यं दृष्ट्वा मुनिश्रेष्ठ: शशाप कोपवान्मुनि:।
अपुत्रो भविताऽसि त्वं [1]क्रव्याद इव चाऽपर:।।१३१।।

स्थानाद् भ्रष्टोऽपि पञ्चत्वं शीघ्रं वै प्राप्स्यते भवान्।
यत्त्वयोत्पादितं विघ्नं कृतं मे तपसस्तत:।।१३२।।

वैश्य उवाच-

तव स्वरूपं न ज्ञातं मया पापिष्ठबुद्धिना।
तेन वै कर्मणा विप्र शप्तोऽस्मि दुष्टबुद्धिवान्[2]।।१३३।।

क्षमां कुरु मुनिश्रेष्ठ दयावन्तो भवादृशा:।
न मनन्त्यपकारं चोपकारं च तथैव च।।१३४।।

ते वै तपस्विन: शान्ता: समलोष्ठाश्मकाञ्चना:।
दुष्टानामुपकर्त्तार: कुर्वन्ति नाऽपकारकम्।।१३५।।

ईश्वर उवाच-

इत्याभाष्य मुनिश्रेष्ठं ननाम शिरसा तत:।
पुन: पुन: पपाताऽसौ पादयोस्तस्य धीमत:।।१३६।।

प्रसन्नोऽभून्मुनिश्रेष्ठस्तस्मै वैश्याय सुव्रते।
जगाद मधुरं वाक्यं हर्षयन्नूरुजं तथा।।१३७।।

ऋषिरुवाच-

शापस्यान्तोऽपि भविता सुस्वरं द्रक्ष्यसे यदा।
तस्याऽपि शापमोक्षश्च भविता दर्शनात्तव।।१३८।।

---

१. राक्षस २. बुद्धिमान्

वहां से आकर वह वैश्य कुछ वर्षों तक घर में रहा। हे शिवे ! तदनन्तर दैवयोग से वह वन में गया। ।१२८।।

हे महादेवि ! वहां जाकर उसने मेधावी, महात्मा, महान् तप करते हुये एक श्रेष्ठ मुनि को देखा। ।१२९।।

कृश सब अंगों वाले और अस्थिशेष उस मुनि को देखकर वह हंसा। मद से उन्मत्त उसने शान्त तथा शान्तभाव से तप करने वाले उस मुनि को क्रोधित कर दिया। ।१३०।।

उस वैश्य को देखकर मुनियों में श्रेष्ठ मुनि ने शाप दिया- "तुम पुत्ररहित होगे और दूसरे राक्षस के समान बनोगे। ।१३१।।

क्योंकि तुमने मेरे तप में विघ्न डाला है, अतः तुम स्थान से भ्रष्ट होकर शीघ्र मर जाओगे।। ।१३२।।

वैश्य ने कहा-

पापी बुद्धि वाले मैंने तुम्हारे स्वरूप को नहीं पहचाना था। हे विप्र ! अपने उसी कर्म के कारण दुष्ट बुद्धि वाले मुझको शाप मिला है। ।१३३।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! क्षमा करो। आप जैसे दयावान् होते हैं। वे उपकार को और अपकार को नहीं मानते हैं। ।१३४।।

उन शान्त तपस्वियों के लिये मिट्टी का ढेला, पत्थर और स्वर्ण समान होते हैं। वे दुष्टों का भी उपकार करते हैं, अपकार नहीं। ।१३५।।

ईश्वर ने कहा-

मुनिश्रेष्ठ से इस प्रकार कह कर तदनन्तर उसने प्रणाम किया। वह उस बुद्धिमान् मुनि के पैरों पर पुनः पुनः गिरा। ।१३६।।

हे सुव्रते पार्वति ! वे मुनिश्रेष्ठ उस वैश्य पर प्रसन्न हो गये । वैश्य को प्रसन्न करते हुये उन्होंने यह मधुर वाक्य कहा। ।१३७।।

ऋषि ने कहा-

शाप की समाप्ति भी तब होगी, जब तुम सुस्वर को देखोगे। उसके भी शाप का छुटकारा तुम्हारे दर्शन से होगा। ।१३८।।

गुरोराज्ञां ततः प्राप्य स्वगृहे वै ममार ह।
ऋषेश्चाऽमोघशापाद्धि राजाऽसौ समजायत।।१३९।।

पापः पापसमाचारो जातो वै चण्डको नृपः।
राज्यभ्रष्टः श्रिया त्यक्तो बान्धवैश्च तथा शिवे।।१४०।।

पुत्रहीनोऽभवद्राजा दुःखशोकार्दितस्तदा।
ततोऽसौ चण्डवर्मा तु गुरुं वेदविदां वरम्।
ज्ञानवन्तं च गुणिनं निःस्पृहं द्रष्टुमागतः।।१४१।।

गुरुं दृष्ट्वा ननामाऽथ स्तुतवान् मुनिपुङ्गव।
नमो नमस्ते गुरवे ज्ञानिने शिवरूपिणे।।१४२।।

त्वं ब्रह्मा त्वं हि गोविन्दस्त्वमेव हि सदाशिवः।
गुरोरन्यं न पश्यामि जगत्पालनकर्तृकम्।।१४३।।
प्रसीद नाथ भगवन् दयां कुरु कृपानिधे।।१४४।।

श्रीईश्वर उवाच-

इति वै संस्तुतो विप्रो नाम्ना वै ब्रह्मदत्तकः।
प्रसन्नोऽभून्महाभागे तमुवाच नराधिपम्।।१४५।।

ब्रह्मदत्त उवाच-

केन वै कारणेनाऽत्र मदीयाश्रमके वरे।
आगतोऽसि महाराज दुःखार्त्त इव लक्ष्यसे।।१४६।।

चण्डवर्मोवाच-

दुःखार्त्तोऽहं महाभाग राज्यभ्रंशेन[1] वै द्विज।
बान्धवैर्मन्त्रिभिस्त्यक्तः पुत्रहीनस्तथाऽभवम्।।१४७।।

तत्कर्माऽऽचक्ष्व मे देव येन प्राप्स्यामि वै सुतम्।
राज्यं च विपुलं विप्र तथा सज्जनबान्धवान्।।१४८।।

---

१. राज्यभ्रष्टेन

तदनन्तर गुरु की आज्ञा पाकर वह अपने घर पहुंचा और ऋषि के अमोघ शाप के कारण मर गया। तदनन्तर वह राजा के रूप में उत्पन्न हुआ।।१३९।।

वह चण्डवर्मा नाम का राजा पाप का आचरण करने वाला पापी हुआ। हे शिवे! राज्य से भ्रष्ट होने पर राज्यलक्ष्मी ने तथा बन्धुओं ने उसको त्याग दिया।।१४०।।

वह पुत्र से रहित राजा दुःख और शोक से तब पीडित था। तदनन्तर वह राजा चण्डवर्मा वेदज्ञानियों में श्रेष्ठ, ज्ञानी, गुणी और निःस्पृह गुरु का दर्शन करने के लिये आया।।१४१।।

हे मुनिश्रेष्ठ नारद ! इसके बाद गुरु को देखकर उसने प्रणाम किया और स्तुति की। ज्ञानी और शिवरूप गुरु के लिये नमस्कार है, नमस्कार है।।१४२।।

तुम ही ब्रह्मा हो, तुम ही गोविन्द हो और तुम ही सदाशिव हो। गुरु से अतिरिक्त मैं अन्य को संसार का पालन करने वाला नहीं देखता हूं।।१४३।।

हे नाथ, भगवन्, दयानिधे ! प्रसन्न हो जाओ, मुझ पर दया करो।।१४४।।

श्रीईश्वर ने कहा-

हे महाभागे पार्वति ! इस प्रकार स्तुति करने पर वह ब्रह्मदत्त नाम का ब्राह्मण प्रसन्न हुआ और उस राजा से बोला।।१४५।।

ब्रह्मदत्त ने कहा-

हे महाराज ! किस कारण से तुम मेरे इस श्रेष्ठ आश्रम में आये हो ? दुःख से पीडित से दिखाई देते हो।।१४६।।

चण्डवर्मा ने कहा-

हे महाभाग द्विज ! मैं राज्य से भ्रष्ट हो जाने के कारण दुःख से पीडित हूं। मुझको बन्धुओं और मन्त्रियों ने छोड़ दिया है। मैं पुत्रहीन हूं।।१४७।।

हे देव ! मुझको उस कर्म का उपदेश दीजिये, जिससे मैं पुत्र को प्राप्त कर लूं। हे विप्र ! उस कर्म से मैं विपुल राज्य को और सज्जन बन्धुओं को प्राप्त कर लूं।।१४८।।

गुरुवाच-

गच्छ गच्छ हि राजंस्त्वं तीर्थे देवप्रयागके।
तत्र गत्वा मासमेकं पूजयस्व जनार्दनम्।।१४९।।

यथोक्तविधिना राजंस्तीर्थानामुत्तमोत्तमे।
प्राप्स्यसि त्वं महाराज पुत्रं राज्यं तथैव च।।१५०।।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गच्छ त्वं मा विलम्बं कुरु प्रभो।।१५१।।

ईश्वर उवाच-

तत्तथैवाऽकरोद्राजा स्नानं देवप्रयागके।
प्राप्तं च तेन राज्यं वै पुत्रश्च गुणवानथ।।१५२।।

एतत्पुण्यतमाख्यानं श्रोष्यन्ति श्रावयन्ति ये।
तेषां जन्मजरामृत्युभयं नाऽस्ति कदाचन।।१५३।।

स्कन्द उवाच-

इति ते कथितं दिव्यं तीर्थानामुत्तमोत्तमम्।
देवप्रयागकं क्षेत्रं तस्योत्पत्तिश्च नारद।।१५४।।

ये नरा भुवि शृण्वन्ति चरित्रं देवशर्मणः।
ते वै देवप्रयागस्य निवासफलमाप्नुयुः।।१५५।।

विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी धनमाप्नुयात्।।१५६।।

सूत उवाच-

इत्युक्त्वा विररामाऽथ महादेवो महामतिः।
पुनः पप्रच्छ वै स्कन्दं नारदो मुनिसत्तमः।।१५७।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे देवप्रयागमाहात्म्यवर्णनं
नाम पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।।

गुरु ने कहा-

हे राजन् ! तुम देवप्रयाग तीर्थ में जाओ। वहां जाकर एक मास तक विष्णु का पूजन करो।।१४९।।

हे महाराज ! इस उत्तमोत्तम तीर्थ में यथोक्त विधि से विष्णु का पूजन करके तुम पुत्र को और राज्य को प्राप्त करोगे।।१५०।।

हे प्रभो ! उठो, उठो। जाओ। तुम विलम्ब मत करो।।१५१।।

ईश्वर ने कहा-

देवप्रयाग में राजा ने उसी प्रकार से स्नान किया और उसने निश्चय से राज्य को और गुणवान् पुत्र को प्राप्त किया।।१५२।।

जो मनुष्य इस पुण्यतम आख्यान को सुनेंगे और सुनायेंगे, उनको जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु का कभी भी भय नहीं होगा।।१५३।।

स्कन्द ने कहा-

हे नारद ! इस प्रकार मैंने तुम्हारे समक्ष तीर्थों में उत्तमोत्तम दिव्य तीर्थ देवप्रयाग क्षेत्र का और उसकी उत्पत्ति का वृत्तान्त कह दिया है।।१५४।।

जो मनुष्य इस पृथिवी पर देवशर्मा के चरित्र का वर्णन सुनते हैं, वे निश्चय से देवप्रयाग में निवास करने के फल को प्राप्त करते हैं।।१५५।।

विद्यार्थी विद्या को प्राप्त करता है और धन की अभिलाषा करने वाला धन को प्राप्त करता है।।१५६।।

सूत ने कहा-

यह कह कर महाबुद्धिशाली महादेव चुप हो गये। मुनिश्रेष्ठ नारद ने स्कन्द से पुनः पूछा।।१५७।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में देवप्रयागक्षेत्रमाहात्म्यवर्णन नाम का १५० वां अध्याय पूरा हुआ।।

सृष्टिकरणेऽसमर्थस्य ब्रह्मणो विष्णुतो वरावाप्तेरस्य ब्रह्मकुण्डाभिधानम्, जातिमात्रद्विजस्य महापातकिनो दण्डहस्तस्य तत्र मरणाद् ब्रह्मलोकप्राप्तिश्च

नारद उवाच-

ब्रह्मकुण्डमिति ख्यातं जान्ह्नव्यलकनन्दयोः।
सङ्गमे देवशार्दूल महापुण्यतमं स्मृतम् ।। १।।

केन वै कारणेनाऽभूद् ब्रह्मकुण्डं हि नामकम्।
एतन्मे शंस भगवन् कथं ब्रह्मा तपोऽकरोत् ।। २।।

स्कन्द उवाच-

शृणु नारद वक्ष्यामि ब्रह्मकुण्डस्य विस्तरम्।
यथा वै तीर्थराजस्य नामाऽभूत्सर्वपापहृत् ।। ३।।

पुरा नारद कल्पादौ जगत्यम्बुमये सति।
न रात्रिर्नैव दिवसो न च सन्ध्या न वै सराः ।। ४।।

न वै सूर्यो न चन्द्रश्च मनुष्याः न च राक्षसाः।
न पिशाचाः न गन्धर्वाः किन्नराः न महामते ।। ५।।

आसन्नारद नो किञ्चिद् भगवानात्ममायया।
गुणातीतो गुणग्राही चिदानन्दो निरीश्वरः ।। ६।।

विभुः सर्वस्य कर्त्ता हि पालको नाशकस्तथा।
सृष्टिलीलां प्रकर्त्तुं हि चकारेच्छां गुणाकरः ।। ७।।

नाभिपङ्कजतो जातस्ततो वै जलशायिनः।
ब्रह्मा चतुर्मुखो दान्तश्चतुर्हस्तो महाद्युतिः ।। ८।।

दण्डपुस्तकधारी च तं जगाद गदाधरः।
सृष्टिं कुरु हि तेनोक्तोऽशक्तो वै सृष्टिकर्मणि ।। ९।।

तपः कर्त्तुं ययौ तत्र सृष्टिकर्मकशक्तये।
चकार सुतपस्तीव्रं युक्ताहारविहारकः ।। १०।।

सृष्टि की रचना करने में असमर्थ होकर ब्रह्मा द्वारा विष्णु से वर प्राप्त करना, ब्रह्मकुण्ड नाम प्रसिद्ध होना, जातिमात्र से ब्राह्मण, परन्तु महापापी दण्डहस्त की वहां मृत्यु होने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति

नारद ने कहा-

हे देवताओं में श्रेष्ठ ! जाह्नवी और अलकनन्दा के संगम पर ब्रह्मकुण्ड नाम से प्रसिद्ध महापुण्यशाली स्थान माना गया है।।१।।

इसका नाम किस कारण से ब्रह्मकुण्ड हुआ ? हे भगवन् ! मुझको इस बात को बताओ कि ब्रह्मा ने यहां तप किस प्रकार किया था ?।।२।।

स्कन्द ने कहा-

हे नारद ! सुनो। मैं ब्रह्मकुण्ड के सम्बन्ध में विस्तार से बताऊंगा। किस प्रकार से इस तीर्थराज का नाम प्रसिद्ध हुआ और यह सभी पापों को हरण करने वाला हुआ।।३।।

हे नारद ! पहले सृष्टि के प्रारम्भ में, जब कि सम्पूर्ण जगत् जलमय था, न तो रात्रि थी, न दिन था, न सन्ध्या थी और नाहीं जलाशय थे।।४।।

हे महाबुद्धिशाली नारद ! उस समय न सूर्य था, न चन्द्रमा था, न मनुष्य थे, न राक्षस थे, न पिशाच थे, न गन्धर्व थे और न किन्नर थे।।५।।

उस समय जो कुछ था, वह अपनी माया से युक्त गुणातीत, गुणग्राही, चिदानन्द और निरीश्वर भगवान् थे।।६।।

वे सबके स्वामी थे, सामर्थ्यशाली थे, सृष्टि के कर्ता थे,पालक थे और नाशक थे। गुणों के आकर उन भगवान् ने सृष्टि की उत्पत्तिरूप लीला करने की इच्छा की।।७।।

इसके पश्चात् जल में शयन करने वाले भगवान् की नाभि के कमल से चार मुखों वाले, दमनशील, चार हाथों वाले महातेजस्वी ब्रह्मा उत्पन्न हुये।।८।।

वे दण्ड और पुस्तक धारण करने वाले थे। गदाधारी विष्णु ने उनसे कहा- "सृष्टि की रचना करो।" उनके द्वारा इस प्रकार कहने पर वे ब्रह्मा सृष्टि की रचना करने में असमर्थ थे।।९।।

वे सृष्टि के कार्य की शक्ति प्राप्त करने के लिये तपस्या करने वहां गये। आहार और विहार को नियन्त्रित करके उन्होंने तीव्र तप किया।।१०।।

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
समाधिस्थो मुनिश्रेष्ठ ध्यायन्नारायणं विभुम् ।। ११।।

आविर्बभूव भगवान्विश्वात्मा सर्वनायक:।
प्राच्यां दिशि यथा सूर्यो विमानस्थो महीधर: ।। १२।।

शङ्खचक्रगदापद्मवनमालाविभूषित:।
पीताम्बर: किरीटी च कुसुमेषुरिवापर: ।। १३।।

शतसूर्यप्रतीकाश: कौस्तुभान्वितवक्षक:।
चतुर्भि: पार्षदैर्युक्त: कोटिसूर्यसमप्रभ: ।। १४।।

ततो ददर्श भगवान् ब्रह्मा वै जनकं हरिम्।
स्रष्टा वै स्तोतुमारेभे भगवन्तं सनातनम् ।। १५।।

ब्रह्मोवाच-

नम: कमलनाभाय कमलापतये नम:।
नम: कमलवासाय नम: कमलधारिणे ।। १६।।

पित्रे कमलजातस्य नम: कमलधारिणे[१]।
कमलानां विकाशित्रे नमस्ते कमलाङ्घ्रये।
नम: कमलकिञ्जल्कवाससे कमलाकर ।। १७।।

नम: कमलसेव्याय नम: कमलमालिने।
जगतामादिभूतस्त्वं नारायण कलानिधे ।। १८।।

त्वं ब्रह्मा त्वं महादेव: सृष्टिप्रलयकारक:।
नानारूपेण भगवन् मायया बहुरूपया।
सर्वं व्याप्य त्वमेवासि त्वत्तो नान्योऽस्ति कश्चन ।। १९।।

यथोदकघटे श्रीश सूर्यस्य प्रतिमा भवेत्।
नानारूपेण हि भगवंस्त्वं तथा तु प्रतीयसे ।। २०।।

आपो भूत्वा भवान्विष्णो सर्वमाप्यायते जगत्।
ओषधीनां रसोऽसि त्वं जगज्जीवनकारक: ।। २१।।

---

१. पित्रे..... कमलधारिणे पाठ कुछ पाण्डुलिपियों में नहीं है।

हे मुनिश्रेष्ठ! ११ हजार वर्ष तक सर्वव्यापक नारायण का ध्यान करते हुये वे समाधिस्थ रहे।।११।।

विश्व की आत्मा, सबके नायक, पृथिवी को धारण करने वाले वे भगवान् विमान पर स्थित होकर उसी प्रकार प्रकट हुये, जैसे पूर्व दिशा में सूर्य प्रकट होता है।।१२।।

शंख, चक्र, गदा, पद्‌म और वनमालाओं से वे विभूषित थे, पीत अम्बर और किरीट को धारण किये हुये थे। वे दूसरे कामदेव के समान सुन्दर थे।।१३।।

सैंकड़ों सूर्यों के समान उनकी कान्ति थी, वक्ष पर कौस्तुम मणि सुशोभित थी, चार पार्षदों से युक्त थे और उनकी कान्ति करोड़ों सूर्यों के समान थी।।१४।।

तब ब्रह्मा ने अपने पिता हरि को देखा। सृष्टि को उत्पन्न करने वाले उन ब्रह्मा ने सनातन भगवान् की स्तुति करनी प्रारम्भ कर दी।।१५।।

ब्रह्मा ने कहा-

कमल की नाभि वाले आपको नमस्कार है। कमला के पति आपको नमस्कार है। कमल को निवास देने वाले अपको नमस्कार है। कमल को धारण करने वाले आपको नमस्कार है।। १६।।

कमल से उत्पन्न ब्रह्मा के पिता आपको नमस्कार है, कमल को धारण करने वाले आपको नमस्कार है। कमलों का विकास करने वाले और कमल के सदृश चरणों वाले आपको नमस्कार है। हे कमलाकर! कमलकेसर के समान वस्त्र धारण करने वाले आपको नमस्कार है।।१७।।

कमलों से सेवन किये जाने आपको नमस्कार है, कमलों की माला धारण करने वाले आपको नमस्कार है। हे नारायण कलानिधे! आप लोकों के आदि कारण हो।।१८।।

तुम ही ब्रह्मा हो और सृष्टि का प्रलय करने वाले तुम ही महादेव हो। हे भगवन्! विविध रूपों में बहुत रूपों वाली माया से सबको व्याप्त करके तुम ही स्थित होते हो। तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है।।१९।।

हे लक्ष्मी के स्वामिन्! जिस प्रकार जल से भरे हुये घड़े में सूर्य का प्रतिबिम्ब होता है, उसी प्रकार हे भगवन्! नाना रूपों में तुम ही प्रतीत होते हो।।२०।।

हे विष्णो! आप जलरूप होकर सारे जगत् को आप्लावित करते हैं। ओषधियों में आप रस हैं और संसार में जीवन उत्पन्न करने वाले हैं।।२१।।

सोमस्त्वमोषधीः सर्वाः पुष्णासि च करैः सदा।
सूर्यो भूत्वा सर्वरसान्भवान्गृह्णाति रश्मिभिः ।। २२।।

भवान्मेघो हि भगवन् ददाति च रसाञ्छुभान्।
त्वमग्निः सर्वलोकानामुदरस्थो हि पाचकः ।। २३।।

वायुः सर्वगतोऽसि त्वं प्राणादिजीवनात्मकः।
त्वं पृथिव्यात्मको देवो धर्त्ता सर्वस्य माधव ।। २४।।

त्वमिन्द्रस्त्वं यमः शेषस्त्वत्तो नान्योऽस्ति कश्चन।
निराकारोऽपि साकारो दृश्यसे भक्तवत्सल ।। २५।।

स्कन्द उवाच-

इति स्तुतो हि भगवान् ब्रह्मणा सृष्टिहेतवे।
मेघगम्भीरया वाचा जगाद हरिरात्मजम् ।। २६।।

श्रीभगवानुवाच-

भो ब्रह्मन् वत्स वरदस्तवाऽस्मि वद साम्प्रतम्।
तपसा तेऽस्मि सन्तुष्टः स्तुत्या च कृतया त्वया ।। २७।।

ब्रह्मोवाच-

आज्ञया यत्त्वया देवाऽहं तथा सृष्टिकर्म्मणि।
असमर्थः समर्थस्तु भवामि सुरवन्दित ।। २८।।

इदं पुण्यतमं तीर्थं परोपकृतिहेतवे।
अल्पायासेन भवतु त्वत्प्रासादात्सुरोत्तम ।। २९।।

श्रीभगवानुवाच-

कुरु सृष्टिं महाभाग तुष्टोऽस्मि तपसा तव।
मद्भक्तो वै यथा त्वं हि बभूव न कदाचन ।। ३०।।

इदं पुण्यतमं तीर्थं वर्तते भक्तनायक।
तथाऽपि भविता पश्चादष्टविंशतिपर्यये ।। ३१।।

भगीरथो महाराजः सूर्यवंशविवर्द्धनः।
आनयिष्यति गङ्गां वै तपसा तोषिताच्छिवात् ।। ३२।।

आप सोमरूप होकर अपनी किरणों से सब वनस्पतियों को पुष्ट करते हैं। सूर्यरूप होकर आप अपनी किरणों से सभी रसों को ग्रहण करते हैं।।२२।।

हे भगवन् ! आप मेघरूप होकर शुभ रसों को प्रदान करते हैं। आप सभी लोकों के उदर में स्थित अग्निरूप होकर भोजन को पचाते हैं।।२३।।

आप प्राण आदि जीवन के स्वरूप होकर सर्वव्यापक वायु हैं। हे माघव ! आप पृथिवी रूप देव होकर सबको धारण करते हैं।।२४।।

आप ही इन्द्र हैं, आप ही यम हैं, आप ही शेष हैं। आपसे भिन्न अन्य कुछ नहीं है। हे भक्तवत्सल ! आप निराकार होकर भी साकार रूप में दिखाई देते हैं।।२५।।

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार सृष्टि की रचना के लिये स्तुति किये जाने पर भगवान् विष्णु ने अपने पुत्र से मेघ के सदृश गम्भीर वाणी में कहा।।२६।।

श्री भगवान् बोले-

हे ब्रह्मन् वत्स ! मैं तुमको वर दे रहा हूं। अब बोलो। तुम्हारे तप से और तुम्हारे द्वारा की गई स्तुति से मैं सन्तुष्ट हूं।।२७।।

ब्रह्मा ने कहा-

हे देव ! आपने मुझको सृष्टि-रचना करने की आज्ञा दी थी। मैं उस कार्य में असमर्थ हूं। हे देवों से वन्दित प्रभो ! मैं इस कार्य में समर्थ हो जाऊं।।२८।।

देवताओं में उत्तम हे प्रभो ! यह पुण्यतम तीर्थ तुम्हारी कृपा से अल्प प्रयास से भी दूसरों के उपकार करने का हेतु होवे।।२९।।

श्रीभगवान् ने कहा-

हे महाभाग ! तुम सृष्टि की रचना करो। मैं तुम्हारी तपस्या से सन्तुष्ट हूं। तुम्हारे समान मेरा भक्त कभी भी नहीं हुआ था।।३०।।

हे भक्तनायक ! यह पुण्यतम तीर्थ है। तो भी पीछे अठाइसवें कल्प में पुण्यतम होगा।।३१।।

सूर्यवंश की वृद्धि करने वाला भगीरथ नाम का महाराजा होगा। वह तपस्या से शिव को प्रसन्न करके गङ्गा को लायेगा।।३२।।

पितॄणां मुक्तये ब्रह्मन् तदा यास्यसि कारणात्।
तदाऽस्य तीर्थराजस्य भविता नाम चोत्तमम् ।। ३३।।

ब्रह्मतीर्थमिति ख्यातिं यास्यति प्रवरां तथा।
इदं स्तोत्रं त्वयाऽऽख्यातं पठिष्यन्ति च ये नराः ।। ३४।।

न तेषां दुर्ल्लभं लोके भविष्यति न संशयः।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते सृष्टिं कुरु महामते ।। ३५।।

स्कन्द उवाच-

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवः पश्यतो ब्रह्मणोऽग्रतः।
ब्रह्माऽपि तज्जगत्सर्व सदेवासुरमानुषम् ।। ३६।।

ससृजे यक्षरक्षांसि पिशाचान्गुह्यकान्वरान्।
तिर्यञ्चः स्थावरांश्चैव यत्र तप्त्वा तपः परम् ।। ३७।।

नारद उवाच-

किमर्थं भगवन् ब्रह्मा ययौ देवप्रयागके।
कारणं तत्र किं प्रोक्तं विष्णुना वरदात्मना ।। ३८।।

स्कन्द उवाच-

पुरा कृतयुगे विप्र जातिमात्रेण वै द्विजः।
दण्डहस्त इति ख्यातो नित्यं दण्डधरो हि सः ।। ३९।।

परप्राणहरो दुष्टो लम्बकर्णोऽल्पदन्तकः।
ह्रस्वोऽल्पबाहुस्तेजस्वी श्यामवर्णोऽल्पनेत्रकः ।। ४०।।

भीमो बृहच्छिरा दुष्टः करालास्योऽतिहिंसकः।
निर्धनोऽतिमहामूर्खो मृगयासक्तमानसः ।। ४१।।

स दुष्टः कस्यचिद् भार्यां गृहीत्वा नारदाऽभ्यगात्।
कतिचित्त्वथ वर्षाणि वसति स्म च कुत्रचित् ।। ४२।।

पञ्च भार्या बभूवुश्च जाताश्चाण्डालवंशजाः।
दश पुत्राः पञ्च कन्या बभूवुश्च दुरात्मनः ।। ४३।।

हे ब्रह्मन् ! जब वह पितरों की मुक्ति के कारण से जायेगा, तब इस तीर्थराज का उत्तम नाम होगा। ।३३।।

यह ब्रह्मतीर्थ नाम से श्रेष्ठ प्रसिद्धि को प्राप्त होगा। तुम्हारे द्वारा कहे गये इस स्तोत्र को जो मनुष्य पढेंगे.......... ।।३४।।

उनके लिये इस संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है। उठो, उठो। तुम्हारा कल्याण हो। हे महामते ! सृष्टि की रचना करो।।३५।।

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार कह कर ब्रह्मा के सामने से देखते देखते ही देव विष्णु अन्तर्धान हो गये। ब्रह्मा ने भी देवताओं, असुरों और मनुष्यों सहित सारे जगत् की सृष्टि की।।३६।।

वहां परम तप करके उन्होंने यक्षों, राक्षसों, पिशाचों, श्रेष्ठ गुह्यकों, पशु-पक्षियों और स्थावर पदार्थों की रचना की।।३७।।

नारद बोले-

हे भगवन् ! ब्रह्मा देवप्रयाग में किसलिये गये थे? वर देने वाले विष्णु ने उसमें कौनसा कारण बताया था ?।।३८।।

स्कन्द ने कहा-

हे विप्र! पहले सत्ययुग में एक मनुष्य जातिमात्र से ब्राह्मण था। वह क्योंकि सदा दण्डे को धारण किये रहता था, अतः दण्डहस्त नाम से प्रसिद्ध हुआ।।३९।।

वह दूसरों के प्राणों का हरण करने वाला, दुष्ट, लम्बे कान और छोटे दान्तों वाला, छोटी भुजाओं वाला, श्याम वर्ण का और छोटे नेत्रों वाला तेजस्वी था।।४०।।

भयानक, बड़े सिर वाला, दुष्ट, डरावने मुखवाला, अत्यधिक हिंसक, अतिनिर्धन, महामूर्ख और मृगया में आसक्त मन वाला था।।४१।।

हे नारद ! वह दुष्ट किसी की पत्नी को लेकर भाग गया और कुछ वर्षों तक कहीं रहता रहा।।४२।।

उसकी चाण्डाल वंश में उत्पन्न पांच पत्नियां हुईं। उस दुष्ट के दस पुत्र और पांच कन्यायें थीं।।४३।।

न तस्य च धनं गेहे क्षुधार्तो नित्यमेव हि।
आसन्वै दु:खिता: सर्वे कुटुम्बे तस्य नारद ।। ४४।।

तेभ्य: सदाऽपि च मृगान् मारयित्वा यतस्तत:।
मांसानां भक्षकश्चासौ वसतिस्म वने सदा ।। ४५।।

ब्राह्मणान्मारयित्वा वै गृहीत्वा हि च तद्वसु।
कुटुम्बभरणासक्तो न्यवसद्विजने वने ।। ४६।।

न तस्य मित्रं कुत्रासीन्न भ्राता न च बान्धवा:।
अन्यायेन महाभाग ह्यर्जयति[1] हि वै वसु ।। ४७।।

चौरो भूत्वा दुराचारो गृहान्भञ्जयतिस्म च।
कष्टेन पालयामास कुटुम्बं दु:खसंयुत: ।। ४८।।

एकदा मुनिशार्दूल मृगयायै गतस्तु स:।
तस्मिन् क्षेत्रे भाग्यवशाच्चचार विकटाकृति: ।। ४९।।

धनुष्पाणिर्निषङ्गी च कटिविन्यस्तखड्गक:।
श्यामास्य: श्यामवस्त्रोऽसौ कृतान्त इव चापर: ।। ५०।।

तस्मिन्दिने महाभाग सर्वतो भ्रमता मृगा:।
हतास्तेन वराहाश्च पान्थानां द्रव्यमेव च ।। ५१।।

तृप्तिस्तस्य न जाता वै मारयामास वै मृगान्।
एवं तस्य महाभाग वने रात्रि: प्रवर्तते ।। ५२।।

अथ पर्वतशृङ्गाद्वै आजगाम च शूकर:।
अत्युच्चऊर्ध्वकेशो हि बृहद्दन्तो महाबल: ।। ५३।।

विदारयन्महीं पादैर्मुखेन च महामुने।
विद्रावयन्मृगगणान्पातयन्वै शिला गिरे: ।। ५४।।

ददर्श तं महाव्याध: समायान्तं महागिरे:।
सज्जं चकार बाणासं बाणान्वै सन्दधे तत: ।। ५५।।

तस्मिन्ससर्ज बाणौघं महाव्याधो हि मर्मसु।
पीडित: शूकरोऽध्यागात्सम्मुखं लुब्धकस्य च ।। ५६।।

---

१. अर्जयतिस्म

हे नारद उसके घर में धन नहीं था। वह सदा भूखा ही रहता था। उसके परिवार में सब दुःखी रहते थे।।४४।।

उनके लिये वह जहां-तहां मृगों को मारकर मांस का भक्षण करता हुआ सदा वन में रहता था।।४५।।

वह ब्राह्मणों को मार कर और उनके धन का अपहरण करके कुटुम्ब के भरण-पोषण में लगा हुआ निर्जन वन में रहता था।।४६।।

उसका न तो कोई मित्र था, न कहीं कोई भाई था, और न कोई बान्धव था। हे महाभाग! वह अन्याय से ही धन का अर्जन करता था।।४७।।

वह दुराचारी चोर होकर घरों को तोड़ता था और दुःखी होकर कष्ट से कुटुम्ब का पालन करता था।।४८।।

हे मुनिश्रेष्ठ! भयानक आकृति वाला वह एक दिन शिकार के लिये गया और भाग्यवश उस क्षेत्र में विचरण करने लगा।।४९।।

धनुष को हाथ में लिये, तरकस लगाये, कटि में तलवार लगाकर, काले मुख वाला और काले वस्त्र पहनने वाला वह मानो दूसरा यमराज था।।५०।।

हे महाभाग! उस दिन सब ओर घूमते हुये उसने मृगों और वराहों का वध किया तथा पथिकों का धन लूटा।।५१।।

उसको तृप्ति नहीं हुई और वह मृगों को मारता रहा। हे महाभाग! इस प्रकार उसको वन में रात्रि हो गई।।५२।।

उसके पश्चात् पर्वत के शिखर से अत्यधिक ऊंचे केशों वाला, बड़े दान्तों वाला और महाबलशाली सूअर आ गया।।५३।।

हे महामुने! वह पैरों से और मुख से पृथिवी को विदीर्ण कर रहा था, मृगों को भगा रहा था और पर्वत की शिलाओं को गिरा रहा था।।५४।।

महान् व्याध ने उसको महागिरि से आते हुये देखा। उसने धनुष को तैयार करके उस पर बाणों का सन्धान किया।।५५।।

महान् व्याध ने उस सूअर के मर्मों पर बाणों को छोड़ा। पीडित होकर सूअर लोभी शिकारी के सामने आ गया।।५६।।

तं व्याधं पातयामास शिखराज्जाह्नवीतटे।
तेनोक्तं पतमानेन रामरामेति नारद ।। ५७।।

अङ्गानि तस्य लुब्धस्य जातान्येव पृथक् पृथक्।
मृतोऽसौ पतितो व्याध्रः शिरीषकुसुमं यथा ।। ५८।।

ततो वै मुनिशार्दूल गता यमभटास्तथा।
शूलाग्रग्रथितानेकमानुषा दण्डहस्तकाः ।। ५९।।

पापिनः शासतश्चैव मुशलैरायसैस्तथा।
अथागता मुनिश्रेष्ठ ब्रह्मणोऽनुचरा गणाः ।। ६०।।

अप्सरोभिर्गायकैश्च गन्धर्वैः किन्नरैस्तथा।
विमानानि विचित्राणि गृहीत्वा दिव्यकानि च ।। ६१।।

परस्परं महाभाग ऊचुर्वै सविवादकम्।
आस्माकीनमिदं कस्त्वं युयुधुश्च परस्परम् ।। ६२।।

दण्डैः खड्गैश्च वृक्षैश्च पाषाणैः पर्वतैस्तथा।
बभूव तुमुलं युद्धं रोमहर्षणकारकम् ।। ६३।।

ततस्ते देवदूतास्तु जिता यमभटैस्तथा।
ब्रह्माणं शरणं जग्मुरूचुर्यमभटैः कृतम् ।। ६४।।

देवदूता ऊचुः-

भो भो ब्रह्मन् महाभाग नीयते यमकिङ्करैः।
देवप्रयागके क्षेत्रे मृतो ब्राह्मणसत्तमः ।। ६५।।

निराकृता वयं सर्वे दुष्टैस्तैर्यमकिङ्करैः।
युद्धं कृतं तु तैः सार्द्धमश्मभिर्मर्दिता वयम् ।। ६६।।

स्कन्द उवाच-

इति श्रुत्वा निगदितं तेषां वै देवतात्मनाम्।
स्वयं जगाम भगवान्ब्रह्मा लोकपितामहः ।। ६७।।

यत्राऽसौ ब्राह्मणो लुब्धो वृतो वै यमकिङ्करैः।
मर्दयित्वा यमभटानारोप्य हतकिल्विषम्।
प्रस्थितो ब्रह्मलोके हि विमाने सूर्यवर्चसि ।। ६८।।

उस सूअर ने उस व्याध को जाह्नवी के तट पर गिरा दिया। हे नारद ! गिरते हुये उसने राम-राम इस प्रकार कहा।।५७।।

उस शिकारी के अंग टुकड़े टुकड़े हो गये। वह व्याध मर कर उसी प्रकार गिर गया, जैसे शिरीष का पुष्प गिर जाता है।।५८।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! तदनन्तर सूली के अगले भाग में अनेक मनुष्यों को गूंथे हुये और डंडों को हाथों में लिये हुये यम के सैनिक वहां गये।।५९।।

वे लोहे के मूसलों से पापियों का शासन कर रहे थे। हे मुनिश्रेष्ठ ! उसके बाद वहां ब्रह्मा के गण आये।।६०।।

वे अप्सराओं, गायक गन्धर्वों और किन्नरों को साथ लिये थे। वे विचित्र दिव्य विमान लाये थे।।६१।।

हे महाभाग ! वे परस्पर विवाद करते हुये कहने लगे- यह हमारा है, तुम कौन हो? वे परस्पर युद्ध करने लगे।।६२।।

डंडों, तलवारों, वृक्षों, पाषाणों और पर्वतों से उनका रोंगटे खड़े कर देने वाला भयानक युद्ध हुआ।।६३।।

तदनन्तर उन यम के सैनिकों ने देवदूतों को जीत लिया। वे ब्रह्मा की शरण में गये और यम के सैनिकों ने जो किया था, उसको कहा।।६४।।

देवदूत बोले-

हे ब्रह्मन् ! महाभाग ! देवप्रयाग क्षेत्र में मरे हुये श्रेष्ठ ब्राह्मण को यम के सेवक ले जा रहे हैं।।६५।।

यम के उन दुष्ट सेवकों ने हम सबको निकाल दिया है। उन्होंने हमारे साथ युद्ध किया है और हमें पत्थरों से मसल दिया है।।६६।।

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार उन देवदूतों के कथन को सुनकर लोकों के पितामह भगवान् ब्रह्मा स्वयं चले।।६७।।

जहां कि उस शिकारी ब्राह्मण को यम के सेवकों ने घेर रखा था। यम के सैनिकों का मर्दन करके और पाप रहित उसको विमान में चढाकर ब्रह्मा ने सूर्य के समान कान्तिमान् विमान में ब्रह्मलोक के लिये प्रस्थान किया।।६८।।

ते वै यमभटाः सर्वे रुरुदुश्च यमान्तिके ।। ६९।।

यमदूता उचुः-

वैवस्वत महाराज मृतोऽसि त्वं न संशयः।
यतो दुरितकर्त्तारो नीयन्ते ब्रह्मणा स्वयम् ।। ७०।।

एको द्विजाधमः कश्चिन्नित्यं पापरतोऽभवत्।
परदारपरद्रव्यहारको मुनिहिंसकः ।। ७१।।

मृतः कुत्राऽपि पापः स नीयते ब्राह्मणाधमः।
किमर्थं त्वं नियुक्तोऽसि पापानां शासने विभो ।। ७२।।

स्कन्द उवाच-

इति तद् गदितं श्रुत्वा ययौ रक्तान्तलोचनः।
आययौ भगवान्यत्र ब्रह्मलोकपितामहः ।। ७३।।

पाशैः समुद्गरैः खड्गैर्युक्तो ब्रह्माणमब्रवीत् ।। ७४।।

यम उवाच-

किमर्थं माम् विभो ब्रह्मन् युक्तवान्क्रूरकर्मणि ।। ७५।।

भगवञ्छृणु मे वाक्यं पापानां पापचेतसाम्।
अहं निहन्ता भवता कृतोऽस्मि हि प्रजापते ।। ७६।।

त्वमेव कर्त्ता सर्वस्य स्थावरस्य चरस्य च।
निबन्धो यस्त्वया बद्धो मया सह सुरोत्तम।
तदेव हि कृतं ब्रह्मन्मामकैः किङ्करैस्तथा ।। ७७।।

अयं महापापरतः परदाररतः सदा।
प्राणिनां निधनासक्तो ब्रह्मलोके कथं व्रजेत् ।। ७८।।

ब्रह्मोवाच-

भो भो यम महाभाग यद्वै निगदितं त्वया।
तत्तथैव परं कालं शासिता त्वं हि पापिनाम् ।। ७९।।

सूक्ष्मा गतिर्हि धर्मस्य दुरितस्य तथैव च।
यथा दुष्टाम्बुसम्पूर्णे घटे गङ्गाकणान्विते।
तत्सर्वं जायते धर्मं मोक्षदं केशवप्रियम् ।। ८०।।

यम के वे सब सैनिक यम के पास रोने लगे। ।६९। ।

यम के दूत बोले-

हे सूर्य के पुत्र महाराज यम ! तुम निस्सन्देह मर गये हो। क्योंकि पापियों को स्वयं ब्रह्मा ले जा रहे हैं। ।७०। ।

एक कोई नीच ब्राह्मण सदा पाप में रत रहता था। दूसरों की स्त्रियों का और दूसरों के धन का अपहरण करता था और मुनियों की हिंसा करता था। ।७१। ।

वह मरा हुआ पापी नीच ब्राह्मण कहीं ले जाया गया है। वे विभो ! पापियों का शासन करने के लिये तुम किसलिये नियुक्त किये गये हों। ।७२। ।

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार उनके कथन को सुनकर लाल नेत्रों वाले यम चल पड़े। वे वहां आये जहां लोकों के पितामह ब्रह्मा थे। ।७३। ।

पाशों से, मुद्गरों से और तलवारों से लैस यम ने ब्रह्मा से कहा। ।७४। ।

यम ने कहा-

हे विभो ब्रह्मन् ! क्रूर कर्म करने में आपने मुझको क्यों नियुक्त किया है। ।७५। ।

हे भगवन् ! मेरे वाक्य को सुनो। हे प्रजापते ! आपने मुझको पापियों और पापी मन वालों का हनन करने के लिये नियुक्त किया है। ।७६। ।

तुम ही सम्पूर्ण स्थावर और जंगम सृष्टि की रचना करने वाले हो। हे सुरोत्तम! तुमने मेरे साथ जो अनुबन्ध किया है, हे ब्रह्मन् ! मेरे सेवकों ने वैसा ही कार्य किया है। ।७७। ।

महान् पापों में लगा हुआ, दूसरे की स्त्रियों में सदा आसक्त रहने वाला, और प्राणियों का वध करने मे लगा रहने वाला ब्राह्मण ब्रह्मलोक में कैसे जा सकता है। ।७८। ।

ब्रह्मा ने कहा-

हे महाभाग यम ! जो बात निश्चय से तुमने कही है तुम उसी प्रकार से पापियों का शासन करने वाले परम काल हो। ।७९। ।

धर्म की गति निश्चय से सूक्ष्म है और उसी प्रकार पाप की गति भी सूक्ष्म है। जैसेकि दुष्ट जल से भरे हुये घड़े में गङ्गा जल के कण मिल जाने पर वह सब धर्मों तथा मोक्ष को देने वाला और विष्णु को प्रिय हो जाता है। ।८०। ।

एतत्क्षेत्रस्य माहात्म्यं यत्राऽयं ब्राह्मणो मृतः।
केन वा शक्यते वक्तुं कल्पकोटिशतैरपि ।। ८१।।

यत्र नारायणः साक्षाद्वर्त्तते रमया सह।
अश्रुत्वा देवतीर्थस्य माहात्म्यं खिद्यसे वृथा ।। ८२।।

अनेन दण्डहस्तेन पातकं यत्पुरा कृतम्।
तत्सर्वं रामनाम्ना वै नाशितं रविनन्दन ।। ८३।।

पुण्यतीर्थे हि मरणं जातमस्य महात्मनः।
कथं नरकगामी स्याद् वृथा त्वं खिद्यसे यम ।। ८४।।

एतत् क्षेत्रसमं किञ्चिन्न भूतं न भविष्यति।
यदुद्दिश्य महाभाग मृतोऽन्यत्राऽपि कुत्रचित्।
सोऽपि गच्छति वै ब्रह्मलोकं हि सुरपूजितम् ।। ८५।।

किं पुनः क्षेत्रके पुण्येऽन्तर्गङ्गालकनन्दयोः।
तत्राऽपि मे तपःस्थाने मृतोऽसौ रामनामवान् ।। ८६।।

अतः परं धर्मराज[1] त्वया न यमकिङ्कराः।
प्रेषणीया हि गव्यूतिद्वयमात्रे सुपुण्यके ।। ८७।।

क्षेत्रेऽस्मिन्नायके तीर्थराजा नो सूर्यनन्दनः।
चरतां नरमुख्यानां शासिता न यमो भवान् ।। ८८।।

स्कन्द उवाच-

इत्युक्त्वा धर्मराजं हि पुनः प्रोवाच पश्यताम्।
देवानां राक्षसानाञ्च किन्नराणां नृणामथ ।। ८९।।

ब्रह्म ब्रह्मविदां श्रेष्ठं चक्रे तीर्थस्य नामकम्।
शृणु नारद वक्ष्यामि यदुक्तं ब्रह्मणा पुरा ।। ९०।।

ब्रह्मोवाच-

शृण्वन्तु मुनयः सर्वे सदेवासुरमानुषाः।
अस्य वै तीर्थराजस्य नामधेयं सुपुण्यदम् ।। ९१।।

---

१. महाभाग

जहां यह ब्राह्मण मरा है, इस क्षेत्र का ही यह माहात्म्य है। इसको करोड़ों-सैकड़ों कल्पों में भी कौन कह सकता है।।८१।।

जहांकि नारायण साक्षात् रूप से लक्ष्मी के साथ निवास करते हैं। तुम देवप्रयाग तीर्थ के माहात्म्य को न सुनकर व्यर्थ दुःखी होते हो।।८२।।

इस दण्डहस्त ने पहले जो पाप किया था, हे सूर्यपुत्र यम ! उस सब को राम के नाम ने नष्ट कर दिया है।।८३।।

इस महात्मा की मृत्यु निश्चय से पुण्य तीर्थ में हुई है। अतः यह नरक में कैसे जायगा। हे यम ! तुम व्यर्थ खिन्न होते हो।।८४।।

इस क्षेत्र के समान अन्य कोई क्षेत्र न हुआ है और न होगा। हे महाभाग ! इसको लक्ष्य करके यदि प्राणी की अन्य किसी स्थान पर भी मृत्यु होती है, तो भी वह देवताओं से पूजित ब्रह्मलोक को जाता है।।८५।।

पुनः गङ्गा और अलकनन्दा के पुण्य क्षेत्र के अन्दर का तो कहना ही क्या है। वहां भी राम का नाम लेने वाले उस ब्राह्मण की मृत्यु मेरे तप के स्थान पर हुई है।।८६।।

हे धर्मराज ! इसके पश्चात् तुम अपने यम-सेवकों को अति पुण्यशाली देवप्रयाग के दो गव्यूति (चार कोस) विस्तार के स्थान में नहीं भेजना।।८७।।

हमारे द्वारा नेतृत्व किये जाने वाले इस क्षेत्र में सूर्यपुत्र यम तीर्थ का राजा नहीं है। इस क्षेत्र में विचरण करने वाले श्रेष्ठ मनुष्यों पर आप यम का शासन नहीं है।।८८।।

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार कह कर देवताओं, राक्षसों, किन्नरों और मनुष्यों के देखते हुये ही वे पुनः कहने लगे।।८९।।

ब्रह्मवेत्ताओं के लिये ब्रह्म नामक श्रेष्ठ तीर्थ की रचना की थी। हे नारद ! ब्रह्मा ने जो प्राचीन काल में कहा था, उसको सुनो।।९०।।

ब्रह्मा ने कहा-

देवताओं, मनुष्यों और असुरों सहित हे सब मुनियो ! सुनो। इस तीर्थराज का नाम बहुत अधिक पुण्य देने वाला है।।९१।।

ब्रह्मतीर्थमिति ख्यातिं यास्यति प्रकटं सुराः।
यूयं सर्वे महाभागा मया सह स्थिता हि वै ।। ९२।।

स्कन्द उवाच-

इत्युक्त्वा तं महाव्याधं दण्डहस्तं मुनीश्वरम्।
गृहीत्वा सह गन्धर्वदेवकिन्नरतापसैः।
ययौ स्वभवनं ब्रह्मा सुरासुरनिषेवितम् ।। ९३।।

दण्डहस्तोऽपि धर्मात्मा स्थितवान्ब्रह्मणः पुरे ।। ९४।।

यमोऽपि निजदूतैश्च जगाम भवनं स्वकम्।
आश्चर्य परमं प्राप्य श्रुत्वा क्षेत्रस्य वैभवम् ।। ९५।।

इति ते कथितं ब्रह्मन् यत्पृष्टोऽहं त्वया मुने।
ब्रह्मतीर्थस्य चोत्पत्तिस्तपो वै ब्रह्मणः परम् ।। ९६।।

मध्याह्ने मुनिशार्दूल नूनमायान्ति नित्यशः।
सर्वे ऋषिगणा देवा स्नानं कर्तुं द्विजोत्तम ।। ९७।।

श्रूयते सामघोषो हि चातुर्मास्ये मुनीश्वर।
प्रातर्मध्ये तथा सायं रामभक्तैस्तु तैः कृतम् ।। ९८।।

यस्य श्रवणमात्रेण निर्धूताखिलकल्मषः।
मानवो स्वर्गलोकं वै गच्छेद्धि सुरपूजितम् ।। ९९।।

सूत उवाच-

इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलं नारदं भगवद्गतिम्।
विरराम महाभाग ज्ञानिनां प्रवरो मुनिः ।। १००।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे देवप्रयागमाहात्म्यवर्णनं
नामैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।।

यह स्थान ब्रह्मतीर्थ नाम से प्रसिद्ध होगा। यहां सब देवता प्रकट होंगे। हे महाभाग ! तुम सब निश्चय से मेरे साथ स्थित रहोगे।।९२।।

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार कह कर, उस मुनीश्वर महाव्याध दण्डहस्त को गन्धर्वों, देवताओं, किन्नरों और तपस्वियों के साथ लेकर ब्रह्मा सुरों-असुरों से सेवित अपने लोक को चले गये।।९३।।

धर्मात्मा दण्डहस्त भी ब्रह्मा के लोक में रहने लगा।।९४।।

देवप्रयाग क्षेत्र के परम आश्चर्यजनक वैभव को सुन कर यम भी अपने दूतों के साथ अपने लोक को चला गया।।९५।।

हे ब्रह्मन् ! हे मुने ! तुमने जो मुझसे पूछा था, उस ब्रह्मतीर्थ की उत्पत्ति और ब्रह्मा के परम तप के सम्बन्ध की कथा मैंने कह दी है।।९६।।

हे मुनिश्रेष्ठ द्विजोत्तम ! यहां मध्याह्न में प्रतिदिन सब ऋषि और देवता स्नान करने के लिये आते हैं।।९७।।

हे मुनीश्वर ! राम के भक्त जो यहां प्रातःकाल, मध्याह्न में और सायंकाल साम के मन्त्रों का उच्चारण करते हैं, वह चातुर्मास में सुनाई देता है।।९८।।

इसके सुनने मात्र से मनुष्य के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं और वह देवताओं से पूजित स्वर्गलोक को जाता है।।९९।।

सूत ने कहा-

हे महाभाग ! इस प्रकार मुनिश्रेष्ठ नारद से भगवान् की गति के विषय में कहकर ज्ञानियों में श्रेष्ठ मुनि चुप हो गये।।१००।।

इस प्रकार स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में देवप्रयागमाहात्म्यवर्णन नाम का १५१ वां अध्याय समाप्त हुआ।।

द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

देवप्रयागे वसिष्ठतीर्थकथनम्, तत्प्रसङ्गेन वाराणसी-स्थितद्विजवरस्य घनानन्दस्य वसिष्ठतीर्थे श्रीरामाराधनेन विपदुद्धरणकथनम्

नारद उवाच-

भगवन्सर्वधर्मज्ञ कार्तिकेय महाबल।
यदुक्तं ब्रह्मतीर्थस्य वामभागे त्वया वरम्[1]।
वसिष्ठतीर्थं तीर्थानां प्रवरं भक्तमोक्षदम् ।। १।।

कथयस्व प्रसादेन तस्योत्पत्तिं च विस्तरात्।
केन केन तपस्तप्तं किं किं प्राप्तं फलं विभो ।। २।।

सर्वं वद महासेन समासेन हि तीर्थकम् ।। ३।।

स्कन्द उवाच-

शृणु नारद वक्ष्यामि तीर्थराजस्य वैभवम्।
उत्पत्तिं विस्तरेणैव यत्पृष्टोऽहं त्वया मुने ।। ४।।

श्रुत्वा ब्रह्ममुखोद्गीतं देवप्रयागवैभवम्।
ब्रह्मतीर्थस्य निकटे वासं चक्रे महामतिः ।। ५।।

वसिष्ठस्तपतां श्रेष्ठो नारायणसमीपतः।
मुनिभिस्सिद्धगन्धर्वैर्न्यवसद् ब्रह्मणोऽन्तिके ।। ६।।

इदं तीर्थं महाभाग स्वर्गमोक्षप्रदायकम्।
पुत्रीयं धनदं चैव रामभक्तिप्रदायकम् ।। ७।।

वारमेकं तु यः स्नायाद् भक्त्याऽभक्त्यापि वा द्विज।
म्रियते यत्र कुत्राऽपि सोऽपि ब्रह्मणि लीयते ।। ८।।

किं पुनर्मानवो भक्त्या रामं हृदि निधाय च।
करोति च हरेः पूजामस्मिंस्तीर्थे हि मज्जनम् ।। ९।।

---

१. वर

अध्याय-१५२

देवप्रयाग में वसिष्ठ तीर्थ का कथन। इसी प्रसङ्ग में वाराणसी में रहने वाले श्रेष्ठ ब्राह्मण धनानन्द का वसिष्ठ तीर्थ में आकर श्रीराम की आराधना करने से विपत्तियों से उद्धार पाना

नारद ने कहा-

हे महाबली कार्तिकेय ! हे सब धर्मों को जानने वाले भगवन् ! आपने ब्रह्मतीर्थ के वाम भाग में तीर्थों में श्रेष्ठ और भक्तों को मोक्ष देने वाले जिस वसिष्ठ तीर्थ की बात कही है।।१।।

आप अपनी कृपा से उस तीर्थ की उत्पत्ति के विषय में विस्तार से कहिये। हे विभो ! वहां किस किसने तप किया था और क्या क्या फल पाया।।२।।

हे महासेन ! उस तीर्थ के सम्बन्ध में संक्षेप से सब कुछ कहिये।।३।।

स्कन्द ने कहा-

हे मुने ! तुमने जो कुछ पूछा है, उस तीर्थराज के वैभव को और उत्पत्ति को विस्तार से बताऊंगा।।४।।

ब्रह्मा के मुख से गाये गये देवप्रयाग के वैभव को सुनकर महामति वसिष्ठ ने ब्रह्मतीर्थ के निकट निवास किया।।५।।

तपस्वियों में श्रेष्ठ वसिष्ठ नारायण के समीप से मुनियों, गन्धर्वों और सिद्धों के साथ ब्रह्मा के समीप रहने लगे।।६।।

हे महाभाग ! यह तीर्थ स्वर्ग और मोक्ष को देने वाला है, पुत्र देने वाला है, धन देने वाला है और राम के प्रति भक्ति को देने वाला है।।७।।

हे द्विज ! जो यहां भक्ति से अथवा भक्ति के विना भी एक बार भी स्नान कर लेता है, वह जहां कहीं भी मरता है, ब्रह्मा में लीन हो जाता है।।८।।

पुनः भक्ति से राम को हृदय में रखकर जो इस तीर्थ में विष्णु का पूजन करता है और स्नान करता है, उसका तो कहना ही क्या है।।९।।

एतत्तीर्थाम्बुनिर्माल्यं यस्यागै: स्पृशते मुने।
सर्वरोगैस्तथा पापैर्मुक्तो भवति नारद ।। १०।।

जितेन्द्रिय: शान्तमना: सदाचारेण संयुत:।
स्नानं करोति वासिष्ठे सो नरो वैष्णव:[1] स्मृत: ।। ११।।

य: कश्चिन्मानवो भक्त्या श्रीरामकृतमानस:।
वसिष्ठतीर्थजां मृत्स्नां ललाटे प्रकरोति हि ।। १२।।

तस्य सन्दर्शनादेव वत्सरे दुरितं कृतम्।
नाशमायाति विप्रेन्द्र सत्यं सत्यं न संशय: ।। १३।।

पुत्रार्थी मासमेकं हि स्नानमस्मिन्करोति य:।
उक्तेन विधिना विप्र पुत्रमाप्नोति निश्चितम् ।। १४।।

राज्यार्थी पक्षमेकं हि प्रात:काले द्विजोत्तम।
करोति विधिवद् भक्त्या स्नानं गङ्गाजले शुभे।
प्राप्नोति राज्यं विपुलं परत्र च परां गतिम् ।। १५।।

एतत्तीर्थस्य माहात्म्याद्दरिद्रो भूमिदेवक:।
सम्प्राप सम्पदोऽकस्मात्सन्तानं चाऽपि नारद ।। १६।।

मुनीन्द्र शृणु वक्ष्यामि यथाऽसौ प्राप्तवान्द्विज:।
वाराणस्यां वभूवाऽथ घनानन्दो हि भूसुर: ।। १७।।

तस्य पत्नी महाभाग कावेरी समजायत।
चत्वारस्तस्य वै पुत्रा धनं धान्यं हि सङ्कुलम् ।। १८।।

रेमाते स्वगृहे विप्रदम्पती धनसेवकौ।
पुत्रांश्च धनधान्यांश्च विद्यां चैव महामुने।
तस्यैवासन् यथा देव: शुशुभे स्वगृहे तु स: ।। १९।।

वेदाध्ययनसम्पन्न: सर्वशास्त्रविशारद:।
षट्कर्मसंयुत: सोऽथ विष्णुपूजनतत्पर: ।। २०।।

कदाचित्तस्य विपेन्द्र धनं कर्मार्जितं मुने।
ननाश राजतो वाऽपि चौरेभ्यश्च तथैव च ।। २१।।

---

१. विष्णव:

हे मुने नारद ! इस तीर्थ के पवित्र जल का जिस के अङ्गों से स्पर्श हो जाता है, वह सभी रोगों और पापों से मुक्त हो जाता है।।१०।।

इन्द्रियों को वश में करके, मन को शान्त करके सदाचार से युक्त जो मनुष्य वासिष्ठ तीर्थ में स्नान करता है, वह मनुष्य विष्णु का भक्त कहा गया है।।११।।

भक्तिपूर्वक श्रीराम को मन में रखकर जो कोई मनुष्य वसिष्ठ तीर्थ की मिट्टी को मस्तक पर लगाता है.........।।१२।।

हे विप्रश्रेष्ठ ! उसके दर्शनमात्र से ही पूरे वर्ष किया गया पाप नष्ट हो जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है।।१३।।

हे विप्र ! पुत्र को चाहने वाला जो व्यक्ति एक मास तक इसमें यथोक्त विधि से स्नान करता है, वह निश्चित रूप से पुत्र को प्राप्त करता है।।१४।।

हे द्विजश्रेष्ठ ! राज्य को चाहने वाला जो व्यक्ति गङ्गा के शुभ जल में भक्तिपूर्वक और विधिपूर्वक एक वर्ष तक प्रातःकाल स्नान करता है, वह इस लोक में विशाल राज्य प्राप्त करता है और परलोक में परमगति को पाता है।।१५।।

हे नारद ! इस तीर्थ के माहात्म्य से दरिद्र भूमिदेवक ने अकस्मात् ही सम्पत्ति को और सन्तान को प्राप्त किया था।।१६।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! सुनो। जिस प्रकार कि ब्राह्मण ने उसको प्राप्त किया था। कभी वाराणसी में घनानन्द नाम का ब्राह्मण था।।१७।।

हे महाभाग ! उसकी पत्नी कावेरी थी। उसके चार पुत्र थे और घर में धन-धान्य भरा हुआ था।।१८।।

हे महामुने ! वे धन की सेवा करने वाले ब्राह्मण दम्पती अपने घर में आनन्द करते थे। पुत्र, धन, धान्य और विद्या सभी कुछ उनके पास थे। वह ब्राह्मण अपने घर में देवता के समान शोभित था।।१९।।

ब्राह्मण ने वेदों का अध्ययन कर रखा था, वह सभी शास्त्रों में पारङ्गत था, षट्कर्म में संयत रहता था और विष्णु की पूजा भी नियमित रूप से करता था।।२०।।

हे विप्रश्रेष्ठ मुने ! कभी ऐसा हुआ कि उसके उपार्जित किये हुये धन का राजा ने और चोरों ने विनाश कर दिया।।२१।।

दारिद्र्यं परमं प्राप दीनोऽभूद् द्विजसत्तमः।
अत एव महाभाग दैवस्य कुटिला गतिः ।। २२।।

क्षणं ददाति विप्रेन्द्र क्षणं संहरते पुनः।
दारान् धनानि पुत्रांश्च मित्रवर्गांस्तथैव च ।। २३।।

एते सर्वे महाभाग स्वस्वसम्बन्धिनस्तथा।
सम्बन्धे तु क्षयं याते क्षयं यान्ति मुनीश्वर ।। २४।।

स तु दुःखाभिसन्तप्तो घनानन्दो हि नारद।
सहपुत्रैश्च दारैश्च ययौ देशान्तरं द्विजः ।। २५।।

कावेरी च घनानन्दश्चत्वारस्तस्य सूनवः।
त्यक्त्वा भृत्यैश्च मित्रैश्च दुःखार्ता हि वनं ययुः ।। २६।।

घोरं सिंहादिभिर्युक्तं झिल्लीझङ्कारनादितम्।
वृक्षैरताम्रकैर्बिल्वैर्दारुकैर्देवदारुकैः ।। २७।।

अक्षोटकैः कदम्बैश्च पलाशैः खदिरैस्तथा।
शालैस्तालैर्महाव्यालैर्युक्तं सर्वभयाकुलं ।। २८।।

राक्षसैर्घोरनादैश्च वानरैर्वनगोचरैः।
एतादृशं वनं दृष्ट्वा भयार्ता विपिनं ययुः ।। २९।।

गच्छत्सु तेषु विप्रेषु वने तस्मिन्भयाकुले।
आजग्मू राक्षसा विप्र चत्वारो विकटाननाः ।। ३०।।

तान्दृष्ट्वा भयसंविग्ना बभूवुर्मुनिसत्तम।
किं कुर्मो क्व गच्छाम इत्यूचुश्च परस्परम् ।। ३१।।

अथ ते राक्षसाः घोराः समादाय च पुत्रकान्।
तयोस्तु पश्यतोरेव[1] जग्मुर्वै मुनिपुङ्गव ।। ३२।।

दम्पती तौ रुरुदतुर्हृतान् दृष्ट्वा हि पुत्रकान्।
हा वां हतौ स्व इत्युक्त्वा तौ पृथिव्यां निपेततुः ।। ३३।।

मुहूर्ते तौ तु निश्चेष्टौ सम्बभूवतुराप्य हि।
कदाचित्त्वथ वै संज्ञां विलेपतुरुदश्रुकौ ।। ३४।।

---
१. जहु

परम दरिद्र होकर वह श्रेष्ठ ब्राह्मण दीन हो गया। हे महाभाग ! इसीलिये कहा जाता है कि दैव की गति बड़ी कुटिल है।।२२।।

हे विप्रश्रेष्ठ ! वह दैव क्षण भर में ही पत्नी, धन, पुत्र और मित्रों को प्रदान करता है और क्षण भर में ही पुनः छीन लेता है।।२३।।

हे महाभाग मुनिश्रेष्ठ ! ये सब जो अपने अपने सम्बन्धी हैं, सम्बन्ध के क्षीण हो जाने पर क्षीण हो जाते हैं।।२४।।

हे नारद ! घनानन्द नाम का ब्राह्मण दुःख से अत्यधिक पीडित होकर पत्नी और पुत्रों के साथ दूसरे देश में चला गया।।२५।।

सम्पत्तियों और मित्रों से त्यागे जाकर कावेरी, घनानन्द और उसके चारों पुत्र दुःख से पीडित होते हुये वन में चले गये।।२६।।

वह वन भयानक था। उसमें सिंह आदि जन्तु भरे हुये थे और झिल्ली आदि का झंकार सुनाई देता था। वहां आंवड़ा, बेल, दारुहल्दी और देवदारु के वृक्ष थे।।२७।।

वहां अखरोट, कदम्ब, पलाश, खैर, साल और ताड़ के वृक्ष थे। बड़े आकार के सर्प और हाथी वहां थे। वह सभी प्रकार के भयों से भरा हुआ था।।२८।।

वहां भयानक शब्द क़रने वाले राक्षस और बन्दर दिखाई देते थे। इस प्रकार के भयानक वन को देखकर दुःख से पीडित हुये वन में वे जा रहे थे।।२९।।

हे विप्र ! जबकि वे ब्राह्मण उस भयानक वन में जा रहे थे, तभी भयानक मुखों वाले चार राक्षस वहां आ गये।।३०।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! उन राक्षसों को देखकर वे भय से व्याकुल हो गये। हम क्या करें? कहां जावें, इस प्रकार आपस में कहने लगे।।३१।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! इसके पश्चात् उन दोनों के देखते देखते ही वे भयानक राक्षस उनके पुत्रों को पकड़कर चले गये।।३२।।

पुत्रों को अपहरण किया देखकर वे दम्पती विलाप करने लगे- हाय ! हम मारे गये हैं। यह कह कर वे भूमि पर गिर पड़े।।३३।।

मुहूर्त भर वे निश्चेष्ट पड़े रहे। तदनन्तर होश में आकर वे आंसू बहाते हुये रोने लगे।।३४।।

हा पुत्रा इति पुत्रा वै क्व गच्छावोऽथ निर्धनौ।
अपुत्रौ मरणं नौ हि कथं स्याद्धतभाग्ययोः ।। ३५ ।।

स्कन्द उवाच-

इत्येवं विलपन्तौ तौ महारण्ये प्रजग्मतुः।
अज्ञौ मार्गस्य विप्रेन्द्राहो संनिःसरदश्रुकौ।
तयोर्नारद दम्पत्योर्वने रात्रिः प्रवर्तते ।। ३६ ।।

भयशोकार्दितौ रात्रौ निद्रां नैव च जग्मतुः।
ततस्तौ मुनिशार्दूल जगदुश्च परस्परम्।
किं कुर्वः क्व च गच्छावो मार्गो नैव प्रदृश्यते ।। ३७ ।।

कावेरी जगाद-

पतिं जगाद कावेरी कुरु काष्ठस्य सङ्ग्रहम्।
प्रज्वाल्य च महावह्निं दग्ध्वा देहं यमालयम् ।। ३८ ।।

यत्र वै मम पुत्राश्च गता राक्षसभक्षिताः।
भक्षयन्त्वथवा वां हि राक्षसा विकटाननाः ।। ३९ ।।

ब्राह्मण उवाच-

यदि तान्मृगशावाक्षि प्राप्स्यावो निजपुत्रकान्।
भविष्यति हि साफल्यं मरणस्याऽऽवयोः प्रिये ।। ४० ।।

आवाभ्यामपि न प्राप्ताश्चेत्सुता निधनेन च।
तदा वै चन्द्रवदने आत्महत्यैव केवलम् ।। ४१ ।।

विपत्तौ महतां धार्यं धैर्यं शोकस्य नाशनम्।
अधैर्येण च कावेरि शरीरं नश्यति क्षणात् ।। ४२ ।।

शरीरं चेत्पुनः पुण्यं धनं दाराः सुताः पुनः।
नष्टे शरीरे कावेरि कुतः पुण्यं कुतः सुखम् ।। ४३ ।।

दुष्टेन मरणेनाऽथ दुर्गतिश्च भवेन्नृणाम्।
दुर्गतेस्तु महद्दुःखं जायते प्रेतदेहके ।। ४४ ।।

हाय पुत्रो ! हाय पुत्रो ! अब हम दोनों निर्धन कहां जावें ? पुत्ररहित अभागे हम दोनों का मरना भी कैसे हो ।।३५।।

स्कन्द ने कहा-

हे विप्रश्रेष्ठ नारद ! इस प्रकार से विलाप करते हुये, आंसुओं को बहाते हुये तथा मार्ग को न जानते हुये वे दोनों महावन में चले गये। उन दम्पती की वन में ही रात हो गयी ।।३६।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! भय और शोक से पीडित उन दोनों को रात में नींद नहीं आई। तब वे आपस में कहने लगे- क्या करें ? कहां जावें ? मार्ग ही नहीं दिखाई देता है ।।३७।।

कावेरी ने कहा-

कावेरी ने पति से कहा- लकड़ियां इकठ्ठी करो। अग्नि को प्रज्ज्वलित करके शरीर को जलाकर यमलोक चलें ।।३८।।

जहांकि राक्षसों से खाये जाकर मेरे पुत्र चले गये हैं। अथवा भयानक मुखों वाले राक्षस हम दोनों को भी खा जावें ।।३९।।

ब्राह्मण बोला-

हरिणशावक के समान सुन्दर आंखों वाली प्रिये ! यदि हम अपने पुत्रों को प्राप्त कर लेंगे, तभी हमारा मरना सफल होगा ।।४०।।

हे चन्द्र के समान सुन्दर मुख वाली ! यदि हम दोनों मर कर भी पुत्रों को नहीं पा सके तो यह केवल आत्महत्या होगी ।।४१।।

हे कावेरि ! महान् व्यक्तियों को चाहिये कि विपत्ति में भी धैर्य धारण करें। यह शोक को नष्ट करने वाला है। अधीरता से तो शरीर क्षण भर में नष्ट होता है ।।४२।।

हे कावेरि ! यदि शरीर है तो पुण्य, धन, पत्नी और पुत्र फिर मिल जाते हैं। शरीर के नष्ट हो जाने पर तो पुण्य कहां और सुख कहां ? ।।४३।।

तदनन्तर दुष्ट मरण (आत्महत्या) से तो मनुष्यों की दुर्गति ही होती है। दुर्गति होने पर प्रेत के शरीर में जाकर महान् दुःख होता है ।।४४।।

कावेर्युवाच-

केन वै मरणेनाऽथ नराः संयान्ति दुर्गतिम्।
किं किं दुखं तत्र देहे जायते च कथं विभो ।। ४५।।

ब्राह्मण उवाच-

येन वै मरणेनेह दुर्गतिर्जायते नृणाम्।
शृणु कावेरि वक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।। ४६।।

विषेण मरणं यस्य सर्पेण निहितोऽपि यः।
वृक्षादिभिश्च पतितो जलादौ पतनात्तथा ।। ४७।।

आत्मघाताद् वह्नितो वा सिंहादिभ्यस्तथैव च।
मरणं जायते यस्य स पिशाचो भवेन्नरः ।। ४८।।

जाते पिशाचदेहे तु नानादुःखं प्रजायते।
क्षुधया तृषया चैव पीड्यन्ते नित्यमेव हि ।। ४९।।

उदरं कूपसदृशं क्षुधा दावाग्निना समा।
गलद्वारं तु तेषां वै सूचीछिद्रसमं स्मृतम् ।। ५०।।

यत्र श्रीरघुनाथस्य कथा वै तु प्रगीयते।
तत्र ते हि न गच्छन्ति भयाविष्टास्सदैव हि ।। ५१।।

यत्र गङ्गा सरिच्छ्रेष्ठा विप्राणां यत्र पूजकाः।
विप्रा[1] वेदविदो यत्र[2] वेदाध्ययनमेव च ।। ५२।।

पुराणश्रवणं यत्र सदाशिवप्रपूजनम्।
गावो यत्र प्रपूज्यन्ते स्नातकाश्च मम प्रिये ।। ५३।।

तत्र तत्र न गच्छन्ति यत्र रामपरायणाः।
भुञ्जन्ति नो यत्र विप्रा परदाररतास्तथा ।। ५४।।

शिवस्य केशवस्यापि भेदबोधनतत्पराः[3]।
तेषां गृहं श्मशानं हि बोद्धव्यं प्रियवादिनि ।। ५५।।

---

१. विप्र २. विप्र ३. भेदकान्ध

कावेरी ने कहा-

हे प्रभो ! किस प्रकार से मरने से मनुष्य दुर्गति को प्राप्त करता है और उस शरीर में कौन कौन सा दुःख किस प्रकार होता है ?।।४५।।

ब्राह्मण बोला-

जिस प्रकार के मरने से मनुष्यों की दुर्गति होती है, उसको मैं बताऊंगा। हे कावेरि ! सुनो, जो कुछ तुम मुझ से पूछ रही हो।।४६।।

जो मनुष्य विष से मरता है, जो सांप से डसा जाकर मरता है, जो वृक्ष आदि से गिर कर मरता है और जल आदि में गिर कर मर जाता है........।।४७।।

जो आत्महत्या करता है, जो अग्नि से जला दिया जाता है और जिसको सिंह आदि हिंस्र जन्तु मार डालते है, वह मनुष्य पिशाच बनता है।।४८।।

पिशाच का शरीर होने पर नाना प्रकार के दुःख होते हैं। भूख और प्यास उसको सदा पीडित करते रहते हैं।।४९।।

उसका पेट कुयें के समान हो जाता है, भूख जंगल की आग के समान हो जाती है, परन्तु उनका गले का द्वार सुई के छेद के समान बारीक हो जाता है।।५०।।

जहां श्री रघुनाथ रामचन्द्र की कथा का गान किया जाता है, वहां वे भय से आविष्ट होकर नहीं जा सकते हैं।।५१।।

जहां नदियों में श्रेष्ठ गङ्गा है, जहां ब्राह्मणों का पूजन करने वाले हैं, जहां वेदों के विद्वान् ब्राह्मण हैं, जहां वेदाध्ययन होता है, वहां वे नहीं जा सकते हैं।।५२।।

हे मेरी प्रिये ! जहां पुराण सुने जाते हैं, जहां शिव का पूजन होता है, जहां गौओं का पूजन किया जाता है, जहां स्नातक रहते हैं, वहां वे नहीं जा सकते।।५३।।

जहां जहां राम भक्त रहते हैं, वहां वहां वे नहीं जा सकते हैं। उनको वहीं भोग प्राप्त होते हैं, जहां ब्राह्मण नहीं रहते हैं और जहां के लोग पराई स्त्रियों में रत रहते हैं।।५४।।

शिव और विष्णु में जो भेद कहने वाले होते हैं, हे प्रिय बोलने वाली ! उनके घर को श्मशान ही समझना चाहिये।।५५।।

तत्र भुञ्जति वै प्रेता उच्छिष्टं यत्र वर्तते।
विप्राणां निन्दका यत्र यत्र पैशून्यकारका: ।। ५६।।

यत्र रामकथा नाऽस्ति विप्राणां न च पूजनम्।
अब्रह्मचारिणो यत्र रामभक्तिपराङ्मुखा: ।। ५७।।

येषां गृहे नाऽतिथय: पूज्यन्ते गृहवासिनाम्।
गवां ग्रासो यत्र नाऽस्ति तत्र भुञ्जन्ति नित्यश: ।। ५८।।

इति दु:खतरं तेषामात्मघातेन तत्परा:।
ये वै दुर्गतिसम्प्राप्ता नरके च वसन्ति ते ।। ५९।।

तस्मात्सुन्दरि नो कार्य आत्मघातस्तथैव च।
न मृता आवयो: पुत्रा स्वसम्बन्धिन एव ते ।। ६०।।

स्कन्द उवाच-

तयोरिति कथयतो: प्रातर्वै समजायत।
पुनस्तौ मुनिशार्दूल जग्मतुर्दिशमुत्तरम् ।। ६१।।

गच्छतस्त्वरया तस्य हन्तुर्बालस्य नारद।
पतितं भूषणं मार्गे ताभ्यां प्राप्तं मुनीश्वर ।। ६२।।

दारिद्र्याविष्टमनसौ क्षुधितौ तृषितौ च तौ।
तथैव ममताविष्टौ जहतुरिदमुत्तमम् ।। ६३।।

तत: कथञ्चिन्नगरं प्राप्तौ वै द्विजदम्पती।
तत्राऽपि तौ मुनिश्रेष्ठौ दशां काष्ठामवापतु: ।। ६४।।

नारद उवाच-

स वै विप्रो महाप्राज्ञ: सर्वशास्त्रविशारद:।
विष्णोश्च पूजने सक्तो व्यसनं कथमाप्तवान् ।। ६५।।

कथं वै पुत्रमरणं नष्टं चैव सुखं धनम्।
एतं मे संशयं स्कन्द यथावच्छेत्तुमर्हसि ।। ६६।।

प्रेत गण वहीं खाते हैं, जहां उच्छिष्ट भोजन बचा रहता है, ब्राह्मणों की निन्दा होती है और जहां चुगली करने वाले रहते हैं।।५६।।

वे वहां खाते हैं, जहां राम की कथा नहीं होती, ब्राह्मणों का पूजन नहीं होता, जहां ब्रह्मचर्य का पालन नहीं होता और जहां के लोग राम के प्रति भक्ति से पराङ्मुख रहते हैं।।५७।।

वे प्रतिदिन वहीं खाते हैं, जिन गृहस्थियों के घरों में अतिथियों का सत्कार नहीं किया जाता है और जहां गाय को ग्रास नहीं निकाला जाता है।।५८।।

इस प्रकार आत्मघात करने वालों को बहुत दुःख मिलता है। वे निश्चय से दुर्गति को प्राप्त करके नरक में निवास करते हैं।।५९।।

हे सुन्दरि ! इसलिये हमें इस प्रकार आत्महत्या नहीं करनी चाहिये। हमारे पुत्र मरे नहीं हैं, वे तो हमसे ही सम्बन्धित हैं।।६०।।

स्कन्द ने कहा-

हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार उनके वार्ता करते हुये प्रातःकाल हो गया। फिर वे दोनों उत्तरदिशा की ओर चले गये।।६१।।

हे मुनिराज नारद ! जबकि वे तेजी से जा रहे थे, तो उन्होंने मार्ग में मारे गये किसी बालक के आभूषण को गिरा हुआ पाया।।६२।।

दरिद्रता से आविष्ट मन वाले, भूखे और प्यासे, परन्तु उसी प्रकार ममता से भरे हुये उन दोनों ने इस उत्तम आभूषण को ले लिया।।६३।।

इसके पश्चात् वे ब्राह्मण दम्पती किसी प्रकार नगर में पहुंचे। वहां भी उन मुनिश्रेष्ठों ने चरम दुर्दशा को प्राप्त किया।।६४।।

नारद बोले-

निश्चय से वह ब्राह्मण बहुत बुद्धिमान् था, सभी शास्त्रों में विशारद था और विष्णु का पूजन करने में लगा रहता था। उसको आपत्ति कैसे प्राप्त हो गई ?।।६५।।

उसके पुत्रों की मृत्यु कैसे हुई और उसका धन कैसे नष्ट हो गया ? हे स्कन्द ! मेरे इस संशय को आप यथाशक्ति विखण्डित करें।।६६।।

स्कन्द उवाच-

शृणु नारद वक्ष्यामि कृतं तेन तु यत्पुरा।
सोऽभवद्द्विजशार्दूल पुरा जन्मनि क्षत्रियः ।। ६७ ।।

उग्रदण्ड इति ख्यातो राजा शत्रुविमर्दनः।
कावेरी द्विजशुश्रूषा नाम्नाऽऽसीद् ब्रह्मनन्दन ।। ६८ ।।

तपस्वी ज्ञानिनां श्रेष्ठः शिवभक्तिपरायणः।
द्विजशुश्रूषा च तथा पतिभक्तिपरायणा ।। ६९ ।।

चक्रतुः कतिचिद्वर्षं तपो ब्राह्मणजन्मनि।
ताभ्यां च पूजिता विप्राः दानसम्मानभोजनैः ।। ७० ।।

पालयामास सम्प्राप्य राज्यं पुत्रानिवौरसान्।
प्रजा वै कस्यचिद्विप्र नौ वै दुःखमजानत ।। ७१ ।।

एकदा मुनिशार्दूल दुर्वासा मुनिसत्तमः।
आगतो भोजनं कर्तुं तस्य गेहे हि नारद ।। ७२ ।।

भोजनं कर्तुमुद्युक्तो दुर्वासा मुनिराट् ततः।
तेनाऽपि भोजनं दत्तं याचितं तेन यत्तथा ।। ७३ ।।

भोजनं कुर्वतस्तस्य भोज्ये केशो व्यदृश्यत।
तं केशं पतितं दृष्ट्वा शशाप मुनिसत्तमः ।। ७४ ।।

उन्मत्तेन त्वया राजन् यद्दत्तं केशदूषितम्।
भोजनं तेन भविता पुत्रशोकश्च निर्धनः ।। ७५ ।।

राजोवाच-

भो भो मुनिगणश्रेष्ठ शापं वै दत्तवानसि।
मां चाऽपराधरहितं सहसा त्वं कथं मुने ।। ७६ ।।

स्कन्द उवाच-

इत्युक्त्वा तं मुनिं राजा ववन्दे चरणौ मुने।
तुतोष स्तुतिपाठैश्च नतिभिर्मुनिनायकम्[1] ।। ७७ ।।

---
१. नायकः

स्कन्द ने कहा-

हे द्विजश्रेष्ठ नारद ! सुनो। उस ब्राह्मण ने पूर्व जन्म में जो कर्म किया था, वह कहूंगा। पहले जन्म में वह क्षत्रिय था।।६७।।

हे ब्रह्मा जी के पुत्र नारद ! शत्रुओं को नष्ट करने वाले उस राजा का नाम उग्रदण्ड था। कावेरी का नाम उस जन्म में ब्रह्मसुश्रूषा था।।६८।।

वह तपस्वी था, ज्ञानियों में श्रेष्ठ था और शिव की भक्ति में तत्पर रहता था। द्विजसुश्रूषा भी पति की भक्ति में परायण रहती थी।।६९।।

तदनन्तर उन्होंने कुछ वर्षों तक ब्राह्मण रूप में जन्म के लिये तपस्या की। उन्होंने दान, सम्मान तथा भोजन के द्वारा ब्राह्मणों का सम्मान किया।।७०।।

राज्य को प्राप्त करके राजा ने प्रजाओं का औरस पुत्रों के समान पालन किया। और उसकी प्रजायें निश्चय से किसी दुःख को नहीं जानती थीं।।७१।।

हे मुनिश्रेष्ठ नारद ! एक दिन मुनियों में श्रेष्ठ दुर्वासा उसके घर में भोजन के लिये आये।।७२।।

तदनन्तर मुनिराज दुर्वासा भोजन करने के लिये उद्यत हुये। उसने भी दुर्वासा ने जैसा मांगा था, वैसा भोजन दिया।।७३।।

भोजन करते हुये उसके भोजन में बाल दिखाई दिया। उस केश को पड़ा देखकर मुनिश्रेष्ठ ने शाप दिया।।७४।।

हे राजन् ! क्योंकि तुमने केश से दूषित भोजन उन्मत्त होकर दिया है, इससे तुमको पुत्र का शोक होगा और तुम निर्धन हो जाओगे।।७५।।

राजा ने कहा-

मुनियों में श्रेष्ठ हे मुने ! मुझ अपराधरहित को आपने सहसा ही कैसे शाप दे दिया।।७६।।

स्कन्द ने कहा-

हे मुने ! ऐसा कह कर राजा ने मुनि के चरणों की वन्दना की और प्रणामों द्वारा तथा स्तुतिपाठों द्वारा उस मुनिनायक को प्रसन्न किया।।७७।।

दुर्वासा उवाच-

अज्ञात्वा ते मया दत्तः शापः परमकोपिना।
अमोघो मम शापोऽयं भविष्यत्यन्यजन्मनि ।। ७८।।

शापस्यान्तोऽपि भविता तत्रैव नरपुङ्गव ।। ७९।।

स्कन्द उवाच-

इत्याभाष्य मुनिश्रेष्ठो जगाम भवनं स्वकम्।
सोऽपि राजोग्रदण्डश्च शापितश्च वराङ्गना।
कालेन निधनं प्राप्तौ ब्राह्मण्यमुपजग्मतुः ।। ८०।।

निर्धनत्वं हि ताभ्यां हि पुत्रशोकस्तथैव च।
अन्यच्च बहुशो दुःखं प्रापतुर्द्विजदम्पती ।। ८१।।

गत्वा वै तत्र नगरे संध्याकालोऽभ्यजायत[1]।
ततो वै तत्र नगरे केनचिद्विप्रबालकः।
हतो भूषणलोभेन समायाताश्च किङ्कराः ।। ८२।।

दुष्टं भाग्यं समायाति यदा वै मुनिपुङ्गव।
पुंसस्तदा सर्वगुणा विह्वलास्तु भवन्ति हि ।। ८३।।

राजाऽपि तस्य देशस्य मारयामास तौ न हि।
विप्रस्त्रीपातकभयात्क्षिप्तौ कारागृहे मुने ।। ८४।।

तत्राऽपि दुःखसम्भ्रान्तमानसौ द्विजदम्पती।
स्थितवन्तौ यथाकालं शापाद् दुर्वाससस्तु तौ ।। ८५।।

कथञ्चित्त्वथ काले तु निर्गते मुनिसत्तम।
पुत्रोऽभूत्तस्य देशस्य राज्ञस्तौ मुमुचे तदा ।। ८६।।

मुक्तौ तौ तेन राज्ञा वै जग्मतुर्देशमन्यकम्।
ततोऽपि च वनं प्राप्तौ मध्याह्ने मासि ज्येष्ठके ।। ८७।।

तृषाऽऽविष्टा बभूवाऽथ कावेरी तस्य चाङ्गना।
तस्यै जलं समादातुं जगाम गहनं वनम् ।। ८८।।

---

१. काले व्यजायत

दुर्वासा बोले-

बहुत अधिक क्रोध करने वाले मैंने तुमको यह शाप विना जाने दे दिया है। मेरा यह शाप अमोघ है, परन्तु इसका फल अगले जन्म में होगा।।७८।।

हे नरश्रेष्ठ ! उसी जन्म में वहीं शाप का अन्त होगा।।७९।।

स्कन्द बोले -

इस प्रकार कह कर मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा अपने भवन को चले गये। वह शापित राजा उग्रदण्ड और उसकी सुन्दर रानी समय से मृत्यु हो प्राप्त कर अगले जन्म में ब्राह्मण बने।।८०।।

वे दोनों निर्धन हो गये और उनको पुत्रशोक प्राप्त हुआ। उस ब्राह्मण दम्पती ने और भी महान् दुःख पाया।।८१।।

जब वे नगर में पहुंचे तो सायंकाल हो गया था। वहां उस नगर में किसी ब्राह्मण बालक को आये हुये चोरों ने गहनों के लोभ से मार डाला था।।८२।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! जब जब दुष्ट भाग्य आता है, तब पुरुष के सभी गुण विह्वल हो जाते हैं।।८३।।

हे मुने ! ब्राह्मण और स्त्री हत्या के पाप के भय से उस देश के राजा ने उनका वध तो नहीं कराया, परन्तु कारागार में डाल दिया।।८४।।

दुर्वासा के शाप के कारण वे दोनों ब्राह्मण दम्पती वहां भी दुःख से घबराये मन वाले होकर यथा समय तक रहते रहे।।८५।।

इसके बाद कुछ समय बीत जाने पर, हे मुनिश्रेष्ठ ! उस देश के राजा का पुत्र उत्पन्न हुआ और तब राजा ने उन दोनों को मुक्त कर दिया।।८६।।

राजा द्वारा मुक्त किये गये वे दोनों अन्य देश में चले गये। वहां से भी ज्येष्ठ मास की दोपहरी में वन में पहुंचे।।८७।।

इसके पश्चात् उस ब्राह्मण की पत्नी कावेरी को प्यास लगी। उसके लिये ज़ल लेने वह घने वन में गया।।८८।।

ययौ पश्चात्तु कावेरी भयार्ता मुनिसत्तम।
अन्ये देशे जगामाऽथ तस्य मार्गमजानती ।। ८९।।

पतिमन्वेषयन्त्यास्तु वने रात्रिः प्रवर्तते।
सञ्चचार वने रात्रौ कावेरी भयसङ्कुला ।। ९०।।

रुदती प्रपदं[1] सा तु पतिमार्गमजानती।
वने वने सञ्चरन्ती झिल्लीझङ्कारनादिते ।। ९१।।

हा नाथ नाथ नाथेति क्व गच्छामि त्वया विना।
शुशोच बहुशो विप्र कुररी कुररं यथा ।। ९२।।

अन्धकारे चरन्ती सा मार्गं चैवाऽविजानती।
पपात सहसा कूपे न ममार च कर्मतः ।। ९३।।

सोऽपि ब्राह्मणदीनश्च घनानन्दो हि भूसुरः।
जलं चानीय तत्रैवाऽऽगतो[2] नैव ददर्श ताम् ।। ९४।।

हे प्रिये क्व गताऽसि त्वमित्युवाच पुनः पुनः।
वहुसंविग्नहृदयो घनानन्दो बभूव ह ।। ९५।।

विलप्य बहुशस्तत्र वने रात्रिः प्रवर्तते।
भयाविष्टमना भूत्वा लेभे नैव कदाचन ।। ९६।।

शनैः शनैराजगाम विवस्त्रक्षुधितोऽपि सन्।
देवप्रयागके क्षेत्रे पुण्ये मुनिगणान्विते ।। ९७।।

तत्र गत्वा स विपेन्द्रो रामं लक्ष्मणसंयुतम्।
पूजनं तस्य कृत्वा वै भक्त्या च परया युतः ।। ९८।।

जगाम ब्रह्मकुण्डे तु स्नानं कृत्वा यथाविधि।
वसिष्ठप्रवरे कुण्डे स्नातवान् द्विजसत्तमः ।। ९९।।

मासमेकं तत्र कुण्डे गङ्गायां नित्यमेव हि।
स्नानं च विधिवच्चक्रे पूजनं माधवस्य हि ।। १००।।

---

१. प्रतपन्ती सा २. ददर्श नो प्रियाम्

हे मुनिश्रेष्ठ ! भयभीता कावेरी भी उसके पीछे पीछे चली। परन्तु उसके मार्ग को न जान कर अन्य स्थान पर चली गई।।८९।।

पति को खोजते हुये उसको वन में रात हो गई। भयाकुल कावेरी रात भर वन में भटकती रही।।९०।।

वह प्रत्येक कदम पर रो रही थी। पति के मार्ग को नहीं जानती थी। झिल्लियों की झंकारों से शब्दायमान वन-वन में भटक रही थी।।९१।।

हा नाथ, हा नाथ ! तुम्हारे बिना मै कहां जाऊं ? हे विप्र नारद ! वह उसी प्रकार बहुत अधिक शोक कर रही थी, जैसे कुरर पक्षी के लिये कुररी करती है।।९२।।

अन्धकार में वह भटक रही थी और मार्ग को नहीं जानती थी। वह सहसा कुयें में गिर गई, परन्तु अपने कर्मों के कारण मरी नहीं।।९३।।

ब्राह्मणों में दीन वह घनानन्द नाम का ब्राह्मण जब जल को लेकर वहां आया तो उस पत्नी को नहीं देखा।।९४।।

हे प्रिये ! तुम कहां चली गई हो, इस प्रकार पुनः पुनः कहने लगा। घनानन्द का हृदय निश्चय से बहुत व्याकुल हो गया।।९५।।

बहुत अधिक रोकर वह भय से आविष्ट मन वाला हो गया। उसको वहीं वन में रात हो गई। परन्तु उसने पत्नी को पाया नहीं।।९६।।

नंगा और भूखा होते हुये भी वह धीरे धीरे मुनियों से युक्त देवप्रयाग के पुण्य क्षेत्र में आया।।९७।।

वहां जाकर उस ब्राह्मण श्रेष्ठ घनानन्द ने राम और लक्ष्मण का भक्ति से पूजन किया।।९८।।

उस ब्राह्मण श्रेष्ठ घनानन्द ने ब्रह्मकुण्ड में विधिपूर्वक स्नान करके श्रेष्ठ वसिष्ठकुण्ड में स्नान किया।।९९।।

वहां कुण्ड में वह एक मास तक गङ्गा में नित्य प्रति विधिपूर्वक स्नान करता रहा और विष्णु का पूजन करता रहा।।१००।।

समुद्धर गदाहस्त चक्रपाणे महेश्वर।
संसारार्णवतो मां हि तथा वै दु:खसागरात् ।। १०१।।

इत्येवं कथयन्नेव चक्रे माधवपूजनम्।
मासैकस्मिन् प्रजाते तु स वै ब्राह्मणसत्तम:।
यथाशक्त्या हि विप्रांश्च भोजयामास वै द्विज: ।। १०२।।

रामस्य पूजनं कृत्वा जगाम स्वगृहं तत:।
तस्मिन्वने समायातो यत्राऽऽप च वियोगकम् ।। १०३।।

शुश्राव वचनं तस्मात् स्त्रीकृतां[1] करुणंध्वनिम्[2]।
ध्वनौ तु श्रूयमाणायां सञ्चचार वने तदा ।। १०४।।

शब्दानुसारं हे ब्रह्मन् ययौ यत्र च वै ध्वनि:।
स तां ददर्शान्धकूपे पतितां स्त्रियमेकलाम् ।। १०५।।

पप्रच्छ का त्वं सुभगे कथं त्वं पतिताऽत्र वै।
किमर्थं रोदसे भद्रे कुत्र ते नायको गत: ।। १०६।।
यक्षी वा किन्नरी वा त्वं राक्षसी देवकन्यका।
किमर्थमागताऽसि त्वं वने राक्षससेविते ।। १०७।।

सत्यं वद महाभागे यत्ते मनसि वर्तते ।। १०८।।

कावेर्युवाच-

कस्त्वं पुरुशार्दूल यो मां दुखसमन्विताम्।
परिपृच्छसि मे दु:खं धन्योऽसि भुवने तथा ।। १०९।।
अहं तु ब्राह्मणी जात्या कावेरी मम नामकम्।
भर्त्ता मम घनानन्द: सर्वशास्त्रविशारद: ।। ११०।।

धनै: पुत्रैस्तथा युक्तो वाराणस्यामभूत्किल।
तत: कालेन महता धनं सर्वं क्षयं गतम् ।। १११।।

पुत्राश्च निधनं प्राप्ता वने राक्षसभक्षिता:।
आवां चैव तथा मिथ्याऽभिशापात्कष्टमागतौ ।। ११२।।

---

१. कृतं २. करुणा

गदा और चक्र को हाथों में धारण करने वाले हे महेश्वर विष्णो ! संसार रूपी समुद्र से और दुःखों के सागर से मेरी निश्चय से रक्षा करो।।१०१।।

इस प्रकार कहता हुआ वह विष्णु का पूजन करता रहा। एक महीना बीत जाने पर, ब्राह्मणों में श्रेष्ठ उस विप्र ने यथाशक्ति ब्राह्मणों को भोजन कराया।।१०२।।

राम का पूजन करके वह अपने घर को चल पड़ा। तदनन्तर वह उस वन में आया, जहां पत्नी से वियोग हुआ था।।१०३।।

वहां से उसने नारी की करुण ध्वनि को सुना। ध्वनि को सुनने पर तब वह वन में घूमने लगा।।१०४।।

हे ब्राह्मण ! शब्द का अनुसरण करता हुआ वह घनानन्द उस स्थान पर गया, जहां से ध्वनि आ रही थी। वहां अंधे कुयें में गिरी हुई उस अकेली स्त्री को उसने देखा।।१०५।।

उसने पूछा कि तुम कौन हो और यहां कैसे गिर गई हो। हे भद्रे ! क्यों रो रही हो। तुम्हारा पति कहां गया है।।१०६।।

तुम यक्षिणी हो, किन्नरी हो, राक्षसी हो या देवकन्या हो ? राक्षसों से भरे इस वन में तुम क्यों आई हो ?।।१०७।।

हे महाभागे ! जो बात तुम्हारे मन में हो, सत्य कह दो।।१०८।।

कावेरी ने कहा-

हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम कौन हो ? जो दुःख से पीडित होती हुई मेरे दुःख के विषय में पूछ रहे हो। तुम इस लोक में धन्य हो।।१०९।।

मैं जाति से ब्राह्मण हूं। कावेरी मेरा नाम है। सभी शास्त्रों में विशारद घनानन्द मेरे पति हैं।।११०।।

वे निश्चय से पहले समय में वाराणसी में धन और पुत्रों के साथ रहते थे। तदनन्तर कुछ समय बाद सारा धन नष्ट हो गया।।१११।।

राक्षसों से खाये जाकर पुत्र वन में मर गये। इस प्रकार मिथ्या अभिशाप के कारण हम दोनों को बहुत कष्ट हुआ।।११२।।

ततो द्वावागतावत्र कथञ्चिन्निर्जने वने।
अभाग्याऽहं तदाऽधन्याऽभूस्तृषार्त्ता तथा तदा ।। ११३।।

मम भर्ता महाभाग जलमानेतुमुद्यतः।
ततोऽग्रे तु घनानन्दो भयार्त्ताऽहं तदा किल ।। ११४।।

पृष्ठतोऽहं तथा लग्ना भर्तारं नैव पश्यती।
मार्गं त्यक्त्वा गताऽन्यत्र सोऽप्यन्यत्र गतः प्रभुः ।। ११५।।

तदाऽहं सञ्चरन्त्या वै वने रात्रिः प्रपद्यत।
तदाऽन्धकूपे पतिता अस्मिन्मार्गं न जानती ।। ११६।।

तदावधि महाभाग वसाम्यत्रैव दुःखकैः।
यो वृक्षो वर्तते चाऽस्मिन् सर्वतो भ्रमराः स्थिताः ।। ११७।।

तेषां तु भ्रमराणां तु नित्यं पतितकूपके।
मधु भुक्त्वा तु जीवामि बद्धाऽहं पूर्वकर्मणा ।। ११८।।

कुत्रचिद्वै त्वया दृष्टो घनानन्दो हि भूसुरः।
शीघ्रं वद महाभाग यदि जानासि जीवय ।। ११९।।

ब्राह्मण उवाच-

अहं हि तव भर्त्ताऽस्मि घनानन्दो हि[1] भूसुरः।
त्वद्वियोगात्प्रिये कान्ते कष्टं जीवामि सुन्दरि ।। १२०।।

त्वद्वियोगाद्धि सम्भ्रान्तो गतो देवप्रयागके।
तीर्थे तीर्थगणाधीशे रामं राजीवलोचनम् ।। १२१।।

दृष्टवानस्मि तत्रैव पूजयित्वा यथाविधि।
तपो वै कृतवान्कुण्डे देवि वासिष्ठसञ्ज्ञके ।। १२२।।

माससमेकं व्रतं कृत्वा निराहारो जितेन्द्रियः।
ब्राह्मणान्भोजयित्वाऽहं यथा शक्त्याऽऽगतस्ततः ।। १२३।।

स्कन्द उवाच-

इति तस्य वचः श्रुत्वा कावेरी विस्मिताऽभवत्।
पुनः पुनर्दृष्टवती मुखं तस्य महात्मनः ।। १२४।।

१. धरासुरः

तदनन्तर हम दोनों यहां किसी प्रकार निर्जन वन में आये। तब अभागी और अधन्य मुझको प्यास लगी।।११३।।

हे महाभाग! मेरा पति घनानन्द जल लाने के लिये उद्यत हुआ। तब उस भयानक वन में मुझको भय लगा।।११४।।

उसके पीछे मैं लगी हुई चली गई। परन्तु देखा नहीं। मार्ग को छोड़ कर अन्यत्र चली गई। वह मेरा पति भी अन्यत्र चला गया।।११५।।

तदनन्तर जब मैं वन में घूम रही थी, तो रात हो गई। तब मार्ग को न जानने के कारण इस अन्धे कुयें में गिर गई।।११६।।

हे महाभाग! तब से लेकर मैं यहां बड़े दुःख से रह रही हूं। इसमें जो वृक्ष है, उसमें चारों ओर भौंरे रहते हैं।।११७।।

उन भौंरों का शहद नित्य कुयें में गिरता है। उस शहद को खाकर मैं पूर्वकृत कर्मों से बन्धी हुई जीवित हूं।।११८।।

हे महाभाग! यदि तुमने कहीं घनानन्द नाम के ब्राह्मण को देखा हो तो मुझको शीघ्र बताओ। यदि जानते हो तो मुझको जीवित करो।।११९।।

ब्राह्मण ने कहा-

हे प्रिये सुन्दरि! मैं ही घनानन्द नाम का ब्राह्मण तुम्हारा पति हूं। तुम्हारे वियोग में मैं कष्ट से जीवित हूं।।१२०।।

तुम्हारे वियोग में व्याकुल होकर मैं निश्चय से तीर्थों के स्वामी देवप्रयाग तीर्थ में गया था, जहां कमलनयन राम हैं।।१२१।।

हे देवि! वहां मैंने राम के दर्शन किये और यथाविधि उनका पूजन करके निश्चय से वासिष्ठ नामक कुण्ड में तप किया।।१२२।।

निराहार और जितेन्द्रिय रह कर एक महीने तक तपस्या करके यथाशक्ति ब्राह्मणों को भोजन करा कर तदनन्तर आ गया।।१२३।।

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार उसके वचन को सुनकर कावेरी विस्मित हो गई। वह पुनः पुनः उस महात्मा के मुख को देखने लगी।।१२४।।

रहस्यमात्मनश्चैव पृष्ट्वा बुद्ध्वा च तं पतिम्।
आत्मानं सततं विप्र ममन्ये विप्रसुन्दरी ।। १२५ ।।

लताभिर्दृढबद्धाभिः कूपान्निष्कास्य यत्नतः।
जगाम नगरे तस्य[1] बभूव यत्र वन्धनम् ।। १२६ ।।

तेनाऽपि राज्ञा[2] प्राप्तो वै चौरो बालकघातकः।
तं चौरं मारयित्वा तु राजा खेदमकुर्वत ।। १२७ ।।

पापोऽहं पापकर्ताऽहमित्युवाच पुनः पुनः।
वृथा येन मया दत्तं दुःखं निरपराधिने ।। १२८ ।।

ब्राह्मणाय सुशान्ताय मे गतिः का भविष्यति।
इति चिन्तयतस्तस्य अग्रे ब्राह्मण आगतः ।। १२९ ।।

अग्रे तं ब्राह्मणं दृष्ट्वा ज्ञातवान्सपदि प्रभुः।
तयोश्च द्विजदम्पत्योर्जग्राह चरणौ नृपः ।। १३० ।।

ननाम शिरसा भूमौ वारंवारं तदग्रतः।
पप्रच्छ पूर्ववृत्तान्तं यद्यज्जातं तयोः पृथक् ।। १३१ ।।

कथयामासतुर्विप्र स्ववृत्तान्तं यथाऽभवत्।
श्रुत्वा वृत्तान्तकं राजा यदुक्तं मुनिवन्दितः ।। १३२ ।।

खेदं प्राप्य ददौ ताभ्यां विविधानि धनानि च।
वासांसि तु विचित्राणि स्वर्णसूत्रमयानि च ।। १३३ ।।

इदं गेहसमं गेहं गाश्चैव पयलङ्कृताः।
तस्मिन्नेव तु नगरे वासं चक्रे महामतिः ।। १३४ ।।

दम्पत्योर्वसतोस्तत्र बभूवुः पञ्च पुत्रकाः।
भृत्याश्च मित्रवर्गाश्च तथैवाऽऽसन् यथा पुरा ।। १३५ ।।

जगाम नगरे विप्रः स्वके राज्ञाऽभिनन्दितः।
गत्वा वाराणसीपुर्यां ननन्दे देववन्मुने ।। १३६ ।।

---
१. तत्र २. राजा

हे विप्र ! अपने रहस्य को पूछ कर उसने उसे अपना पति जाना। इस प्रकार उस ब्राह्मण सुन्दरी ने अंपने भाग्य को बहुत माना। ।१२५।।

मजबूती से बांधी गई लताओं से उसको प्रयत्न से कुयें से निकाल कर वह उस नगर में गया, जहां उसको कैद किया गया था। ।१२६।।

उस राजा ने भी बालक को मारने वाले चोर को पकड़ लिया था। उस चोर का वध कराकर राजा खेद कर रहा था। ।१२७।।

मैं पापी हूं, पाप करने वाला हूं इस प्रकार वह पुनः पुनः कह रहा था, क्योंकि मैंने व्यर्थ ही उस निरपराध को दुःख दिया। ।१२८।।

बहुत शान्त स्वभाव वाले उस ब्राह्मण को दुःख देने से मेरी कौनसी गति होगी, यह सोचते हुये ही उसके सामने वह ब्राह्मण आ गया। ।१२९।।

सामने उस ब्राह्मण को देखकर वह राजा उसे पहचान गया। राजा ने उन दोनों ब्राह्मण दम्पति के चरण पकड़ लिये। ।१३०।।

उनके सामने बार बार भूमि पर प्रणाम किया। उन दोनों का जो पहले हाल हुआ था, उसको अलग अलग पूछा। ।१३१।।

हे विप्र नारद ! उन्होंने जैसा हुआ था, वैसा अपना वृत्तान्त कह दिया। मुनियों से वन्दित उस ब्राह्मण द्वारा कहे गये वृत्तान्त को सुन कर राजा......... ।१३२।।

दुःखी हुआ। उसने उन दोनों के लिये विविध धन और स्वर्णसूत्र के बने हुये सुन्दर वस्त्र दिये। ।१३३।।

यह अपने घर के समान घर दिया और दूध से अलङ्कृत गौयें दीं। वह महाबुद्धिमान् ब्राह्मण उसी नगर में निवास करने लगा। ।१३४।।

वहां निवास करते हुये उन दोनों दम्पति के पांच पुत्र हुये और पहले के समान ही सेवक एवं मित्र हो गये। ।१३५।।

हे नारद मुने ! राजा से अभिनन्दित होकर वह ब्राह्मण अपने नगर में चला गया और वाराणसी पुरी में देवताओं के समान आनन्द से रहने लगा। ।१३६।।

सोऽपि राजा विष्णुपुरे जगाम मुनिसत्तम।
घनानन्दस्य सङ्गत्या तस्थौ वै धनदानतः ।। १३७।।

स्कन्द उवाच-

इति वासिष्ठकुण्डस्य माहात्म्याद्विजसत्तम।
भ्रष्टजातां तथा लक्ष्मीं पुत्रांश्च मुनिसत्तम ।। १३८।।

घनानन्दस्य चरितं यः शृणोति सदा नरः।
पठेद्वा पाठयेद्वाऽपि सोऽपि विष्णुपुरे वसेत् ।। १३९।।

सूत उवाच-

श्रुत्वा वासिष्ठतीर्थस्य माहात्म्यं शुभदायकम्।
आश्चर्य परमं लेभे पुनः पप्रच्छ नारदः ।। १४०।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे देवप्रयागमाहात्म्यवर्णनं नाम
द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।।

त्रिपञ्चाशदधिकशततमोध्यायः

दशरथाचलतो निर्गतायाः शान्तानद्याः गङ्गासङ्गमे शिवतीर्थाभिधानम्, दशरथसुतायाः शान्तायाः ब्राह्मणत्वावाप्तये ब्रह्मवचनाल्लोमपादस्य शिवतीर्थागमनम्, तत्र स्नानसम्पादितब्राह्मण्यतया ऋष्यशृङ्गेण सह तस्या विवाहादत्रत्यसुखोपभोगावसाने नदीत्वावाप्तिककथनम्

नारद उवाच-

भगवन्पार्वतीपुत्र सर्वशास्त्रविशारद।
तृप्तिर्न जायते पायम्पायं तव वचोऽमृतम् ।। १।।

श्रुतं वासिष्ठमाहात्म्यं ब्रह्मकुण्डं तथैव च।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि गङ्गाया उत्तरे तटे ।। २।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! घनानन्द की संगति के और धन-दान के प्रभाव से वह राजा भी विष्णुलोक में पहुंचा और वहां स्थित हुआ।।१३७।।

स्कन्द ने कहा-

हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार वासिष्ठ कुण्ड के माहात्म्य से उस श्रेष्ठ ब्राह्मण ने नष्ट हुई लक्ष्मी को और पुत्रों को पुनः पाया।।१३८।।

जो मनुष्य घनानन्द के चरित को सदा पढता है अथवा पढाता है, वह विष्णुलोक में निवास करता है।।१३९।।

सूत बोले-

वासिष्ठ तीर्थ के कल्याणदायक माहात्म्य को सुनकर नारद को परम आश्चर्य हुआ और उन्होंने पुनः पूछा।।१४०।।

इस प्रकार स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में देवप्रयागमाहात्म्यवर्णन
नाम का १५२ वां अध्याय पूरा हुआ।।

१५३ वां अध्याय

दशरथाचल से निकलने वाली शान्ता नदी का गङ्गा में सङ्गम और वहां शिवतीर्थ का वर्णन, दशरथ की पुत्री शान्ता को ब्राह्मणत्व प्राप्त कराने के लिये ब्रह्मा के वचनों से लोमपाद का शिवतीर्थ में आगमन, वहां स्नान के द्वारा ब्राह्मणत्व को प्राप्त करने वाली इस शान्ता का ऋष्यशृङ्ग से विवाह, इस लोक के सुखों को प्राप्त करने के अनन्तर उसके नदीत्व को प्राप्त करने का वर्णन

नारद बोले-

सम्पूर्ण शास्त्रों में पारङ्गत पार्वती के पुत्र हे भगवन् ! तुम्हारे वचनरूपी अमृत को पी-पीकर तृप्ति नहीं हो रही।।१।।

मैंने वासिष्ठ कुण्ड के माहात्म्य को और ब्रह्मकुण्ड के माहात्म्य को सुन लिया है। अब मैं सुनना चाहता हूं कि गङ्गा के उत्तरी तट पर.....।।२।।

यास्ये चैव महाभाग तीर्थानि कथितानि हि।
तेषां विस्तरतो ब्रूह्युत्पत्तिं च भगवन् प्रभो ।। ३।।

स्कन्द उवाच-

साधु साधु मुनिश्रेष्ठ यत्पृष्टोऽस्मि त्वयाऽनघ।
तत्ते सम्प्रति वक्ष्यामि शृणुष्वैकमना मुने ।। ४।।

शिवतीर्थं तु यत् ख्यातं गङ्गाया उत्तरे तटे।
तस्योत्पत्तिं च माहात्म्यं प्रथमं शृणु वक्ष्यते ।। ५।।

दशरथाचलतो या वै आयाति सरिदुत्तमा।
शान्ता नाम्नी तु सा ज्ञेया सर्वकामफलप्रदा ।। ६।।

गङ्गायाः सङ्गमो यत्र तत्तीर्थं शिवनामकम्।
तस्मिंस्तीर्थे हि विप्रेन्द्र कृतं तत्सर्वमक्षयम् ।। ७।।

तस्मिंस्तीर्थे हि विप्रेन्द्र वसन्ति सर्वदेवताः।
अस्य तीर्थस्य माहात्म्यं को वा वर्णयितुं क्षमः ।। ८।।

सङ्गमे मुनिशार्दूल शान्ताजह्नुजयोस्तथा।
शिवस्य पूजनं कृत्वा सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।। ९।।

यत्र रामः शिवस्तत्र न भेदः शिवरामयोः।
भेदज्ञाता महाभाग रौरवं नरकं व्रजेत् ।। १०।।

तस्मान्नारद नो भेदः कर्तव्यः शिवरामयोः।
शिवस्य पूजनं कृत्वा रामस्तुष्यति सानुजः ।। ११।।

रामस्य पूजनं कृत्वा शिवस्तुष्यति साम्बिकः।
तावुभौ परमौ भक्तौ ज्ञेयौ तौ च परस्परम् ।। १२।।

तेषु कुण्डेषु सर्वेषु रामेणामिततेजसा।
शिवलिङ्गान्यनेकानि स्थापितानि हि नारद ।। १३।।

अस्मिंस्तीर्थे महाभाग रामो ध्यायति वै शिवम्।
निरन्तरं मुनिश्रेष्ठ शिवतत्परमानसः ।। १४।।

और हे महाभाग ! दक्षिणी तट पर कौन कौन से तीर्थ कहे गये हैं। हे प्रभो भगवन् ! उनकी उत्पत्ति का वृत्तान्त विस्तार से कहो ।।३।।

स्कन्द ने कहा-

हे निष्पाप मुनिश्रेष्ठ ! तुमने जो पूछा है, यह बहुत अच्छी बात है। मैं अब उसको कहूंगा। हे मुने ! एकाग्र मन होकर सुनो।।४।।

गङ्गा के उत्तरी तट पर जो शिवतीर्थ प्रसिद्ध है, उसकी उत्पत्ति और माहात्म्य का वृत्तान्त पहले कहूंगा, उसको सुनो।।५।।

दशरथ पर्वत से शान्ता नाम की जो उत्तम नदी बह कर आती है, वह सभी कामनाओं के फलों को देने वाली समझनी चाहिये।।६।।

जहां उसका गङ्गा में संगम होता है, उस स्थान का नाम शिवतीर्थ है। हे विप्रश्रेष्ठ ! उस तीर्थ में जो कार्य किया जाता है, वह सब अक्षय रहता है।।७।।

हे विप्र श्रेष्ठ ! उस तीर्थ में सब देवता निश्चय से निवास करते हैं। इस तीर्थ का वर्णन करने में कौन समर्थ है ?।।८।।

हे मुने ! शान्ता और जाह्नवी के संगम पर शिव का पूजन करके मनुष्य सभी कामनाओं के फल को प्राप्त करता है।।९।।

जहां राम रहते हैं, वहीं शिव रहते हैं। शिव और राम में कोई भेद नहीं है। शिव और राम में भेद को मानने वाला रौरव नरक में जाता है।।१०।।

हे नारद ! इसलिये राम और शिव में कोई भेद नहीं समझना चाहिये। शिव का पूजन करने से छोटे भाई लक्ष्मण सहित राम प्रसन्न होते हैं।।११।।

राम का पूजन करने से पार्वती सहित शिव प्रसन्न होते हैं। वे दोनों एक दूसरे के आपस में परम भक्त हैं।।१२।।

हे नारद ! असीम तेजस्वी राम ने उन सब कुण्डों में अनेक शिवलिङ्ग निश्चय से स्थापित किये हैं।।१३।।

हे मुनिश्रेष्ठ महाभाग ! इस तीर्थ में राम शिव के प्रति मन को लगा कर निरन्तर उनका ध्यान करते हैं।।१४।।

अस्मिंस्तीर्थे विशेषेण रामस्तिष्ठति नित्यशः।
अस्मिन् क्षेत्रे तु यो नित्यं शिवपूजनतत्परः ।। १५।।

सोऽश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च।
भूमिदानस्य यत्पुण्यं तत्पुण्यं प्राप्नुयान्मुने ।। १६।।

अत्र मज्जनमात्रेण नरो नारायणो भवेत्।
यं यं कामयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम् ।। १७।।

शान्ताजह्नुजयोर्यत्र सङ्गमोऽतीव पुण्यदः।
तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं वक्तुं को वा क्षमो भवेत् ।। १८।।

नारद उवाच-

वीतिहोत्रज देवेश पृच्छामि त्वां वद प्रभो।
का वा शान्ता कथं लेभे नदीत्वं शिवपुत्रक ।। १९।।

कथं पुण्यतमा जाता कथं लोकेति विश्रुता।
इति मे संशयं छिन्धि भगवन् भूतभावन ।। २०।।

स्कन्द उवाच-

साधु पृष्टं महाबाहो भक्तोऽसि मम नारद।
यत्पृष्टोऽहं त्वया विप्र तद्वक्ष्यामि तवाऽनघ ।। २१।।

त्रेतायुगे दशरथो राजाऽभूज्ज्ञानवान् मुने।
तस्यात्मजा तु शान्ताऽसीत्पितृभक्तिरता सदा ।। २२।।

एकदा मुनिशार्दूल लोमपादो मुनीश्वरः।
तत्राऽऽगतो ददर्शाऽथ शान्तां तस्यात्मजां शुभाम् ।। २३।।

तां दृष्ट्वा स मुनिः प्राह राजानं मधुरं[1] वचः ।। २४।।

लोमपाद उवाच-

विज्ञापयामि देवेश यदि चेन्मयि ते दया।
इमां त्वदात्मजां देव कन्यात्त्वेनैव देहि मे ।। २५।।

पालनं च करिष्यामि सुतायास्ते नराधिप ।। २६।।

---

१. मधुवाचया

इस तीर्थ में राम विशेष रूप से नित्य निवास करते हैं। इस क्षेत्र में जो व्यक्ति नित्य शिव के पूजन में तत्पर रहता है........।।१५।।

हे मुने ! वह व्यक्ति एक हजार अश्वमेघ यज्ञों का, सौ वाजपेय यज्ञों का और भूमि के दान का जो पुण्य होता है, उसको प्राप्त करता है।।१६।।

इस तीर्थ में स्नान करने मात्र से मनुष्य नारायण हो जाता है। वह जिस जिस वस्तु की कामना करता है, उस वस्तु को निश्चित रूप से प्राप्त करता है।।१७।।

शान्ता और जाह्नवी नदी का जहां पुण्यशाली संगम है, उस तीर्थ के माहात्म्य का कथन करने में कौन समर्थ हो सकता है।।१८।।

नारद बोले-

अग्नि से उत्पन्न होने वाले शिव के पुत्र हे प्रभो ! मैं तुमसे से पूछता हूं कि शान्ता कौन थी और वह कैसे नदी बन गई।।१९।।

कैसे वह पुण्यशाली हो गई और लोक में किस प्रकार प्रसिद्ध हो गई। हे भूतभावन भगवन् ! मेरे इस संशय को नष्ट करो।।२०।।

स्कन्द ने कहा-

हे बड़ी भुजाओं वाले, निष्पाप ब्राह्मण नारद ! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी है। तुम मेरे भक्त हो। तुमने जो कुछ मुझसे पूछा है, वह बताऊंगा।।२१।।

हे मुने ! त्रेतायुग में दशरथ नाम का ज्ञानी राजा हुआ। उसकी पुत्री शान्ता सदा पिता की भक्ति करती थी।।२२।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! एक बार रोमपाद नाम के मुनीश्वर वहां आये और उन्होंने उस राजा की शान्ता नाम की शुभ पुत्री को देखा।।२३।।

उसको देख कर राजा से मुनि ने मधुर वचन कहा।।२४।।

लोमपाद बोले-

हे देवेश ! मैं तुमसे निवेदन कर रहा हूं। यदि तुमको मेरे प्रति दया है, तो हे देव ! अपनी इस पुत्री को कन्या के रूप में मुझको दे दो।।२५।।

हे राजन् ! मैं तुम्हारी पुत्री का पालन करूंगा।।२६।।

स्कन्द उवाच-

इति वै लोमपादस्य वचः श्रुत्वा नराधिपः।
उवाच लोमपादं वै द्विजपूजनतत्परः ।। २७।।

दशरथ. उवाच-

यदुक्तं भगवन्ब्रह्मंस्तद्वदामि तवाऽनघ।
शान्तानाम्नीमिमां कन्यां पालयस्व यथासुखम् ।। २८।।

राज्यं धनं गृहं दाराः सर्वं वै तव सुव्रत।
यतो द्विजप्रसादेन सर्वं प्राप्तं मया मुने ।। २९।।

स्कन्द उवाच-

इत्युक्त्वा प्रददौ कन्यां सुन्दराङ्गीं शुभाननाम्।
तां सुशान्तां गृहीत्वा वै तोषयन्नाशिषा नृपम् ।। ३०।।

आगतः स्वाश्रमे विप्रः पालयामास वै सुताम्।
ततः सा चन्द्रलेखेव वर्द्धते वै दिने दिने ।। ३१।।

वर्द्धमानां तु तां दृष्ट्वा चिन्ताविष्टो बभूव ह।
कस्मै सुता प्रदेयेयं को वाऽस्याः सदृशो भवेत् ।। ३२।।

इति चिन्तयतस्तस्य ब्रह्माऽग्रे समदृश्यत।
दृष्ट्वा प्रजापतिं तस्य जग्राह चरणौ मुनिः ।। ३३।।

दण्डवत्प्रणिपत्याह विधिं लोकपितामहम् ।। ३४।।

मुनिरुवाच-

हंसवाहन देवेश ब्रूहि मे पृच्छतो विधे।
इयं वै मम कन्याऽस्ति शान्तानाम्नी सुमध्यमा।।३५।।

अस्याः पतिस्तु भवता को वा सृष्टोऽस्ति भूतले।
अमिधानं तु किं तस्य कीदृशैस्तु गुणैर्युतः।
किं शीलं कीदृशो वंश इति शंस महामते।।३६।।

ब्रह्मोवाच-

लोमपाद शृणु प्राज्ञ वक्ष्यामि शृणु साम्प्रतम्।
इयं या तव कन्याऽस्ति शान्तानाम्नी द्विजोत्तम।
तस्याः पतिर्यथा सृष्टो ऋष्यशृङ्गो महामतिः।।३७।।

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार लोमपाद के वचन को सुन कर, ब्राह्मण की पूजा करने में तत्पर रहने वाले राजा ने लोमपाद से कहा।।२७।।

दशरथ ने कहा-

हे निष्पाप भगवन्! जो तुमने कहा है, उसके लिये मैं तुमसे कहता हूं। शान्ता नाम की इस कन्या का तुम सुख से पालन करो।।२८।।

उत्तम व्रतों का पालन करने वाले हे मुने! राज्य, धन, घर और स्त्री जो कुछ है, वह सब तुम्हारा ही है। क्योंकि यह सब मैंने ब्राह्मणों की कृपा से प्राप्त किया है।।२९।।

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार कह कर राजा ने शुभ अंगों वाली और सुन्दर मुख वाली कन्या को दे दिया। उस शान्ता को लेकर लोमपाद ने राजा को आशीर्वाद से प्रसन्न किया।।३०।।

अपने आश्रम में आकर वे ब्राह्मण लोमपाद पुत्री का पालन करने लगे। तदनन्तर वह चन्द्रमा की कला के समान प्रतिदिन बढने लगी।।३१।।

उसको बढता हुआ देख कर वे मुनि चिन्ता से आविष्ट हो गये कि इसका किससे विवाह किया जावे और कौन इसके योग्य होगा।।३२।।

इस प्रकार वह चिन्ता कर ही रहे थे कि सामने ब्रह्मा दिखाई दिये। प्रजापति को देख कर मुनि ने उसके चरण पकड़ लिये।।३३।।

दण्डवत् प्रणाम करके मुनि ने लोकों के पितामह विधाता से कहा।।३४।।

मुनि बोले-

हंस की सवारी करने वाले देवताओं के स्वामी हे विधाता! जो मैं पूछ रहा हूं, उसको बताओ। यह मेरी शान्ता नाम की सुन्दर कटि वाली कन्या है।।३५।।

आपने भूतल पर इसका पति किसको बनाया है? उसका नाम क्या है और वह कैसे गुणों से युक्त है? उसका कैसा स्वभाव है और कैसा कुल है? हे महामते! इस बात को मुझको बताओ।।३६।।

ब्रह्मा ने कहा-

हे बुद्धिमान् लोमपाद सुनो। अब जो मैं कहता हूं, इसको सुनो। हे द्विजश्रेष्ठ! यह जो तुम्हारी शान्ता नाम की कन्या है, महाबुद्धिमान् ऋष्यशृङ्ग को उसका पति रचा है।।३७।।

विभाण्डकसुतः श्रीमान् ख्यातो ब्रह्मविदां वरः।
तस्मै देया त्वियं कन्या नान्योऽस्याः सदृशः पुमान्।।३८।।

स्कन्द उवाच-

इति श्रुत्वा वचस्तस्य लोमपादो उवाच ह।
ब्रह्माणं नतिभिर्युक्तः शान्तया वाचया मुनिः।।३८।।

लोमपाद उवाच-

भगवन् यत्त्वया प्रोक्तं तन्मृषा न भवेत् क्वचित्।
परं मे संशयो जातस्तं छेत्तुं त्वमिहार्हसि।।४०।।

क्षत्रियान्वयसम्भूता शान्ता मे दत्तपुत्रिका।
ऋष्यशृङ्गस्तु मुनिराट् वेदवेदाङ्गपारगः।।४१।।

अनयोः कथमुद्वाहो भिन्नजात्योर्भविष्यति।।४२।।

ब्रह्मोवाच-

शृणु प्राज्ञ द्विजश्रेष्ठ यदुक्तं भवता वचः।
तत्तथैव कथं विप्र इति केचिज्जगुर्वचः।।४३।।

तिस्रो भार्या [1]ब्राह्मणाय द्वे भार्ये क्षत्रियस्य तु।
एका [2]वैशस्य भार्या स्यात्तथा शूद्रस्य सुन्दरी।।४४।।

यद्यप्येवं तथा विप्र शृणु कर्म सुशोभनम्।
येनेयं भविता शान्ता ब्राह्मणी चाऽतिसुन्दरी।।४५।।

देवप्रयागकं क्षेत्रं यत्ख्यातं भुवनत्रये।
तत्र वै शिवतीर्थं तु गङ्गाया उत्तरे तटे।।४६।।

प्रातःस्नायी जिताहारो जितक्रोधो जितेन्द्रियः।
तस्मिंस्तीर्थेऽपि शूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वमवाप्नुयात्।।४७।।

विश्वामित्रोऽपि तत्रैव ब्राह्मणत्वमुपेयिवान्।
इन्द्राद्या लोकपालास्तु तत्तत्सिद्धिं ययुः पुरा।।४८।।

तस्मात्त्वमपि विप्रेन्द्र स्वां कन्या तत्र प्रेषय।
यथा विध्युक्तमार्गेण शिवकुण्डे शिवालये।
स्नानव्रतादिकं चैव कारय त्वं दृढव्रत।।४९।।

---

१. ब्राह्मणस्य २. वैश्यस्य

वे श्रीमान् हैं, विभाण्डक ऋषि के पुत्र हैं, प्रसिद्ध हैं और ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं। उनको ही इस कन्या को देना। उनके समान पुरुष अन्य नहीं है।।३८।।

स्कन्द ने कहा-

उसके इस वचन को सुन कर लोमपाद मुनि ने प्रणाम करके शान्त वाणी में ब्रह्मा से कहा।।३९।।

लोमपाद बोले-

हे भगवन्! तुमने जो यह बात कही है, उसमें कोई असत्य नहीं हो सकता। परन्तु मुझको संशय हो गया है। उसका आप छेदन करें।।४०।।

मेरी यह शान्ता नाम की दत्तक पुत्री है और क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुई है। मुनिराज ऋष्यशृङ्ग वेदों और वेदाङ्गों में पारङ्गत हैं।।४१।।

भिन्न जाति वाले इन दोनों का विवाह कैसे होगा।।४२।।

ब्रह्मा ने कहा-

हे बुद्धिमान् द्विजश्रेष्ठ लोमपाद! सुनो। जो आपने यह वचन कहा है कि यह कैसे होगा, तो हे विप्र! कुछ लोग इस प्रकार के वचन कहते हैं।।४३।।

ब्राह्मण की तीन वर्ण की पत्नियां होती हैं, क्षत्रिय की दो वर्ण की पत्नियां होती हैं, वैश्य की एक वर्ण की पत्नी होती है और शूद्र की उसके वर्ण की ही सुन्दरी पत्नी होती है।।४४।।

हे ब्राह्मण! यदि यह इस प्रकार माना जावे कि ब्राह्मण का ब्राह्मणी से विवाह हो तो उस शोभन कर्म को सुनो, जिससे यह शान्ता अति सुन्दरी ब्राह्मणी हो जायेगी।।४५।।

देवप्रयाग नाम का क्षेत्र तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। वहां गङ्गा के उत्तरी तट पर शिवतीर्थ है।।४६।।

उस तीर्थ में प्रातः स्नान करने वाला, भोजनेच्छा को जीत लेने वाला, क्रोध को जीत लेने वाला और इन्द्रियों को वश में करने वाला शूद्र भी ब्राह्मण हो जाता है।।४७।।

विश्वामित्र ने भी वहीं पर ब्राह्मणत्व पाया था। प्राचीन काल में इन्द्र आदि लोकपालों ने उन सिद्धियों को प्राप्त किया था।।४८।।

हे विप्र श्रेष्ठ! इसलिये तुम भी अपनी कन्या को वहां भेज दो। दृढ़ता से व्रत करने वाले हे लोमपाद! वहां तुम शिवालय में शिवकुण्ड में विधि के अनुसार कहे गये मार्ग से अपनी कन्या से व्रत आदि कराओ।।४९।।

ततो वै भविता शान्ता ब्राह्मणी सुमनोहरा।
ऋष्यशृङ्गोऽपि शान्तायै गङ्गादक्षिणकूलके।
करिष्यति तपस्तीव्रं देवैरपि सुदुश्चरम्।।५०।।

सूर्यतीर्थादूद्र्ध्वभागे शरविक्षेपमात्रके।
ऋष्यशृङ्गाभिधं तीर्थं भविष्यति सुपुण्यदम्।।५१।।

ऋष्यशृङ्गाभिधे तीर्थे ये स्नास्यन्ति नरोत्तमाः।
कुलानां तु सहस्रं तैस्तारितं स्यान्न संशयः।।५२।।

तत्र स्नातं तपस्तप्तं हुतं जप्तं तथैव च।
सर्वं शिवप्रीतिकरमक्षयं तु भवेद् द्विज।।५३।।

स्कन्द उवाच-

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे ब्रह्मा तत्रैव च पितामहः।
लोमपादोऽपि तच्चक्रे यदुक्तं विष्णुसूनुना।।५४।।

प्रेषयामास तां कन्यां शिवकुण्डे सुदुर्लभे।
साऽपि तत्र तपश्चक्रे ध्यायन्ती शिवमव्ययम्।।५५।।

व्याघ्रचर्मपरीधानं शुद्धस्फटिकसन्निभम्।
जटाजूटधरं देवं त्रिनेत्रं वृषभध्वजम्।।५६।।

ब्रह्मविष्णुस्तुतं भीमं सेव्यमानं सुरासुरैः।
शिवकुण्डे महाभाग सस्नौ प्रातः सदा हि सा।।५७।।

एवं षण्मासपर्यन्तं तपः कृतवती मुने।
आविर्बभूव भगवान् महादेवः सहोमया।
दृष्ट्वा सदाशिवं शान्ता देवं स्तोतुम्प्रचक्रमे।।५८।।

शान्तोवाच-

नमः शिवाय शम्भवे कपालमालधारिणे।
नमोऽस्तु पार्वतीपते जटाकलापधारिणे।।५९।।

समस्तनिर्जरस्तुत क्षितिस्वरूप ते नमः।
नमस्त्रिनेत्रशालिने समस्तदैत्यहारिणे।।६०।।

तदनन्तर शान्ता सुन्दर ब्राह्मणी हो जावेगी। शान्ता को प्राप्त करने के लिये ऋष्यशृङ्ग भी गङ्गा के दक्षिण तट पर देवताओं द्वारा भी दुष्कर तीव्र तपस्या करेगा।।५०।।

यह स्थान सूर्यतीर्थ से ऊपर के भाग में एक शरविक्षेप (लगभग १०० गज) दूर अति पुण्यशाली ऋष्यशृङ्ग नाम का तीर्थ होगा।।५१।।

ऋष्यशृङ्ग नाम के तीर्थ में जो श्रेष्ठ मनुष्य स्नान करेंगे, उनके एक हजार कुल तर जायेंगे, इसमें संशय नहीं है।।५२।।

हे ब्राह्मण! वहां किया हुआ स्नान, की गई तपस्या, हवन और जप सभी शिव को प्रसन्न करने वाला और अविनश्वर होगा।।५३।।

स्कन्द बोले-

यह कह कर पितामह ब्रह्मा वहीं अन्तर्धान हो गये और लोमपाद ने भी वह सब किया, जो विष्णुपुत्र ब्रह्मा ने कहा था।।५४।।

उसने उस कन्या को अति दुर्लभ शिवकुण्ड में भेजा। वह भी वहां अविनाशी शिव का ध्यान करती हुई तपस्या करती रही।।५५।।

शिव का परिधान बाघ का चर्म है, वे शुद्ध स्फटिक के समान गौर वर्ण के हैं, जटाजूट को धारण करने वाले और वृषभ की ध्वजा वाले उस देव के तीन नेत्र हैं।।५६।।

ब्रह्मा और विष्णु उनकी स्तुति करते हैं, वे भयानक स्वरूप वाले हैं और देव-दानव उनकी सेवा करते हैं। हे महाभाग! वह सदा प्रातः शिवकुण्ड में स्नान करती थी।।५७।।

हे मुने! इस प्रकार वह छः मास तक तपस्या करती रही। तब भगवान् महादेव पार्वती के साथ प्रकट हुये। सदाशिव को देख कर शान्ता ने उस देवता की स्तुति करना प्रारम्भ किया।।५८।।

शान्ता ने कहा-

शिव के लिये, शम्भु के लिये और कपालों की माला धारण करने वाले के लिये नमस्कार है। पार्वती के पति के लिये और जटाओं का समूह धारण करने वाले के लिये नमस्कार है।।५९।।

समस्त देवताओं से स्तुति किये जाने वाले क्षिति रूप शिव तुमको नमस्कार है। तीन नेत्रों वाले ओर समस्त दैत्यों का संहार करने वाले तुमको नमस्कार है।।६०।।

शिवस्त्वं हि परं ब्रह्म चित्स्वरूपस्त्वमेव हि।
युगान्ते लयकर्त्ता त्वं सृष्टिस्त्वं कुरुषे शिव।।६१।।

स्थितिकर्त्ता त्वमेवाऽसि योगिभिस्त्वं हि चिन्त्यसे।
गुणात्मा निर्गुणस्त्वं हि त्रयीरूपस्त्रयीमय:।।६२।।

स्कन्द उवाच-

इति स्तुत्वा महेशानं शान्ता शङ्करतत्परा।
प्रसन्नो भगवानूचे शान्तां वै भक्तितत्पराम्।।६३।।

शिव उवाच-

देवि शान्ते महाभागे भक्ताऽसि मम सुव्रते।
वरं वरय शीघ्रं त्वं यत्त्वन्मनसि वर्तते।।६४।।

शान्तोवाच-

देवदेव प्रसन्नोऽसि यदि चेन्मयि शङ्कर।
क्षत्रियाऽहं महादेव ब्राह्मणी स्यां तथा कुरु।।६५।।

ऋष्यशृङ्गो मुनिश्रेष्ठो भर्त्ता स्यान्मम शङ्कर।
भुक्त्वा भोगानशेषांस्तु त्वत्संसर्गमवाप्नुयाम्।।६६।।

शिव उवाच-

यदुक्तं वचनं देवि तत्तथैव भविष्यति।
ऋष्यशृङ्गं पतिं श्रेष्ठं प्राप्स्यसि त्वं दृढव्रते।।६७।।

तेन सार्द्धं महाभोगान्भुक्त्वा काममवाप्य च।
नदीरूपेण पश्चात्ते मत्कुंडे सङ्गमो भवेत्।।६८।।

ततो लोकेषु विख्याता शान्तानाम्नी नदी शुभा।
भविष्यसि महापुण्या स्वर्गमोक्षप्रदायिनी।।६९।।

स्कन्द उवाच-

इत्युक्तवान्महादेव: शान्तायै मुनिपुङ्गव।
तत्रैवाऽन्तर्दधे देवो नीलकण्ठ: स्वयं मुने।।७०।।

तत: शिवप्रसादेन ब्राह्मणी समजायत।
ऋष्यशृङ्गेण मुनिना सहोद्वाहोऽप्यजायत।
सैव शान्ता नदी जाता दशरथाचलसङ्गिनी।।७१।।

तुम शिवरूप हो, परम ब्रह्मरूप हो और तुम ही चैतन्यरूप हो। हे शिव ! युग के अन्त में तुम प्रलय करते हो और तुम ही सृष्टि की रचना करते हो।।६१।।

तुम लोकों की स्थिति बनाते हो। योगी जन तुम्हारा ही ध्यान करते हैं। तुम गुणस्वरूप भी हो और गुणरहित भी हो। तुम त्रयीरूप हो ओर वेदत्रयी को बनाने वाले हो।।६२।।

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार शंकर की भक्ति में लगी हुई शान्ता ने महेशान शिव की स्तुति की। भक्ति में तत्पर शान्ता से प्रसन्न होकर भगवान् शिव बोले।।६३।।

शिव ने कहा-

मेरे प्रति उत्तम व्रतों का पालन करने वाली, महाभागे देवि शान्ते ! तुम मेरी भक्त हो। जो तुम्हारे मन में है, उस वर को शीघ्र मांग लो।।६४।।

शान्ता ने कहा-

देवों के देव शङ्कर महादेव ! मैं क्षत्रिया हूं। यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो ऐसा करें कि मैं ब्राह्मणी हो जाऊं।।६५।।

हे शङ्कर ! मुनियों में श्रेष्ठ ऋष्यशृङ्ग मेरे पति हों। मैं सम्पूर्ण भोगों का उपभोग करके तुम्हारी संगति को प्राप्त हो जाऊं।।६६।।

शिव ने कहा-

दृढ़ व्रत का पालन करने वाली हे देवि ! तुमने जैसा कहा है, वैसा ही होगा। तुम ऋष्यशृङ्ग को श्रेष्ठ पति के रूप में प्राप्त करोगी।।६७।।

उसके साथ महान् भोगों का उपभोग करके और कामनाओं को प्राप्त करके, पीछे नदी के रूप में तुम्हारा मेरे कुण्ड में सङ्गम होगा।।६८।।

तदनन्तर तुम लोकों में प्रसिद्ध, महापुण्यशाली, स्वर्ग और मोक्ष को देने वाली शान्ता नाम की शुभ नदी होगी।।६९।।

स्कन्द ने कहा-

हे मुनियों में श्रेष्ठ मुने ! इस प्रकार महादेव ने शान्ता से कहा। वे नीलकण्ठ देव वहीं स्वयं अन्तर्धान को गये।।७०।।

तदनन्तर शिव की कृपा से वह ब्राह्मणी हो गयी। उसका ऋष्यशृङ्ग मुनि के साथ विवाह भी हो गया। वही दशरथ पर्वत से बहने वाली शान्ता नाम की नदी हुई।।७१।।

शिवतीर्थे तु तस्यां वै सङ्गमोऽभून्महामुने।
ततः प्रभृति विख्याता नदी हि भुवनत्रये।।७२।।

तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या शिवसायुज्यमाप्नुयात्।
शिवतीर्थे मासमात्रं नरः शिवपरायणः।।७३।।

अस्मिंस्तीर्थे भूमिदेवो योऽथर्वशिरसं परम्।
नीलरुद्रोपनिषदं रुद्राध्यायं तथैव च।।७४।।

रुद्रसाम्नाऽपि च तथा यः पठेत्प्रयतो नरः।
स रुद्रलोकमातिष्ठेद्यावदाभूतसम्प्लवम्।।७५।।

इति ते कथितं दिव्यं शैवतीर्थमनुत्तमम्।
यस्याऽऽख्यानस्य पठनाच्छ्रवणादपि नारद।
शिवलोकं समासाद्य शिवेन सह मोदते।।७६।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे देवप्रयागमाहात्म्यवर्णनं
नाम त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।।

चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

दुराचाररतस्य उद्दालकद्विजवरस्य वेश्योपदेशतो देवप्रयागे समागतस्य पञ्चशतवेतालैः सह समागमः, तेषामुद्दालक-दर्शनात्पूर्वदेहप्राप्तिः, अष्टावक्रशापाद् वेतालत्वमापन्नानां गन्धर्वाणां तीर्थप्रभावतो दिव्यगतिं गतानां चरितं विलोक्योद्दालकस्य तपसि तत्रैव संस्थितस्य विष्णुवर-प्रभावतो वैकुण्ठावाप्तिः, उद्दालकतीर्थमाहात्म्यकथनम्।।

स्कन्द उवाच-

अथ वेतालकुण्डस्य माहात्म्यं शृणु नारद।
यथावत् कथयिष्यामि विस्तरेण तवाऽनघ।।१।।

शिवकुण्डादूदर्ध्वभागे तत्कुण्डं विद्यते किल।
यत्रैवाऽऽस्ते महाभाग शिला वेतालसञ्ज्ञिका।।२।।

१. पाठ सन्दिग्ध है

हे महामुने ! शिवतीर्थ में उसका निश्चय से संगम हो गया। तब से लेकर यह तीनों लोकों में प्रसिद्ध नदी हुई।।७२।।

वहां भक्ति से स्नान करने से मनुष्य शिव के सायुज्य को प्राप्त करता है। शिवपरायण होकर एक मास शिवतीर्थ में रहने पर शिव को पाता है।।७३।।

इस तीर्थ में जो ब्राह्मण अथर्ववेद, नीलरुद्र उपनिषद् एवं रुद्राध्याय का पाठ करता है, वह शिव को प्राप्त करता हे।।७४।।

और जो व्यक्ति प्रयत्नपूर्वक शिव सम्बन्धी सामों का पाठ करता है, वह जब तक प्राणियों का प्रलय नहीं होता, रुद्रलोक में निवास करता है।।७५।।

हे नारद ! इस प्रकार मैंने दिव्य, श्रेष्ठ शिवतीर्थ के विषय में कह दिया है, जिस आख्यान के पढने और सुनने से भी मनुष्य शिवलोक को प्राप्त करके शिव के साथ आनन्द प्राप्त करता है।।७६।।

इस प्रकार स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में देवप्रयागमाहात्म्य वर्णन नाम का १५३ वां अध्याय समाप्त हुआ।।

अध्याय - १५४

दुराचरण में प्रवृत्त ब्राह्मण उद्दालक का वेश्या के उपदेश से देवप्रयाग में आगमन और वहां पांच सौ वेतालों के साथ मिलन, उद्दालक के दर्शन करके उनको पूर्व शरीर की प्राप्ति, अष्टावक्र के शाप से वेतालत्व को प्राप्त करने वाले गन्धर्वों को तीर्थ के प्रभाव से दिव्य गति की प्राप्ति, उनके चरित को देख कर उद्दालक का वहीं तपस्या में स्थित होना और विष्णु के वर के प्रभाव से वैकुण्ठ को प्राप्त करना, उद्दालक तीर्थ के माहात्म्य का कथन

स्कन्द ने कहा-

हे नारद ! अब तुम वेतालकुण्ड के माहात्म्य को सुनो। हे निष्पाप ! इसको मैं विस्तार पूर्वक ठीक ठीक बताऊंगा।।१।।

निश्चय से वह कुण्ड शिवकुण्ड से ऊपर के भाग में है। हे महाभाग ! जहां कि वेतालशिला नाम की शिला है।।२।।

वेतालकुण्डे यः स्नात्वा शिलास्पर्शं करोति हि।
ध्यायन्नारायणं देवं तस्य पुण्यफलं शृणु।।३।।

सर्वयज्ञेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम्।
सर्वदानेषु यत्पुण्यं तत्पुण्यं प्राप्नुयान्नरः।।४।।

वेतालकुण्डजां मृत्स्नां सर्वाङ्गे लेपयेत्तु यः।
तस्य तत्कालिकं पापं तत्क्षणादेव नश्यति।।५।।

मासमात्रं तु यः स्नाति कुण्डेऽस्मिन् मुनिपुङ्गव।
कोटिकल्पसहस्राणि स वै विष्णुपुरे वसेत्।।६।।

कर्मक्षयादिहागत्य राजा भवति धार्मिकः।
भुक्त्वा भोगानशेषांस्तु पुनर्विष्णुपुरे व्रजेत्।।७।।

अस्य कुण्डस्य माहात्म्याद्यथा प्रापुः परां गतिम्।
वेताला बहवो विप्र तच्छृणुष्व महामुने।।८।।

बभूवोद्दालकः कश्चिद् ब्राह्मणो ब्राह्मणाधमः।
चौरकर्मरतो नित्यं गृहं भङ्क्त्वा नृशंसकः।।९।।

एका वाराङ्गना काचिन्नाम्ना रूपवती स्मृता।
तस्यामुद्दालको रक्तस्तामेव संस्मरन् सदा।।१०।।

अर्जयित्वा धनं चौरकर्मणा विपुलं मुने।
तस्यै ददाति विप्रोऽसौ काममोहविमोहितः।।११।।

कदाचित्पथिकानां हि धनं हृत्वा ददाति सः।
ब्राह्मणान्मारयित्वा च तेभ्यो हृत्वा धनं बहु।।१२।।

स्वगृहस्थं धनं चैव रूपवत्यै प्रयच्छति।
साऽपि वेश्या प्रसन्नाऽभूद्धनं दृष्ट्वा सुपुष्कलम्।
उवाचोद्दालकं प्रीत्या स्वधर्मनिरता सदा।।१३।।

वेश्योवाच-

भो भो द्विज कुतो लब्धमीदृशं विपुलं धनम्।
तद् ब्रूहि मम हे कान्त त्वदन्यो नाऽस्ति मे पतिः।
यो ददाति धनं नित्यं स्वर्णमुक्ताफलादिकम्।।१४।।

जो व्यक्ति नारायण देवता का ध्यान करता हुआ वेतालकुण्ड में स्नान करके इस शिला का स्पर्श करता है, उसके फल को सुनो।।३।।

सब यज्ञों में जो पुण्य प्राप्त होता है, सब तीर्थों में जो फल प्राप्त होता है, सब दानों में जो पुण्य प्राप्त होता है, उस पुण्य और फल को मनुष्य यहां प्राप्त करता है।।४।।

वेतालकुण्ड की मिट्टी का जो मनुष्य सारे अङ्गों में लेप करता है, उसके उस समय के सारे पाप क्षण भर में नष्ट हो जाते हैं।।५।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! जो मनुष्य इस कुण्ड में एक मास तक स्नान करता है, वह हजारों करोड़ों कल्पों तक विष्णुलोक में रहता है।।६।।

कर्मों का क्षय होने पर धार्मिक व्यक्ति इस लोक में आकर राजा होता है। यहां वह सारे भोगों का भोग करके पुनः विष्णु-लोक में जाता है।।७।।

हे महामुने विप्र ! इस कुण्ड के माहात्म्य से जिस प्रकार से बहुत से वेतालों ने परम गति प्राप्त की थी, उसको तुम सुनो।।८।।

उद्दालक नाम का कोई नीच ब्राह्मण था। वह नृशंस नित्य घरों को तोड़ कर चोरी के काम में रत रहता था।।९।।

रूपवती नाम की एक कोई वेश्या थी। उसके प्रति प्रेम करता हुआ उद्दालक उसको सदा स्मरण करता था।।१०।।

हे मुने ! चोरी के काम में विपुल धन अर्जित करके काम और मोह से मूढ हुआ वह ब्राह्मण उस धन को उस वेश्या को दे देता था।।११।।

कभी तो वह पथिकों का धन छीनकर उसको देता था। कभी ब्राह्मणों को मार कर और उनसे धन हरण करके देता था।।१२।।

अपने घर में स्थित धन को भी वह रूपवती को देता था। वह वेश्या भी प्रभूत धन को देख कर प्रसन्न हो गई। अपने वेश्याधर्म में सदा रत रहने वाली उसने प्रेम से उद्दालक से कहा।।१३।।

वेश्या ने कहा-

हे ब्राह्मण ! ऐसा विपुल धन तुमने कहां से पाया है, यह बताओ। हे कान्त ! तुमसे अतिरिक्त मेरा कोई अन्य पति नहीं है, जो मुझको को नित्य स्वर्ण, मोती आदि प्रदान करता है।।१४।।

उद्दालक उवाच-

किं पृच्छसि हि मे कान्ते गृहद्रव्यं यथासुखम्।
चौरोऽहं मुनिहन्ताऽहं परद्रव्यापहारकः।।१५।।

त्वत्सङ्गार्थमिदं कर्म कृतं कान्ते मयाऽशुभम्।
ब्राह्मणा मानुषाश्चैव पथिका निहता मया।।१६।।

वेश्योवाच-

हन्त हन्त हरे ब्रह्मन् पापीयानसि पापकृत्।
एवं मा कुरु पापं हि ब्रह्महत्यादिकं द्विज।।१७।।

ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्दुर्गतिस्ते भविष्यति।
शृणु विप्र नराणां हि चेष्टितं पूर्वजन्मजम्।।१८।।

ये वै परस्वहरणे तत्परा ब्रह्मघातकाः।
परदारेषु संसक्तास्ते वै निरयगामिनः।।१९।।

परनिन्दारता ये वै परद्रोहकराः सदा।
वेश्यायां निरता ये वै तेऽपि दुर्गतिगामिनः।।२०।।

तस्मात्त्वं त्यज दुर्बुद्धे पापकर्म शुभं कुरु।
भगवन्तं दयासिन्धुं भज विप्र निरन्तरम्।।२१।।

ततस्ते सर्वपापानि नाशं यास्यन्ति दुर्मते।
मा विलम्बं कुरु प्राज्ञ गच्छ विष्ण्वालयं शुभम्।।२२।।

स्कन्द उवाच-

इति तस्या वचः श्रुत्वा ब्राह्मणो विस्मितोऽभवत्।
वेश्यां रूपवतीं प्राहोद्दालको ब्राह्मणाधमः।।२३।।

उद्दालक उवाच-

वराङ्गने रूपवति त्वं माताऽसि ममाऽनघे।
त्वं गुरुर्मे त्वमेवाऽसि शास्त्री सुन्दरि सुव्रते।।२४।।

उपदेशं कुरु प्राज्ञे यथा स्यां विष्णुलोकभाक्।
मम सर्वाणि पापानि यथा नश्यन्ति तद्वद।।२५।।

---

१. पुष्कल

उद्दालक ने कहा-

हे प्रिये ! तुम सुखपूर्वक घर के धन के बारे में क्या पूछती हो ? मैं चोर हूं, मुनियों का वध करने वाला हूं और दूसरों के धन का हरण करने वाला हूं।।१५।।

हे प्रिये ! तुम्हारा साथ पाने के लिये मैंने यह अशुभ कर्म किया है। मैंने ब्राह्मण और मनुष्य पथिकों का वध किया है।।१६।।

वेश्या ने कहा-

हे भगवन् ! हे ब्राह्मण ! खेद है। तुम पाप करने वाले अतिशय पापी हो। हे द्विज ! इस प्रकार के ब्रह्महत्या आदि पाप को मत करो।।१७।।

ब्रह्महत्या आदि पापों से तुम्हारी दुर्गति होगी। हे विप्र ! मनुष्यों की पूर्वजन्म में की गई चेष्टाओं के विषय में सुनो।।१८।।

जो व्यक्ति दूसरों का धन हरण करने में तत्पर रहते हैं, ब्राह्मणों का वध करते हैं और पराई स्त्रियों में आसक्त रहते हैं, वे निश्चय से नरक में जाते हैं।।१९।।

जो व्यक्ति सदा दूसरों की निन्दा में रत रहते हैं, जो दूसरों से सदा द्रोह करते हैं और जो वेश्या में रत रहते हैं, उनकी निश्चय से दुर्गति होती है।।२०।।

हे दुष्ट बुद्धि वाले ! इसलिये तुम पाप कर्म को छोड़ दो और शुभ कर्मों को करो। हे विप्र ! तुम निरन्तर दया के समुद्र भगवान् का भजन करो।।२१।।

हे दुर्मते ! तब तुम्हारे सब पाप नष्ट हो जायेंगे। हे बुद्धिमान् ! देर मत करो और विष्णु के शुभ मन्दिर में जाओ।।२२।।

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार उसके वचन को सुन कर ब्राह्मण विस्मित हो गया। वह नीच ब्राह्मण उद्दालक रूपवती वेश्या से बोला।।२३।।

उद्दालक ने कहा-

हे निष्पाप वेश्या रूपवति ! तुम मेरी माता हो। हे सुन्दरि ! तुम मेरी गुरु हो। हे सुव्रते ! तुम ही मेरे लिये शास्त्र हो।।२४।।

हे बुद्धिमति ! ऐसा उपदेश दो, जिससे कि मैं विष्णुलोक को प्राप्त करूं। जिससे मेरे सब पाप नष्ट हो जावें, वैसा उपदेश करो।।२५।।

वेश्योवाच-

शृणु विप्र महाभाग धन्योऽसि त्वं हि सुव्रत।
यस्येयमीदृशी बुद्धिर्जाता वै विष्णुसेवने।।२६।।

देवप्रयागकं क्षेत्रं श्रूयते यद् भुवि द्विज।
तत्र भागीरथीतीरे कुण्डं परमदुर्लभम्।।२७।।

शिवतीर्थादूदर्ध्वभागे क्रोशखण्डप्रमाणकम्[1]।
तत्र गच्छ हरिं ध्यायन् स्नानं कुरु यथाविधि।।२८।।

दिनानां पञ्चके विप्र गमिष्यसि परां गतिम्।
ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुक्तिस्ते भविता द्विज।।२९।।

स्कन्द उवाच-

इति तस्या वचो धृत्वा हृदि विप्रो ययौ ततः।
देवप्रयागके क्षेत्रे यत्र वैतालिकी शिला।।३०।।

स्नाता तीर्थवरे पुण्ये दृष्टवान् प्रेतदेहकान्।
सङ्ख्यया वै पञ्चशतं वेतालान् विकटाननान्।।३१।।

स्रवन्मूत्रपुरीषांश्च पूयशोणितसम्प्लुतान्।
वर्तुलाक्षान् बृहद्दन्तान् क्षुत्तृष्णापरिपीडितान्।।३२।।

निर्मांसानस्थिशेषांश्च हाहाकाररवांस्तथा।
तान् दृष्ट्वोद्दालकः प्राह विस्मयाविष्टमानसः।।३३।।

उद्दालक उवाच-

भो भो भयानका यूयं के वै भवथ निर्मयाः।
किमर्थं वै स्थिता ह्यत्र तीर्थानां प्रवरे शुभे।।३४।।

वेताला उचुः-

शृणु प्राज्ञ महाभाग यद्वै वृत्तं दुरात्मनाम्।
अस्माकं तत्तथा ब्रूमो दयावानसि दुःखितान्।।३५।।

पुरा वयं तु गन्धर्वा अभूम द्विजसत्तम।
इन्द्रस्याग्रे वर्तमाना गायन्तो गानमुत्तमम्।।३६।।

---

१. प्रमाणके

वेश्या ने कहा-

हे महाभाग सुव्रत विप्र ! तुम धन्य हो, विष्णु का सेवन करने के लिये जिसकी ऐसी बुद्धि हो गई है।।२६।।

हे ब्राह्मण ! पृथिवी पर जो देवप्रयाग नाम का क्षेत्र सुना जाता है, वहां भागीरथी के तट पर परम दुर्लभ कुण्ड है।।२७।।

यह शिवतीर्थ से ऊपर की ओर एक कोस दूर है। वहां जाओ और विधिपूर्वक विष्णु का ध्यान करते हुये स्नान करो।।२८।।

हे विप्र ! पांच दिन में तुमको परम गति प्राप्त होगी। हे ब्राह्मण ! ब्रह्महत्या आदि पापों से तुम्हारी मुक्ति हो जावेगी।।२९।।

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार उस रूपवती वेश्या के वचन को मन में रख कर वह ब्राह्मण वहां गया, जहां देवप्रयाग क्षेत्र में वेतालशिला है।।३०।।

पुण्यशाली उत्तम तीर्थ में स्नान करके उसने प्रेत शरीरों को देखा। भयानक मुख वाले वे वेताल संख्या में पांच सौ थे।।३१।।

उनके मूत्र और टट्टी बह रहे थे, पीप और रुधिर से वे भरे थे, उनकी आंखें गोल थीं और बड़े बड़े दान्त थे। वे भूख और प्यास से अत्यधिक पीडित थे।।३२।।

उनके शरीर पर मांस नहीं था। केवल हड्डी अवशिष्ट थी। वे हाहाकार शब्द कर रहे थे। उनको देख कर आश्चर्य से भरे मन वाला उद्दालक बोला।।३३।।

उद्दालक ने कहा-

हे भयानको ! तुम निर्भय होकर कैसे रहते हो ? यहां श्रेष्ठ शुभतीर्थ में कैसे रहते हो ?।।३४।।

वेताल बोले-

हे बुद्धिमान् महाभाग ! हम दुरात्माओं का पुराना जो वृत्तान्त है, उसको वैसा ही बताते हैं, यह सुनो। तुम हम दुःखितों के प्रति दयावान् हो।।३५।।

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! पहले हम गन्धर्व थे और इन्द्र के सामने रहते हुये उत्तम गाना गाते थे।।३६।।

कदाचिद्दैवयोगेन गता वै हिमपर्वते।
विहर्तुं यौवनोन्मत्ता रूपलावण्यगर्विता:।।३७।।

अष्टावक्रं दृष्टवन्तस्तप्यमानं महत्तप:।
कृशं वै सर्वतो वक्रमस्थिशेषं जटान्वितम्।।३८।।

तं दृष्ट्वा मुनिशार्दूलं हासं चकृम पापिन:।
अस्मान्दृष्ट्वा मुनिस्तत्र शशापेदमुदीरयन्।।३९।।

रे रे रूपमदोन्मत्ता मां दृष्ट्वा हसिता यत:।
अतो यूयं दुराचारा वेतालत्वं गमिष्यथ।।४०।।

इति शप्त्वा मुनिवरो विरराम महामति:।
शापात्त्रस्ता: मुनेर्विप्र वयमूचिम तं मुनिम्।।४१।।

अष्टावक्र मुनिश्रेष्ठ शिवभक्तिपरायण।
अस्मादृशां त्वमेवाऽसि त्राता पापात्मनां मुने।।४२।।

त्वत्तो नाऽस्ति गति: काचिदस्माकं मुनिसत्तम।
रक्ष रक्ष दह्यमानान् शापाग्नेस्तव सुव्रत।।४३।।

क्षमां कुरु महाभाग क्षमासारा हि साधव:।
भवादृशा नाऽपराधं मन्यन्ते हि दुरात्मनाम्।।४४।।

इति विज्ञापितोऽस्माभिरष्टावक्रो मुनीश्वर:।
उवाच वचनं प्रीत्या स्तुत्या संहृष्टमानस:।।४५।।

अष्टावक्र उवाच-

अमोघो मामक: शापो भविष्यत्येव गायका:।
गच्छत प्रेतदेहेन कियत्कालं सुतीर्थके।।४६।।

क्षेत्रे क्षेत्रगणाधीशे प्रयागे देवपूर्वके।
वासं कुरुत दुर्वृत्ता यावदुद्दालको मुनि:।
रूपवत्या वेश्यया वै प्रेषितश्चाऽऽगमिष्यति।।४७।।

भवतां तेन संवादो भविष्यति यदा तदा।
पुन: स्वकं परं रूपं प्राप्य वै विहरिष्यथ।।४८।।

यौवन से उन्मत्त और रूप-लावण्य के घमण्ड में भरे हम कभी दैवयोग से विहार करने के लिये हिमालय पर्वत पर गये।।३७।।

वहां हमने महान् तप करते हुये अष्टावक्र मुनि को देखा, जो सब ओर से कृश था, टेढा था, जटाओं से युक्त था और जिसकी अस्थि ही अवशिष्ट थी।।३८।।

उस मुनिश्रेष्ठ को देख कर हम पापी उपहास करने लगे। हमको देख कर वहां मुनि ने इस शाप का उच्चारण किया।।३९।।

हे रूप के मद से उन्मत्तो ! मुझको देख कर क्योंकि तुमने उपहास किया है, अतः तुम सब दुराचारी लोग वेताल हो जाओगे।।४०।।

इस प्रकार शाप देकर महामति मुनिश्रेष्ठ अष्टावक्र चुप हो गये। हे विप्र ! शाप के भय से हमने उस मुनि से कहा।।४१।।

शिव की भक्ति में लगे रहने वाले, मुनियों में श्रेष्ठ हे अष्टावक्र मुने ! हम जैसे पापियों के तुम ही रक्षक हो।।४२।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम्हारे अतिरिक्त हमारी कोई अन्य गति नहीं है। हे सुव्रत ! अपने शाप की अग्नि से जलते हुये हमारी रक्षा करो, रक्षा करो।।४३।।

हे महाभाग ! क्षमा करो। साधुजन निश्चय से क्षमाशील होते हैं। आप जैसे साधु दुष्टों के अपराध को भी नहीं मानते।।४४।।

इस प्रकार हमारे निवेदन करने पर, प्रीति और स्तुति से प्रसन्न मन वाले मुनीश्वर अष्टावक्र यह वचन बोले।।४५।।

अष्टावक्र ने कहा-

हे गायको ! मेरा शाप अमोघ ही होगा। प्रेत के शरीर में तुम लोग कुछ समय के लिये उत्तम तीर्थ में जाओ।।४६।।

सब क्षेत्रों में उत्तम देवप्रयाग क्षेत्र में, हे दुष्टो ! तुम निवास करो, जब कि रूपवती वेश्या से भेजा गया उद्दालक मुनि वहां आयेगा।।४७।।

आपका जब उसके साथ संवाद होगा, तब निश्चय से अपने पहले परम रूप को प्राप्त करके विहार करोगे।।४८।।

इत्युक्त्वाऽस्मान् वक्रगात्रो गतस्तप्तुं हिमालये।
वयं चाऽत्रैव सम्प्राप्ता ध्यायन्तस्त्वां[1] द्विजोत्तमम्।।४९।।

सम्प्राप्तस्त्वं भाग्यवशादिदानीं पुरुषर्षभ।
पश्य रूपं तु यत्पूर्वं बभूव प्रवरं हि नः।।५०।।

साम्प्रतं त्वत्प्रसादेन जातो वै शापमोक्षकः।।५१।।

स्कन्द उवाच-

इत्युक्त्वा तं तु वेताला बभूवुर्विमलाननाः।
जग्मुस्ते देवमार्गेण विहर्त्तुं वै यथेच्छया।।५२।।

तान् दृष्ट्वा विस्मितो विप्रो गन्धर्वांस्त्रिदिवौकसः।
आश्चर्यं परमं लेभे हृष्टरोमा बभूव ह।।५३।।

शिलायाश्चैव कुण्डस्य वेताला लक्ष्मणान्वितम्।
एतदौद्दालकं तीर्थं पुण्यं तदवधि स्मृतम्।।५४।।

पूर्वभागे तथा पश्चादुत्तरे दक्षिणे तथा।
शरविक्षेपमात्रं तु अतिपुण्यतमं स्मृतम्।।५५।।

अत्र जप्तं हुतं तप्तं दत्तं कोटिगुणं भवेत्।।५६।।
अस्मिकुण्डे तथा विप्र शिलायां पितृतर्पणम्।
पिण्डदानं कृतं येन तारितं सकलं कुलम्।।५७।।
गङ्गायां पिण्डदानस्य यत्पुण्यं भवति द्विज।
तत्पुण्यं कोटिगुणितं भवेदत्र न संशयः।।५८।।

अस्यावज्ञा कृता वै तु गच्छेदन्यत्र यो नरः।
स याति नरके घोरे पितृभिः सह नारद।।५९।।

पितरोऽपि सदा विप्र काङ्क्षन्ति निजके कुले।
गमिष्यति यदा कश्चिदस्मान्वै तारयिष्यति।।६०।।

धन्याः कलियुगे घोरे नराः पुण्याधिका वराः।
गच्छन्ति पितृकार्यार्थं वैताले तीर्थनायके।।६१।।

---

१. तम्

हमसे यह कह कर टेढे शरीर वाले अष्टावक्र तपस्या करने के लिये हिमालय पर चले गये। हम भी तुम्हारा, श्रेष्ठ ब्राह्मण का ध्यान करते हुये यहां पहुंच गये।।४९।।

हे पुरुषश्रेष्ठ! अब तुम भाग्यवश यहां पहुंच गये हो। जो पहले हमारा सुन्दर श्रेष्ठ रूप था, उसको देखो।।५०।।

अब तुम्हारी कृपा से हमारा शाप से छुटकारा हो गया है।।५१।।

स्कन्द ने कहा-

यह कह कर वे वेताल निर्मल मुख वाले हो गये। इच्छानुसार विहार करने के लिये वे देवमार्ग से चले गये।।५२।।

स्वर्ग में रहने वाले उन गन्धर्वों को देख कर वह ब्राह्मण विस्मित हो गया। उसको बहुत अधिक आश्चर्य हुआ और वह रोमाञ्चित हो गया।।५३।।

वेतालों के नाम से युक्त वेतालशिला और वेतालों के चिह्नों से युक्त वेतालकुण्ड का यह औद्दालक तीर्थ उस समय से पुण्यशाली माना गया।।५४।।

इसके पूर्व भाग में और पीछे के भाग में, उत्तर भाग में और दक्षिण भाग में एक शरविक्षेपमात्र (१०० हाथ) का क्षेत्र अति पुण्यशाली माना गया है।।५५।।

यहां किया गया जप, हवन, तप और दान करोड़ गुना हो जाता है।।५६।।

हे विप्र! इस कुण्ड में और शिला पर जो पितरों का तर्पण करता है और पिण्डदान करता है, वह सारे कुल को तरा देता है।।५७।।

हे ब्राह्मण! गङ्गा में पिण्डदान का जो पुण्य होता है, वह पुण्य यहां करोड़ गुना हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है।।५८।।

हे नारद! इस तीर्थ की अवहेलना करके जो मनुष्य दूसरे स्थान पर जाता है, वह पितरों के साथ घोर नरक में जाता है।।५९।।

हे विप्र! पितर भी सदा यह चाहते हैं कि हमारे कुल का जब कोई व्यक्ति यहां आयेगा तो हमको तरा देगा।।६०।।

इस घोर कलियुग में वे मुनष्य धन्य हैं, उनका पुण्य अधिक है, वे श्रेष्ठ हैं, जो पितरों के कार्य के लिये तीर्थों में उत्तम वेतालतीर्थ में जाते हैं।।६१।।

अस्मिन् कुण्डे तु यः स्नाति शिलास्पर्शं करोति हि।
दर्शनं पूजनं चैव तस्य पुण्यफलं शृणु।।६२।।

स्नातं वै सर्वतीर्थेषु दत्ता वै सकला मही।
निखिलाः प्रतिमा दृष्टा विष्णोरमिततेजसः।।६३।।

नारद उवाच-

सेनापते विभो स्कन्द हृदि मे संशयो महान्।
कथं वै तीर्थराजस्य माहात्म्यमभवत्प्रभो।।६४।।

स्कन्द उवाच-

साधु साधु महाप्राज्ञ यत्पृष्टोऽहं[1] त्वया मुने।
उद्दालकस्य वृत्तं तु तद्वक्ष्यामि तवाऽनघ।।६५।।
उद्दालकस्तु धर्मात्मा दृष्ट्वा गन्धर्वतां गतान्।
वेतालान्सपदि प्राज्ञः शिलायां स्थितवांस्तदा।।६६।।

तत्र स्थित्वा तपश्चक्रे देवैरपि सुदुष्करम्।
पञ्चवर्षसहस्राणि एकपादेन तस्थिवान्।।६७।।

निराहारो निरीहश्च निर्ममो निरहङ्कृतिः।
ततः प्रसन्नो भगवान् बभूव दृष्टिगोचरः।।६८।।

तं दृष्ट्वोद्दालको विप्रः शङ्खचक्रगदाधरम्।
द्योतयन्तं दिशः कान्त्या कौस्तुभान्वितवक्षसम्।।६९।।

नारायणं दयासिन्धुं भक्तानां वशवर्तिनम्।
स्तोतुं प्रचक्रमे विप्रो भक्त्या गद्‌दगया गिरा।।७०।।

उद्दालक उवाच-

नमस्ते देवदेवेश नमस्ते करुणानिधे।
गुणत्रयविभागाय त्रयीरूपाय ते नमः।।७१।।

त्वमिन्द्रस्त्वं यमः श्रेष्ठः कालः कलयतां वरः।
कुबेरस्त्वं धनाध्यक्षो गणाधीशस्त्वमेव हि।।७२।।

शिवः स्वयं त्वमेवाऽसि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः।
सूर्यस्त्वं हि तमोहन्ता नक्षत्राणां पतिस्तथा।।७३।।

---

१. पृष्टोऽहं

इस तीर्थ में जो व्यक्ति स्नान करता है, जो शिला का स्पर्श करता है, उसके दर्शन और पूजन के पुण्य फल को सुनो।।६२।।

उसने सब तीर्थों में स्नान कर लिया है, सारी पृथिवी का दान कर दिया है और अमित तेजस्वी विष्णु की सारी प्रतिमायें देख ली हैं।।६३।।

नारद ने कहा-

हे सेनापते, विभो स्कन्द ! मेरे हृदय में महान् सन्देह है। हे प्रभो ! उस तीर्थराज का ऐसा माहात्म्य कैसे हो गया ?।।६४।।

स्कन्द ने कहा-

हे महाबुद्धिशाली मुने ! तुमने यह जो बात पूछी है, वह बहुत अच्छी बात है। मैं तुम्हारे समक्ष उद्दालक के उस वृत्तान्त को कहूंगा।।६५।।

धर्मात्मा उद्दालक ने वेतालों को गन्धर्वत्व को प्राप्त हुआ देखा और वह शीघ्र ही वहां उस शिला पर स्थित हो गया।।६६।।

वहां स्थित होकर उसने एक पैर से खड़े होकर देवों से भी दुष्कर तप पांच हजार वर्ष तक किया।।६७।।

वह भोजन से रहित, चेष्टाओं से रहित, ममत्व की भावना से रहित और अहङ्कार से रहित रहा। तब प्रसन्न होकर भगवान् दृष्टिगोचर हुये।।६८।।

शंख, चक्र और गदा को धारण करने वाले, कान्ति से दिशाओं को प्रकाशित करते हुये और कौस्तुभ मणि से अन्वित वक्ष वाले उन भगवान् को ब्राह्मण ने देखा।।६९।।

दया के सिन्धु और भक्तों के वशवर्ती नारायण को देख कर ब्राह्मण ने भक्ति से गद्गद वाणी में स्तुति करना प्रारम्भ किया।।७०।।

उद्दालक ने कहा-

हे देवों के स्वामी देव ! तुमको नमस्कार है। हे करुणानिधे ! तुमको नमस्कार है। तीनों गुणों का विभाग करने वाले त्रयीरूप भगवन् ! तुमको नमस्कार है।।७१।।

तुम ही इन्द्र हो। तुम ही श्रेष्ठ यम हो। तुम ही समय का निर्माण करने वाले श्रेष्ठ काल हो। तुम धन के अध्यक्ष कुबेर हो। तुम ही देवगणों के स्वामी हो।।७२।।

तुम ही स्वयं शिव हो, तुम ही विष्णु हो और तुम ही प्रजापति ब्रह्मा हो। तुम ही अन्धकार का विनाश करने वाले सूर्य हो और तुम ही नक्षत्रों के स्वामी चन्द्रमा हो।।७३।।

यत्किञ्चिद् दृश्यते लोके यद्वै स्थावरजङ्गमम्।
तत्सर्वं तु त्वमेवाऽसि त्वत्तो नान्योऽस्ति कश्चन[1]।।७४।।

स्कन्द उवाच-

इति स्तुतो हि भगवान् प्रसन्नोऽभूद् द्विजातये।
मेघगम्भीरया वाचा उवाच पुरुषोत्तमः।।७५।।

श्रीभगवान् उवाच-

वत्स वत्स वरं ब्रूहि यत्ते मनसि वर्तते।
तत्ते सम्प्रति दास्यामि अपि त्रैलोक्यदुर्लभम्।।७६।।

उद्दालक उवाच-

धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं त्वत्प्रसादाज्जगत्प्रभो।
त्वद्दर्शनं हि लोकेषु दुर्लभं मांसचक्षुषाम्।।७७।।

त्वद्दर्शनं मया प्राप्तमन्यत्किं वृणुयाम्यहम्।
वरमेकं तु मे देहि यदि चेन्मयि ते दया।।७८।।

अस्मिन् कुण्डे शिलायां च करिष्यन्ति नरोत्तमाः।
स्नानं दानं पिण्डदानं भूयात्तत्कोटिसंख्यकम्।।७९।।

इदं स्तोत्रं मयाऽऽख्यातं पठिष्यन्ति हि मानवाः।
तेऽपि तत्र स्नानफलं प्राप्नुयुः पुरुषोत्तमाः।।८०।।

श्रीभगवानुवाच-

यत्त्वया याचितं विप्र तत्तथैव भविष्यति।
आगच्छ त्वं महाभाग मद्देहे निर्गुणे शिवे।।८१।।

स्कन्द उवाच-

इत्युक्त्वा भगवान् विष्णुरुद्दालसहितो ययौ।
वैकुण्ठं योगिनां गम्यं विष्णुभक्तिपरात्मनाम्।।८२।।

इति ते कथितं विप्र वैतालं तीर्थमुत्तमम्।
एतदाख्यानकं श्रुत्वा पठित्वा भक्तितत्परः।।८३।।

---

१. किञ्चन

इस लोक में जो कुछ स्थावर और जङ्गम दिखाई देता है, निश्चय से वह सब तुम ही हो। तुमसे अतिरिक्त और कुछ नहीं है।।७४।।

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार स्तुति करने पर भगवान् ब्राह्मण के प्रति प्रसन्न हो गये। तब मेघ के समान गम्भीर वाणी में पुरुषोत्तम विष्णु ने कहा।।७५।।

श्रीभगवान् ने कहा-

हे वत्स ! जो तुम्हारे मन में है, उस वर को मांग लो। मैं तीनों लोको में भी दुर्लभ उस वर को तुम्हें दूंगा।।७६।।

उद्दालक बोला-

हे संसार के प्रभो ! तुम्हारी कृपा से मैं धन्य हो गया हूं, धन्य हो गया हूं। मांस निर्मित चक्षु वाले प्राणियों को जो दुर्लभ है, ऐसे तुम्हारे दर्शन को मैंने पाया है।।७७।।

मैंने तुम्हारा दर्शन पा लिया है, और क्या वर मांगूं। परन्तु यदि तुम्हारी मेरे प्रति दया है, तो एक वर प्रदान करो।।७८।।

जो श्रेष्ठ मनुष्य इस कुण्ड में और शिला पर जो स्नान, दान और पिण्डदान करें, वह करोड़ों गुना फल वाला होवे।।७९।।

पुरुषों में श्रेष्ठ जो मनुष्य मेरे द्वारा कहे गये इस स्तोत्र का भी पाठ करेंगे, वे भी स्नान के फल को प्राप्त करें।।८०।।

श्री भगवान् ने कहा-

हे विप्र ! जो तुमने याचना की है, वह वैसा ही होगा। हे महाभाग ! तुम मेरे निर्गुण कल्याणकारी शरीर में समा जाओ।।८१।।

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार कह कर उद्दालक सहित भगवान् विष्णु उस वैकुण्ठ लोक को चले गये, जहां विष्णु की भक्ति में तत्पर रहने वाले योगीजन ही जा सकते हैं।।८२।।

हे विप्र ! मैंने वैताल नाम के उत्तम तीर्थ का वर्णन किया है। जो भक्ति से भर कर इस आख्यान को सुनता और पढ़ता है......।।८३।।

सोऽपि विष्णुपुरं याति श्लोकमात्रेण नारद।
श्लोकार्द्धेनाऽपि पादेन पठितेन द्विजोत्तम।।८४।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे देवप्रयागमाहात्म्यवर्णनं नाम
चतु:पञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय:।।

पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय:

मेधातिथे: सूर्यकुण्डे तपस्यतो रविप्रसादात् सूर्यलोकावाप्ति: शूद्रकुलजस्य देवदासस्येतिहासपूर्वकं सूर्यकुण्डमाहात्म्यकथनम्

स्कन्द उवाच-

अथाऽहं सम्प्रवक्ष्यामि सूर्यकुण्डस्य विस्तरम्।
माहात्म्यं मुनिशार्दूल शृणुष्वैकमना: प्रिय।।१।।

वेतालतीर्थादुपरि शरविक्षेपमात्रके।
तदस्ति पुण्यदं तीर्थं सर्वपापप्रणाशनम्।।२।।

तत्रावगाहनान्मर्त्य: कुष्ठरोगात्प्रमुच्यते।
सर्वान् कामानवाप्नोति स्नानाद्वै मनसेप्सितान्।।३।।

तस्योत्पत्तिं शृणु प्राज्ञ क्षेत्रराजस्य पुण्यदाम्।
पुरा मेधातिथिर्नाम बभूव द्विजसत्तम:।।४।।

सूर्यभक्तिरतो नित्यं सूर्यमेवाऽभजत्सदा।
सदैव सौरमन्त्रं वै जपंस्तस्थौ तु स्वे गृहे।।५।।

एकदा मुनिशार्दूल गतो मेधातिथिर्मुनि:।
देवप्रयागके क्षेत्रे तीर्थानामुत्तमोत्तमे।।६।।

सौरकुण्डे महातीर्थे तीर्थानां प्रवरे शुभे।
तत्र गत्वा मुनिश्रेष्ठ तपश्चक्रे महामति:।।७।।

निराहारो यतात्मा वै निर्ममो नि:स्पृह: सुधी:।
सूर्यमेव सदा ध्यायन् सौरमन्त्रमनुस्मरन्।।८।।

हे द्विजश्रेष्ठ नारद ! जो इसका श्लोक अथवा आधा श्लोक अथवा चौथाई श्लोक भी पढता है, वह भी विष्णुलोक में जाता है।।८४।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में देवप्रयाग माहात्म्य वर्णन नाम का १५४ वां अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय - १५५

सूर्यकुण्ड में तपस्या करने वाले मेघातिथि को, सूर्य देवता के प्रभाव से सूर्यलोक की प्राप्ति, शूद्र कुल में उत्पन्न देवदास का इतिहास, सूर्यकुण्ड के माहात्म्य का वर्णन

स्कन्द ने कहा-

हे मुनिश्रेष्ठ ! अब मैं तुमको सूर्यकुण्ड के विस्तार को और माहात्म्य को विस्तार से बताऊंगा। हे प्रिय ! इसको एकाग्र मन होकर सुनो।।१।।

वेताल तीर्थ से ऊपर एक शरविक्षेप मात्र दूर वह सूर्यकुण्ड सब पापों का विनाश करने वाला और पुण्य प्रदान करने वाला तीर्थ है।।२।।

वहां स्नान करने से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है। वहां स्नान करने से वह मन ईप्सित सब कामनाओं को निश्चय से प्राप्त करता है।।३।।

हे बुद्धिमान् नारद ! उस क्षेत्रराज की पुण्य प्रदान करने वाली उत्पत्ति के वृत्तान्त को सुनो। प्राचीन समय में मेघातिथि नाम का श्रेष्ठ ब्राह्मण होता था।।४।।

सूर्य की भक्ति में लगा हुआ वह नित्य सूर्य का भजन करता था। वह सदा ही सौर मन्त्र का जप करता हुआ अपने घर में रहता था।।५।।

हे मुनिश्रेष्ठ नारद ! एक बार मेधातिथि मुनि तीर्थों में सर्वोत्तम तीर्थ देवप्रयाग क्षेत्र में गये।।६।।

वे तीर्थों में श्रेष्ठ शुभ महातीर्थ सौरकुण्ड में गये। हे मुनिश्रेष्ठ । वहां जाकर उस बुद्धिमान् मेधातिथि ने तपस्या की।।७।।

निराहार रह कर, अपने को नियमित करके, ममत्व से रहित होकर, निःस्पृह होकर वह बुद्धिमान् ब्राह्मण सौर मन्त्र का स्मरण करता हुआ सूर्य का ही ध्यान करता था।।८।।

एवं वर्षसहस्रे तु व्यतीते द्विजवल्लभ।
प्रसन्नोऽभूज्जगच्चक्षुः प्रत्यक्षमनुदृष्टवान्।।९।।

मेघातिथिः सुधर्मात्मा भासमानो यथा रविः।
तपसा शुद्धदेहो वै चकार स्तुतिमुत्तमाम्।।१०।।

मेघातिथिरुवाच-

निखिलनिगमबोधप्रमोदप्रयुक्तप्रभक्तप्रहर्षप्रसेव्यप्रपाद।
प्रकरनिकरविनष्टान्धकारप्रकाशप्रहर्षप्रयुक्तत्रिलोकप्रभो भोः।।११।।

भवजलधितरणप्रपोताङ्घ्रिपद्म प्रनष्टं भवापारवारांनिधौ त्राहि माम्।
सकलसुरगणस्तूयमानः प्रमुक्त्यै नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते।।१२।।

स्कन्द उवाच-

इति स्तुतो हि भगवान् स्तोत्रकेन वरेण वै।
उवाच वचनं पुण्यं सर्वलोकहितावहम्।।१३।।

श्रीसूर्य उवाच-

वत्स मेधातिथे विप्र वृणीष्व त्वं वरं मुने।
दास्यामि ते महाभाग अप्यदेयं वरं परम्।।१४।।

मेधातिथिरुवाच-

विभो विभास्कर प्राज्ञ सप्ताश्वरथवाहन।
त्वदीयचरणाम्भोजे भक्तिर्भवतु सर्वदा।।१५।।

सदैव तव पूजां तु कुर्यां वै [१]भक्तितत्परः।
वरमन्यं च मे देहि यदि मां मन्यसे रवे।।१६।।

त्वया सदाऽत्र स्थातव्यं मया सह महामते।
अस्य कुण्डस्य माहात्म्यं भूयात्पुण्यतमं वरम्।।१७।।

त्रिषु लोकेषु विख्यातमेतत्तीर्थं भवेद्विभो।।१८।।

स्कन्द उवाच-

तत्तथाऽस्तामिति विभुरुक्त्वा स्वर्गं जगाम वै।
ततः ख्यातं बभूवेदं कुण्डं क्रतुफलप्रदम्।।१९।।

---

१. संभक्ति

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! इस प्रकार एक हजार वर्ष व्यतीत हो जाने पर जगत् के चक्षु सूर्य प्रसन्न हो गये और उन्होंने प्रत्यक्ष दर्शन दिये। ।९।।

सूर्य के समान प्रकाशित और तपस्या से शुद्ध शरीर वाले धर्मात्मा मेधातिथि ने सूर्य की उत्तम स्तुति की। ।१०।।

मेधातिथि ने कहा-

सम्पूर्ण वेदों से जिनका ज्ञान प्राप्त किया जाता है, आनन्द से भरे श्रेष्ठ भक्तों द्वारा जिनके चरणों की प्रसन्नता से सेवा की जाती है, किरणों के समूह से अन्धकार को जो नष्ट करते हैं, जो प्रकाश से प्रसन्नता को प्रारम्भ करते हैं, ऐसे हे तीनों लोकों के प्रभो! ।११।।

संसाररूपी समुद्र को तैरने के लिये जहाजरूपी चरण कमल वाले हे प्रभो ! संसाररूपी अपार समुद्र में डूबते हुये मेरी रक्षा करो। तुम सभी देवगणों द्वारा स्तुति किये जाते हो। मुक्ति को पाने के लिये तुम्हें नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है। ।१२।।

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार श्रेष्ठ स्तोत्र द्वारा स्तुति किये जाते हुये भगवान् सूर्य ने सब लोकों का हित करने वाले पुण्य वचन को कहा। ।१३।।

श्रीसूर्य बोले-

हे वत्स ! मेधातिथे ! विप्र ! मुने ! तुम वर मांग लो। हे महाभाग ! मैं तुमको अदेय वर भी दूंगा। ।१४।।

मेधातिथि ने कहा-

सात घोड़ों के रथ पर सवारी करने वाले, सबको प्रकाशित करने वाले ज्ञानी प्रभो हे सूर्य ! मेरी सदा तुम्हारी चरणों में भक्ति होवे। ।१५।।

मैं भक्ति से तत्पर होकर निश्चय से सदा तुम्हारी पूजा करता रहूं। हे सूर्य ! यदि तुम ठीक समझते हो तो एक अन्य वर दो। ।१६।।

हे महाबुद्धिशालिन् ! तुम यहां सदा मेरे साथ स्थित रहना। इस कुण्ड का माहात्म्य सबसे अधिक पुण्यशाली और उत्तम हो। ।१७।।

हे विभो ! यह तीर्थ तीनों लोकों में प्रसिद्ध हो जावे। ।१८।।

स्कन्द ने कहा-

ऐसा ही होगा, यह कह कर भगवान् सूर्य स्वर्ग को चले गये। तदनन्तर यह कुण्ड यज्ञों के फल को देने वाला प्रसिद्ध हुआ। ।१९।।

अस्मिन्सौरे महाकुण्डे यदि प्राप्येत सप्तमी।
माघमासस्य शुक्ला वै तत्र स्नातुः फलं शृणु।।२०।।

अर्बुदार्बुदवर्षाणि तथाऽर्बुदशतानि च।
सूर्यलोके वसेन्मर्त्यस्ततो वै जायते द्विजः।।२१।।

वेदवेदाङ्गवक्ता वै सुन्दराङ्गः सुबुद्धिमान्।
सर्वलोकेषु विख्यातः सर्वशास्त्रार्थपारगः।।२२।।

सूर्यस्य प्रीतये दद्याद्यो मर्त्यो भक्तितत्परः।
गृहवस्त्रान्नगेहानि सूर्यलोके वसेत्तु सः।।२३।।

अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि यथा ते प्रत्ययो भवेत्।
शृणु नारद तत्त्वेन मत्तो मुनिगणर्षभ।।२४।।

कश्चिच्छूद्रो मुनिश्रेष्ठ बभूव द्विजसेवकः।
देवदास इति ख्यातो नाम्ना वै मुनिसत्तम।।२५।।

सर्वेषां द्विजवर्याणां परिचर्यां करोति सः।
द्विजाज्ञयैव सर्वं हि व्यवहारं करोति च।।२६।।

गायने तस्य वै प्रीतिः सदाऽभूद् द्विजपुङ्गव।
कथं मे गायनज्ञानं भविष्यति च चिन्तयन्।।२७।।

कस्मिंश्चित्त्वथ काले तु देवदासो गृहं ययौ।
मार्गे व्रजन् ददर्शाऽथ मुनिपुञ्जं सुनिर्मलम्।।२८।।

दृष्ट्वा मुनिगणं नत्वा चरणौ जगृहे तदा।
तेषां वै मुनिवर्याणां देवदासो महामतिः।।२९।।

उवाच मुनिपुञ्जं वै विनयाविष्टमानसः।।३०।।

देवदास उवाच-

भो भो मुनिगणाः सर्वे दयां कुरुत सुव्रताः।
भवतां दासभूतोऽहं शूद्रो विज्ञापयाम्यहम्।।३१।।

यथा सुगायकोऽहं स्यां वासवस्य शचीपतेः।
सदा स्वर्गे च मे वासो भवतान्मुनिसत्तमाः।।३२।।

माघ महीने के शुक्ल पक्ष की सप्तमी में यदि कोई इस सौर महाकुण्ड में पहुंच जावे, तो वहां स्नान करने वाले के फल को सुनो।।२०।।

यहां स्नान करने वाला मनुष्य अरबों-अरबों वर्ष तक और खरबों वर्ष तक सूर्यलोक में रहता है और तदनन्तर ब्राह्मण के रूप में जन्म लेता है।।२१।।

वेदों और वेदाङ्गों का उपदेश देने वाला, सुन्दर अङ्गों वाला, अतिशय बुद्धिशाली, सब लोकों में विख्यात और सब शास्त्रों में पारङ्गत.....।।२२।।

जो मनुष्य भक्ति में तत्पर होकर सूर्य की प्रसन्नता के लिये घरेलू वस्त्र, अन्न और घर का दान करता है, वह सूर्यलोक में निवास करता है।।२३।।

मुनिगणों में श्रेष्ठ हे नारद! मैं और भी वृत्तान्त कहूंगा, जिससे तुमको विश्वास हो जावे। तुम ठीक ठीक मुझसे यह बात सुनो।।२४।।

हे मुनिश्रेष्ठ! ब्राह्मणों का सेवक कोई शूद्र था। हे मुनिश्रेष्ठ! वह देवदास नाम से प्रसिद्ध था।।२५।।

वह सभी श्रेष्ठ ब्राह्मणों की सेवा करता था और ब्राह्मणों की आज्ञा से सारे कार्य करता था।।२६।।

हे द्विजश्रेष्ठ नारद! गाने में उसका सदा प्रेम रहता था। मुझको गाने का ज्ञान किस प्रकार हो, यह वह सोचता रहता था।।२७।।

तदनन्तर किसी समय देवदास घर जा रहा था। मार्ग में उसने अति निर्मल मुनियों का समूह देखा।।२८।।

उस महामति देवदास ने मुनियों को देख कर प्रणाम करके उन मुनिश्रेष्ठों के चरण पकड़ लिये।।२९।।

विस्मय से आविष्ट मन वाला वह मुनियों से कहने लगा।।३०।।

देवदास ने कहा-

उत्तम व्रत धारण करने वाले हे मुनियो! आप सब मुझ पर दया करें। आपका दास बना हुआ मैं शूद्र निवेदन करता हूँ।।३१।।

कि मैं शचीपति इन्द्र का उत्तम गायक हो जाऊं। हे मुनिश्रेष्ठो! स्वर्ग में मेरा सदा निवास होवे।।३२।।

ऋषय उचुः-

देवदास शृणु त्वं हि वक्ष्यामस्ते वयं वचः।
येन वै कर्मणा शूद्र यास्यसि त्वं त्रिविष्टपम्।।३३।।

गन्धर्वराजतां चैव गमिष्यसि हि पादज।
देवप्रयागके क्षेत्रे सूर्यकुण्ड[1] हि विद्यते।।३४।।

गङ्गाया उत्तरे कूले तत्र गच्छ महाशय।
तत्रावगाहनाद्वत्स सूर्यस्तुष्यति सारुणः।।३५।।

यान् यान् प्रार्थयते कामांस्तान्ददाति हि भास्करः।
गच्छ गच्छाऽऽशु हे शूद्र तीर्थानामुत्तमोत्तमे।।३६।।

स्कन्द उवाच-

इति तेषां वचः श्रुत्वा देवदासो महामतिः।
तस्मिन्नेव महाक्षेत्रे ययौ देवप्रयागके।।३७।।

सौरकुण्डे स धर्मात्मा स्नानं वै कृतवांस्तदा।
रविं सदा हृदि ध्यायन् सूर्य सूर्येत्युदीरयन्।।३८।।

एवं वै कुर्वतस्तस्य सन्तुष्टोऽभूद्दिवाकरः।
उवाच देवदासं स सारुणो भगवान् रविः।।३९।।

सूर्य उवाच-

भो भो शूद्र महाभाग प्रसन्नोऽहं त्वयि प्रिय।
वरं वरय शीघ्रं त्वं यत्ते मनसि वर्तते।।४०।।

देवदास उवाच-

धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं पापं मे विगतं रवे।
तव दर्शनमात्रेण करुणाकर भास्कर।।४१।।

अहं गन्धर्वराजः स्यामिति मे हृदि वर्तते।
तत्कुरुष्व महाभाग भक्तानामभयप्रद।।४२।।

---
१. देवकुंडे

ऋषियों ने कहा-

हे शूद्र देवदास ! हम तुमसे जो वचन कहते हैं, उसको सुनो, जिस कर्म से तुम स्वर्ग को जाओगे।।३३।।

हे शूद्र ! तुम गन्धर्वराज के पद को प्राप्त करोगे। निश्चय से देवप्रयाग क्षेत्र में सूर्यकुण्ड है।।३४।।

वह गङ्गा के उत्तर तट पर है। हे महाशय ! तुम वहां जाओ। हे वत्स ! वहां स्नान करने से अरुण सहित सूर्य तुम पर प्रसन्न होगा।।३५।।

मनुष्य जिन जिन कामनाओं की प्रार्थना करता है, सूर्य उन सबको देता है। अतः हे शूद्र ! सर्वोत्तम तीर्थ में शीघ्र चले जाओ।।३६।।

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार उनके वचन को सुन कर महामति देवदास उसी महाक्षेत्र देवप्रयाग में चला गया।।३७।।

वह धर्मात्मा सदा हृदय में सूर्य का ध्यान करता हुआ और सूर्य-सूर्य पद का उच्चारण करता हुआ सूर्यकुण्ड में स्नान करता था।।३८।।

इस प्रकार का आचरण करने पर सूर्य उससे प्रसन्न हो गये। अरुण सहित भगवान् सूर्य देवदास से बोले।।३९।।

सूर्य ने कहा-

हे हे प्रिय शूद्र महाभाग ! मैं तुम पर प्रसन्न हूं। जो तुम्हारे मन में है, उस वर को तुम शीघ्र मांग लो।।४०।।

देवदास ने कहा-

हे प्रकाशक सूर्य ! मैं धन्य हूं, मैं कृतकृत्य हूं। हे करुणाकर सूर्य ! तुम्हारे दर्शनमात्र से मेरा पाप दूर हो गया है।।४१।।

मेरे हृदय में यह बात है कि मैं गन्धर्वराज हो जाऊं। भक्तों को अभय देने वाले हे महाभाग ! तुम ऐसा ही करो।।४२।।

स्वर्गलोके सदा वासो मम स्याच्छिवरूपक।
इच्छारूपं तु मे देहि भक्तोऽहं तव पापहन्।।४३।।

श्रीसूर्य उवाच-

वत्स शूद्र त्वमद्यैव भव गन्धवराट् सुत।
इच्छारूपेण विहर स्वर्गलोके निरन्तरम्।।४४।।

स्कन्द उवाच-

इत्युक्त्वा भगवान् सूर्यस्तत्रैवान्तरधीयत।
देवदासोऽपि धर्मात्मा प्राप्य गन्धर्वराजताम्।
अश्वरूपोऽभवत्तत्र कुण्डे कुण्डोत्तमे शुभे।।४५।।

अश्वपादाङ्कितं क्षेत्रमद्यापि दृश्यते जनैः।
ततो मनुष्यरूपेण विचचार महामतिः।।४६।।

कदाचिद्देवरूपेण रक्षोरूपेण वाऽथवा।
नानाविधानि रूपाणि धृत्वा वै विचचार सः।।४७।।

गन्धर्वत्वे तस्य नाम बभूव मुनिसत्तम।
सुघोष इति विख्यातो गन्धर्वेषु मृगाधिपः।।४८।।

प्रातःकाले सदा याति सुघोषो नाम गायकः।
स्नानाय सौरकुण्डे तु सर्वपापहरेऽनघे।।४९।।

नानारूपधरः शुद्धो दृश्यते पुण्यकर्तृभिः।
सर्वे देवाः सगन्धर्वा ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः।
तस्मिंस्तीर्थवरे पुण्ये नित्यं तिष्ठन्ति नारद।।५०।।

धन्यास्त एव ये मर्त्याः स्नानं कुर्वन्ति नित्यशः।
सूर्यस्य पूजनं चैव सौरकुण्डे मुनीश्वर।।५१।।

ह्रीं ह्रीं स इति मन्त्रेण सूर्यपूजां करोति यः।
तस्य देवः स्वयं साक्षद्ददाति वरमुत्तमम्।।५२।।

ब्रह्महत्यादिपापानि गोत्रोत्थहननं तथा।
स्नानमात्राद्विनश्यन्ति यथाऽग्नौ तूलराशयः।।५३।।

हे कल्याणकारक शिवरूप सूर्य ! मेरा निवास सदा स्वर्गलोक में हो। पापों को नष्ट करने वाले हे सूर्य ! मेरी इच्छानुसार वर दो। मैं तुम्हारा भक्त हूं।।४३।।

श्रीसूर्य ने कहा-

हे प्रिय शूद्रपुत्र ! तुम आज ही गन्धर्वराज हो जाओ और स्वर्गलोक में इच्छानुसार निरन्तर विहार करो।।४४।।

स्कन्द ने कहा-

यह कह कर भगवान् सूर्य वहीं अन्तर्धान हो गये। गन्धर्वराजत्व को प्राप्त करके धर्मात्मा देवदास भी वहां कुण्डों में उत्तम शुभ सौरकुण्ड में अश्वरूप को प्राप्त हुआ।।४५।।

अश्व के पैरों से अंकित उस क्षेत्र को आज भी लोग देखते हैं। तदनन्तर महामति वह देवदास मनुष्य के रूप में विचरण करने लगा।।४६।।

कभी तो वह देवता के रूप में अथवा कभी राक्षस के रूप में अनेक प्रकार के रूपों को धारण करके विचरण करने लगा।।४७।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! गन्धर्व के रूप में उसका नाम सुघोष प्रसिद्ध हुआ। वह गन्धर्वों में सिंहरूप था।।४८।।

वह सुघोष नाम का गायक सब पापों को नष्ट करने वाले निष्पाप सौरकुण्ड में स्नान करने के लिये प्रातः समय में सदा जाता है।।४९।।

विविध रूपों को धारण करने वाले उस पवित्र गायक को पुण्यकर्मा जन देख पाते हैं। हे नारद ! गन्धर्वों सहित सभी देवता और ब्रह्मलोक एवं विष्णुलोक में रहने वाले सब लोग उस पुण्यशाली श्रेष्ठ तीर्थ में नित्य स्थित रहते हैं।।५०।।

हे मुनीश्वर ! वे मनुष्य ही धन्य हैं, जो उस सूर्यकुण्ड में नित्य स्नान करते हैं और सूर्य का पूजन करते हैं।।५१।।

जो मनुष्य ह्रीं ह्रीं इस मन्त्र के साथ सूर्य की पूजा करता है, सूर्यदेव साक्षात् उपस्थित होकर उसको वर प्रदान करते हैं।।५२।।

ब्रह्महत्या आदि पाप और गोत्रविनाश आदि पाप उस तीर्थ में स्नान करने मात्र से उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे अग्नि में रुई के ढेर।।५३।।

इति ते कथितं दिव्यमदेयं दुष्टजन्तुषु।
मेघातिथेश्चरित्रं तु देवदासस्य धीमतः।।।५४।।

यः शृणोति नरो भक्त्या पठेद्वा पाठयेदपि।
पुत्रपौत्रैः परिवृतो भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान्।।५५।।

सूर्यलोकं स तिष्ठेद्वै यावदाभूतसम्प्लवम्।
कर्मक्षयादिहागत्य जातिं स्मरति पौर्विकीम्।।५६।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे देवप्रयागमाहात्म्यवर्णनं नाम
पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।।

षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

सुबन्धुद्विजेतिहासकथनपूवकं वराहतीर्थमाहात्म्यकथनम्

स्कन्द उवाच-

वासिष्ठतीर्थादुपरि विंशतीनां चतुष्टये।
करप्रमाणे विधिज गदितं तीर्थमुत्तमम्।
वाराहं त्रिषु लोकेषु अतिपुण्यतमं स्मृतम्।।१।।

तस्योत्पत्तिं च माहात्म्यं शृणुष्वैकमनाः शुभम्।
पुरा सत्ययुगे विप्रो वेदवेदाङ्गपारगः।
सर्वबन्धुरिति ख्यातो वराहमनुसेवकः।।२।।

भक्तो भक्तिमतां श्रेष्ठो गोविन्दकृतमानसः।
भुञ्जन्स्वर्पस्तथा गच्छन् विष्णुं वै क्रोडरूपिणम्।
स्मरति स्म जगन्नाथं त्रैलोक्यस्यैकनायकम्।।३।।

स कदाचित्तपः कर्तुं ययौ देवप्रयागके।
तत्र गत्वा मुनिश्रेष्ठो जजाप मनुमुत्तमम्।।४।।

वाराहरूपिणो विष्णोर्नित्यं तन्न्यस्तमानसः।
निराहारो निरीहश्च निस्सङ्गो निर्ममस्तथा।
समाधिस्थः स मुनिराट् तस्थिवान्मुनिवन्दितः।।५।।

इस प्रकार मैंने तुमसे मेधातिथि का और बुद्धिमान् देवदास का चरित्र कह दिया है, जो दुष्ट प्राणियों के लिये नहीं कहा जा सकता।।५४।।

जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इसको पढता है अथवा पढाता है, वह पुत्रों और पौत्रों से घिरा हुआ इस लोक में यथेष्ट भोगों को भोगता है।।५५।।

तदनन्तर जब तक प्राणियों का प्रलय नहीं होता, वह सूर्यलोक में निवास करता है। कर्मों का क्षय होने पर इस लोक में आकर अपनी पूर्वजन्म की जाति को स्मरण करता है।।५६।।

इस प्रकार स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में देवप्रयाग-माहात्म्य
वर्णन नाम का १५५ वां अध्याय समाप्त हुआ।।

अध्याय - १५६

सुबन्धु नामक ब्राह्मण का इतिहास, वराहतीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

स्कन्द ने कहा-

हे ब्रह्मा के पुत्र नारद ! वसिष्ठ तीर्थ से ऊपर के भाग में ८० हाथ दूर वाराह नाम का उत्तम तीर्थ है। इसको तीनों लोकों में पुण्यतम माना गया है।।१।।

उस तीर्थ की शुभ उत्पत्ति और माहात्म्य को एकाग्र मन होकर सुनो। प्राचीन समय में सत्ययुग में वेद-वेदांगों में पारंगत और वराह भगवान् का भक्त सर्वबन्धु नाम से प्रसिद्ध ब्राह्मण था।।२।।

वह भक्तिमानों में श्रेष्ठ भक्त था। गोविन्द के प्रति मन को लगाये रहता था। खाते हुये, सोते हुये तीनों लोकों के एकमात्र नायक जगन्नाथ, वराहरूपधारी विष्णु का स्मरण करता था।।३।।

वह कभी तप करने के लिये देवप्रयाग गया। वहां जाकर वह मुनिश्रेष्ठ उत्तम मन्त्र का जाप करने लगा।।४।।

निराहार, निरीह, निःसङ्ग और निर्मम होकर, वराहरूपधारी विष्णु में मन को निहित करके मुनियों द्वारा वन्दित वह मुनिराज समाधिस्थ होकर बैठ गया।।५।।

एवं तस्य महाभाग जातं वर्षसहस्रकम्।
आविर्बभूव भगवान् क्रोडरूपी जनार्दनः।।६।।

शंखचक्रगदापद्मवनमालाविभूषणः।
दन्ताग्रविलसद्भूमिर्हिरण्याक्षविमर्दनः।।७।।

वाराहरूपिणं देवं दृष्ट्वा गद्गदया गिरा।
सर्वबन्धुर्जगद्बन्धोरारेभे स्तुतिमुत्तमाम्।।८।।

सर्वबन्धुरुवाच-

हिरण्याक्षहन्तर्भवापारवारांनिधेस्तारणोपायभूताङ्घ्रिपद्म।
रमेश प्रभेशक्षपेशाक्षिभूत प्रभो हे नमस्ते नमस्ते नमस्ते।।९।।

अचिन्त्यस्वरूपं प्रजानाथयोने सुदेवादिभिर्नूत[1]पादारविन्द।
लसद्दन्तकुन्तप्रभिन्नारिवक्षः प्रभो हे नमस्ते नमस्ते नमस्ते।।१०।।

मुरारे बलारे अघारे सुराग्प्रिकम्पप्रकर्त्तः प्रजेश सुनेतः।
प्रपन्नाखिलानन्दरूपप्रकर्ष प्रभो हे नमस्ते नमस्ते नमस्ते।।११।।

निराकार सानन्दनन्दस्य गेहे हि कंसप्रणाशप्रकर्त्तः सुरेश।
सुरानेकवृन्दप्रसेव्याङ्घ्रिपीठ प्रभो हे नमस्ते नमस्ते नमस्ते।।१२।।

प्रचण्डारिमुण्डप्रभञ्जप्रकर्तर्निमग्नामधः क्ष्मां बिभर्त्तः स्वदन्ते।
जगत्पालनानेकरूपं बिभर्त्तः प्रभो हे नमस्ते नमस्ते नमस्ते।।१३।।

अथो मां हरे पाहि वारांनिधेस्त्वं रुषा क्रोधकामादिनक्रैः प्रभुक्तम्।
क्षुत्तृष्णादिवैचित्र्य वीचीप्रकल्पात्प्रभो हे नमस्ते नमस्ते नमस्ते।।१४।।

स्कन्द उवाच-

इति स्तुतो हि भगवान् क्रोडरूपी रमापतिः।
प्रसन्नस्त्वब्रवीद्वाक्यं सर्वबंधुं तपःस्थितम्।।१५।।

१. नीत

हे महाभाग ! इस प्रकार समाधिस्थ हुये उसको एक हजार वर्ष व्यतीत हो गये। तब वराहरूपधारी विष्णु आविर्भूत हुये।।६।।

उन्होंने शंख, चक्र, गदा, पद्म और वनमाला के आभूषण धारण कर रखे थे। दान्तों के आगे भूमि शोभायमान थी। वे हिरण्याक्ष का मर्दन करने वाले थे।।७।।

वराहरूपधारी देव को देख कर सर्वबन्धु ने जगत् के बन्धु विष्णु की गद्गद वाणी में उत्तम स्तुति आरम्भ कर दी।।८।।

सर्वबन्धु ने कहा-

हे हिरण्याक्ष का वध करने वाले, संसाररूपी अपार समुद्र को पार करने के उपायभूत चरणयुगल वाले, लक्ष्मी के स्वामी, सूर्य और चन्द्रमारूपी आंखों वाले, हे प्रभो तुमको नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है।।९।।

जिसके रूप का चिन्तन नहीं किया जा सकता, जो ब्रह्मा को उत्पन्न करने वाला है, इन्द्र आदि उत्तम देवता जिसके चरण कमलों में प्रणाम करते हैं, शोभायमान दान्तरूप भाले से जिसने शत्रु हिरण्याक्ष का वक्ष विदीर्ण कर दिया है, ऐसे हे प्रभो ! तुमको नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है।।१०।।

मुर नामक दैत्य का वध करने वाले, बल दैत्य का विनाश करने वाले, पापों को नष्ट करने वाले, दानवों को प्रकम्पित करने वाले, प्रजा के स्वामी, उत्तम नेता, प्राप्त हुये सम्पूर्ण आनन्द के रूप को उन्नत करने वाले हे प्रभो ! तुमको नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है।।११।।

जिसका कोई आकार नहीं है, तो भी नन्द के घर में सानन्द रह कर कंस का विनाश करने वाले, देवताओं के स्वामी, जिसके पाद पीठ की देवताओं के अनेक समूह भी सेवा करते हैं, ऐसे हे प्रभो ! तुमको नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है।।१२।।

प्रचण्ड शत्रुओं के सिरों को तोड़ देने वाले, नीचे डूबी हुई धरती को अपने दान्त में धारण करने वाले, जगत् का पालन करने के लिये अनेक रूपों को धारण करने वाले हे प्रभो ! तुमको नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है।।१३।।

क्रोध, काम आदि मगरमच्छों द्वारा क्रोध से खाये जाते हुये मेरी आप भूख-प्यास आदि विचित्र लहरों से बने हुये समुद्र से रक्षा करें। हे प्रभो ! तुमको नमस्कार है,नमस्कार है,नमस्कार है।।१४।।

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार स्तुति किये गये भगवान् वराहरूपधारी विष्णु प्रसन्न हो गये। वे तपस्या में स्थित सुबन्धु से बोले।।१५।।

श्रीभगवानुवाच-

सर्वबन्धो द्विजश्रेष्ठ वरं वरय सुव्रत।
न हि ते दुर्लभं किञ्चित्प्रसन्ने मयि भूसुर।।१६।।

सर्वबन्धुरुवाच-

भगवन् यदि वरदोऽसि त्वं त्रैलोक्यनायक।
वरद्वयं प्रब्रुवेऽहं यदि वै मयि ते दया।
वरेणैकेन भगवन्नत्र तिष्ठ मया सह।।१७।।

नित्यं परोपकाराय प्रीतये मम नायक।
द्वितीयेन वरेणाशु मम जन्मनि जन्मनि।।१८।।

भक्तिस्ते सततं विष्णो भूयात्पातकशान्तये।
न कामे न च लोभे न विषयेषु तथैव च।
निन्दायां यस्य कस्याऽपि मतिर्मे नाऽस्तु माधव।।१९।।

श्रीभगवानुवाच-

इदं तीर्थं महापुण्यं वर्त्तते भक्तनायक।
अस्मिंस्तीर्थे वसाम्येव सदैव हि महामुने।।२०।।

तथापि भविता नाम एतत्तीर्थस्य पुण्यकम्।
शिलारूपेण गङ्गायां करिष्यामि निवासकम्।
दर्शनात्स्पर्शनाद्ध्यानात्तथा नामप्रकीर्तनात्।।२२।।

पूजनाद् गन्धपुष्पाद्यैर्नश्यन्ति दुरितानि वै।
अस्मिन्कुण्डे नरः स्नात्वा मम सायुज्यमाप्नुयात्।।२३।।

तीर्थेऽस्मिन् प्रवरे पुण्ये पितॄन्सन्तर्प्य भक्तितः।
सहस्रवर्षपर्यन्तं श्राद्धस्य फलमाप्नुयात्।।२४।।

श्रीभगवान् ने कहा-

उत्तम व्रत को पालने वाले द्विजश्रेष्ठ सुबन्धो ! वर मांग लो। हे ब्राह्मण ! मेरे प्रसन्न होने पर तुम्हारे लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है।।१६।।

सर्वबन्धु ने कहा-

हे तीनों लोकों के नायक भगवन् ! यदि आप मुझको वर दे रहे हैं और यदि आपकी मेरे प्रति दया है तो मैं दो वर मांगता हूं। एक वर के द्वारा तो मैं यह मांगता हूं कि आप यहां मेरे साथ रहें।।१७।।

हे सबके नायक ! यहां मेरी प्रसन्नता के लिये और परोपकार के लिये रहें। दूसरे वर से मैं यह मांगता हूं कि शीघ्र ही मेरी प्रत्येक जन्म में.......।।१८।।

हे विष्णो ! पापों को शान्त करने के लिये तुम्हारे प्रति भक्ति रहे। हे माधव ! न तो काम के प्रति, न लोभ के प्रति, न विषयों के प्रति और नाहीं जिस किसी की निन्दा के प्रति मेरी बुद्धि होवे।।१९।।

श्रीभगवान् ने कहा-

हे भक्तनायक ! यह तीर्थ महापुण्यशाली है। हे महामुने ! मैं इस तीर्थ में सदा ही निवास करता हूं।।२०।।

तो भी इस पुण्यतीर्थ का नाम वाराह होगा। यह सब पापों को नष्ट करने वाला और स्नान करने से मुक्ति देने वाला होगा।।२१।।

मैं शिला के रूप में गङ्गा में निवास करूंगा। इसके दर्शन से, स्पर्श से, ध्यान से और नाम का गायन करने से पाप नष्ट होंगे।।२२।।

गन्ध पुष्पादि द्वारा पूजन करने से पाप निश्चय से नष्ट होते हैं। इस कुण्ड में स्नान करके मनुष्य मेरे सायुज्य को प्राप्त कर सकता है।।२३।।

इस पुण्यशाली श्रेष्ठ तीर्थ में भक्तिपूर्वक पितरों को सन्तृप्त करके मनुष्य हजार वर्ष तक की अवधि के श्राद्ध के फल को प्राप्त करता है।।२४।।

वाराहे तीर्थनाथे वै कृतं तत्सर्वमक्षयम्।
महापातकिनोऽप्यत्र स्नात्वा शुद्धिमवाप्नुयु:।।२५।।

त्वमप्येवं महाभाग कियत्कालं वसाऽत्र वै।
सर्वसङ्गविहीनश्च नित्यं मां परिचिन्तयन्।
निष्कर्मक: समाधिस्थ अन्ते सायुज्यभाग्भव।।२६।।

स्कन्द उवाच-

इत्याभाष्य क्रोडरूपी रमानाथो धरासुरम्।
तस्थौ शिलास्वरूपेण गङ्गामध्ये जनार्दन:।।२७।।

उभयो: पार्श्वयो: स्वस्य स्थापयित्वा सदाशिवम्।
सर्वबन्धुश्च धर्मात्मा तत्रैव स्थितवाञ्छिव:।।२८।।

सूत उवाच-

श्रुत्वाऽथ नारद: स्कन्दाद्वाराहस्य च विस्तरम्।
पुन: पप्रच्छ धर्मात्मा स्कन्दं वै ऋषिसत्तम।।२९।।

नारद उवाच-

भगवन्सर्वधर्मज्ञ कार्त्तिकेय महाबल।
कियत्प्रमाणा हि शिला कथं तस्याश्च पूजनम्।।३०।।

को विधि: कानि द्रव्याणि विष्णुप्रीतिकराणि च।
केन मन्त्रेण हे देव वराहपूजनं भवेत्।।३१।।

कुण्डे च केन मन्त्रेण स्नातव्यं शिवपुत्रक।
यत्र नारायण: साक्षात्स्वयं वसति पापहा।।३२।।

स्कन्द उवाच-

शृणु नारद वक्ष्यामि यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽनघ।
श्री वराहशिलायाश्च प्रमाणं कथ्यतेऽधुना।।३३।।

वाराह नामक तीर्थराज में जो भी कार्य किया जाता है, वह अविनश्वर है। यहां स्नान करके महापापी भी शुद्ध हो जाते हैं।।२५।।

हे महाभाग! तुम भी कितने ही समय तक यहां निवास करते रहो। सब आसक्तियों से रहित होकर मेरा चिन्तन करते रहो। सब कर्मों को मेरे प्रति संन्यस्त करके मेरा विचार करते रहो। अन्त में निष्कर्म समाधि में स्थित होकर मेरे सायुज्य को प्राप्त हो।।२६।।

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार वराहरूपधारी लक्ष्मीपति जनार्दन ब्राह्मण से यह कह कर गङ्गा के मध्य में शिला के रूप में स्थित हो गये।।२७।।

वह धर्मात्मा कल्याणकारी सर्वबन्धु भी अपने दोनों पार्श्वों में सदाशिव की स्थापना करके वहीं स्थित हो गया।।२८।।

सूत ने कहा-

स्कन्द से वाराह तीर्थ के माहात्म्य को विस्तार से सुन कर ऋषिश्रेष्ठ नारद ने स्कन्द से पुनः पूछा।।२९।।

नारद ने कहा-

सब धर्मों को जानने वाले महाबली भगवन् कार्तिकेय! वह शिला किस माप की है और उसका पूजन कैसे किया जाता है।।३०।।

कौन सी विधि है ? कौन से द्रव्य विष्णु को प्रसन्न करने वाले हैं। हे देव! वराह का पूजन किस मन्त्र से होता है।।३१।।

हे शिव के पुत्र स्कन्द! जहां पापों को नष्ट करने वाले नारायण साक्षात् रूप से स्वयं निवास करते हैं, उस कुण्ड में किस मन्त्र के साथ स्नान करना चाहिये।।३२।।

स्कन्द ने कहा-

हे निष्पाप नारद! तुमने जो पूछा है, उसको मैं कहूंगा। अब श्रीवराहशिला का नाप कहा जाता है।।३३।।

केन वा शक्यते वक्तुं श्रीविष्णोरन्तरात्मनः।
विस्तरं च प्रमाणं चाऽनन्तस्य परमात्मनः।।३४

गव्यूतिमात्रतीर्थात्तु ह्यधो वै विस्तरा मता।
मध्ये तथा महाभाग गुहा वै वर्तते बुध।।३५।।

सर्वबन्धुश्च धर्मात्मा तत्र तिष्ठति सर्वदा।
स्मरन्वै मनसा विष्णुं नित्यं विष्णुपरायणः।।३६।।

गुहाद्वारं महाभाग दशरथागमध्यतः।
तेन मार्गेण गच्छन्ति शिष्यास्तस्य महात्मनः।।३७।।

वत्सरे वत्सरे चैव दर्शनं कर्तुमुद्यताः।
देवा अपि महाविष्णोर्द्वादश्यां मुनिवन्दित।।३८।।

अहो भाग्यमहो भाग्यं पश्यतां पुण्यकर्मणाम्।
शिलां श्रीक्रोडरूपस्य श्रीविष्णोः परमात्मनः।।३९।
शिलायाः पूजनं वक्ष्ये तच्छृणुष्व महामते।
यत्कृत्वा मानुषस्येह पुनर्जन्म न विद्यते।।४०।।

शिलारूपिन्महाक्रोड जगत्स्थित्यन्तकारक।
पाद्यं गृहाण भगवन्नतः पापं दहस्व मे।।४१।।

नारायण दयासिन्धो शङ्खचक्रगदाधर।
आचमनीयं मया दत्तं गृहाण सुरवन्दित।।४२।।

मधुसूदन देवेश हिरण्याक्षवधे रत।
दन्ताग्रविलसद्भूमे गृहाणार्घ्यं [1]स्थिरो भव।।४३।।

सर्वस्वरूप भगवन्भक्तद्वेषिभुजङ्गम।
स्नानीयं ते मया दत्तं गृहाण वरदो भव।।४४।।

मुरारे वासुदेवेश नारायण कलानिधे।
गन्धं गृहाण देवेश सन्तुष्टो भव सर्वदा।।४५।।

१. वरदो

अथवा अनन्त, परमात्मा श्रीविष्णु के अन्तरात्मा के विस्तार और प्रमाण को कौन कह सकता है।।३४।।

उस शिला का विस्तार तीर्थ से एक गव्यूति (दो कोस) दूरी तक नीचे की ओर हुआ है। हे महाभाग विद्वान् नारद! उसके मध्य भाग में गुफा है।।३५।।

धर्मात्मा सर्वबन्धु सदा वहां रहता है। वह विष्णु में लग कर मन से नित्य उनका स्मरण करता है।।३६।।

हे महाभाग! दशरथ पर्वत के मध्य भाग से गुफा का द्वार है। उस मार्ग से उस महात्मा के शिष्य आते हैं।।३७।।

वे प्रत्येक वर्ष दर्शन करने के लिये उद्यत होते हैं। हे मुनियों से वन्दनीय नारद! देवता भी महाविष्णु की द्वादशी तिथि में दर्शन के लिये उद्यत होते हैं।।३८।।

श्रीवराहरूप श्रीविष्णु परमात्मा की शिला का दर्शन करने वाले पुण्यशालियों का भाग्य धन्य है, भाग्य धन्य है।।३९।।

हे महामते! नारद! अब मैं शिला के पूजन की विधि कहूंगा, उसको सुनो। इस लोक में इस पूजन को करके मनुष्य का पुनर्जन्म नहीं होता।।४०।।

जगत् की रचना, पालन और विनाश करने वाले हे शिला रूपी महावराह! पाद्य का ग्रहण करो। हे भगवन्! इसलिये मेरे पापों को जला दो।।४१।।

शंख, चक्र और गदा को धारण करने वाले और देवताओं द्वारा वन्दनीय हे दया के समुद्र नारायण! मेरे द्वारा दिये गये आचमनीय को ग्रहण करो।।४२।।

हिरण्याक्ष का वध करने वाले और दान्तों के आगे भूमि को शोभित करने वाले हे मधुसूदन देवेश! अर्घ्य ग्रहण करो। स्थिर हो जाओ।।४३।।

हे सर्वस्वरूप, भक्तों से द्वेष करने वालो के प्रति सर्परूप भगवन्! मेरे द्वारा दिये गये स्नानीय को ग्रहण करो। वर दो।।४४।।

हे वासुदेव, मुरारे, नारायण, कलानिधे, देवेश गन्ध को ग्रहण करो। मुझसे सदा प्रसन्न रहो।।४५।।

परमात्मन् परब्रह्म रमानायक कंसहन्।
गरुडध्वज सीतेश अर्पिता अक्षता मया।।४६।।

मया हृतानि पुष्पाणि युतानि तुलसीदलैः।
अर्पितानि सुगन्धीनि गृहाण वरदो भव।।४७।।

जनार्दन हृषीकेश बृहत्तुण्ड गदाधर।
धूपं गृहाण देवेश जटागुग्गुलुसंयुतम्।।४८।।

शुभवर्तिसमायुक्तं कर्पूरशुभवासितम्।
दीपं गृहाण देवेश त्रिविक्रम नमोऽस्तु ते।।४९।।

नैवेद्यं गृह्यतां देव नारायण कलानिधे।
संसारदुःखसन्तप्तं मां रक्ष शरणागतम्।।५०।।

दामोदर दयासिन्धो शरणागतपालक।
मयाऽर्पितं चक्रपाणे गृहाण त्वमुपायनम्।।५१।।

स्कन्द उवाच-

इति वै पूजनं कृत्वा अनेन विधिना मुने।
मन्त्रस्य प्रजपं कुर्याद्वाराहस्य द्विजर्षभ।।५२।।

जपार्पणं ततः कृत्वा वाराहस्य शुभानि च।
नामानि पापहन्तॄणि पठितव्यानि मानवैः।।५३।।

नारद उवाच-

कानि कानि च नामानि पठितव्यानि वै गुह।
शंस मे पार्वतीपुत्र भक्तोऽस्मि तव सुव्रत।।५४।।

स्कन्द उवाच-

शृणुष्वैकमना विप्र नामानि क्रोडरूपिणः।
प्रधानानि मुनिश्रेष्ठ यैस्तु तुष्यति माधवः।।५५।।

हे परमात्मन्, परब्रह्म, रमापति, कंसहन्ता, गरुडध्वज, सीतापति ! मैंने अक्षत अर्पित किये हैं।।४६।।

मैंने तुलसी दल से युक्त सुगन्धित पुष्प लाकर अर्पित किये हैं, इनको ग्रहण करो। वर दो।।४७।।

हे जनार्दन, हृषीकेश, बृहत्तुंड, गदाधर, देवेश ! जटामांसी और गूगल से युक्त धूप को ग्रहण करो।।४८।।

हे देवेश ! शुभ बत्ती से युक्त और कर्पूर से सुगन्धित दीपक को ग्रहण करो। हे त्रिविक्रम ! तुमको नमस्कार है।।४९।।

हे नारायण कलानिधे देव ! नैवेद्य को ग्रहण करो। संसार के दु:खों से सन्तप्त शरण में आये हुये मेरी रक्षा करो।।५०।।

हे दामोदर, दयासिन्धो, शरणागतों का पालन करने वाले, चक्रपाणे ! तुम मेरे द्वारा अर्पित किये गये उपायन को ग्रहण करो।।५१।।

स्कन्द ने कहा-

हे द्विजश्रेष्ठ मुने ! इस प्रकार इस विधि से पूजन करके वराहरूप विष्णु के मन्त्र का जाप करे।।५२।।

मन्त्र का जप करके तदनन्तर मनुष्यों को चाहिये कि वराह भगवान् के शुभ एवं पापविनाशक नामों का पाठ करें।।५३।।

नारद ने कहा-

हे पार्वती के पुत्र स्कन्द ! वराह भगवान् के किन किन नामों का पाठ करना चाहिये, यह मुझको बताओ। हे सुव्रत ! मैं तुम्हारा भक्त हूँ।।५४।।

स्कन्द ने कहा-

हे मुनिश्रेष्ठ विप्र ! वराहरूपी विष्णु के उन प्रधान नामों को एकाग्र मन होकर सुनो, जिनके द्वारा माधव प्रसन्न होते हैं।।५५।।

वराहश्च बृहत्तुण्डो बृहद्दन्तो महाबलः।
सर्वलोकप्रियः कृष्णो हिरण्याक्षनिषूदनः।।५६।।

रसातलगतायास्तु पृथ्व्या उद्धारकः प्रभुः।
वेदप्रियो वेदवादी वेदाङ्गो वेदभावनः।।५७।।

यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा यजभुग्यज्ञनायकः।
भक्तप्रियो भक्तिवश्यः श्यामाङ्गो लोहिताननः।।५८।।

महातेजा निधिपतिः सर्वकृत्सर्वहृत्तथा।
नारायणो वासुदेवः सर्वदुष्टनिषूदनः।।५९।।

अष्टाविंशतिनामानि कथितानि तवाऽग्रतः।
वाराहाणि सुपुण्यानि विष्णुभक्तिकराणि च।।६०।।

यः पठेत्प्रातरुत्थाय विनिद्रो भक्तितत्परः।
अश्वमेघसहस्रस्य कृतस्य फलमाप्नुयात्।।६१।।

शिलाग्रे पठनादेव श्रवणाच्छ्रावणात्तथा।
यं यं कामयते कामं तं तं प्राप्नोति दुर्लभम्।।६२।।

मासमात्रेण यः कश्चिदनेन विधिना मुने।
पूजनं प्रकरोत्येव परां सिद्धिमवाप्नुयात्।।६३।।

इह चैव परां लक्ष्मीं प्रजाश्च प्राप्य नारद।
सुखंभोगं तु कृत्वा वै मृतो वैकुण्ठमाविशेत्।।६४।।

वाराहे तीर्थराजे तु स्नात्वाऽनन्तफलं लभेत्।
पितृन्त्सन्तर्प्य विधिवत् पितृभ्यो वरमाप्नुयात्।।६५।।

इति ते कथितं विप्र यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽनघ।
पुण्यं पवित्रमायुष्यं श्रवणात्पुण्यवर्द्धनम्।।६६।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे देवप्रयागमाहात्म्ये
षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।।

ये नाम हैं- वराह, बृहत्तुण्ड (बड़ी थूंथनी वाला), बृहद्दन्त (बड़े दान्तों वाला), महाबल, सर्वलोकप्रिय, कृष्ण, हिरण्याक्षनिषूदन (हिरयाक्ष का वध करने वाला)।।५६।।

रसातलगतायाः पृथ्व्या उद्धारक (पाताल में पहुंची पृथिवी का उद्धार करने वाला), प्रभु, वेदप्रिय, वेदवादी, वेदाङ्ग, वेदभावन (वेदों को उत्पन्न करने वाला)।।५७।।

यज्ञ, यज्ञपति, यज्वा (यज्ञ करने वाला), यज्ञभुक् (यज्ञों का भोग करने वाला), यज्ञनायक (यज्ञों का नेतृत्व करने वाला), भक्तप्रिय, भक्तवश्य (भक्तों के वश में रहने वाला), श्यामाङ्ग, लोहितानन (लाल मुखवाला)।।५८।।

महातेजा, निधिपति, सर्वकृत्, सर्वहृत्, नारायण, वासुदेव, सर्वदुष्टनिषूदन।।५९।।

मैंने तुम्हारे समक्ष २८ नाम वराह भगवान् के कहे हैं, जो उत्तम पुण्यशाली हैं और विष्णु में भक्ति उत्पन्न करने वाले हैं।।६०।।

जो व्यक्ति प्रातःसमय में उठ कर, निद्रा का त्याग करके, भक्ति से भर कर इन नामों का पाठ करता है, वह एक हजार अश्वमेध यज्ञों के फल को प्राप्त करता है।।६१।।

वाराह शिला के आगे इन नामों का पाठ करने से, सुनने से और सुनाने से मनुष्य जिस जिस वस्तु की कामना करता है, उस उस दुर्लभ भी पदार्थ को प्राप्त करता है।।६२।।

हे मुने ! जो कोई मनुष्य इस विधि से एक महीना भी पूजन करता है, वह परम सिद्धि को प्राप्त करता है।।६३।।

हे नारद ! वह मनुष्य इस लोक में प्रचुर लक्ष्मी को ओर सन्तानों को प्राप्त करके सुखों को प्राप्त करता है और मरने पर वैकुण्ठ लोक में प्रवेश करता है।।६४।।

वह मनुष्य तीर्थराज वाराह में स्नान करके अनन्त फल प्राप्त करता है और विधिपूर्वक पितरों को सन्तृप्त करके वर को प्राप्त करता है।।६५।।

हे निष्पाप ब्राह्मण नारद ! जो तुमने मुझसे पूछा था, वह मैंने तुमको कह दिया है। यह कथन पवित्र है, पुण्यशाली है, आयु को बढाने वाला है और सुनने से पुण्य की वृद्धि करता है।।६६।।

इस प्रकार स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में देवप्रयाग माहात्म्य वर्णन में १५६ वां अध्याय समाप्त हुआ।।

"सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः"

अत्रिवंशजमहानन्दस्य द्विजस्य स्वधर्मपरित्यक्तस्य यवन्या वेश्यया सङ्गतस्यात्यन्तदुःखकथनम्, तस्य दैववशात् सह यवन्या भारद्वाजमुन्युपदेशात् सूर्यकुण्डे स्नानमात्रत उत्तमदेहावाप्तिकथनम्, सूर्यकुण्डमाहात्म्यकथनम्

स्कन्द उवाच-

अतः परं महाभाग सौरकुण्डस्य विस्तरम्।
यदुक्तं दक्षिणे तीरे गङ्गाया अतिपुण्यदम्।।१।।

तस्योत्पत्तिं च माहात्म्यं शृणुष्वैकमनाः प्रिय।
त्वत्समो नाऽस्ति त्रैलोक्ये पुण्यात्मा भगवत्प्रियः।।२।।

पुरा सूर्यस्तपश्चक्रे तीर्थेऽस्मिन्प्रवरे मुने।
तेनाऽस्य तीर्थराजस्य नामाऽभूत्सूर्यतीर्थकम्।।३।।

अस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते।
प्राप्य चैव परामृद्धिमन्ते सूर्यपुरे वसेत्।।४।।

अस्य तीर्थस्य भाहात्म्याद्यथा प्राप परां गतिम्।
चाण्डालीसहितो विप्रो दुरात्मा दुष्टमानसः।।५।।

तच्छृणुष्वं महाप्राज्ञ प्रोच्यमानं मया मुने।
पुराऽत्रिवंशजो विप्रो वेदवेदाङ्गपारगः।
कृष्णानन्द इति ख्यातः सर्वशास्त्रविशारदः।।६।।

[1]तस्य पुत्रो बभूवाऽथ महानन्द इति स्मृतः।
मृते पितरि दुष्टेन महानन्देन नारद।।७।।

सर्वं त्यक्तं स्वस्य[2] कर्म भ्रष्टश्चाऽसौ बभूव ह।
द्रव्यं पित्रार्जितं तेन क्षयं नीतं दुरात्मना।।८।।

दुष्टकर्मणि मग्नोऽसौ सुकर्मपरिवर्जितः।
चकार दुष्टकर्माणि सन्ध्योपासनवर्जितः।।९।।

---

१. "तस्य..... नारद" पाठ सन्दिग्ध है २. स्वस

अध्याय - १५७

अत्रि के वंश में उत्पन्न महानन्द नाम के ब्राह्मण की अपने धर्म को छोड़ कर यवनी वेश्या के साथ सङ्गति, उसका अपने अत्यधिक दु:ख को कहना, भाग्यवश भारद्वाज मुनि के उपदेश से उसका यवनी के साथ सूर्यकुण्ड में स्नान और उसके प्रभाव से उत्तम देह की प्राप्ति का कथन, सूर्यकुण्ड के माहात्म्य का वर्णन

स्कन्द ने कहा-

इसके पश्चात्, हे महाभाग ! गङ्गा के दाहिने तट पर अति पुण्यों को देने वाले विस्तृत जिस सौर कुण्ड की बात मैंने कही है... ।।१।।

हे प्रिय ! उसकी उत्पत्ति और माहात्म्य के सम्बन्ध में एकाग्र मन होकर सुनो। तीनों लोकों में तुम्हारे समान पुण्यात्मा और भगवत्प्रिय नहीं है।।२।।

हे मुने ! प्राचीन समय में इस श्रेष्ठ तीर्थ में सूर्य ने तपस्या की थी, इससे इस तीर्थराज का नाम सूर्य तीर्थ हुआ।।३।।

इस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य सारे पापों से छूट जाता है और वह परम समृद्धि को प्राप्त करके अन्त में सूर्यलोक में निवास करता है।।४।।

इस तीर्थ के माहात्म्य से दुरात्मा और दुष्ट मन वाले ब्राह्मण ने चाण्डाली सहित जिस प्रकार परम गति को प्राप्त किया था।।५।।

हे महाबुद्धिमान् मुने ! मेरे द्वारा कहे जाते हुये उस वृत्तान्त को सुनो। पहले अत्रि के वंश में उत्पन्न एक ब्राह्मण वेद-वेदाङ्गों में पारङ्गत था। वह कृष्णानन्द नाम से प्रसिद्ध था और सब शास्त्रों में विशारद था।।६।।

उसका महानन्द नाम का पुत्र था। हे नारद ! पिता के मरने पर दुष्ट महानन्द ने .... ।।७।।

अपने सारे जातिगत कर्मों को छोड़ दिया और भ्रष्ट हो गया। उस दुष्ट ने पिता द्वारा उपार्जित धन को नष्ट कर दिया।।८।।

अच्छे कर्मों को छोड़ कर वह दुष्ट कर्मों में मग्न हो गया। सन्ध्योपासना को छोड़ कर दुष्ट कार्य करने लगा।।९।।

दुष्टैः सह चरन् विप्रश्चौरकर्मरतः सदा।
इत्येवं वर्तमानोऽसौ परित्यक्तश्च [1]ज्ञातिभिः।।१०।।

गतो देशान्तरे विप्रश्चोरयित्वा बृहद्वसु।
तत्र दृष्टा महाम्लेच्छी नर्तकी प्रमदोत्तमा।।११।।

तां दृष्ट्वा विह्वलाङ्गश्च गीतेन परिमोहितः।
यदा सा स्वगृहं प्राप्ता सोऽपि तत्र गतो मुने।।१२।।

तामुवाच महानन्दः कामबाणाभिपीडितः।।१३।।

महानन्द उवाच-

अहो सुन्दरि ते रूपं जातं वै केन कर्मणा।
का वा त्वं वद कल्याणि मनो हृत्वाऽऽगता मम।।१४।।

धनं गृहाण वामाक्षि सदा संशाधि मां प्रिये।
त्वया विना न जीवामि क्षणमात्रं दयां कुरु।।१५।।

स्कन्द उवाच-

इत्युक्ता यवनी तेन महानन्ददुरात्मना।
प्रत्युवाच ततः शान्तं धर्मार्थसहितं वचः।।१६।।

म्लेच्छ्युवाच-

भो भो द्विजवरश्रेष्ठ मैवं वक्तुमिहाऽर्हसि।
अहं तु यवनी नीचा त्वं वै ब्राह्मणसत्तमः।।१७।।

ब्राह्मणानामगम्याऽस्मि द्रष्टुं च द्विजसुन्दर।
अस्माकं यवनानां तु यूयं वै देवताः स्मृताः।।१८।।

अस्माकमपि यूयं वै अगम्या विधिना कृताः।
अगम्यागमनाद्विप्र नरकस्थानमाप्नुयात्।।१९।।

आयुर्वै क्षीयते यस्मात्तस्मात्तत्परिवर्जयेत्।
गच्छ त्वं स्वगृहं विप्र निजकर्मरतो भव।।२०।।

स्कन्द उवाच-

इति श्रुत्वा तु तद्वाक्यं धर्मार्थसहितं मुने।
विमनाः प्रत्युवाचेदं म्लेच्छीं तां द्विजनिन्दितः।।२१।।

---

१. बान्धवैः

सदा दुष्टों के साथ विचरण करते हुये वह चोरी का काम करने लगा। इस प्रकार का व्यवहार करने पर सम्बन्धियों ने उसका परित्याग कर दिया।।१०।।

बहुतसा धन चुरा कर वह ब्राह्मण दूसरे देश में चला गया। वहां उसने एक सुन्दर स्त्री नर्तकी को देखा, जो महाम्लेच्छी थी।।११।।

उसको देख कर उसके अङ्ग विह्वल हो गये और उसके गीत ने उसे मोहित कर लिया। हे मुने ! जब वह नर्तकी अपने घर गई तो वह भी वहां चला गया।।१२।।

काम के वाणों से अत्यधिक पीडित महानन्द ने उससे कहा।।१३।।

महानन्द ने कहा-

हे सुन्दरि ! अहो किस कर्म के कारण तुम्हारे अन्दर यह रूप हो गया है। हे कल्याणि ! बताओ कि तुम कौन हो, जो मेरे मन का हरण करके आ गई हो।।१४।।

हे सुन्दर आंखों वाली ! तुम धन ले लो। हे प्रिये ! तुम सदा मेरे साथ रहो। मैं तुम्हारे विना क्षण मात्र भी जीवित नहीं रह सकता। दया करो।।१५।।

स्कन्द ने कहा-

दुरात्मा महानन्द द्वारा इस प्रकार कहने पर उस यवनी ने तदनन्तर धर्म-अर्थ से युक्त शान्त वचनों में उत्तर दिया।।१६।।

म्लेच्छी ने कहा-

हे वरश्रेष्ठ ब्राह्मण ! तुम इस प्रकार मत कहो। मैं तो नीच यवनी हूं और तुम श्रेष्ठ ब्राह्मण हो।।१७।।

हे सुन्दर ब्राह्मण ! मैं ब्राह्मणों के देखने के लिये अगम्य हूं। हम यवनों के लिये तुम ब्राह्मण देवता समझे जाते हो।।१८।।

हमारे लिये विधाता ने तुमको भी अगम्य बनाया है। हे विप्र ! अगम्या के साथ गमन करने से नरक का स्थान प्राप्त होता है।।१९।।

इससे क्योंकि आयु क्षीण हो जाती है, इसलिये उस कार्य का परित्याग कर दो। हे विप्र ! अपने घर को जाओ और अपने कार्यों में लगों।।२०।।

स्कन्द ने कहा-

हे मुने ! उस नर्तकी के उस धर्म-अर्थ से युक्त वाक्य को सुनकर वह निन्दनीय ब्राह्मण उदास हो गया और उस म्लेच्छी से यह बोला।।२१।।

महानन्द उवाच-

मैवं ब्रूहि प्रिये कान्ते नाऽहं वेद्मि स्वकर्मकम्।
यदि नो मन्यसे वार्तां मरिष्यामि तवाऽग्रतः।।२२।।

त्यक्तोऽहं बान्धवैः कान्ते कुत्र यास्यामि सुन्दरि।
भ्रष्टो जातो दुराचारः पूर्वमेव दुरासदः।।२३।।

स्कन्द उवाच-

इत्युक्त्वा तेन विप्रेण पतितं पादयोर्मुने।
साऽपि म्लेच्छी पुनः प्राह हर्षयन्ती द्विजं द्विज।।२४।।

म्लेच्छ्युवाच-

भो भो मुनिवरश्रेष्ठ वने गच्छावहे ह्यथ।
अत्रत्या मम यवना आवयोर्दुःखदाः किल।
भविष्यन्ति ततो विप्र गच्छावो देशमन्यकम्।।२५।।

स्कन्द उवाच-

इत्याभाष्य द्विजं निन्द्यं विरराम महामते।
पादयोः पतितस्तस्या उत्तस्थौ हर्षतो द्विजः।।२६।।

जग्मतुर्यवनीविप्रौ वन्यमार्गेण नारद।
ततः कथञ्चिन्नगरे प्राप्तौ तौ दम्पती किल।।२७।।

कस्मिंश्चित्त्वथ काले तु धनं सर्वं क्षयं गतम्।
तत्र तेन च चौर्येण हृतं कस्याऽपि वै धनम्।।२८।।

धनं गृहीत्वा सर्वं हि ययौ देशान्तरं द्विजः।
तयोस्तु वसतोरेव कस्मिंश्चिन्नगरे मुने।।
द्वौ पुत्रौ द्वे च कन्ये च सम्बभूवतुराशु वै।।२९।।

एकस्मिन्समये तस्य पुत्रौ वै यममन्दिरे।
गतौ वै ते च कन्ये च गते तु मुनिवन्दित।।३०।।

ततो द्विजाधमः सो वै रुरोद बहुशो मुने।
गतवन्तावन्यदेशे वैराग्याविष्टमानसौ।।३१।।

महानन्द ने कहा-

हे प्रिये ! कान्ते ! ऐसा मत कहो। मैं अपने कर्म को नहीं जानता। यदि मेरी बात को नहीं मानोगी तो मैं तुम्हारे सामने मर जाऊंगा।।२२।।

हे कान्ते सुन्दरि ! बन्धुओं ने मेरा त्याग कर दिया है, मैं कहां जाऊंगा। मैं दुराचारी-भ्रष्ट हो गया हूं। पहले से ही वह कर्म मुझको दुष्प्राप्य है।।२३।।

स्कन्द ने कहा-

हे मुने ! इस प्रकार से कह कर ब्राह्मण उसके चरणों में गिर गया। वह यवनी भी ब्राह्मण को प्रसन्न करती हुई पुनः कहने लगी, हे ब्राह्मण...।।२४।।

यवनी ने कहा-

हे मुनिवर श्रेष्ठ ! अब हम दोनों वन में चलें। यहां रहने वाले मेरे यवन सम्बन्धी निश्चय से हम दोनों को दुःख देंगे। हे ब्राह्मण ! इसलिये दूसरे देश को चलते हैं।।२५।।

स्कन्द ने कहा-

हे महामते नारद ! इस प्रकार उस निन्दनीय ब्राह्मण से कह कर वह चुप हो गई। प्रसन्न होकर द्विज भी उसके पैरों पर से उठ खड़ा हुआ।।२६।।

हे नारद ! वे यवनी और विप्र वन के मार्ग से चल पड़े। तदनन्तर वे दोनों दम्पती निश्चय से किसी नगर में पहुंचे।।२७।।

अब कुछ समय पश्चात् वह सारा धन समाप्त हो गया। वहां उस ब्राह्मण ने किसी के धन को चुरा लिया।।२८।।

उस सब धन को लेकर वह ब्राह्मण दूसरे देश में गया। वे दोनों इस प्रकार किसी नगर में रहने लगे। वहां उनके दो पुत्र और दो कन्यायें शीघ्र उत्पन्न हो गये।।२९।।

हे मुनियों से वन्दनीय नारद ! एक समय उसके वे दोनों पुत्र और दोनों कन्यायें यमलोक चले गये।।३०।।

हे मुने ! तब वह नीच ब्राह्मण बहुत अधिक रोया। वे दोनों मन में वैराग्य को भर कर दूसरे देश में चले गये।।३१।।

तयोस्तु गच्छतोरेव आजगाम महामुनिः।
भारद्वाज इति ख्यातो वेदवेदाङ्गपारगः।।३२।।

तं दृष्ट्वा मुनिशार्दूलं तस्य वै पेततुः पदे।
ऊचतुश्च इदं वाक्यं भारद्वाजं महामुनिम्।।३३।।

तावूचतुः-

भो भो द्विजवरश्रेष्ठ गच्छन्तौ निरयार्णवे।
त्राहि त्राहि महानीचौ दयावन्तो हि साधवः।।३४।।

भारद्वाज उवाच-

कौ वा भवन्तौ भो नीचौ वैश्यौ वा ब्राह्मणात्मजौ।
क्षत्रियौ वाऽथ वा शूद्रौ गच्छतः केन कर्मणा।।३५।।

निरये कृमिसम्पूर्णे लभ्ये पापेन कर्मणा।
किं कृतं वै युवाभ्यां हि पापं कर्म च दम्पती।।३६।।

महानन्द उवाच-

अहं तु ब्राह्मणः पूर्वमभवं द्विजवन्दित।
अत्रिवंशसमुत्पन्नो ब्राह्मणाचारवर्जितः।।३७।।

ततोऽहं बान्धवैस्त्यक्तो गतो देशान्तरं मुने।
तत्रेयं यवनी दृष्टा मया सौन्दर्यगर्विता।।३८।।

तां दृष्ट्वा कामबाणौघैः पीडितो मदमोहितः।
अभवं द्विजशार्दूल ततो म्लेच्छ्यां वशङ्गतः।।३९।।

अस्यां म्लेच्छ्यां महाभाग जातौ द्वौ पुत्रकौ मम।
कन्ये द्वे रूपलावण्यवत्यौ वै मुनिनायक।।४०।।

ते सर्वे कर्मणा स्वस्य गता वै यममन्दिरे।
ततोऽहं दुःखसन्तप्तो म्लेच्छ्या वै अनया सह।।४१।।

आगतो मुनिशार्दूल स्वभाग्यात्पूर्वसञ्चितात्।
भवतो दर्शनं जातं गताः पातकराशयः।।४२।।

जब वे दोनों जा ही रहे थे तो वेद-वेदाङ्गों में पारङ्गत, भारद्वाज नाम के मुनि आ गये।।३२।।

उस मुनिश्रेष्ठ को देख कर वे उसके पैरों पर गिर पड़े और महामुनि भारद्वाज से यह वाक्य कहने लगे।।३३।।

वे दोनों बोले-

हे द्विजवर श्रेष्ठ ! हम दोनों नरक के समुद्र में जा रहे हैं। हम महानीचों की रक्षा करो, रक्षा करो। सज्जन लोग दयालु होते हैं।।३४।।

भारद्वाज ने कहा-

हे नीच मनुष्यो ! आप दोनों कौन हैं ? वैश्य हैं, ब्राह्मण पुत्र हैं, क्षत्रिय हैं अथवा शूद्र हैं ? आप किस कार्य से जाते हैं ?।।३५।।

कृमियों से भरा हुआ नरक तो पापकर्मों से मिलता है। हे दम्पती ! तुम दोनों ने कौनसा पापकर्म किया है।।३६।।

महानन्द ने कहा-

हे द्विजों से वन्दित मुने ! मैं पहले ब्राह्मण था। मैं अत्रि के वंश में उत्पन्न हुआ था। परन्तु मैंने ब्राह्मणों के आचरण को छोड़ दिया।।३७।।

हे मुने ! तदनन्तर बन्धुओं द्वारा त्यागा जाकर मैं दूसरे देश में चला गया। वहां मैंने सौन्दर्य का गर्व करने वाली इस यवनी को देखा।।३८।।

उसको देख कर मैं काम के बाणों के समूह से पीडित हो गया और मद से मोहित हो गया। हे मुनिश्रेष्ठ ! तदनन्तर यवनी के वश में हो गया।।३९।।

हे मुनिनायक ! महाभाग ! इस यवनी से मेरे दो पुत्र और दो रूपलावण्यवती कन्यायें हुईं।।४०।।

वे सब अपने कर्म के कारण यमलोक चले गये। तदनन्तर इस यवनी के साथ मैं निश्चय से दुःख से सन्तप्त हो गया।।४१।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! हमारे पूर्व संचित भाग्य से आप आ गये हैं। आपका दर्शन हो गया है और हमारे पापों की राशियां समाप्त हो गई हैं।।४२।।

भारद्वाज उवाच-

युवां महापातकिनौ भवथः पुरुषाधमौ।
गच्छतं देवतीर्थे हि सौरतीर्थमिति स्मृतम्।।४३।।

तत्र वै भास्करो देवो नित्यं वसति पाथसि।
स्नात्वा वै तत्र सलिले नश्यन्ति दुरितानि वै।।४४।।

तस्मात्त्वमपि म्लेच्छी च सौरकुण्डेऽतिपुण्यदे।
स्नात्वा वै विधिना विप्र मासमात्रेण निर्मलः।।४५।।

भविष्यसि महाभाग गच्छ तात यथासुखम्।
तदन्यन्नास्ति त्रैलोक्ये महापातकनाशनम्।।४६।।

स्कन्द उवाच-

निशम्येति वचस्तस्य भारद्वाजस्य धीमतः।
उवाच वचनं विप्र महानन्दो द्विजाधमः।।४७।।

महानन्द उवाच-

केन वै विधिना विप्र स्नाय्यं पातकशान्तये।
तद्वदस्व महाभाग दासोऽहं तव सुव्रत।।४८।।

भारद्वाज उवाच-

साधु पृष्टं त्वया विप्र सर्वभूतोपकारकम्।
येन वै विधिना स्नायात्तत्र वै तं वदामि ते।।४९।।

देवप्रयागके तीर्थे गत्वा तु नियतेन्द्रियः।
उपवासं ततः कृत्वा जागरं च तथैव च।।५०।।

ततः प्रभाते विमले गत्वा तीर्थाद् बहिर्द्विज।
शौचादिकं तु कृत्वा वै सूर्यकुण्डेऽतिनिर्मले।।५१।।

गत्वा गङ्गां नमस्कृत्य संस्तुत्येदमुदीरयन्।
गङ्गे त्वं सर्वपापघ्नी शिवलोकादिहागता।
पापं मे हर कल्याणि दासोऽस्मि तव जह्नुजे।।५२।।

त्वज्जले सर्वतीर्थानि त्वत्तरङ्गेषु देवताः।
त्वयि तिष्ठन्ति यज्ञाश्च सर्वकामफलप्रदे।।५३।।

भारद्वाज ने कहा-

तुम दोनों नीच पुरुष महापापी हो। देवप्रयाग तीर्थ में जाओ। वहां सौर तीर्थ है।।४३।।

वहां सूर्यदेव नित्य जल में निवास करते हैं। उस जल में स्नान करने से पाप निश्चय से नष्ट हो जाते हैं।।४४।।

इसलिये तुम भी और यह यवनी भी अतिपुण्यशाली सौर कुण्ड में एक मास तक विधिपूर्वक स्नान करें। हे विप्र! इससे तुम एक मास में निर्मल...।।४५।।

हो जाओगे। हे महाभाग तात! सुखपूर्वक जाओ। उससे अधिक महापापों का विनाश करने वाला तीर्थ त्रिलोकी में अन्यत्र नहीं है।।४६।।

स्कन्द ने कहा-

हे विप्र नारद! उस बुद्धिमान् भारद्वाज के इस वचन को सुन कर वह ब्राह्मणाधम महानन्द कहने लगा।।४७।।

महानन्द ने कहा-

हे विप्र! पापों की शान्ति के लिये किस विधि से स्नान करना चाहिये। हे महाभाग! इस बात को बताइये। हे सुव्रत! मैं तुम्हारा दास हूं।।४८।।

भारद्वाज ने कहा-

हे विप्र! सब प्राणियों का उपकार करने की बात को तुमने अच्छा पूछा है। जिस विधि से तुम वहां स्नान करोगे, वह मैं तुमसे कहता हूं।।४९।।

देवप्रयाग तीर्थ में जाकर, इन्द्रियों को नियन्त्रित करके, तदनन्तर उपवास करके और उसी प्रकार जागरण करके।।५०।।

हे द्विज! तदनन्तर निर्मल प्रातःकाल में तीर्थ से बाहर जाकर शौच आदि कृत्य करके, अति निर्मल सूर्यकुण्ड में...।।५१।।

जाकर गङ्गा को नमस्कार करके इस प्रकार उच्चारण करते हुये स्तुति करे-

हे गङ्गे! तुम सब पापों की विनाश करने वाली हो, शिवलोक से यहां आई हो। हे कल्याणि! मेरे पाप का हरण करो। हे जह्नुपुत्रि गङ्गे! मैं तुम्हारा दास हूं।।५२।।

सब कामनाओं का फल देने वाली हे गङ्गे! तुम्हारी तरङ्गों में सब तीर्थ हैं। तुम्हारी तरङ्गों में देवता हैं। तुम्हारे में यज्ञ प्रतिष्ठित हैं।।५३।।

तवाङ्के मुनयः सन्ति यावत्यः सिकतास्त्वयि।
नमो नमस्ते देवेशि सर्वकल्याणदायिनि।।५४।।

इति स्तुत्वा त्रिपथगां सर्वलोकैकपावनीम्।
तीर्थान्यावाह्य तत्रैव ह्यनुज्ञाप्य च भैरवम्।।५५।।

भूतापसर्पणं कृत्वा नमस्कुर्यात्तु क्षेत्रपम्।
देशकालौ ततः स्मृत्वा नमस्कृत्य च देवताः।।५६।।

यत्किञ्चिद्दुरितं जातमस्मिन्वै पूर्वजन्मनि।
ज्ञाताज्ञातं च यत्पापं तत्पापं नश्यतु क्षणात्।।५७।।

इत्युच्चार्य नरो भक्त्या स्नानं कुर्याद्विचक्षणः।
ततस्तीरं समागत्य कृत्वा सन्ध्यादिकाः क्रियाः।
सूर्यसूक्तं ततो जप्त्वा सौरं साम ततः परम्।।५८।।

अनेनैव विधानेन स्नानं वै प्रकरोति च।
इह भुक्त्वा नरो भोगान् सूर्यलोके वसेन्मृतः।।५९।।

स्कन्द उवाच-

इति श्रुत्वा तु तद्वाक्यं महानन्दो धरासुरः।
कृतकृत्यमिवाऽऽत्मानं मेने मुनिवरोत्तम।।६०।।

प्रदक्षिणं ततः कृत्वा भारद्वाजं महामुनिम्।
नमस्कृत्य ययौ तत्र प्रयागे देवशर्मणः।।६१।।

तत्र गत्वा मासमात्रमुक्तेन विधिना मुने।
निष्कल्मषोऽभवच्छुद्धः सपत्नीको धरासुरः।।६२।।

इह भोगान् वरान्प्राप्य ययौ सूर्यस्य मण्डले।
इति ते कथितो विप्र सूर्यकुण्डस्य विस्तरः।।६३।।

नारद उवाच-

केन वै कर्मणा स्कन्द दृष्टवान् मुनिसत्तमम्।
नष्टबुद्धिस्तु पापीयान् कथं मुनिवरोत्तमम्।।६४।।

स्कन्द उवाच-

एकदा गृहमासीनौ म्लेच्छीविप्रौ बभूवतुः।
तत्रागतोऽस्य क्षेत्रस्य वासी तु क्षुधयाऽर्दितः।।६५।।

जितने रेत के कण तुममें हैं, उतने मुनि तुम्हारे अङ्क में हैं। हे देवताओं की स्वामिनि ! सबका कल्याण करने वाली गङ्गे ! तुमको नमस्कार है, नमस्कार है ।।५४।।

इस प्रकार सब लोकों को पवित्र करने वाली गङ्गा की स्तुति करके वहीं तीर्थों का आवाहन करके और भैरव से अनुमति मांग कर... ।।५५।।

भूतों को भगाकर क्षेत्रपाल को नमस्कार करे। तदनन्तर देश-काल का स्मरण करके और देवताओं को नमस्कार करके.... ।।५६।।

इस जन्म में और पूर्वजन्म में निश्चय से जो जो दुष्ट आचरण किया है तथा जाने या अनजाने जो पाप किया है, वह पाप तत्क्षण नष्ट हो जावे।।५७।।

इस प्रकार उच्चारण करके बुद्धिमान् मनुष्य भक्तिपूर्वक स्नान करे। तदनन्तर तट पर आकर सन्ध्या आदि क्रियाओं को करके, तदनन्तर सूर्यसूक्त का जप करके उसके पश्चात् सूर्य सम्बन्धी साममन्त्र का पाठ करे।।५८।।

इस प्रकार के विधान द्वारा जो व्यक्ति स्नान करता है, वह मनुष्य इस लोक में भोगों को भोग करके मरने पर सूर्यलोक में निवास करता है।।५९।।

स्कन्द ने कहा-

पृथ्वी पर राक्षस रूप महानन्द ने मुनि के इस कथन को सुन कर, हे मुनियो में सर्वश्रेष्ठ नारद ! अपने आपको कृतकृत्य माना।।६०।।

तदनन्तर भारद्वाज महामुनि की प्रदक्षिणा करके और नमस्कार करके वह देवशर्मा के प्रयाग (देवप्रयाग) में गया।।६१।।

हे मुने ! वहां जाकर एक मास तक उक्त विधि से रह कर वह पृथिवी पर असुर रूप महानन्द अपनी पत्नी सहित पापरहित और शुद्ध हो गया।।६२।।

इस लोक में श्रेष्ठ भोगों को प्राप्त करके वह सूर्यलोक में चला गया। इस प्रकार हे विप्र नारद ! सूर्यकुण्ड का विस्तार से वर्णन कर दिया है।।६३।।

नारद ने कहा-

हे स्कन्द ! उस नष्ट बुद्धि वाले अतिशय पापी महानन्द ने अपने किस कर्म के कारण मुनियों में श्रेष्ठ भरद्वाज के दर्शन किये थे।।६४।।

स्कन्द ने कहा-

एक बार यवनी और विप्र घर में बैठे थे। उसी समय वहां इस देवप्रयाग क्षेत्र का वासी कोई व्यक्ति भूख से पीडित होकर वहां आया।।६५।।

तं दृष्ट्वा तु महीदेवं विमनस्कं महामुने।
प्रत्युवाच ततः प्रीतः को वा त्वं पुरुषर्षभ।।६६।।

प्रत्युवाच ततो विप्रः क्षुधया पीडितो ह्यहम्।
वक्तुं नोत्सहते मेऽद्य मनो वै पुरुषर्षभ।।६७।।

ततस्तेन तु विप्रेण यथेष्टं भोजनं प्रियम्।
दत्तं यद्याचितं तेन तृप्तोऽभूद् द्विजनन्दनः।।६८।।

ब्राह्मण उवाच-

धन्योऽसि त्वं महाबाहो तुष्टोऽस्मि तव सुव्रत।
अहं वै देवतीर्थेषु वसामि मनुजोत्तम।।६९।।

जात्या वै ब्राह्मणो नाम कुलचन्द्र इति स्मृतः।
तवाऽप्युद्धारकः कश्चिन्मिलिष्यति सदाशिवः।।७०।।

स्कन्द उवाच-

इति वै ह्याशिषं दत्त्वा गतो देवप्रयागके।
[1]अनेन कर्मणा विप्र मिलितो द्विजवन्दितः।।७१।।

भारद्वाजो मुनिश्रेष्ठो निराशी मोहवर्जितः।
तस्मान्नारद क्षुत्तृष्णापीडितानां महामते।।७२।।

दयां कुर्यात्तु दद्याच्च भोजनं तु यथारुचि।
सर्वेषां चैव दानानामन्नदानं विशिष्यते।।७३।।

इति ते कथितं सर्वं यद्यत्पृष्टं त्वया मुने।
सूर्यकुण्डस्य चोत्पत्तिं माहात्म्यं पुण्यवर्द्धनम्।।७४।।

पठनाच्छ्रवणाद्यस्य नरो भवति भास्करः।
श्लोकस्य श्लोकखण्डस्य तत्खण्डस्य तथैव च।।७५।।

सूत उवाच-

इत्युक्त्वा नारदं स्कन्दो विरराम महामतिः।
पुनः प्रोवाच गौरीजः पौष्पमालस्य विस्तरम्।।७६।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे देवप्रयागमाहात्म्ये सूर्यकुण्डोत्पत्तौ
महानन्दचरितं नाम सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।।

---

१. अनेन.... द्विजवन्दितः पाठ सन्दिग्ध है

हे महामुने ! उस ब्राह्मण को उदास देख कर, तदनन्तर प्रेम से उससे पूछा कि हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम कौन हो।।६६।।

तदनन्तर ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि मैं भूख से पीडित हूं। हे पुरुषश्रेष्ठ ! आज मेरा मन कहने के लिये उत्साहित नहीं हो रहा है।।६७।।

तदनन्तर उस ब्राह्मण महानन्द ने उसको इच्छानुसार प्रिय भोजन, जो उसने मांगा, दिया। उससे वह ब्राह्मणपुत्र तृप्त हो गया।।६८।।

ब्राह्मण ने कहा-

हे महाबाहो ! तुम धन्य हो। हे सुव्रत ! मैं तुमसे सन्तुष्ट हूं। हे मनुष्य श्रेष्ठ ! मैं निश्चय से देवतीर्थ में निवास करता हूं।।६९।।

मैं जाति से ब्राह्मण हूं और मेरा नाम कुलचन्द्र है। सदा कल्याण करने वाला तुम्हारा भी कोई उद्धारकर्ता कभी मिलेगा।।७०।।

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार आशीर्वाद देकर वह देवप्रयाग में चला गया। हे विप्र नारद ! उसके इस कर्म से उसको द्विजवन्दित भारद्वाज मिले।।७१।।

भारद्वाज मुनियों में श्रेष्ठ हैं, आशाओं को छोड़े हुये हैं और मोह से रहित हैं। हे महामते नारद ! इसलिये भूखे-प्यासे पीडित व्यक्तियों पर...।।७२।।

दया करे। उनको रुचि के अनुसार भोजन प्रदान करे। सभी दानों में अन्न का दान विशिष्ट होता है।।७३।।

हे मुने ! इस प्रकार जो तुमने पूछा था उसका, सूर्यकुण्ड की उत्पत्ति का और पुण्य-वर्धन माहात्म्य का कथन कर दिया है।।७४।।

इसके पढने से या सुनने से, अथवा एक श्लोक के, श्लोक के खण्ड के अथवा खण्ड के भी खण्ड के पढने-सुनने से मनुष्य सूर्य हो जाता है।।७५।।

सूत ने कहा-

इस प्रकार नारद से कह कर महामति स्कन्द चुप हो गये। पुनः स्कन्द ने पौष्यमाल तीर्थ का विस्तार से वर्णन किया।।७६।।

इस प्रकार स्कन्दपुराणान्तर्गत देवप्रयागमाहात्म्य में सूर्यकुण्ड की उत्पत्ति में महानन्दचरित नाम का १५७वां अध्याय पूरा हुआ।।

अष्टपञ्चाशदधिकशततमोध्यायः"

विश्वामित्रतपोभङ्गाय ब्रह्मवचनाद्देवैः प्रेषितायाः पुष्पमालाख्यकिन्नर्याः मकरी भवेति विश्वामित्रशापः, रामनिगलनोद्यतायाः रामहस्तेन मरणादतिदिव्यलोक-प्राप्तिः, तीर्थस्य पुष्पमालाभिधानं तन्माहात्म्यकथनञ्च

स्कन्द उवाच-

शृणुष्वावहितो भूत्वा मुने भक्तिमतां वर।
पौष्पमालं यदुक्तं ते मया पूर्वं मुनीश्वर।।१।।

तस्योत्पत्तिं च माहात्म्यं विस्तरेण वदामि ते।
पुष्पमालेति विख्याता यत्र सा किन्नरी वरा।।२।।

प्राप वै परमं लोकं यथा तत्तीर्थसेवनात्।
वसिष्ठासूयया पूर्वं विश्वामित्रो मुनीश्वरः।
जगाम तपसे विप्र [1]धृतक्रोधो महामते।।३।।

हिमवत्पर्वते रम्ये यत्र वै मानसो ह्रदः।
हंसचक्रवाकीर्णः पादपैरुपशोभितः।।४।।

लताभिः स्वर्णवर्णाभी रम्याभिश्च विभूषितः।
ततश्चक्रे तपस्तीव्रं क्रोधाविष्टो महाद्युतिः।।५।।

तस्य वै तपसा जातं सर्वेषां व्याकुलं मनः।
इन्द्राद्याः सकलाः देवाश्चिन्ताविष्टा बभूविरे।।६।।

सूर्याचन्द्रमसौ चैव स्थगितौ मुनिपुङ्गव।
जगद् वै क्षोभमापन्नं स्फुटिता धरणी तदा।।७।।

वायोरपि न सञ्चारः कुत्रचिद्वै हि नारद।
एवं जाते ततो देवा ब्रह्माणं शरणं ययुः।
स्तुतिमारेभिरे तस्य देवाः शक्रपुरोगमाः।।८।।

१. ध्वस्त

अध्याय - १५८

ब्रह्मा के कहने से देवताओं द्वारा विश्वामित्र का तप भङ्ग करने के लिये भेजी गई पुष्पमाला नाम की किन्नरी को विश्वामित्र द्वारा मकरी होने का शाप, राम को निगलने के लिये उद्यत उसकी राम के हाथ से मृत्यु और दिव्य लोक की प्राप्ति, इससे उस तीर्थ का नाम पुष्पमाला प्रसिद्ध होना, पुष्पमाला तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

स्कन्द ने कहा-

भक्तों में श्रेष्ठ मुने ! सावधानी से सुनो। हे मुनीश्वर ! मैंने जो पहले तुमसे पौष्पमाल तीर्थ के विषय में कहा था।।१।।

मैं पौष्पमाल तीर्थ की उत्पत्ति और माहात्म्य के विषय में तुमसे विस्तार से कहूंगा, जहां वह पुष्पमाला नाम की सुन्दर किन्नरी थी।।२।।

जिस तीर्थ का सेवन करने से वह परम लोक को प्राप्त हुई थी। हे महामते विप्र नारद ! वसिष्ठ मुनि के प्रति ईर्ष्या के कारण क्रोधी मुनीश्वर विश्वामित्र तप के लिये गये।।३।।

वे सुन्दर हिमालय पर्वत पर गये, जहां मानसरोवर है, हंसों और चक्रवाकों की ध्वनियां बिखरी रहती हैं और जो वृक्षों से सुशोभित है।।४।।

वह सुनहरी सुन्दर लताओं से सुशोभित है। तदनन्तर क्रोध से भरे महातेजस्वी विश्वामित्र तीव्र तप करने लगे।।५।।

उनकी तपस्या से सबका मन व्याकुल हो गया। इन्द्र आदि सभी देवता चिन्ताओं से भर गये।।६।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! चन्द्र और सूर्य म्लान हो गये। सारा संसार क्षुब्ध हो गया और तब पृथिवी फटने लगी।।७।।

हे नारद ! कहीं वायु भी संचरित नहीं होती थी। इस प्रकार होने पर देवता ब्रह्मा की शरण में गये। इन्द्र को आगे करके देवताओं ने उनकी स्तुति करना आरम्भ कर दिया।।८।।

देवा ऊचुः-

भो भो ब्रह्मन्नमस्तेऽस्तु शरणागतपालक।
सृष्टिकर्त्रे नमस्तुभ्यं सृष्टिहर्त्रे नमोनमः।।९।।

[1]मायोद्भव नमस्तेस्तु नमः कमलसम्भव।
हिरण्यबाहवे तुभ्यं दिशां च पतये नमः।
रोहिताय नमस्तुभ्यं नेदिष्ठाय नमोनमः।।१०।।
गोविन्दज नमस्तुभ्यं रक्ष रक्ष महामते।।११।।

स्कन्द उवाच-

इति प्रजापतिः स्तुत्या प्रसन्नोऽभूत्पितामहः।
उवाच वचनं प्रीत्या देवान् शक्रपुरोगमान्।।१२।।

श्रीब्रह्मोवाच-

भो देवा अत्र वै यूयं किमुद्दिश्याऽऽगताः शुभाः।
दुर्मनस इव दृश्यध्वे तद्वदन्तु हि निर्जराः।।१३।।

देवा ऊचुः-

शृणु ब्रह्मन्महाभाग यद् वृत्तं तपसा मुनेः।
विश्वामित्रस्य क्रूरस्य तद् वक्ष्यामस्तवाऽग्रतः।।१४।।

वयं तु त्रासमापन्नाः स्थगितौ चन्द्रभास्करौ।
उल्कापातास्तथा जाता दिशां दाहस्तथा विधे।।१५।।

वसुन्धरा दह्यते च तस्य वै तपसा मुनेः।
नाऽपि वायोश्च सञ्चारो लोकजीवनकारणम्।।१६।।

पुनः सर्वाणि भूतानि येन स्वस्थानि वै विधे।
भवन्तु तत्प्रजानाथ विचिन्तय महामते।।१७।।

ब्रह्मोवाच-

शृणुध्वं त्रिदशाः सर्वे धैर्य्यं कुरुत सुव्रताः।।
कियत्कालं महाभागा उपायं वो वदामि वै।।१८।।

---

१. मायाभव

देवताओं ने कहा-

शरणागतों का पालन करने वाले हे ब्रह्मा ! तुमको नमस्कार है। सृष्टि रचने वाले तुमको नमस्कार है। सृष्टि का विनाश करने वाले तुमको नमस्कार है।।९।।

माया को उत्पन्न करने वाले तुमको नमस्कार है, कमल से उत्पन्न तुमको नमस्कार है। दिशाओं के स्वामी हिरण्यबाहु तेरे लिये नमस्कार है। तुझ रोहित को नमस्कार है। समीप रहने वाले तुझको नमस्कार है।।१०।।

विष्णु से उत्पन्न होने वाले तुझको नमस्कार है। हे महामते ! रक्षा करो, रक्षा करो।।११।।

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार पितामह प्रजापति स्तुति से प्रसन्न हो गये। वे इन्द्र आदि देवताओं से प्रेम से बोले।।१२।।

श्री ब्रह्मा ने कहा-

हे शुभ देवताओ ! तुम यहां किस उद्देश्य से आये हो। उदास से दिखाई देते हो। तो हे देवताओ ! उस बात को कहो।।१३।।

देवताओं ने कहा-

हे महाभाग ब्रह्मन् ! क्रूर विश्वामित्र मुनि की तपस्या द्वारा जो हुआ है, उसको सुनो। तुम्हारे समक्ष उस बात को कहते हैं।।१४।।

हे विधे ! हम डर गये हैं। सूर्य और चन्द्रमा म्लान हो गये हैं। उल्कापात हो रहे हैं और दिशायें जल रही हैं।।१५।।

उस मुनि की तपस्या से पृथिवी जल रही है। लोगों को जीवन देने वाले वायु का संचार भी नहीं हो रहा।।१६।।

हे विधे ! पुनः सब भूत जिस विधि से स्वस्थ हो जावें, हे महामते प्रजानाथ ! उस बात का विचार करो।।१७।।

ब्रह्मा ने कहा-

हे सुव्रत देवताओ ! सुनो। सब धैर्य रखो। हे महाभागो ! कुछ समय में ही पूरे होने वाले उपाय को तुमको बताता हूं।।१८।।

पुष्पमालेति विख्याता किन्नरी भुवि वर्तते।
सुन्दराङ्गी सुदन्ती च पद्मपत्रायतेक्षणा।।१९।।

सुश्रेणी कुम्भकठिनौ स्तनौ वै विभ्रती शुभा।
कदलीस्तम्भसदृशे ऊरू तस्या महाद्युती।।२०।।

चन्द्रकोटिप्रतीकाशरूपा रतिरिवाऽपरा।
गायनेऽतीव कुशला दक्षा कामकलासु च।।२१।।

तत्र गच्छत भो देवा यत्र सा वर्तते शुभा।
विश्वामित्रस्य तपसो भङ्गं चैव करिष्यति।।२२।।

स्कन्द उवाच-

इति वाणीं प्रजायोने: श्रुत्वेन्द्राद्या: सुरास्तदा।
आगतास्तत्र वै धात्रा यत्र सा किन्नरी शुभा।।२३।।

तां दृष्टवन्तो विबुधा पुष्पमालां महामते।
बभूवुर्हर्षिता: सर्वे दृष्ट्वा तामूचिरे सुरा:।।२४।।

देवा ऊचु:-

भो: किन्नरि पुष्पमाले त्वां वयं शरणं गता:।
रक्ष नो रक्ष नो भद्रे दह्यमानांस्तपोऽग्निना।।२५।।

विश्वामित्रस्य महतो वसिष्ठपरिपन्थिन:।
विश्वामित्रस्य तपसि विघ्नमाचर सुव्रते।।२६।।

एष काम: सहायस्ते भविष्यति सुमध्यमे।
रक्ष रक्ष त्रिलोकं हि दह्यमानं तपोऽग्निना।।२७।।

पुष्पमालोवाच-

बिभेमि तस्य तपसा विश्वामित्रस्य धीमत:।
कथं वै तु मया तत्र कर्तव्यं विघ्नमुत्तमम्।।२८।।

स्कन्द उवाच-

इत्युक्त्वा पुष्पमाला तु चिन्तयन्ती महामते।
प्रत्युवाच तत: शीघ्रं देवानिन्द्रपुरोगमान्।।२९।।

पुष्पमाला नाम से प्रसिद्ध एक किन्नरी पृथिवी पर है। उसके अंग सुन्दर हैं। सुन्दर दान्त हैं और कमल पत्र के समान विशाल नेत्र हैं।।१९।।

वह शुभा किन्नरी सुन्दर श्रोणी को और घड़े के समान कठोर स्तनों को धारण करती है। कदली के स्तम्भ के समान उसकी जांघें महातेजस्वी हैं।।२०।।

चन्द्रमा की कला के समान उसका रूप है। वह मानों दूसरी रति है। वह गाने में अति कुशल है और काम-कलाओं में दक्ष है।।२१।।

हे देवताओ ! वहीं जाओ, जहां वह शुभा किन्नरी है। वह विश्वामित्र के तप को भङ्ग करेगी।।२२।।

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार सृष्टि-रचयिता ब्रह्मा की वाणी को सुन कर इन्द्र आदि देवता तब वहां आये, जहां विधाता ने वह शुभ किन्नरी बताई थी।।२३।।

हे महामते ! देवताओं ने उस पुष्पमाला को देखा। उसको देख कर वे सब प्रसन्न हो गये। देवता उससे कहने लगे।।२४।।

देवताओं ने कहा-

हे पुष्पमाले किन्नरि ! हम तुम्हारी शरण में आये हैं। हे भद्रे ! तपस्या की अग्नि से जलते हुये हमारी रक्षा करो रक्षा करो....।।२५।।

वसिष्ठ के शत्रु महान् विश्वामित्र की तपस्या से। हे सुव्रते ! विश्वामित्र की तपस्या में विघ्न डाल दो।।२६।।

हे सुमध्यमे ! यह कामदेव तुम्हारा सहायक होगा। तप की अग्नि से जलते हुये तीनों लोकों की रक्षा करो, रक्षा करो।।२७।।

पुष्पमाला ने कहा-

उस बुद्धिमान् विश्वामित्र की तपस्या से मैं डरती हूं। मुझे उसमें किस प्रकार उत्तम विघ्न डालना चाहिये।।२८।।

स्कन्द ने कहा-

हे महामते नारद ! इस प्रकार कह कर विचार करती हुई पुष्पमाला ने तदनन्तर शीघ्र ही इन्द्र आदि देवताओं को उत्तर दिया।।२९।।

पुष्पमालोवाच-

वरं मरणमेकस्याः सुखिनः सन्तु निर्जराः।
गच्छामि तस्य तपसि विघ्नं कर्तुं सुरोत्तमाः।।३०।।

देवा ऊचुः-

गच्छ सुन्दरि रक्षाया अस्माकं मृगनेत्रके।
अविघ्नमस्तु ते पन्थाः कार्यं साधय सुव्रते।।३१।।

स्कन्द उवाच-

इति श्रुत्वा वचस्तेषां जगाम सुरसुन्दरी।
मुनिर्यत्र तपस्तेपे विश्वामित्रो महामतिः।।३२।।

अप्सरोभिर्युता सा तु गायन्ती गानमुत्तमम्।
धारयन्ती शुभां वीणां सप्तस्वरविभूषिताम्।।३३।।

मूर्च्छनाभिस्तथा ग्रामैस्त्रिभिस्तालैर्लयैस्तथा।
कोकिलेव हि कूजन्ती विचचार वनान्तरे।।३४।।

एतस्मिन्नन्तरे कामः कृतवानृतुमुत्तमम्।
वसन्तमृतुराजं वै सर्वेषां कामवर्द्धनम्।।३५।।

पुष्पितानि वनान्यासन् कूजयन्ति स्म कोकिलाः।
भृङ्गाः परिरटन्ति स्म पुष्पेषु मधुलालसाः।।३६।।

सर्वाभिश्च कलाभिश्च विरराज कलानिधिः।
ववुर्वाताः सुगन्धाश्च शीता मन्दतराः स्थिताः।।३७।।

एवम्भूते वने तस्मिन् विश्वामित्रस्य धीमतः।
पुष्पमाला जगामाऽऽशु ददर्श मुनिसत्तमम्।।३८।।

राजमानं जटाभिश्च तप्यमानं महत्तपः।
भासमानं यथा सूर्यं तपस्त्रैलोक्यतापकम्।।३९।।

तद् दृष्ट्वा भयवित्रस्ता पुष्पमाला बभूव ह।
करे प्राणांस्तु विन्यस्य गता तन्निकटे मुनेः।।४०।।

कामोऽपि पुष्पधनुषि बाणं संयोज्य कौसुमम्।
ससर्ज तस्मिन्विप्रेन्द्र विश्वामित्रे तपःस्थिते।।४१।।

पुष्पमाला ने कहा-

एक का मरना अच्छा है। देवता सुखी हों। हे उत्तम देवताओ ! उसकी तपस्या में विघ्न डालने मैं जाती हूं। ।३०। ।

देवताओं ने कहा-

मृग के समान सुन्दर आंखों वाली हे सुन्दरि ! हमारी रक्षा के लिये जाओ। तुम्हारा मार्ग विघ्नरहित हो। हे सुव्रते ! कार्य को सिद्ध करो। ।३१। ।

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार उन देवताओं के वचन सुन कर वह देव सुन्दरी वहां चली गई, जहां महामति विश्वामित्र मुनि तपस्या कर रहे थे। ।३२। ।

अप्सराओं से युक्त होकर वह, सात स्वरों से विभूषित शुभ वीणा को धारण करती हुई उत्तम गाना गाने लगी। ।३३। ।

मूर्छनाओं (आरोह-अवरोह) से, ग्रामों से, तीन तालों से और लयों से बन्धा गाना गाने लगी और कोयल के समान कूजती हुई वन-वन में विचरने लगी। ।३४। ।

इसी बीच में कामदेव ने सबकी काम-भावना को बढाने वाले उत्तम ऋतुराज वसन्त ऋतु को उत्पन्न कर दिया। ।३५। ।

वन पुष्पित हो गये। कोयलें कूजने लगीं। मधु के लोभी भौंरे पुष्पों पर गुंजार करने लगे। ।३६। ।

चन्द्रमा सभी कलाओं से शोभित हो गये। सुगन्धित, शीतल, अति मन्द वायुयें बहने लगीं। ।३७। ।

वन के इस प्रकार का हो जाने पर जब कि वहां बुद्धिमान् विश्वामित्र स्थित थे, पुष्पमाला शीघ्र गई और मुनिश्रेष्ठ को देखा। ।३८। ।

वे जटाओं से विराजमान थे और महान् तप कर रहे थे। तीनों लोकों को तप्त करने वाले सूर्य के प्रकाश के समान चमक रहे थे। ।३९। ।

उनको देख कर पुष्पमाला भय से डर गई। प्राणों को हथेली पर रख कर वह उस मुनि के निकट गई। ।४०। ।

हे विप्रेन्द्र नारद ! कामदेव ने भी पुष्पों के धनुष पर फूलों के बाण को संयोजित करके तपस्या में स्थित उस विश्वामित्र पर छोड़ दिया। ।४१। ।

पुष्पमालाऽपि गायन्ती रूपलावण्यगर्विता।
पीनस्तनी नीलकेशा मोहयन्ती जगत्त्रयम्।।४२।।

गताऽतिनिकटे तस्य भयेन परिविह्वला।
विश्वामित्रोऽपि धर्मात्मा जहौ ध्यानं परात्मनः।।४३।।

कामबाणाभिसन्तप्तो ददर्शाऽग्रे स्त्रियं सुधीः।
तां दृष्टा मोहमापन्न उवाच मदविह्वलः।।४४।।

विश्वामित्र उवाच-

का वा त्वं वद कल्याणि केन वै प्रेषिताऽत्र वै।
शीघ्रं वद सुदुःशीले नोचेद् भस्म करोमि ते।।४५।।

स्कन्द उवाच-

इति तस्य वचः श्रुत्वा वेपमाना भयेन वै।
उवाच वचनं शीघ्रं विश्वामित्रं महामुनिम्।।४६।।

पुष्पमालोवाच-

अहं वै प्रेषिता देवैस्तपसो विघ्नहेतवे।
पुष्पमालेति नाम्ना वै ख्याताऽहं द्विजसत्तम।।४७।।

विश्वामित्र उवाच-

मकरी भव दुर्वृत्ते मच्छापात्पुष्पमालिके।
त्वया मे तपसो विघ्नं कृतं देवानुरोधतः।।४८।।

स्कन्द उवाच-

इति श्रुत्वा वचस्तस्य मुनेः परमदारुणम्।
संयोज्य च करावग्रे स्थित्वा चोक्तवती वचः।।४९।।

पुष्पमालोवाच-

विघ्नं कृतं महाभाग तपसस्ते मया विभो।
स्त्रीस्वभावादल्पबुद्ध्या पखेरणया विभो।।५०।।

इदानीं शरणं प्राप्ता भवन्तं शान्तचेतसम्।
नमो नमस्ते शतशः क्षमां कुरु महामते।।५१।।

मोटे स्तनों वाली, नीले केशों वाली, तीनों लोकों को मोहित करती हुई, रूप-लावण्य से गर्वित गाती हुई पुष्पमाला भी...... ।।४२।।

भय से अत्यधिक विह्वल होकर उनके अति समीप चली गई। धर्मात्मा विश्वामित्र ने भी परमात्मा के ध्यान को छोड़ दिया।।४३।।

कामदेव के बाण से अभिसन्तप्त होकर उस बुद्धिमान् मुनि विश्वामित्र ने सामने स्त्री को देखा। उसको देखकर मोह को प्राप्त करके मद से विह्वल होकर वे बोले।।४४।।

विश्वामित्र ने कहा-

हे कल्याणि ! कहो कि तुम कौन हो और किसने तुमको यहां भेजा है ? हे दुष्टे ! शीघ्र बोलो, नहीं तो तुमको भस्म करता हूं।।४५।।

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार उनके वचन को सुनकर निश्चय से भय से कांपती हुई वह विश्वामित्र महामुनि से शीघ्र यह वचन बोली।।४६।।

पुष्पमाला ने कहा-

मुझको देवताओं ने तपस्या में विघ्न डालने के लिये भेजा है। हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! मैं पुष्पमाला नाम से प्रसिद्ध हूं।।४७।।

विश्वामित्र ने कहा-

हे दुष्टे पुष्पमाले ! मेरे शाप से तुम मकरी हो जाओ। तुमने देवताओं के अनुरोध से मेरी तपस्या में विघ्न डाला है।।४८।।

स्कन्द ने कहा-

उस मुनि के परम कठोर इस वचन को सुन कर, हाथों को जोड़ कर, सामने खड़ी होकर उसने यह वचन कहा।।४९।।

पुष्पमाला ने कहा-

हे विभो मुने ! महाभाग ! मैंने तुम्हारी तपस्या में स्त्री स्वभाव के कारण, अल्प बुद्धि के कारण और दूसरों की प्रेरणा से विघ्न डाला है।।५०।।

अब मैं शान्त मन वाले आपकी शरण में आई हूं। आपको सैंकड़ों बार नमस्कार है, नमस्कार है। हे महामते ! क्षमा कीजिये।।५१।।

मम वै दह्यमानायाः शापाग्नेस्तव सुव्रत।
कदा मे शापकस्यान्तो भविष्यति वद प्रभो।।५२।।

स्कन्द उवाच-

इति तस्या वचः श्रुत्वा शान्तचेता बभूव ह।
मोहितो वचसा तस्या उवाच वचनं त्विदम्।।५३।।

विश्वामित्र उवाच[1]-

गच्छ देवप्रयागे तु स्थिता स्याः कतिचित्समाः।
त्रेतायुगे दाशरथी रामो लक्ष्मणसंयुतः।।५४।।

आयास्यति तदा तत्र दर्शनं प्राप्स्यसि प्रिये।
तदा ते शापमोक्षो वै भविता सुभगे ध्रुवम्।।५५।।

पुष्पमालोवाच-

कथं मया मुनिश्रेष्ठ ज्ञातव्यो राम आगतः।
नष्टबुद्ध्या तु दुर्योनौ मकर्या जलसंस्थया।।५६।।

विश्वामित्र उवाच-

तत्र देशे पुष्पमाले यत्र संस्थास्यसि ध्रुवम्।
तत्र रामो महाभागः स्नातुमायास्यति प्रभुः।।५७।।
यदा त्वं च रघुश्रेष्ठं मुखेन निगलिष्यसि।
तदा त्वां पुष्पमालां वै हनिष्यति नृपोत्तमः।।५८।।

रामं ज्ञात्वा महाभागे शापमोक्षमवाप्स्यसि।
पुनस्तथैव रूपं ते भविता पुष्पमालिके।।५९।।

एवं पुनर्महाभागे मा कृथा दुष्कृतं क्वचित्।
इति ते कथितं सर्वं शापस्यान्तो मया प्रिये।।६०।।

स्कन्द उवाच-

इत्युक्त्वा तां पुष्पमालां गतोऽन्यस्मिंस्थले मुनिः।
पुष्पमालाऽप्याजगाम क्षेत्रे देवप्रयागके।।६१।।

---

१. पाठ सन्दिग्ध है

हे सुव्रत प्रभो ! आपके शाप की अग्नि से जलते हुये मेरे शाप का अन्त कब होगा, इसे कहिये ।।५२।।

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार उसके वचन सुनकर विश्वामित्र का मन शान्त हो गया। उसके वचन से मोहित होकर वे यह वचन बोले ।।५३।।

विश्वामित्र ने कहा-

देवप्रयाग में जाओ और वहां कुछ वर्ष तक स्थित रहो। त्रेतायुग में लक्ष्मण सहित दशरथ पुत्र राम.... ।।५४।।

आयेंगे। हे प्रिये ! तब तुम उनके दर्शन पाओगी। हे सुभगे ! तब तुम्हारा निश्चय से शाप से छुटकारा होगा ।।५५।।

पुष्पमाला ने कहा-

हे मुनिश्रेष्ठ ! नष्ट बुद्धि वाली, दुष्ट मकरयोनि में स्थित और जल में रहती हुई मैं कैसे जानूंगी कि राम आये हैं ।।५६।।

विश्वामित्र ने कहा-

हे पुष्पमाले ! जिस स्थान पर तुम निवास करोगी, उस स्थान पर महाभाग प्रभु राम स्नान करने के लिये निश्चय से आयेंगे ।।५७।।

जब तुम उस रघु श्रेष्ठ को मुख से निगलोगी, तब वह नृपोत्तम निश्चय से तुम पुष्पमाला का वध करेंगे ।।५८।।

हे महाभागे ! राम को पहचान कर तुम्हारा शाप से छुटकारा हो जावेगा। हे पुष्पमाले! तुम्हारा पुनः वैसा ही रूप हो जायेगा ।।५९।।

हे महाभागे ! पुनः कभी इस प्रकार का दुष्कर्म मत करना। हे प्रिये ! इस प्रकार मैंने तुमसे शाप का अन्त कह दिया है ।।६०।।

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार पुष्पमाला से कह कर मुनि अन्य स्थान पर चले गये। पुष्पमाला भी देवप्रयाग क्षेत्र में आ गई ।।६१।।

मकरीरूपमास्थाय गङ्गायां प्रविवेश सा।
मर्त्यमांसादनपरा उवास कतिचित्समाः।।६२।।

अथ त्रेतायुगान्ते वै आगतौ रामलक्ष्मणौ।
देवप्रयागके क्षेत्रे यत्र सा पुष्पमालिका।।६३।।

तत्र स्नानार्थमुद्युक्तौ तौ दृष्ट्वा रामलक्ष्मणौ।
पीनावुच्चतरौ मर्त्यौ भोजनाय प्रकल्पितौ।।६४।।

अहो धन्यो विधाताऽस्ति सर्वभूतप्रपालकः।
अनयोर्मांसपिण्डेन तृप्तिर्मेऽद्य भविष्यति।।६५।।

स्कन्द उवाच-

इति तस्या वचः श्रुत्वा रामो नारायणः स्वयम्।
आश्चर्यं परमं लेभे लक्ष्मणं चाऽब्रवीद् वचः।।६६।।

श्रीराम उवाच-

भ्रातर्लक्ष्मण तिष्ठ त्वं तावत्तीरे हि सुव्रत।
यावत्स्नास्ये हि गङ्गायामित्युक्त्वा प्राविशज्जले।।६७।।

रामो राजीवनयनस्ततो नक्री करालिका।
यावद्रामं निगलति तावच्चिच्छेद तच्छिरः।।६८।।

निस्त्रिंशेन तु खड्गेन रामो दाशरथिर्नृपः।
ततः सा माकरं देहं तत्याज मकरी मुने।।६९।।

बभूव सुन्दरी रम्या सुन्दराङ्गी सुशोभना।
रूपलावण्यसंयुक्ता उच्चपीनपयोधरा।।७०।।

अग्रे दृष्टवती रामं सानुजं भक्तवत्सलम्।
धनुर्बाणासिधर्तारं किरीटेन विराजितम्।।७१।।

वनमालाधरं देवं कौस्तुभेन विभूषितम्।
पुष्पमाला तु भक्त्या वै रामं स्तोतुं प्रचक्रमे।।७२।।

पुष्पमालोवाच-

नमो नमस्ते त्रिगुणात्मकाय गुणैर्विहीनाय गुणाकराय।
अनेकदेवस्तुतपादपद्म ममाऽस्तु ते भक्तिततिर्नितान्तम्।।७३।।

मकरी के रूप को धारण करके वह गङ्गा में प्रवेश कर गई। मनुष्यों के मांस को खाती हुई वह कुछ वर्षों तक रहती रही।।६२।।

इसके बाद त्रेतायुग के अन्त भाग में राम और लक्ष्मण देवप्रयाग में उस क्षेत्र में आये, जहां वह पुष्पमाला थी।।६३।।

हे मुने ! वहां स्नान करने के लिये राम और लक्ष्मण को उद्यत देख कर वह मकरी प्रसन्न हो गई और तब कहने लगी।।६४।।

मोटे, ऊंचे दो मनुष्य भोजन के लिये बनाये हैं। सब प्राणियों का पालन करने वाला विधाता धन्य है। इनके मांस-पिण्ड से आज मेरी तृप्ति होगी।।६५।।

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार के उसके वचन को सुन कर स्वयं नारायण राम को परम आश्चर्य हुआ और उन्होंने लक्ष्मण से यह वचन कहा।।६६।।

श्रीराम ने कहा-

हे भाई सुव्रत लक्ष्मण ! तुम तब तक किनारे पर ठहरो, जब तक मैं गङ्गा में स्नान करता हूं। यह कह कर वे जल में प्रविष्ट हो गये।।६७।।

तदनन्तर वह भयानक मकरी राम को निगलने लगी, तभी राजीवलोचन राम ने उसका सिर काट दिया।।६८।।

. दशरथ पुत्र राजा राम ने तीव्र खड्ग से काट दिया। हे मुने ! तदनन्तर उस मकरी ने मकर के शरीर को छोड़ दिया।।६९।।

वह रमणीय, सुन्दर अंगों वाली, सुंशोभन, रूप-लावण्य से युक्त और ऊंचे-मोटें पयोधरों वाली सुन्दरी हो गई।।७०।।

उसने अपने सामने भक्त वत्सल राम को देखा, जो छोटे भाई के साथ थे, धनुष-बाण-खड्ग को धारण कर रहे थे और किरीट से सुशोभित थे।।७१।।

उन्होंने वनमाला धारण कर रखी थी और कौस्तुम मणि से विभूषित थे। पुष्पमाला ने भक्ति से राम की स्तुति करनी प्रारम्भ कर दी।।७२।।

पुष्पमाला ने कहा-

त्रिगुणात्मक, गुणों से रहित और गुणाकर आपके लिये नमस्कार है, नमस्कार है। अनेक देवता जिनके चरण-कमलों की स्तुति करते हैं, ऐसे हे प्रभो ! आपके प्रति मेरी नितान्त भक्ति विस्तृत हो।।७३।।

यथा घटेषु प्रतिबिम्बितोऽर्कः सन्दृश्यते सर्वजनैरनेकः।
तथा त्वमेकोऽपि स्वमायया हि प्रदृश्यसेऽनेकविधो मनुष्यैः।।७४।।

त्वमेव सृष्टिं कुरुषे विधातृरूपेण विष्णो करुणालयोऽसि।
त्वमेव चान्ते लयरूपकोऽसि बिभर्षि विश्वं सकलं त्वमेव।।७५।।

नमोऽस्तु ते नाथ सहस्रपादफुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र।
सहस्रधाम्ने च सहस्रबाहवे सहस्रशीर्षापुरुषाय वै नमः।।७६।।

त्वमेव कालः कलनात्मकस्तु त्वमेव वायुर्भवजीवहेतुः।
त्वमेव चन्द्रोऽसि महौषधीनां प्रपोषकः सर्वमयस्त्वमेकः।।७७।।

अन्यं न पश्यामि भवादृशं वै लोकत्रयेऽपि प्रभुरेक एव।
सर्वस्य विश्वस्य त्वमेकनाथो नतोऽस्मि ते राम परावरेश।।७८।।

नाऽहं विलज्जे भवतस्तुतौ हि न जानती त्वन्महिमानमेव।
ब्रह्मादयस्त्वां समन्विष्यमाणा न प्रापुरन्तं भवतो मुरारेः।।७९।।

न वेद्मि ते रूपमनन्तमाद्यं स्तुतिं न वै त्वत्पदयोर्हि जाने।
भवन्तु ते वै शतशः प्रणामाः भूयोऽपि ते नाथ मम प्रणामाः।।८०।।

स्कन्द उवाच-

इति स्तुतो वै स तया मुरारिरुवाच वाचं सुमनोहरां च।
सुपुष्पमालां मकरीप्रदेहे सञ्जातकायां नमितोन्नतांसाम्।।८१।।

श्रीराम उवाच-

गच्छ गच्छ च वै कान्ते मम मन्दिरमुत्तमम्।
इदं वै तीर्थराजं तु पौष्पमालेति नामकम्।
भविष्यति महापुण्यं सर्वभूतोपकारकम्।।८२।।

अत्र वै नरशार्दूला ये करिष्यन्ति किन्नरि।
स्नानं दानं जपं होमं तन्मम प्रीतिकारकम्।।८३।।

संवादमावयोर्ये तु पठिष्यन्ति हि मानवाः।
श्रोष्यन्ति श्रावयिष्यन्ति तेऽपि वैकुण्ठवासिनः।।८४।।

जिस प्रकार घटों में प्रतिबिम्बित एक सूर्य को अनेक जन अनेक रूप में देखते हैं, उसी प्रकार अपनी माया से तुम मनुष्यों को अनके प्रकार के दिखाई देते हो। ।७४।।

तुम ही विधाता के रूप में सृष्टि की रचना करते हो। हे विष्णो ! तुम करुणा के आलय हो। तुम ही प्रलयकाल में सबको विलीन करने वाले हो। तुम ही सम्पूर्ण विश्व का पालन करते हो। ।७५।।

सूर्य की किरणों से विकसित श्वेत कमल की विस्तृत पंखुड़ी के समान नेत्र वाले हे नाथ! तुमको नमस्कार है। सहस्त्रों धामों वाले, सहस्त्रों भुजाओं वाले और सहस्त्रों सिर वाले हे परम पुरुष! तुमको नमस्कार है। ।७६।।

समय की गणना करने वाले तुम्हीं काल हो। संसार के जीवन के हेतु तुम ही वायु हो। महान् ओषधियों को पुष्ट करने वाले तुम ही चन्द्रमा हो। तुम एक मात्र सर्वमय हो। ।७७।।

तुम्हारे जैसा मैं अन्य को नहीं देखती हूं। तुम तीनों लोकों में एक ही स्वामी हो। सम्पूर्ण विश्व के तुम एक नाथ हो। पर-अवर के स्वामी हे राम ! तुमको नमस्कार हे। ।७८।।

तुम्हारी स्तुति करने में मुझको लज्जा नहीं है। तुम्हारी महिमा को मैं नहीं जानती। तुम्हारा अन्वेषण करते हुये भी ब्रह्मा आदि ने आप मुरारि के अन्त को नहीं पाया। ।७९।।

मैं तुम्हारे अनन्त और आद्य रूप को नहीं जानती। मैं तुम्हारे चरणों की स्तुति करना नहीं जानती। तुमको सैंकड़ों प्रणाम हैं। हे नाथ पुनः भी मेरे प्रणाम हैं। ।८०।।

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार उसके द्वारा स्तुति किये गये मुरारि ने उस पुष्पमाला से सुन्दर मनोहर वाणी को कहा, जिसका शरीर मकरी के शरीर में से उत्पन्न हुआ था और जिसके कन्धे ऊंचे-झुके हुये थे। ।८१।।

श्रीराम ने कहा-

हे कान्ते ! तुम मेरे उत्तम लोक को जाओ, जाओ। यह महापुण्यशाली और सब प्राणियों का उपकार करने वाला तीर्थराज पौष्पमाल नाम से प्रसिद्ध होगा। ।८२।।

हे किन्नरि ! जो मनुष्यश्रेष्ठ यहां स्नान, दान, जप और होम करेगा, वह मुझको प्रसन्न करने वाला होगा। ।८३।।

जो मनुष्य हम दोनों के इस संवाद को पढेंगे, सुनेंगे और सुनायेंगे, वे भी वैकुण्ठ में निवास करेंगे। ।८४।।

शक्त्या भक्त्यापि वा येऽत्र तर्पयिष्यन्ति वै पितॄन्।
तेषां वै पितरः स्वर्गे जलानां कणसंख्यया।
तावद्वर्षसहस्राणि वसन्ति मदनुग्रहात्।।८५।।

स्कन्द उवाच-

इत्युक्त्वा प्रययौ रामः सानुजः स्वगृहे मुने।
किन्नरी साऽपि वै प्राप्ता तद्विष्णोः परमं पदम्।।८६।।

इति ते कथितं दिव्यं पौष्यमालस्य विस्तरम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं विप्र विष्णुभक्तिप्रदायकम्।।८७।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे देवतीर्थेऽष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।।

एकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

राज्यभ्रष्टेन्द्रद्युम्नस्य बैजपायन ऋषिवचनाद् देवप्रयागे विष्णोराराधनं विष्णोरनुग्रहेण राज्ञः स्वपदावाप्त्या तीर्थस्येन्द्रद्युम्नाभिधानं तन्माहात्म्यकथनञ्च

स्कन्द उवाच-

यथास्मिंस्तीर्थराजे तु इन्द्रद्युम्नो महाद्युतिः।
तपश्चकार तीव्रं तु प्राप्तवान् परमं पदम्।।१।।

तच्छृणुष्व महाभाग यथावत्कथयामि ते।
भक्तानां भक्तराजोऽसि श्रीविष्णोः परमात्मनः।।२।।

पुरा कृतयुगे राजा बभूव नृपवन्दितः।
इन्द्रद्युम्न इति ख्यातः उत्कले मुनिसत्तम।।३।।

जेता वै सर्वशत्रूणां शक्रतुल्यपराक्रमः।
समुद्र इव गाम्भीर्ये कान्त्या काम इवापरः।।४।।

कालक्रमेण भो विप्र भ्रष्टराज्यो बभूव ह।
राज्ये भ्रष्टे ततो राजा जगाम विजने वने।।५।।

जो व्यक्ति शक्ति से और भक्ति से पितरों का यहां तर्पण करेंगे, उनके पितर जल के कणों की संख्या के अनुसार उतने वर्षों तक मेरी कृपा से स्वर्ग में रहेंगे।।८५।।

स्कन्द ने कहा-

हे मुने नारद ! इस प्रकार कह कर राम छोटे भाई के साथ अपने घर चले गये। उस किन्नरी ने भी निश्चय से विष्णुलोक को प्राप्त किया।।८६।।

हे विप्र ! इस प्रकार मैंने तुमसे पौष्पमाल तीर्थ के विषय में विस्तार से कह दिया है। यह भोगों को और मोक्ष को देने वाला है तथा विष्णु के प्रति भक्ति को प्रदान करता है।।८७।।

इस प्रकार स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में देवप्रयाग
तीर्थ में १५८ वां अध्याय समाप्त हुआ।।

अध्याय - १५९

राज्य से भ्रष्ट राजा इन्द्रद्युम्न द्वारा बैजपायन ऋषि के वचन से देवप्रयाग में विष्णु की आराधना करना, विष्णु की कृपा से राजा द्वारा अपने पद को प्राप्त करना तथा इस कारण तीर्थ का नाम इन्द्रद्युम्न पड़ना, इन्द्रद्युम्न तीर्थ का माहात्म्य

स्कन्द ने कहा-

इस तीर्थराज में महातेजस्वी इन्द्रद्युम्न ने जिस प्रकार से तीव्र तपस्या की और परम पद पाया।।१।।

हे महाभाग ! उसको सुनो। मैं यथावत् कहता हूं। तुम श्रीविष्णु परमात्मा के भक्तों में भक्तराज हो।।२।।

हे मुनिश्रेष्ठ नारद ! प्राचीन सत्ययुग में उत्कल जनपद में राजाओं से वन्दित इन्द्रद्युम्न नाम का राजा हुआ था।।३।।

वह सब शत्रुओं को जीतने वाला था, इन्द्र के समान पराक्रमी था, गम्भीरता में समुद्र के समान था और कान्ति से मानों दूसरा कामदेव था।।४।।

हे विप्र ! काल के क्रम से वह राज्य से भ्रष्ट हो गया। तदनन्तर राज्य से भ्रष्ट होकर वह राजा निर्जन वन में चला गया।।५।।

शालैस्तालै रसालैश्च तमालैर्बकुलैस्तथा।
निम्बैः कदम्बैराक्षोटैः कदलैः पिप्पलैर्वटैः।।६।।

आम्रातकैर्युतं भीमं भीमनिर्ह्रादशब्दितम्।
एतादृशं वनं दृष्ट्वा दृष्टवान् सर उत्तमम्।।७।।

हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम्।
इन्दीवरैरुत्पलैश्च शोभितं मुनिवन्दित।।८।।

ततो जगाम नृपतिराश्रमे मुनिसेविते।
कस्याऽयमाश्रमो रम्य इति वै पृष्टवान्मुनिम्।।९।।

कश्चिन्नृपतिशार्दूलं प्रत्युवाच महीपतिम्।।१०।।

ऋषिरुवाच-

भो भोः पुरुषशार्दूल वर्त्तते मुनिनायकः।
वैजपायनेति ख्यातो नाम्ना ब्राह्मणसत्तमः।।११।।
तस्याऽयमाश्रमो रम्यो मुनिभिः परिषेवितः।।१२।।

स्कंन्द उवाच-

इति श्रुत्वा वचस्तस्य मुनेरतुलतेजसः।
दर्शनाय जगामाऽऽशु इन्द्रद्युम्नो महीपतिः।।१३।।

तत्र गत्वा मुनिश्रेष्ठ यत्र वै वैजपायनः।
दृष्टवान्मुनिशार्दूलं नमश्चक्रे महीपतिः।।१४।।

इन्द्रद्युम्न उवाच-

उत्कलेशो मुनिश्रेष्ठ इन्द्रद्युम्न इति श्रुतः।
दासोऽहं त्वादृशानां तु विप्र त्वामभिवादये।।१५।।

बैजपायन उवाच-

इन्द्रद्युम्न महाराज किं कार्यं ते मया प्रभो।
किमर्थमागतोऽसि त्वं वने मुनिगणान्विते।।१६।।

इन्द्रद्युम्न उवाच-

राज्याद् भ्रष्टो महाभाग मंत्रिभिश्च दुरात्मभिः।
आगतोऽस्मि तपः कर्तुं दर्शनं च भवादृशाम्।।१७।।

उस वन में साल, ताल, आम्र, तमाल, मौलसिरी, नीम, कदम्ब, अखरोट, केले, पीपल और वट के वृक्ष थे।।६।।

वहां आम्रातक (आंवड़ा) वृक्ष थे। वन भयानक था और भयानक शब्दों से ध्वनित था। इस प्रकार के वन को देख कर उसने एक उत्तम जलाशय को देखा।।७।।

हे मुनियों से वन्दनीय नारद! वह जलाशय हंसों और सारसों से भरा हुआ था, चकवों से शोभायमान था और नीले एवं लाल कमलों से शोभित था।।८।।

तदनन्तर वह राजा मुनि से सेवित आश्रम में चला गया, यह रमणीय आश्रम किसका है, यह उसने मुनि से पूछा।।९।।

किसी व्यक्ति ने श्रेष्ठ राजा को उत्तर दिया।।१०।।

ऋषि ने कहा-

हे पुरुषश्रेष्ठ! एक मुनिनायक हैं, जो ब्राह्मणों में श्रेष्ठ हैं और बैजपायन नाम से प्रसिद्ध हैं।।११।।

मुनियों से सेवित यह रमणीय आश्रम उनका है।।१२।।

स्कन्द ने कहा-

इस वचन को सुन कर राजा इन्द्रद्युम्न अतुल तेजस्वी उस मुनि के दर्शन के लिये शीघ्र चला गया।।१३।।

हे मुनिश्रेष्ठ नारद! जहां कि वैजपायन थे। वहां जाकर उस राजा ने मुनिश्रेष्ठ को देखा और नमस्कार किया।।१४।।

इन्द्रद्युम्न ने कहा-

हे मुनिश्रेष्ठ! आपने उत्कल के राजा इन्द्रद्युम्न का नाम सुना होगा। हे विप्र! मैं तुम जैसों का दास हूं। तुम्हारा अभिवादन करता हूं।।१५।।

बैजपायन ने कहा-

हे इन्द्रद्युम्न महाराज प्रभो! तुम्हारा मुझसे क्या कार्य है? तुम मुनियों से युक्त वन में क्यों आये हो।।१६।।

इन्द्रद्युम्न ने कहा-

हे महाभाग! दुष्ट मन्त्रियों द्वारा मैं राज्य से भ्रष्ट कर दिया गया हूं। मैं तपस्या करने के लिये और आप जैसों का दर्शन करने के लिये आया हूं।।१७।।

तद्वदस्व मुनिश्रेष्ठ येनाऽहं स्यां हि राज्यभाक्।
मया कुत्र तपः कार्यं चतुर्वर्गफलप्रदम्।।१८।।

तत्स्थानं ब्रूहि भगवन् दासोऽस्मि तव सुव्रत।।१९।।

बैजपायन उवाच-

गच्छ तात मया सार्द्धं तीर्थे देवप्रयागके।
नारायणं दयासिन्धुं भजस्व भक्तितत्परः।।२०।।

स्कन्द उवाच-

इत्युक्त्वा मुनिराजानौ ययतुर्देवतीर्थके।
उक्तेन विधिना विप्र क्षेत्रेऽस्मिन्चक्रतुः क्रियाम्।।२१।।

इन्द्रद्युम्नो महाराजस्तपश्चक्रे सुदारुणम्।
जितेन्द्रियः शान्तमनाः कामक्रोधादिवर्ज्जितः।।२२।।

पर्णाशनोऽभवद्योगी चतुर्वर्षसहस्रकम्।
धरां वर्षसहस्राणि पदैकेन तु तस्थिवान्।।२३।।

तपसा तस्य राज्ञश्च क्षुब्धं त्रैलोक्यमुत्तमम्।
चचाल वसुधा विप्र समुद्राश्च चकम्पिरे।।२४।।

आजग्मुर्देवताः सर्वाः सेन्द्राः सुरगणा मुने।
ततः स्वयं जगामाऽऽशु भगवांल्लोकभावनः।।२५।।

शंखचक्रगदापद्मवनमालाविराजितः।
वामे संन्यस्तलक्ष्मीकः कौस्तुभामुक्तकन्धरः।।२६।।

पीताम्बरश्चतुर्बाहुर्नवनीरदवद्रुचिः।
नानामणिगणाबद्धकेयूरादिविभूषितः।।२७।।

स्फुरत्कुण्डलगण्डश्रीर्गरुडोपरिसंस्थितः।
नारदाद्यैर्महाभक्तैर्महामुनिगणैस्तथा।
स्तूयमानो हृषीकेशो राज्ञा वै प्रत्यदृश्यत।।२८।।

दृष्ट्वा नारायणं देवं भक्तिगद्गदया गिरा।
आनन्दाश्रुपरिषिक्तवक्षा राजाऽकरोत्स्तुतिम्।।२९।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! तो मुझको बताओ कि जिससे मैं राज्य को प्राप्त कर लूं। चतुवर्ग (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) के फल को देने वाले तप को मुझको कहां करना चाहिये।।१८।।

हे भगवन् ! मुझको वह स्थान बताओ । हे सुव्रत ! मैं तुम्हारा दास हूं।।१९।।

बैजपायन ने कहा-

हे तात ! मेरे साथ देवप्रयाग तीर्थ में चलो। वहां तुम भक्ति में तत्पर होकर दया के समुद्र नारायण का भजन करो।।२०।।

स्कन्द कहा-

यह कह कर मुनि और राजा देवप्रयाग तीर्थ को गये। हे विप्र ! उक्त विधि से वे इस क्षेत्र में क्रिया करने लगे।।२१।।

जितेन्द्रिय, शान्त मन वाले और काम-क्रोध आदि का परित्याग करने वाले महाराज इन्द्रद्युम्न ने अति कठोर तप किया।।२२।।

चार हजार वर्ष तक वह केवल पत्ते खाने वाला योगी रहा और एक हजार वर्ष तक एक पैर से पृथिवी पर खड़ा रहा।।२३।।

उस राजा की तपस्या से तीनों उत्तम लोक क्षुब्ध हो गये। पृथिवी विचलित हो गई और समुद्र कांप गये।।२४।।

हे मुने ! इन्द्र सहित सभी देवता वहां आ गये। तदनन्तर लोकों को उत्पन्न करने वाले भगवान् विष्णु स्वयं आये।।२५।।

वे शंख-चक्र-गदा-पद्म-वनमाला से शोभायमान थे। वाम भाग में लक्ष्मी विराजमान थीं और ग्रीवा में कौस्तुम मणि लटक रही थी।।२६।।

पीताम्बर पहने थे, चार भुजायें थीं और नव मेघ के समान कान्ति थी। विविध मणियों से जड़े हुये केयूर आदि अलंकारों से वे विभूषित थे।।२७।।

गालों का सौन्दर्य कुण्डलों से शोभित था। गरुड़ के ऊपर बैठे थे। नारद आदि महाभक्त और महामुनि उनकी स्तुति कर रहे थे। ऐसे हृषीकेश विष्णु को राजा ने सामने देखा।।२८।।

नारायण देवता को देखकर आनन्द के आंसुओं से भीगे वक्ष वाले राजा ने भक्ति से गद्गद वाणी से उनकी स्तुति की।।२९।।

इन्द्रद्युम्न उवाच-

प्रमृज्यमाणः पयसा न वै त्वं प्रमृज्यसे रूपविवर्जितोऽसि।
अपाणिपादः प्रकरोषि सर्वमनेत्रकः पश्यसि सर्वविश्वम्।।३०।।

अनिच्छुकस्त्वं प्रकरोषि सर्वं विमोहकः पालयसीव विश्वम्।
नारायणोऽस्यक्षुधितोऽसि सर्वं चराचरं विश्वमयोनियोनिः।।३१।।

न दिव्यचक्षुर्भवदीयदर्शने न लोकचक्षुर्न च शास्त्रचक्षुः।
भवत्कृपालेशसुदिव्यचक्षुर्हेतुर्भवद्वै परमेश्वरेश।।३२।।

सहस्रशीर्षा पुरुषो भवान्वै सहस्रनेत्रश्च सहस्रपादः।
सृष्ट्वा तु भूमिं गगनं च विष्णो दशाङ्गुलं भावनसंस्थितो वै।।३३।।

स एव नारायणपुरुषस्त्वं सर्वं च भूतं भवभावनं च।
उताऽमृतत्वस्य भवानिशान अन्नेन यद्वै अतिरोहतीव।।३४।।

ततो विराट् पूरुषको बभूव ततो विराजस्त्वधिपूरुषश्च।
जातः स एवाऽथ पुरस्तु पश्चाद्विश्वम्भरो वै स दधार देवः।।३५।।

तस्माद्विराजस्तु बभूव यज्ञो यज्ञादृचः सामयजूंषि छन्दः।
यज्ञान्महापूरुषतो बभूवुर्भूतानि सर्वाणि चराचरं च।।३६।।

मुखं तु विप्रोऽस्य परात्मनश्च बाह्वोस्तु राजन्यगणो बभूव।
ऊर्वोस्तु वैश्यः पदयोश्च शूद्र एवंविधो वै प्रकरोतु सृष्टिम्।।३७।।

चक्षोस्तु सूर्यो मनसश्च चन्द्रः [1]श्रोत्रात्तु वायुश्च मुखात्तु वह्निः।
सदन्तरिक्षं भवतः सुनाभितः पद्भ्यां तु भूमिस्तु तथा बभूव।।३८।।

एवंविधस्य महतः पुरुषस्य तस्य
विक्रीडतो भगवतः परमेश्वरस्य।
ब्रह्मादयोऽपि सततं भवतो मुरारे-
रन्वेषयन्त उपयान्ति न वै विरामम्।।३९।।

अहं हि मायागणलोभपाशबद्धो वराको भवसिन्धुमग्नः।
जाने कथं हे पुरुषोत्तमेश स्तुतिं महेशादिभिरप्यलभ्याम्।।४०।।

---

१. श्रोत्रेण

इन्द्रद्युम्न ने कहा-

जल से धोये जाने पर भी तुम हटाये नहीं जा सकते तथा रूप से रहित हो। हाथ और पैर से रहित होते हुये भी सब कार्य करते हो। विना नेत्र के भी सारे विश्व को देखते हो।।३०।।

इच्छा से रहित होते हुये भी सब कुछ करते हो। सबको विमोहित सा करते हुये विश्व का पालन करते हो। तुम नारायण हो। तुम क्षुधा से रहित हो। सम्पूर्ण चर-अचर विश्व के कारण हो। तुम्हारा कोई कारण नहीं है।।३१।।

आपका दर्शन न तो दिव्य चक्षु से हो सकता है, नाहीं सांसारिक चक्षु से हो सकता है और नाहीं शास्त्र रूपी चक्षु से हो सकता है। हे परमेश्वर के ईश ! आपकी कृपा का लेशरूपी दिव्य चक्षु ही आपके दर्शन का हेतु हो सकता है।।३२।।

आप निश्चय से हजार सिर वाले पुरुष हैं, हजार नेत्र वाले हैं और हजार पैरों वाले हैं। हे विष्णो ! भूमि और आकाश की रचना करके आप सृष्टि से दस अंगुल ऊपर स्थित हैं।।३३।।

जो कुछ भूतकाल में हुआ है, वर्तमान में है और भविष्य में होगा, वह सब तुम नारायण पुरुष ही हो, आप अमृतत्व के स्वामी हो, जो अन्न से वृद्धि को प्राप्त होता है।।३४।।

उस नारायण पुरुष से विराट् पुरुष (परमात्मा) की उत्पत्ति हुई। तदनन्तर उस विराट् पुरुष से अधिपुरुष (शरीर का अधिष्ठाता परमात्मा) उत्पन्न हुआ। उत्पन्न होते ही वह पीछे और सामने (सर्वव्यापक) हुआ। वह देव निश्चय से विश्व का भरण और धारण करने वाला हुआ।।३५।।

उस विराट् पुरुष से यज्ञ उत्पन्न हुआ। यज्ञ से ऋक् (ऋग्वेद के मन्त्र), साम (सामवेद के मन्त्र), यजुष् (यजुर्वेद के मन्त्र) और छन्द (अथर्ववेद के मन्त्र) उत्पन्न हुये। यज्ञ रूपी महापुरुष से सम्पूर्ण भूत (पंच महाभूत-आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी) तथा चर-अचर जगत् उत्पन्न हुआ।।३६।।

इस परमात्मा का मुख ब्राह्मण हुआ, भुजाओं से क्षत्रिय उत्पन्न हुये, जांघों से वैश्य उत्पन्न हुये और पैरों से शूद्र उत्पन्न हुये। इस प्रकार से उसने सृष्टि की रचना की।।३७।।

आपके चक्षु से सूर्य, मन से चन्द्रमा, श्रोत्र से वायु और मुख से अग्नि उत्पन्न हुई। आप की नाभि से अन्तरिक्ष उत्पन्न हुआ और पैरों से भूमि उत्पन्न हुई।।३८।।

इस प्रकार के महान् पुरुष भगवान् परमेश्वर आप सृष्टि-रचना रूपी क्रीडा करते हैं। आप मुरारि को ब्रह्मा आदि भी निरन्तर खोजते रहते हैं, परन्तु विश्रान्ति को नहीं प्राप्त करते।।३९।।

मैं तो अनेक माया रूपी लोभ के जालों में बंधा हुआ बेचारा संसार रूपी सागर में डूबा हुआ हूं। हे पुरुषोत्तमेश ! महेश आदि के द्वारा भी अलभ्य आपकी स्तुति करना कैसे जान सकता हूं।।४०।।

दासोऽस्मि ते नाथ वर प्रभो भो समुद्धरोद्धारक भो रमेश।
संसारदुस्तारसमुद्रमग्नं नमो नमस्ते शतशो नमस्ते।।४१।।

स्कन्द उवाच-

इति स्तुतो वै भगवान्मुरारिर्नरेश्वरेणाप्रतिमप्रतेजसा।
उवाच वाचः परमेश्वरस्तं प्रजेश्वरं नारद भक्तवश्यः।।४२।।

श्रीभगवानुवाच-

तुष्टोऽस्मि ते मानवनाथ भूप प्रशाधि मां कामदुघं प्रसन्नम्।
जातं स्वरूपं तपसा सुदिव्यं वरं महेशादिभिरप्यलभ्यम्।।४३।।

गृहाण मत्तोऽखिलराज्यसम्पदो न हि त्रिलोके भवतोऽप्यलभ्यम्।
मयि प्रसन्ने वद मानसे यद्ददामि सर्वं यदभूत्पुरान्तरे।।४४।।

इन्द्रद्युम्न उवाच-

राज्यं न याचे न च राज्यसम्पन्न पुत्रपौत्रान्न च भृत्यवर्गान्।
न मित्रवर्गान्क्षणसङ्गभङ्गुरान्भक्तिं प्रयाचे भवतो रमेश।।४५।।

यथा न मे त्वच्चरणारविन्दयोः स्मृतिश्च्युता स्याद् भवबन्धमोचनी।
इदं स्वरूपं भवतो मुरारे सशंखचक्रं सगदं सपद्मकम्।।४६।।

यन्मानसे स्याद्यदि वै दया मयि न राज्यलोभेन च मां प्रलोभय।
धन्योऽस्मि ते नाथवर त्वदीयं जातं रमेशाऽप्रतिमं हि दर्शनम् ।।४७।।

श्रीभगवानुवाच-

इन्द्रद्युम्न महाराज भक्तोऽसि मम सुव्रत।
भक्तिस्ते'ह्युत्तमा जाता सर्वकामप्रदा प्रभो।।४८।।

इदानीं राज्यभोगं त्वं कुरु भूप यथासुखम्।
मयि भावं समास्थाय मयि सर्वं नियोज्य[1] च।।।।४९।।

कुरु कर्माणि राज्यस्य मयि संन्यस्य भूमिप।
सर्वं मामेव सम्पश्यन्कर्मबन्धो न ते भवेत्।।५०।।

पश्चाद्राज्यावसाने तु मामेव त्वं गमिष्यसि।
इदं क्षेत्र महापुण्यं सर्वभूतोपकारकम्।।५१।।

१. नियोजय

हे नाथ, हे श्रेष्ठ, हे प्रभो, हे उद्धारकर्ता, हे लक्ष्मी के स्वामी विष्णो ! मैं तुम्हारा दास हूं। संसार रूपी दुस्तर समुद्र में डूबे हुये मेरा उद्धार करो। तुमको नमस्कार है, नमस्कार है, सैंकड़ों बार नमस्कार है।।४१।।

स्कन्द ने कहा-

हे नारद ! अप्रतिम तेजस्वी राजा के द्वारा स्तुति किये गये भक्तों के वश में रहने वाले भगवान् मुरारि परमेश्वर ने उस राजा से ये वचन कहे।।४२।।

श्री भगवान् ने कहा-

हे मनुष्यों के स्वामी राजन् ! मैं तुम से प्रसन्न हूं। कामनाओं को पूरा करने वाले प्रसन्न हुये मुझसे वर मांग लो। तपस्या से तुम्हारा स्वरूप दिव्य हो गया है। यह महेश आदि से भी अलभ्य है।।४३।।

मुझसे तुम सम्पूर्ण राज्य की सम्पत्तियां ले लो। तीनों लोकों में तुम्हारे लिये कुछ भी अलभ्य नहीं है। मैं प्रसन्न हूं जो तुम्हारे मन में हो बोलो। जो कुछ पृथिवी पर और अन्य लोकों में है, वह तुमको देता हूं।।४४।।

इन्द्रद्युम्न ने कहा-

मैं न तो राज्य मांगता हूं, न राज्य की सम्पत्ति, न पुत्र-पौत्र, न भृत्यवर्ग और न मित्र वर्ग। इनका संग क्षण-भङ्गुर है। हे रमेश ! मैं आपसे भक्ति मांगता हूं।।४५।।

संसार के बन्धनों को छुड़ाने वाली आपके चरण-कमलों की स्मृति मेरी कभी नष्ट न हो। हे मुरारे ! शंख, चक्र, गदा और पद्म से युक्त आपका यह स्वरूप सदा बना रहे।।४६।।

यदि आपके मन में मेरे प्रति दया है तो राज्य के लोभ से मुझको लोभित न करें। मैं धन्य हूं जो हे रमेश ! हे नाथ ! तुम्हारा श्रेष्ठ अप्रतिम दर्शन हो गया है।।४७।।

श्री भगवान् ने कहा-

हे सुव्रत इन्द्रद्युम्न महाराज ! तुम मेरे भक्त हो ! मेरे प्रति तुम्हारी सब कामनाओं को प्रदान करने वाली उत्तम भक्ति हो गई है।।४८।।

हे राजन् ! अब तुम अपने भावों को मेरे प्रति समस्थित करके और सब कार्यों को मेरे प्रति नियुक्त करके सुखपूर्वक राज्य का उपभोग करो।।४९।।

हे राजन् ! सबको मेरे प्रति संन्यस्त करके और सब में मेरा ही दर्शन करते हुये राज्य के कामों को करो। तुम्हारा कर्मों में बन्धन नहीं होगा।।५०।।

इसके पश्चात् राज्य के समाप्त होने पर तुम मुझको ही प्राप्त करोगे। यह महापुण्यशाली क्षेत्र सब प्राणियों का उपकार करने वाला होगा।।५१।।

भविष्यति महाराज सर्वकामफलप्रदम्।
अस्मिंस्तीर्थे तु यो मर्त्यः स्नानं वै प्रकरिष्यति।
इह लोके वरान्भोगान्प्राप्य पश्चात्परां गतिम्।।५२।।

गमिष्यसि महाबाहो सत्यं सत्यं न संशयः।
राज्यभ्रष्टोऽपि यो मर्त्यो विधिना स्नानमाचरेत्।
राज्यं प्राप्नोति विपुलमन्ते स्वर्गे महीयते।।५३।।

पुत्रार्थी लभते पुत्रान् धनार्थी लभते धनम्।
मोक्षार्थी लभते मोक्षमस्य तीर्थस्य सेवनात्।।५४।।

अस्मिंस्तीर्थे महाराज यत्कृतं वै तदक्षयम्।
इति स्तोत्रं त्वयाऽऽख्यातं भक्तिवैराग्यसंयुतम्।
सर्वशास्त्रमयं दिव्यं पठतां शृणु वै फलम्।।५५।।

अधीतानि च शास्त्राणि वेदाः सर्वे परिश्रुताः।
स्नातं च सर्वतीर्थेषु पूजिताः प्रतिमाः शुभाः।
दत्ता मही मेरुयुता तेन वै प्रबरात्मना।।५६।।

पठेद् वा पाठयेद्वाऽपि शृणोति श्रावयेदपि।
यद्वा अगोचरं स्थानं तद्वै प्राप्नोति मानवः।।५७।।

स्कन्द उवाच-

इति वाक्यं समाभाष्य माधवोऽन्तर्दधे ततः।
महाराजस्य तस्यैव पश्यतो मुनिसत्तम।।५८।।

इन्द्रद्युम्नोऽपि धर्मात्मा स्वदेश आगतस्ततः।
शत्रून्विजित्य सर्वांस्तु महाराजो बभूव ह।।५९।।

तत्राऽपि भगवन्तं हि समास्थाप्य सदा हृदि।
कृतवान् राज्यभोगं तु समुद्रान्तं हि नारद।।६०।।

विष्णुर्वै भगवांस्तत्र नित्यं सन्निहितोऽभवत्।
नामाऽस्याऽभूत्तु देशस्य पुरुषोत्तमक्षेत्रकम्।।६१।।

तीर्थराजप्रसादेन श्रीविष्णोः परमात्मनः।
राज्यभोगांस्तु कृत्वा वै जगामान्ते सुरोत्तमम्।।६२।।

हे महाराज ! यह सभी कामनाओं के फलों को देने वाला होगा। इस तीर्थ में जो मनुष्य निश्चय से स्नान करेगा, वह इस लोक में उत्तम भोगों को प्राप्त करके पीछे परम गति को..... ।।५२।।

प्राप्त करेगा। हे महाबाहो ! यह बात सत्य है, सत्य है और सन्देहरहित है। राज्य से भ्रष्ट हुआ भी जो मनुष्य यहां विधिपूर्वक स्नान करेगा, वह विपुल राज्य को प्राप्त करेगा और अन्त में स्वर्गलोक में महिमा को प्राप्त होगा।।५३।।

इस तीर्थ का सेवन करने से पुत्र को चाहने वाला पुत्रों को प्राप्त करता है, धन का इच्छुक धन को पाता है और मोक्ष का अभिलाषी मोक्ष को प्राप्त करता है।।५४।।

हे महाराज ! इस तीर्थ में किया कार्य अक्षय रहता है। तुमने भक्ति और वैराग्य से युक्त, सब शास्त्रों से युक्त एवं दिव्य जिस स्तोत्र का कथन किया है, उसका पाठ करने वालों का फल सुनो।।५५।।

उसने सभी शास्त्रों का अध्ययन कर लिया है, सब वेद सुन लिये हैं, सब तीर्थों में स्नान कर लिया है और शुभ प्रतिमाओं का पूजन कर लिया है। श्रेष्ठ आत्मा वाले उस पुरुष ने मेरु पर्वत सहित पृथिवी का दान कर दिया है।।५६।।

जो मनुष्य इसका पाठ करता है, पाठ कराता है, सुनता है, जो अगोचर स्थान है, उसको भी वह पा लेता है।।५७।।

स्कन्द ने कहा-

हे मुनिश्रेष्ठ ! इस वाक्य को कह कर उस महाराज के देखते ही देखते विष्णु तदनन्तर अन्तर्धान हो गये।।५८।।

तदनन्तर धर्मात्मा इन्द्रद्युम्न भी अपने देश में आ गया। वह सब शुत्रओं को जीत कर महाराज हो गया।।५९।।

हे नारद ! वहां भी हृदय में भगवान् को सदा स्थापित करके समुद्र के अन्त तक की भूमि पर राज्य का भोग करने लगा।।६०।।

भगवान् विष्णु भी वहां नित्य सन्निहित रहने लगे। उस देश का नाम भी पुरुषोत्तम क्षेत्र हो गया।।६१।।

तीर्थराज की कृपा से और श्री विष्णु परमात्मा की कृपा से राज्य के भोगों का उपभोग करके अन्त में वह उत्तम देवलोक को गया।।६२।।

अत्रैव तीर्थराजे तु वैजपायन एव च।
स्थितवान् विष्णुमेकाग्रचेतसा संस्मरस्तु सः।।६३।।

इन्द्रद्युम्नतपःस्थानादूर्ध्वभागे हि पर्वते।
गुहां वै कारयित्वा तु स्थितो वै मुनिसत्तमः।।६४।।

इति ते कथितं सर्वमिन्द्रद्युम्नतपःस्थलम्।
यथा वै तीर्थराजस्य नामधेयं बभूव ह।।६५।।

य इदं तीर्थराजस्य उत्पत्तिं चाऽपि वैभवम्।
शृणोति व्याकरोत्येव सोऽपि याति परां गतिम्।।६६।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे देवतीर्थे एकोनषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः।।

"षष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः"

जटायुषस्तपस्याकरणेन गृध्रराजेति प्रथां गतस्य पर्वतस्य सविधे तीर्थतीरे कापिलाख्यशिवलिङ्गोपरि महतो बिल्ववृक्षस्यावस्थानात्तीर्थस्य बिल्वतीर्थाभिधानं लिङ्गभद्राश्रमकथनञ्च

स्कन्द उवाच-

विप्रवर्य महाभाग शृणु तीर्थस्य वैभवम्।
बिल्वाख्यस्य तथोत्पत्तिं लक्षणं च महामते।।१।।

अतिपुण्यतमं स्थानं पापघ्नं सर्वकामदम्।
पुत्रीयं घनदं चैव स्थिरं कुरु मनो मुने।।२।।

इन्द्रद्युम्नतपःस्थानात्क्रोशखण्डप्रमाणके।
अधो गृध्राचलात्तीरे गङ्गाया दक्षिणे वरे।।३।।

बिल्वतीर्थं समाख्यातं चतुर्वर्गफलप्रदम्।
यत्तीर्थे मज्जनादेव शिवो भवति मानवः।।४।।

एतत्तीर्थस्य माहात्म्यं वक्तुं शतमुखैरपि।
क्षमो न हि त्रिलोकेऽस्मिन् स्थितो यत्र सदाशिवः।।५।।

तस्मात्तीर्थात्पूर्वभागे जलं निःसरति ध्रुवम्।
तज्जलं शिरसा धृत्वा गङ्गास्नानफलं लभेत्।।६।।

इसी तीर्थराज में वैजपायन मुनि भी एकाग्र मन से विष्णु का स्मरण करता हुआ रहता रहा।।६३।।

इन्द्रद्युम्न की तपस्या के स्थान से पर्वत के ऊपर के भाग में गुफा को बनवा कर वह मुनिश्रेष्ठ रहने लगा।।६४।।

इस प्रकार मैंने इन्द्रद्युम्न के तपस्या के स्थल का सारा वृत्तान्त कह दिया है, जिससे कि इस तीर्थराज का यह नाम हुआ।।६५।।

जो भी व्यक्ति इस तीर्थराज की उत्पत्ति के और वैभव के वृत्तान्त को सुनता है और उसकी व्याख्या करता है, वह भी परम गति को प्राप्त करता है।।६६।।

इस प्रकार स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में देवतीर्थ में १५९ वां
अध्याय समाप्त हुआ।।

अध्याय - १६०

जटायु द्वारा तपस्या करने के कारण पर्वत का नाम गृध्रराज प्रसिद्ध होना, उस पर्वत के समीप तीर्थ के किनारे कापिलाख्य शिवलिङ्ग के ऊपर महान् बिल्ववृक्ष के स्थित होने से उस तीर्थ का नाम बिल्वतीर्थ प्रसिद्ध होना, बिल्वतीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

स्कन्द ने कहा-

हे महामते विप्रश्रेष्ठ महाभाग नारद! बिल्व नाम के तीर्थ के वैभव को और उसकी उत्पत्ति के वृत्तान्त को सुनो।।१।।

हे मुने! यह स्थान अति पुण्यशाली, पाप का विनाशक, सभी कामनाओं का प्रदाता, पुत्र देने वाला और धन देने वाला है। मन को स्थिर करो।।२।।

इन्द्रद्युम्न के तपस्या के स्थान से एक कोस दूर गङ्गा के दाहिने उत्तम तट पर गृध्राचल पर्वत के नीचे...... ।।३।।

चारों वर्गों (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) के फल का देने वाला बिल्वतीर्थ कहा गया है। इस तीर्थ में स्नान करने मात्र से मनुष्य शिव हो जाता है।।४।।

इस तीर्थ के माहात्म्य का, जहां सदाशिव सदा स्थित रहते हैं, इस त्रिलोकी में कोई सौ मुखों से भी वर्णन करने में समर्थ नहीं है।।५।।

इस तीर्थ से पूर्व भाग में जल निश्चित रूप से निकलता है। उस जल को सिर पर धारण करने से गङ्गा-स्नान का फल प्राप्त होता है।।६।।

तत्र वै बिल्ववृक्षस्तु स्वर्णपत्रस्त्वकण्टकः।
धत्ते स्वर्णानि विप्रेन्द्र फलानि प्रचुराणि च।।७।।

शान्तैर्जितात्मभिः शुद्धैः सदाशिवपरायणैः।
दृश्यते मुनिशार्दूल बिल्ववृक्षो महाद्युतिः।।८।।

बिल्वस्याधो महाभाग कापिलं लिङ्गमुत्तमम्।
तत्र नागो महानस्ति बिल्वमूले वसत्यसौ।।९।।

रात्रौ वै वेष्टयित्वा तं शेते लिङ्गं हि नारद।
कदाचिद्योजनायामः कदाचिद् ह्रस्वरूपधृक्।
इति वै लक्षणं तस्य तीर्थराजस्य वर्णितम्।।१०।।

यस्मिन् तीर्थे बिल्ववृक्षो बिल्वतीर्थमिति स्मृतम्।।११।।

नारद उवाच-

हे स्कन्द पार्वतीपुत्र गृध्रपर्वतविस्तरम्।
वदस्व त्वन्मुखाम्भोजवाङ्मधु पायतो मम।
तृप्तिर्मे जायते नैव सुराणाममृताद्यथा।।१२।।

कथमेतस्य शैलस्य नामाऽभूद् गृध्रपूर्वकम्।।१३।।

स्कन्द उवाच-

शृणु विप्रेन्द्र वैधात्र यथाऽभून्नाम चोत्तमम्।
गृध्राचल इति ख्यातं विस्तराद् गदतो मम।।१४।।

पुरा वै विनतावंशे जटायुरिति विश्रुतः।
बभूव गृध्रराजो वै महासत्त्वपराक्रमः।।१५।।

तस्य वै जातमात्रस्य रामे भक्तिरभून्मुने।
राममेव सदा ध्यायन्नासीद् गृध्रेश्वरो मुनिः।।१६।।

एकदा स तपः कर्त्तुमागतोऽस्मिन्महागिरौ।
अत्राऽऽगत्य महाभागश्चकार तप उत्तमम्।।१७।।

गृध्रस्य तप्यमानस्य तपः परमदुष्करम्।
व्यतीयुः षट्सहस्राणि वर्षाणां मुनिपुङ्गव।।१८।।

वहां निश्चय से एक बिल्ववृक्ष है, जिसके कांटे नहीं हैं तथा पत्ते सुनहरे हैं। हे विप्रेन्द्र नारद! उस पर प्रचुर संख्या में सुनहरे फल आते हैं।।७।।

हे मुनिश्रेष्ठ! उस अतिशय प्रकाशमान बिल्ववृक्ष को शान्त, जितात्मा, शुद्ध एवं सदाशिव के भक्त ही देख सकते हैं।।८।।

हे महाभाग! उस बिल्ववृक्ष के नीचे कपिल वर्ण का उत्तम शिवलिङ्ग है। वहां बिल्व वृक्ष की जड़ में वह महानाग निवास करता है।।९।।

हे नारद! रात्रि में वह शिवलिङ्ग को आवेष्टित करके सोता है। कभी तो वह एक योजन विस्तार का हो जाता है और कभी ह्रस्व रूप को धारण कर लेता है। इस प्रकार उस तीर्थराज के लक्षण का वर्णन कर दिया है।।१०।।

जिस तीर्थ में बिल्ववृक्ष है, अतः वह बिल्वतीर्थ कहा गया है।।११।।

नारद ने कहा-

हे पार्वती के पुत्र स्कन्द! तुम गृध्र पर्वत के विस्तार का वर्णन करो। तुम्हारे मुख रूपी कमल के वाणी रूपी मधु का पान करते हुये मेरी उसी प्रकार तृप्ति नहीं हो रही है, जैसे कि देवताओं को अमृत-पान से नहीं होती।।१२।।

इस पर्वत का नाम गृध्र पर्वत कैसे हुआ।।१३।।

स्कन्द ने कहा-

विधाता के पुत्र विप्रश्रेष्ठ नारद! सुनो। मैं विस्तार से कहता हूं कि इसका गृध्राचल यह उत्तम नाम कैसे पड़ा।।१४।।

प्राचीन समय में विनता के वंश में जटायु नाम का गृध्रराज हुआ, जो महाबलशाली पराक्रमी था।।१५।।

हे मुने! उत्पन्न होते ही उसे राम के प्रति भक्ति उत्पन्न हुई। वह गृध्रराज मुनि सदा राम का ही ध्यान करता रहता था।।१६।।

एक बार वह तपस्या करने के लिये इस महापर्वत पर आया। यहां आकर वह महाभाग उत्तम तप करने लगा।।१७।।

हे मुनिश्रेष्ठ! परम दुष्कर तपस्या करते हुये उस गृध्र को छः हजार वर्ष व्यतीत हो गये।।१८।।

आविर्बभूव विश्वात्मा भासमानो यथा रविः।
द्योतयन्वै दिशः कान्त्या तस्याग्रे प्रत्यदृश्यत।।१९।।

उवाच वचनं प्रेम्णा गृध्रराजं तपःस्थितम्।
अलक्ष्यः सर्वभूतानां विष्णुर्वै भक्तवत्सलः।।२०।।

श्रीभगवानुवाच-

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते तुष्टोऽस्मि तपसा तव।
वरं वृणीष्व मत्तो वै यत्ते मनसि वर्त्तते।।२१।।

स्कन्द उवाच-

निशम्येश्वरवाणीं तु भक्त्या गद्गदया गिरा।
भगवत्स्तुतिमारेभे जटायुर्नाम पक्षिपः।।२२।।

जटायुरुवाच-

यो वै ममान्तःकरणे प्रविश्य श्रीरामचन्द्रे प्रचकार भक्तिम्।
तस्मै सुधाम्ने पुरुषोत्तमाय नतोऽस्मि ते ज्ञानवरप्रदाय।।२३।।

सृष्ट्वा त्वशेषं महदादि मायया परात्मशक्त्या भगवंस्त्वमेकः।
मायागुणेषु प्रतिविश्य नानास्वरूप हे नाथ नमो नमस्ते।।२४।।

एकः परात्माऽखिललोकवृन्दमाकाशवद् व्याप्य परिस्थितो यः।
अचिन्त्यरूपो विगुणो महेशो नमस्करोमि प्रभुमव्ययं वै।।२५।।

नाहं प्रयाचे सुरराजसम्पन्नवाऽल्पदं कल्पतरुं न याचे।
भक्तिं हि मे देहि पुराणविष्णो भवाऽम्बुधेस्तारणपोतभूताम्।।२६।।

नमो भगवते तुभ्यं वेधसे परमात्मने।
इच्छाकृतजगत्सृष्टिकर्मणे ब्रह्मणे नमः।।२७।।

भगवन्यदि वरदोऽसि त्वं त्रैलोक्यनायक।
जीविना मे त्वया देव देयं दर्शनमुत्तमम्।।२८।।

त्वन्नामस्मरणं विष्णो भूयाद् वै भवमुक्तये।
स्थितस्य यत्र कुत्राऽपि भक्तिरव्यभिचारिणी।।२९।।

श्रीभगवानुवाच-

त्रेतायुगे दाशरथी भूत्वा यास्यामि दण्डकान्।
रावणादीन्निहन्तुं वै सीतान्वेषणहेतवे।।३०।।

सूर्य के समान प्रकाशमान, कान्ति से दिशाओं को उद्भासित करते हुये विश्वात्मा विष्णु आविर्भूत हुये और उसके समक्ष दिखाई दिये।।१९।।

सब प्राणियों के लिये अलक्ष्य भक्तवत्सल विष्णु ने तपस्या में स्थित गृध्रराज से यह वचन स्नेह से कहा।।२०।।

श्रीभगवान् ने कहा-

उठो, उठो। तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे तप से मैं प्रसन्न हूं। जो तुम्हारे मन में हो, वह वर मुझसे मांग लो।।२१।।

स्कन्द ने कहा-

ईश्वर की इस वाणी को सुनकार भक्तिभाव से गद्गद वाणी से जटायु नाम के पक्षिराज ने भगवान् की स्तुति करना आरम्भ कर दिया।।२२।।

जटायु ने कहा-

जिसने मेरे अन्तःकरण में प्रविष्ट होकर श्रीरामचन्द्र के प्रति भक्ति उत्पन्न की, उस उत्तम धाम वाले और श्रेष्ठ ज्ञान प्रदान करने वाले पुरुषोत्तम विष्णु के लिये मैं प्रणाम करता हूं।।२३।।

विविध स्वरूपों वाले हे नाथ! भगवन्! तुम अपनी माया से, परात्म शक्ति से अकेले ही महद् आदि सम्पूर्ण सृष्टि की रचना करके माया के गुणों में प्रविष्ट होते हो। तुमको नमस्कार है, नमस्कार है।।२४।।

एक अकेला जो परमात्मा आकाश के समान सम्पूर्ण लोकों को व्याप्त करके स्थित है, उसका रूप अचिन्त्य है, वह गुणों से रहित है, और महेश है। उस अविनाशी प्रभु को मैं निश्चय से नमस्कार करता हूं।।२५।।

हे पुराणविष्णो! मैं देवराज की सम्पत्ति की याचना नहीं करता, अथवा प्रचुर देने वाले कल्पवृक्ष की याचना नहीं करता। मुझको आप अपने प्रति भक्ति दीजिये, जो भवसागर को पार करने के लिये जहाज रूप है।।२६।।

तुझ परमात्मा विधाता भगवान् के लिये नमस्कार है। इच्छा के अनुसार जगत् की सृष्टि करने वाले तुझ ब्रह्म के लिये नमस्कार है।।२७।।

हे तीनों लोकों के नायक भगवन्! यदि आप मुझको वर देते हैं, तो हे देव! जीवित रहते हुये मुझको उत्तम दर्शन दीजिये।।२८।।

हे विष्णो! तुम्हारे नाम का स्मरण भव से मुक्ति के लिये होवे। मैं जहां कहीं भी रहूं, तुम्हारे प्रति अव्यभिचारिणी भक्ति होवे।।२९।।

श्रीभगवान् ने कहा-

त्रेतायुग में दशरथ का पुत्र होकर मैं सीता का अन्वेषण करने और रावण आदि असुरों का वध करने के लिये दण्डकवन में जाऊंगा।।३०।।

तत्र त्वं रक्षसा गृध्र योत्स्यसे रावणेन वै।
ततो विकृतपक्षो वै निपतिष्यसि भूतले।।३१।।

संगो नौ तत्र भविता स्तुत्वा दृष्ट्वा तु मां प्रिय।
ततः प्राप्यसि मामेवं पुनरावृत्तिदुर्लभम्।।३२।।

तावत्तिष्ठ महाभाग मामेव हृदि संस्मरन्।
एतस्य गिरिराजस्य त्वन्नामाङ्कितनाम हि।।३३।।

भविष्यति पक्षिराज पवित्रं पुण्यदायकम्।
योजनद्वयगव्यूतिविस्तरायाम एव च।।३४।।

सकृत्प्रदक्षिणीकृत्य गिरिराजं विनायकम्।
सप्तद्वीपवतीपृथ्व्याः प्रदक्षिणफलं लभेत्।।३५।।

खनित्राणि विचित्राणि स्वर्णादीनां तथैव च।
स पश्यति मासमात्रं तपः कृत्वा जितेन्द्रियः।।३६।।

स्कन्द उवाच-

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे विष्णुः पश्यतो वीश्वरस्य हि।
सोऽपि च प्रययौ गृध्रो दण्डके मुनिसेविते।।३७।।

इति ते कथितं विप्र बिल्वतीर्थस्य वैभवम्।
गिरिराजस्य देवर्षे यथाऽभून्नाम चोत्तमम्।।३८।।

वैभवं बिल्वतीर्थस्य गिरिराजस्य चैव हि।
भक्त्या मुक्तिं प्रयात्येव शृणोति व्याकरोति यः।।३९।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे देवप्रयागमाहात्म्ये बिल्वतीर्थ-
वैभवकथनं नाम षष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः।।

"एकषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः"

शीलवत्या वेश्यायास्तपःकरणादस्य तीर्थस्य शीलवतीह्रदेति नामनिर्वचनम्, वागीश्वरलिङ्गनिरूपणम् लिङ्गभद्राश्रमकथनञ्च

स्कन्द उवाच-

इति वै सङ्गमादूर्ध्वभागे गङ्गोत्तरे तटे।
याम्ये चैव महाभाग श्रुत्वा तीर्थान्यनेकशः।।१।।

हे गृध्र ! वहां तुम राक्षस रावण से युद्ध करोगे। तदनन्तर तुम्हारे पंख कट जायेंगे और तुम भूतल पर गिर जाओगे।।३१।।

हे प्रिय ! वहां हम दोनों का मिलन होगा। तब मेरा दर्शन करके और स्तुति करके तुम मुझको ही प्राप्त करोगे। इस प्रकार तुम्हारा पुनर्जन्म नहीं होगा।।३२।।

हे महाभाग ! तब तक तुम हृदय में मुझको स्मरण करते हुये ठहरो। इस पर्वतराज का नाम तुम्हारे नाम से अंकित होगा।।३३।।

हे पक्षिराज ! यह स्थान पवित्र और पुण्य देने वाला होगा। इसकी लम्बाई-चौड़ाई दो योजन और एक गव्यूति होगी।।३४।।

गिरिराज विनायक की एक बार प्रदक्षिणा करके मनुष्य सात द्वीपों वाली पृथिवी की प्रदक्षिणा का फल प्राप्त करेगा।।३५।।

जो व्यक्ति यहां एक महीने तक जितेन्द्रिय रह कर तप करेगा, वह विचित्र खनिज पदार्थों को और स्वर्ण को देखेगा।।३६।।

स्कन्द ने कहा-

यह कह कर पक्षिराज के देखते हुये ही विष्णु अन्तर्धान हो गये। वह गृध्र भी मुनियों से सेवित दण्डक वन में चला गया।।३७।।

हे विप्र ! इस प्रकार मैंने तुमको बिल्वतीर्थ का वैभव बता दिया है। हे देवर्षे ! गिरिराज का जो यह उत्तम नाम पड़ा, उसको बता दिया है।।३८।।

जो व्यक्ति बिल्वतीर्थ के और गिरिराज के वैभव की कथा को भक्ति से सुनता है और व्याख्या करता है, वह मुक्ति को प्राप्त करता है।।३९।।

इस प्रकार स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में देवप्रयाग माहात्म्य में बिल्वतीर्थ-वैभव कथन नाम का १६० वां अध्याय समाप्त हुआ।।

अध्याय - १६१

शीलवती नाम की वेश्या द्वारा तप करने से उस तीर्थ का नाम शीलवतीह्रद प्रसिद्ध होना, वागीश्वरलिङ्ग का निरूपण और लिङ्गभद्राश्रम का वर्णन

स्कन्द ने कहा-

हे महाभाग ! इस प्रकार संगम से ऊपर के भाग में गङ्गा के उत्तरी तट पर और दक्षिणी तट पर जो अनेक तीर्थ हैं, उनको तुमने सुना।।१।।

यानि तीर्थान्यधोभागतटे याम्योत्तरे तथा।
यथा त्वलकनन्दाया: क्रमात्पप्रच्छ नारद:।।२।।

नारद उवाच-

देव देवबलाध्यक्ष त्र्यक्षपुत्र महामते!
श्रुतानि त्वन्मुखाम्भोजात्तीर्थानि प्रवराणि च।।३।।

सङ्गोदर्ध्वे कानि पुण्यानि तीर्थादीनि त्वया प्रभो।
कथितानि च वृत्तानि सुन्दराणि वराणि च।।४।।

अत: परं महाभाग अधोभागे सुनिर्मले।
यानि तीर्थानि पुण्यानि तान्याचक्ष्व मम प्रभो।।५।।

शृण्वतस्त्वन्मुखाम्भोजात् तृप्तिर्मे जायते न हि।
न हि त्रिलोके वक्ताऽस्ति त्वदन्य: पुण्यकर्मणाम्।।६।।

स्कन्द उवाच-

धन्योऽसि मुनिशार्दूल सुभक्तोऽसि विधातृज।
परोपकृतये यस्य जाता वै सत्तमा मति:।।७।।

संगात्तु शरविक्षेपे गङ्गाया उत्तरे तटे।
विद्यते हि महापुण्यं दिव्यं शीलवतीह्रद:।।८।।

यत्र शीलवती वेश्या तप: कृतवती पुरा।
सप्तवर्षसहस्राणि निराहारा जितेन्द्रिया।।९।।

हृदि वै परमात्मानं यस्य ध्यानपरा स्थिता।
ततो ददर्श विष्णुं वै तपसा तोषितं मुने।।१०।।

ववन्दे सा महाभागा प्रसन्नो भगवानभूत्।
उवाच वचनं प्रीत्या वरं वरय सुव्रते।।११।।

शीलवत्युवाच-

प्रसन्नो यदि मे देव देहि स्थानं सुरोत्तमम्।
यत्र वै स्वर्गवेश्यास्तु वसन्ति नित्यमेव हि।।१२।।

तत्राऽहं वै वसे नित्यं गायन्ती गानमुत्तमम्।
रूपेणाऽप्रतिमा देव देवलोके तथा भुवि।।१३।।

अलकनन्दा के निचले भाग के दक्षिणी और उत्तरी तट पर जो तीर्थ हैं। उनके विषय में नारद ने क्रमशः पूछा।।२।।

नारद ने कहा-

हे देवसेना के सेनापति, त्रिनयन शिव के पुत्र महामतिशाली देव! तुम्हारे मुख रूपी कमल से श्रेष्ठ तीर्थों के विषय में सुन लिया है।।३।।

सङ्गम से ऊपर के भाग के पुण्यशाली तीर्थ आदि को और उनके सुन्दर श्रेष्ठ वृत्तान्तों को तुमने कह दिया है।।४।।

हे महाभाग प्रभो! इसके बाद तुम संगम के नीचे के स्वच्छ भाग में जो पुण्य तीर्थ हैं, उनका वृत्तान्त कहो।।५।।

तुम्हारे मुख रूपी कमल से सुनते हुये मेरी तृप्ति नहीं हो रही है। तीनों लोकों में तुम्हारे समान पुण्य कर्मों का कथन करने वाला अन्य कोई वक्ता नहीं है।।६।।

स्कन्द ने कहा-

हे मुनिश्रेष्ठ तुम धन्य हो। हे विधाता के पुत्र! तुम उत्तम भक्त हो, जिसकी परोपकार के लिये इस प्रकार की उत्तम बुद्धि हुई है।।७।।

संगम से एक शरविक्षेप (लगभग १०० हाथ) दूर गङ्गा के उत्तरी तट पर एक महापुण्यशाली दिव्य शीलवती नाम का ह्रद है।।८।।

यहां प्राचीन समय में शीलवती नाम की वेश्या ने निराहार और जितेन्द्रिय रह कर सात हजार वर्ष तक तप किया था।।९।।

हृदय में उसके परमात्मा था, जिसके ध्यान में वह सदा स्थित रहती थी। हे मुने! तदनन्तर उसने तपस्या से प्रसन्न हुये विष्णु के दर्शन किये।।१०।।

उस महाभाग ने वन्दना की और वे भगवान् प्रसन्न हुये। उन्होंने प्रेम से यह वचन कहा कि हे सुव्रते! वर मांग लो।।११।।

शीलवती ने कहा-

हे देव! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो देवताओं में वह उत्तम स्थान दीजिये, जहां स्वर्ग की वेश्यायें (अप्सरायें) नित्य निवास करती हैं।।१२।।

हे देव! रूप से अद्वितीय मैं वहां देवलोक में उत्तम गाना गाती हुई उसी प्रकार रहूंगी, जिस प्रकार पृथिवी पर रहती हूं।।१३।।

श्रीभगवानुवाच-

गच्छ वेश्ये महाभागे स्वर्वेश्या भव सुव्रते।
इदं स्थानं महापुण्यं सर्वकामफलप्रदम्।।१४।।

स्कन्द उवाच-

इति निगद्य भगवानन्तर्द्धानं गतोऽगमत्।
साऽपि शीलवती रम्भा बभूव प्रमदोत्तमा।।१५।।

तस्मादेतस्य तीर्थस्याऽऽख्याभूच्छीलवतीह्रदः।
यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति मज्जनात्।।१६।।

तस्मात्तु क्रोशखण्डे वै गङ्गा ह्युत्तरगामिनी।
तत्स्थानं भूमिदेवस्य मुनेः परमतेजसः।।१७।।

गुहा तत्र महाभाग कोटरान्तरमध्यगा।
तत्र वै वसते साधुर्भूमिदेवस्तु [1]निस्पृहः।।१८।।

तस्यैव भूमिदेवस्य वनं क्रोशप्रमाणकम्।
तद्वने निवसन्मासं गङ्गास्नानं करोति यः।।१९।।

जितेन्द्रियः शान्तमना भूमिदेवं स पश्यति।
सूर्यग्रहशतं स्नात्वा गङ्गायां लभते फलम्।।२०।।

तत्फलं हि समाप्नोति भूमिदेवप्रसादतः।
ततो वर्ण्याश्रमाद्रम्यात्समायाति नदी वरा।।२१।।

वणिजेति समाख्याता नाम तस्याः सुपुण्यदम्।
तस्यास्तु जह्नुजाया च सङ्गमो यत्र वर्त्तते।।२२।।

तद्ध्रदः समनुख्यातो गाणपत्यो महामुने।
यत्र वै मज्जने शक्ता गाणपत्यमवाप्नुयुः।।२३।।

नन्दीभृङ्ग्यादयो यत्र महादेवपरायणाः।
तत्सेवनान्नरो याति शिवतां देवदुर्लभाम्।।२४।।

तस्माद्वै क्रोशखण्डार्द्धे पीठं पुण्यतमं मतम्।
यत्र वागीश्वरं लिङ्गं सद्यः प्रत्ययकारकम्।।२५।।

---

१. स पश्यति। २. तस्यैव....स पश्यति पाठ सन्दिग्ध है।

श्रीभगवान् ने कहा-

हे महाभागे सुव्रते वेश्ये ! तुम जाओ और स्वर्ग की वेश्या (अप्सरा) हो जाओ। यह स्थान महापुण्यशाली और सब कामनाओं के फल को देने वाला है।।१४।।

स्कन्द ने कहा-

यह कह कर तदनन्तर भगवान् अन्तर्धान हो गये। वह शीलवती वेश्या भी उत्तम प्रमदा रम्भा हो गई।।१५।।

इस कारण इस तीर्थ का नाम शीलवती ह्रद हुआ। यहां स्नान करने से मनुष्य जिस जिस वस्तु की चिन्ता करता है, उस उसको प्राप्त करता है।।१६।।

उस स्थान से एक कोस जाकर गङ्गा उत्तरगामिनी हो जाती है। वह स्थान परम तेजस्वी भूमिदेव मुनि का है।।१७।।

हे महाभाग ! वहां एक गुफा है, जिसका मार्ग एक कोटर के मध्य से गया है। वह निःस्पृह साधु भूमिदेव वहीं रहता है।।१८।।

वहां एक कोस लम्बा-चौड़ा भूमिदेव का वन है। जो मनुष्य उस वन में रहता हुआ एक मास तक गङ्गा-स्नान करता है....।।१९।।

जितेन्द्रिय और शान्त मन वाला होकर वह भूमिदेव को देखता है। वह सौ सूर्यग्रहण के समय गङ्गा में स्नान के फल को प्राप्त करता है।।२०।।

वह भूमिदेव की कृपा से उस फल को प्राप्त करता है। वर्णन किये गये उसके सुन्दर आश्रम से एक श्रेष्ठ नदी आती है।।२१।।

उसका वर्णिजा नाम है। यह उत्तम पुण्य को देने वाला है। उसका जहां पर गङ्गा में सङ्गम होता है....।।२२।।

हे महामुने ! उस ह्रद को गाणपत्य कहा गया है। यहां स्नान करने में समर्थ लोग गणपति के पद को प्राप्त करते हैं।।२३।।

यहां नन्दी-भृङ्गी आदि गण महादेव की सेवा करते रहते हैं। उसका सेवन करने से मनुष्य देवदुर्लभ शिवत्व को प्राप्त करता है।।२४।।

उससे आधे कोस की दूरी पर पुण्यशाली पीठ स्थित है। यहां वागीश्वर नाम का लिंग तत्काल ज्ञान को उत्पन्न करने वाला है।।२५।।

वर्त्तते हि सुभक्तानां जपतां मन्त्रमुत्तमम्।
यत्र साक्षान्महादेवी रागज्ञानाय वै किल।।२६।

वाग्देवी देवतापूज्या रराध शिवमुत्तमम्।
ततः प्रभृति विप्रेन्द्र न्यवसच्छिव उत्तमे।।२७।।

नारद उवाच-

कथमत्र च वाग्देवी रराध च महेश्वरम्।।
कथं तु संस्तुता देवी वरं प्रादात्कथं शिवः।।२८।।

स्कन्द उवाच-

शृणु नारद तत्सर्वं वृत्तान्तं यदभूत्पुरा।
गीतामृतस्य सञ्चारो नाऽभूत्कुत्राऽपि धातृज।।२९।।

गीतस्य ज्ञानबोधाय सरस्वत्या मनोऽभवत्।
कथं मे गीतबोधो हि भवेदित्याऽऽकुलाऽभवत्।।३०।।

विचार्य मनसा देवी ययौ देवप्रयागके।
आराधनाय देवस्य सर्वज्ञस्य महात्मनः।।३१।।

गत्वा वै गाणपत्यस्य निकटे पीठके शुभे।
समारराध रुद्रं वै उपचारैस्त्वनन्तकैः।।३२।।

गन्धैः पुष्पैर्धूपदीपैर्नैवेद्यैर्विविधैः शुभैः।
स्तोत्रपाठैर्नमस्कारैरनेकैर्भक्तितत्परा।।३३।।

इति तस्या व्यतीयुश्च वाग्देव्या कतिचित्समाः।
त्यक्ताहारविहारायास्ततोऽग्रे प्रत्यदृश्यत।।३४।।

व्याघ्रचर्माम्बरधरो नागयज्ञोपवीतिकः।
नीलकण्ठश्चतुर्बाहुः शशाङ्ककृतशेखरः।।३५।।

अंसन्यस्तकरीचर्मा हिमशैलकलेवरः।
वामाङ्गन्यस्तगौरीकः सगणो वृषभध्वजः।।३६।।

एतादृशं शिवं दृष्ट्वा भक्तिगद्गदया गिरा।
वाग्देवी स्तोतुमारेभे आनन्दाश्रुपरिप्लुता।।३७।।

यह पीठ उत्तम मन्त्र का जाप करने वाले सुभक्तों के लिये हैं। यहां रागों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये निश्चय से साक्षात् महादेवी.......।।२६।।

देवताओं से पूजनीया सरस्वती ने उत्तम शिव की आराधना की थी। हे विप्रेन्द्र ! तब से इस उत्तम स्थान पर शिव निवास करने लगे।।२७।।

नारद ने कहा-

यहां सरस्वती देवी ने शिव की किस प्रकार आराधना की थी ? देवी की स्तुति कैसी थी और शिव ने उनको किस प्रकार वर दिया ?।।२८।।

स्कन्द ने कहा-

हे नारद ! उस सारे वृत्तान्त को सुनो, जो पहले हुआ था। हे विधाता के पुत्र ! पहले कहीं भी गीत रूपी अमृत का संचार नहीं था।।२९।।

गीत का ज्ञान प्राप्त करने के लिये सरस्वती का मन हुआ। मुझको गीत का ज्ञान कैसे हो, इस प्रकार वह व्याकुल हो गई।।३०।।

मन से विचार करके देवी सर्वज्ञ, महात्मा, देव शिव की आराधना करने के लिये देवप्रयाग गईं।।३१।।

गाणपत्य शुभ पीठ के निकट जाकर वे अनन्त उपचारों से रुद्र की आराधना करने लगीं।।३२।।

गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य और विविध प्रकार के शुभ स्तोत्र पाठों से तथा अनेक नमस्कारों से वह भक्ति में तत्पर हो गईं।।३३।।

इस प्रकार आहार-विहार का परित्याग करके शिव की आराधना करते हुये उस वाग्देवी को कुछ वर्ष व्यतीत हो गये। तदनन्तर शिव उनके समक्ष दिखाई दिये।।३४।।

उन्होंने व्याघ्र के चर्म का वस्त्र पहना था, सर्प का यज्ञोपवीत बनाया था, नीला कण्ठ था, चार भुजायें थीं और चन्द्रमा को शिरोभूषण बनाया था।।३५।।

कन्धे पर हाथी का चर्म था, शरीर हिमालय के समान था, वाम अंग में पार्वती स्थित थीं, गण साथ थे और वृषभ रूप वाहन ध्वज था।।३६।।

इस प्रकार के शिव को देख कर आनन्द के आंसुओं से भीगी हुई वाग्देवी ने भक्ति से गद्गद वाणी से उनकी स्तुति करनी आरम्भ कर दी।।३७।।

श्रीवाग्देव्युवाच-

नताऽस्मि ते ज्ञानवरप्रदाय नृमुण्डमालासुविराजिताय।
स्फुरत्प्रभाजालसुनेत्रकाय करीन्द्रचर्मान्वितमध्यकाय।।३८।।

लसज्जटाजालघनस्फुरन्नदीवरातडित्पुञ्जमनोरमाय ते।
लसत्फुरज्जिह्वकजिह्मगाय प्रभो महेशाय नमः सुराधिप।।३९।।

चिताकलापप्रवहे श्मशाने नृमुण्डसम्मण्डितधाम्न्युमेश।
कङ्कालसञ्जालविराजितेऽहं त्यक्त्वा वसे स्वर्गसुखं त्वशेषम्।।४०।।

धिगद्धिगद्धीगितिधित्तधत्तकैर्धराधरेशे गणदुन्दुभिस्वनैः।
द्रुमद्द्रुमड्डामरुकैः सुमन्द्रकैर्मनोहरं नृत्यसि नाथ भीम भो।।४१।।

झणिज्झणितिकिङ्किणीगणगणोत्थशब्दैः शुभै-
श्चलज्जलधिमेरुकं भगवति प्रभौ नृत्यति।
वमद्विषधनञ्जयप्रचुरलास्यसन्दोलित
प्रभोगफणिरत्नकैर्विशमनः परेशे शिवे।।४२।।

त्वद्धामद्वारभूमौ विकटभटगणैः कालभीमप्रधानै-
र्हस्तेषु न्यस्तदण्डैर्दमितसुरगणैः स्थीयते यत्र देव।
तत्राऽहं कालकण्ठप्रवरसुभगवद्भक्तपादप्रघात-
ध्वस्ताघा[1] का भवेयं यदिह तनुमृदो मामकीना भवेयुः।।४३।।

श्रीशिव उवाच-

वद वाग्देवि यत्ते वै चित्ते भवति कार्यकम्।
प्रसन्नोऽस्मि तव स्तुत्या तपसा च ददामि भो।।४४।।

वाग्देव्युवाच-

भगवन् वरदोऽसि त्वं यदि त्रैलोक्यनायक।
गीतामृतरसास्वादजन्यानन्दा तथा भवे।।४५।।

श्रीशिव उवाच-

गृहाण रागबोधाय वीणां सप्तस्वरान्विताम्।
यस्यां सम्बाधमानायां मोहितं भुवनं भवेत्।।४६।।

१. का

श्रीवाग्देवी ने कहा-

श्रेष्ठ ज्ञान को देने वाले, नरमुंडों की माला से सुशोभित, प्रभा के समूह से चमकते हुये नेत्र वाले और हाथी के चमड़े को कटि में लपेटने वाले आपके प्रति मैं प्रणत हूं।।३८।।

देवताओं के स्वामी हे प्रभो ! शोभायमान जटाओं के घने जाल में से चमकती हुई श्रेष्ठ नदी रूपी विद्युत्-पुञ्ज से सुन्दर तथा शोभित होते हुये फड़कती जिह्वा से युक्त सर्पों वाले तुम महेश के लिये नमस्कार है।।३९।।

हे पार्वती के पति शिव ! मैं सारे स्वर्ग-सुख को छोड़ कर चिताओं के समूह से भरे हुये नरमुण्डों से सुशोभित स्थान वाले और कंकालों के समूह से अलङ्कृत श्मशान में निवास करूं।।४०।।

हे भयानक आकृति के स्वामिन् ! तुम हिमालय पर्वत पर धिगद, धिगद, धिगद् इस प्रकार थापों को देते हुये गणों की दुन्दुभियों के शब्दों के द्वारा और द्रुमद्, द्रुमद् इस प्रकार मन्द स्वर उत्पन्न करने वाले डमरुओं के द्वारा नृत्य करते हो।।४१।।

सबके स्वामी परेश शिव प्रभु भगवान् के नृत्य करने पर झन-झन करती घण्टियों से उठे शुभ शब्दों से ऐसा लगता है कि समुद्र में मेरु पर्वत चलाया जा रहा है। जो कि विष रूपी अग्नि को उगलते प्रचुर लास्य नृत्य से हिलाये जाते हुये फणों वाले सर्पों के रत्नों से शान्त किया जा रहा है।।४२।।

हे देव ! जहां कि तुम्हारे धाम के द्वार की भूमि पर हाथों में डण्डों को लिये, देवताओं का दमन करने वाले, काल भी प्रधान हैं जिनमें ऐसे विकट भट स्थित रहते हैं, यदि यहां मेरे शरीर की कुछ मिट्टियां पहुंच जावें तो कालकण्ठ शिव के श्रेष्ठ उत्तम भगवद्भक्तों के पैरों के प्रहारों से मेरे पाप नष्ट हो जायेंगे।।४३।।

श्रीशिव ने कहा-

हे वाग्देवि ! तुम्हारे मन में जो कार्य हो, उसको कह दो। मैं तुम्हारी स्तुति और तपस्या से प्रसन्न हूं। मैं तुमको वर देता हूं।।४४।।

वाग्देवी ने कहा-

हे तीनों लोकों के नायक ! भगवन् ! यदि आप वर देते हैं तो मुझको गीतरूपी अमृत रस के आस्वादन का आनन्द प्राप्त होवे।।४५।।

श्रीशिव ने कहा-

रागों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये सात स्वरों से युक्त इस वीणा को ले लो, जिसके बजाये जाने पर सारा संसार मोहित हो जायेगा।।४६।।

स्तोत्रेणाऽनेन यः कश्चिन्मां स्तोष्यति हि मानवः।
सोऽपि वाग्देवि हे त्वत्सदृशो भवति निश्चितम्।।४७।।

श्रोष्यन्ति प्रातरुत्थाय पठिष्यन्ति च ये नराः।
न तेषां दुर्लभं किञ्चिद् भविष्यति सरस्वति।।४८।।

स्कन्द उवाच-

एवं प्राप्य वरं सा तु वाग्देवी देवता वरा।
नमस्कृत्य विभुं शम्भुं गता ब्रह्मपुरे मुने।।४९।।

सोऽपि वै भगवान् रुद्रः स्थितवान् पीठके वरे।
अत एत महाभाग नाम्ना वागीश्वरोऽभवत्।।५०।।

अद्याऽपि तत्र देशे तु नित्यमायान्ति वै सुराः।
ऋषयः सिद्धगन्धर्वा यक्षकिन्नरपन्नगाः।।५१।।

केचिद्वै मृगरूपेण केचिद् व्याघ्रस्वरूपकाः।
नानारूपधराऽमर्त्त्याऽलक्षिता भगवत्प्रिय।।५२।।

चतुर्वेदमयं घोषं शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनम्।
कुर्वन्ति तस्य [1]तोषार्थं परेशस्य महात्मनः।।।५३।।

तत्र वागीश्वरं कुण्डं गङ्गायां वर्त्तते बुध।
तन्मज्जनान्मुनिश्रेष्ठ सरस्वत्याः प्रियो भवेत्।।५४।।

अत्राऽपि यत्कृतं कर्म तदसंख्यगुणं भवेत्।
इदं स्थानं सुगोप्यं हि कर्त्तव्यं पापबुद्धिषु।।५५।।

इति ते कथितान्येव गङ्गाया उत्तरे तटे।
तीर्थानि प्रवराण्येव शृणु याम्ये महामते।।५६।।

वागीश्वरान्महापीठात्क्रोशखण्डे हि वर्त्तते।
लिङ्गभद्राश्रमं रम्यं पापघ्नं सर्वकामदम्।।५७।।

यत्र वै राजकन्या हि लिङ्गभद्राऽतिसुन्दरी।
सखीभिः शतसङ्ख्याभिः संवृता सम्बूव ह।।५८।।

क्रीडयन्ती वने तस्मिन्ददर्श ऋषिपुत्रकम्।
कञ्चित्काममिव प्राप्तं सुन्दराङ्गं सुशोभनम्।।५९।।

१. तोषार्थे

हे वाग्देवि ! इस स्तोत्र के द्वारा जो कोई मनुष्य मेरी स्तुति करेगा, वह भी निश्चित रूप से तुम्हारे समान हो जायेगा।।४७।।

हे सरस्वति ! जो मनुष्य प्रातःकाल उठ कर इस स्तोत्र को सुनेंगे और पाठ करेंगे, उनके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं रहेगा।।४८।।

स्कन्द ने कहा-

हे मुने ! इस प्रकार वर को प्राप्त करके देवताओं में श्रेष्ठ वाग्देवी सर्वव्यापक शम्भु को नमस्कार करके ब्रह्मलोक को चली गईं।।४९।।

वे भी भगवान् रुद्र वहां उत्तम पीठ पर स्थित हो गये। हे महाभाग ! इसलिये उसका नाम वागीश्वर पीठ प्रसिद्ध हुआ।।५०।।

आज भी उस स्थान पर देवता, ऋषि, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर और पन्नग नित्य आते हैं।।५१।।

हे भगवत्प्रिय नारद ! कुछ देवता तो मृग के रूप को और कुछ व्याघ्र के रूप को धारण करके विविध रूपों में अलक्षित रूप से रहते हैं।।५२।।

वे उस महात्मा परेश शिव को प्रसन्न करने के लिये चारों वेदों के मन्त्रों से युक्त शब्द को और शंखों एवं दुन्दुभियों की ध्वनियों को करते हैं।।५३।।

हे विद्वान् नारद ! वहां गङ्गा में वागीश्वर कुण्ड है। हे मुनिश्रेष्ठ ! उस कुण्ड में स्नान करने वाला सरस्वती का प्रिय होता है।।५४।।

यहां जो भी कार्य किया जाता है, वह असंख्य गुना हो जाता है। पापी बुद्धि वालों से इस स्थान को अच्छी प्रकार गुप्त रखना चाहिये।।५५।।

इस प्रकार मैंने तुमसे गङ्गा के उत्तरी तट के तीर्थ कह दिये हैं। हे महामते ! दक्षिणी तट पर जो उत्तम तीर्थ हैं, उनको सुनो।।५६।।

वागीश्वर महापीठ से एक कोस की दूरी पर सुन्दर, पापविनाशक और सभी कामनाओं को देने वाला लिङ्गभद्राश्रम है।।५७।।

यहां सैकड़ों सखियों से घिरी हुई अति सुन्दरी लिङ्गभद्रा नाम की राजकन्या होती थी।।५८।।

एक बार उस वन में क्रीडा करते हुये उसने किसी ऋषि-पुत्र को देखा, जो कामदेव के समान सुन्दर अङ्गों वाला और सुशोभन वहां पहुंच गया था।।५९।।

सुस्निग्धाभिर्जटाभिश्च राजमानं सुमालिनम्।
युवानं वयसा विप्रं दृष्ट्वा तं चकमे मुनिम्।।६०।।

कामबाणाभिसन्तप्ता बभूव राजपुत्रिका।
ऋषिपुत्रमुवाचेदं स्मितेन परिशोभिता।।६१।।

हावभावकटाक्षैश्च मोहयन्ती जगत्त्रयम्।
अंसयोर्न्यस्य बाहू वै कस्याश्चित्मुनिपुंगव।।६२।।

लिङ्गभद्रोवाच-

कस्त्वं सुन्दरसर्वाङ्ग किमर्थमागतोऽत्र वै।
अनुजानीहि मां सौम्य प्रपन्नां राजकन्यकाम्।।६३।।

हृतं मनस्त्वया मे हि सुन्दराङ्गेन धीमता।
भक्तां भजस्व मां नाथ सखीभिः सहितां शुभाम्।।६४।।

ऋषिपुत्र उवाच-

परस्त्रियं नैव काङ्क्षे मनसाऽपि कदाचन।
त्यक्त्वा नरकसामग्रीमागतोऽस्मि यतो वने।।६५।।

लिङ्गभद्रोवाच-

नाऽहं केनापि हे भद्र परिणीता महामते।
पाणिं गृहणीष्व मे शीघ्रं ततो दोषो न ते भवेत्।।६६।।

ऋषिपुत्र उवाच-

त्वं वै क्षत्रियजाताऽसि ब्राह्मणोऽहं सुनेत्रके।
आवयोः शुभ उद्वाहो भवितु कथमर्हति।।६७।।

लिङ्गभद्रोवाच-

चतस्रो ब्राह्मणस्योक्तास्तिस्रो वै क्षत्रियस्य तु।
द्वे वैश्यस्य तु भार्ये हिं शूद्रस्यैका समीरिता।।६८।।

ऋषिपुत्र उवाच-

ब्रह्मचार्यस्मि हे भद्रे ब्राह्मणी न विवाहिता।
पूर्वं कथं क्षत्रियजामुद्वहे नृपनन्दिनि।।६९।।

लिङ्गभद्रोवाच-

प्रपन्नां यो न भजते स्त्रियं कामातुरां भृशम्।
स वै नरकमभ्येति यावदाभूतसम्प्लवम्।।७०।।

चिकनी सुन्दर जटाओं से शोभायमान, उत्तम माला धारण किये, आयु से युवा विप्र को देख कर उस राजकन्या ने मुनि की कामना की।।६०।।

वह राजकन्या कामदेव के बाणों से सन्तप्त हो गई। वह सुन्दरी मुस्करा कर ऋषिपुत्र से यह बोली।।६१।।

हे मुनिश्रेष्ठ! अपने हाव, भाव और कटाक्षों से तीनों लोकों को मोहित करती हुई, किसी सखी के कन्धों पर भुजाओं को रख कर वह कहने लगी।।६२।।

लिङ्गभद्रा ने कहा-

हे सर्वाङ्गसुन्दर युवक! तुम कौन हो? यहां किसलिये आये हो? हे सौम्य! मुझ राजकन्या को अपने समीप आने की अनुमति दो।।६३।।

सुन्दर अङ्गों वाले तुझ बुद्धिमान् ने मेरे मन को हर लिया है। मैं तुम्हारी भक्त हूं सखियों सहित शुभ मेरा तुम सेवन करो।।६४।।

ऋषिपुत्र ने कहा-

मैं मन से भी परस्त्री को नहीं चाहता, क्योंकि मैं नरक की सामग्री को छोड़ कर वन में आया हूं।।६५।।

लिङ्गभद्रा ने कहा-

हे महामते भद्र! मेरा किसी से विवाह नहीं हुआ है। मेरा शीघ्र पाणिग्रहण कर लो। तदनन्तर तुमको दोष नहीं लगेगा।।६६।।

ऋषिपुत्र ने कहा-

हे सुन्दर नेत्रों वाली! तुम तो क्षत्रिय की पुत्री हो और मैं ब्राह्मण हूं। हम दोनों का शुभ विवाह कैसे हो सकता है?।।६७।।

लिङ्गभद्रा ने कहा-

ब्राह्मण की चारों वर्णों की पत्नियां होती हैं। क्षत्रिय की तीन वर्ण की और वैश्य की दो वर्णों की पत्नियां होती हैं। शूद्र की एक ही वर्ण की पत्नी कही गई है।।६८।।

ऋषिपुत्र ने कहा-

हे भद्रे! मैं ब्रह्मचारी हूं। मैंने ब्राह्मणी से विवाह नहीं किया है। हे राजकन्ये! मैं प्रथम क्षत्रिय कन्या से कैसे विवाह करूं?।।६९।।

लिङ्गभद्रा ने कहा-

जो व्यक्ति काम से बहुत अधिक आतुर और समीप आई हुई स्त्री का सेवन नहीं करता, वह जब तक संसार का प्रलय नहीं हो जाता, नरक को जाता है।।७०।।

ऋषिपुत्र उवाच-

निर्धनोऽस्मि मुनिः कान्ते कथं स्थास्यसि मद्गृहे।
त्वं तु राजन्यकन्याऽसि मुन्यन्नं खादयिष्यसि।।७१।।

लिङ्गभद्रोवाच-

ममाऽस्ति द्रव्यं बहुलं सख्यश्च परितो मम।
त्वं भविष्यसि द्रव्याग्रो भजमानां भज प्रभो।।७२।।

ऋषिपुत्र उवाच-

नाऽहं काङ्क्षे धनं सौम्ये किं कर्तव्यं धनेन वै।
अस्माकं तु मुनीनां हि तपोऽस्ति धनमुत्तमम्।।७३।।

लिङ्गभद्रोवाच-

किं जायते हि तपसा शीतोष्णसहनेन वै।
शरीरशोषकारेण त्यक्त्वा राज्यादिभोगकान्।।७४।।

ऋषिपुत्र उवाच-

शृणु कान्ते प्रवक्ष्यामि प्रश्नं वै यत्त्वया कृतम्।
फलं राज्यादिभोगानां तपसश्च तथैव च।।७५।।

संसारे दुर्लभं जन्म मनुष्येषु तथैव च।
तत्राऽपि द्विजवर्येषु ब्राह्मणेषु तथैव च।।७६।।

तत्राऽपि भारते वर्षे सुपुण्ये कामदायके।
तत्राऽपि ह्युत्तरे खण्डे यत्र गङ्गा सरिद्वरा।।७७।।

हरेः सान्निध्यकस्थाने तत्राऽपि च नृपात्मजे।
हरेर्नाम कथं त्यक्त्वा त्वन्यकार्यरतो भवेत्।।।७८।।

लक्ष्मीर्विद्युच्चला प्रोक्ता यौवनं क्षणभङ्गुरम्।
जीवितं चलपत्राम्बुसदृशं भवति प्रिये।।७९।।

अध्रुवं पुत्रदारादिसुहृज्जनगृहादिकम्।
ध्रुवमेकं परं ब्रह्मनाम सिद्धैकसेवितम्।।८०।।

प्रसक्ताः कामभोगेषु पुत्रदारागृहादिषु।
त्यक्त्वा तु श्रीशभजनं पतन्ति नरकेऽशुचौ।।८१।।

ऋषिपुत्र ने कहा-

हे कान्ते ! मैं निर्धन मुनि हूं, मेरे घर में कैसे रहोगी ? तुम राजकन्या होकर मुनियों के अन्न को कैसे खाओगी ? । ।७१ । ।

लिङ्गभद्रा ने कहा-

मेरे पास बहुत सारा धन है और मेरे चारों ओर सखियां हैं। तुम धनियों में अग्रणी हो जाओगे। प्रभो ! समीप आई हुई मेरा सेवन करो। ।७२ । ।

ऋषिपुत्र ने कहा-

हे सौम्ये ! मैं धन की आकांक्षा नहीं करता। मुझको धन का क्या करना है। हम मुनियों के लिये तो तपस्या ही उत्तम धन है। ।७३ । ।

लिङ्गभद्रा ने कहा-

राज्य आदि भोगों को छोड़ कर शरीर को सुख देने वाली तपस्या से और सरदी-गरमी को सहने से निश्चय ही क्या लाभ होता है ? । ।७४ । ।

ऋषिपुत्र ने कहा-

हे कान्ते ! जो प्रश्न तुमने किया है, उसका मैं उत्तर कहूंगा। राज्य आदि भोगों का और तपस्या का फल भी कहूंगा। ।७५ । ।

संसार में मनुष्य योनि में जन्म लेना वैसे ही दुर्लभ है। वहां भी द्विजवर्य ब्राह्मण जाति में जन्म लेना और भी दुर्लभ है। ।७६ । ।

उसमें भी कामनाओं को देने वाले पुण्यशाली भारतवर्ष में जन्म लेना और भी दुर्लभ है। उसमें भी उत्तराखण्ड में, जहां श्रेष्ठ नदी गङ्गा बहती है, जन्म लेना और भी दुर्लभ है। ।७७ । ।

हे राजकन्ये ! वहां भी विष्णु के समीप के स्थान में जन्म लेना और भी दुर्लभ है। हरि के नाम को छोड़कर कोई अन्य कार्य में कैसे लग सकता है। ।७८ । ।

लक्ष्मी और विद्युत् को चंचल कहा गया है। यौवन क्षणभङ्गुर होता है। हे प्रिये! जीवन चंचल पत्ते पर पड़े जल के समान होता है। ।७९ । ।

पुत्र, पत्नी आदि, मित्र, गृह आदि सब अस्थिर हैं। सिद्धों द्वारा एकमात्र सेवित एकमात्र ब्रह्म का नाम ही स्थिर है। ।८० । ।

विष्णु के भजन को छोड़ कर जो काम-वासनाओं और भोगों में तथा पुत्र-पत्नी आदि में फंसे रहते हैं, वे अपवित्र नरक में गिरते हैं। ।८१ । ।

इहैव क्षणसंसारे राज्यादीनां फलं शुभम्।
परत्र नरके चैव पच्यन्ते कामकारिणः।।८२।।

श्रीरामे हि रमानाथे मनो न्यस्य महामतिः।
स्थितोऽपि यत्र कुत्राऽपि भवदुःखैर्न बाध्यते।।८३।।

तस्मात्तपस्विना द्रव्यं तप एव हि वर्त्तते।
यस्माद्धनाद्राजकन्ये परमैश्वर्यभाग्भवेत्।।८४।।

लिङ्गभद्रोवाच-

अहमप्यागमिष्यामि तपः कर्तुं त्वया सह।
त्यक्त्वा राज्यादिभोगांश्च नोचेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम्।।८५।।

स्कन्द उवाच-

ओमित्युक्त्वा ततो विप्रस्तया सह महामुने।
तपश्चकार विप्रेन्द्रो देवैरपि सुदुष्करम्।।८६।।

तत्रैव वर्त्तते सो वै तप्यमानो महत्तपः।
लिङ्गभद्राऽपि विप्रेन्द्रसमीपे सरिदुत्तमा।
बभूव सहसा विप्र सर्वकामफलप्रदा।।८७।।

तत्सङ्गमो भवेद्यत्र गङ्गायामृषिकुण्डकम्।
तत्र कुण्डे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते।।८८।।

तस्माद्धि शरविक्षेपे गङ्गोदर्ध्वे नारसिंहकम्।
कुण्डं नृमुक्तिदं तत्र नारसिंही शिला स्मृता।।८९।।

गङ्गायामुत्तरस्यां हि रक्तवर्णा च नारद।
दर्शनात्स्पर्शनात्तस्याः पूजनान्नारसिंहकैः।
मन्त्रैः पुष्पोपचारैश्च पुनर्भुवि न जायते।।९०।।

तत्र वै स्थीयते भक्तैः प्रहलादाद्यैर्महामुने।
नारसिंहश्चतुर्दश्यां श्रूयते शङ्खजो रवः।।९१।।

ततः क्रोशऊर्ध्वभागे प्रयागनिकटे तथा।
रामतीर्थं समाख्यातं सर्वयज्ञफलप्रदम।।९२।।

यत्र वै जामदग्न्यस्तु कार्त्तवीर्यवधेच्छया।
कृतवान्सुतपस्तीव्रं जितवान् हैहयेश्वरम्।।९३।।

राज्य आदि का फल इस क्षणभङ्गुर संसार में ही शुभ है, परन्तु वासनाओं में फंसे व्यक्ति परलोक में नरक में पकाये जाते हैं।।८२।।

महाबुद्धिशाली व्यक्ति लक्ष्मी के पति श्रीराम में मन को निहित करके जहां कहीं भी स्थित रहता है, वह संसार के कष्टों से बाधित नहीं होता।।८३।।

इसलिये तपस्वियों का धन तप ही होता है। हे राजकन्ये! इस धन से वह परम ऐश्वर्य का भागी होता है।।८४।।

लिङ्गभद्रा ने कहा-

राज्य आदि भोगों को छोड़ कर तपस्या करने के लिये मैं भी तुम्हारे साथ आऊंगी। नहीं तो मैं प्राणों का परित्याग कर दूंगी।।८५।।

स्कन्द ने कहा-

हे महामुने! तदनन्तर 'ओ३म्' यह कह कर वह विप्र उस राजकन्या के साथ देवताओं द्वारा भी दुष्कर तप को करने लगा।।८६।।

वह अब भी महान् तप करता हुआ वहीं विद्यमान है। हे विप्र नारद! उस विप्रश्रेष्ठ के समीप तपस्या करती हुई लिङ्गभद्रा सहसा उत्तम नदी में परिणत हो गई, जो सब कामनाओं के फल को प्रदान करने वाली है।।८७।।

गङ्गा में जहां उसका संगम होता है, वह ऋषिकुण्ड कहलाता है। उस कुण्ड में स्नान करके मुनष्य सारे पापों से छूट जाता है।।८८।।

उस स्थान से एक शर-विक्षेप दूर गङ्गा के ऊपर के भाग में नारसिंह कुण्ड है। यह मनुष्यों को मुक्ति देने वाला है। वहां नारसिंही शिला है।।८९।।

हे नारद! यह नारसिंही शिला गङ्गा की धारा में उत्तर दिशा में लाल रंग की है। उस शिला के दर्शन से और स्पर्श से नरसिंह सम्बन्धी मन्त्रों द्वारा पूजन करने और पुष्पों द्वारा उपचार करने से पृथिवी पर पुनर्जन्म नहीं होता।।९०।।

हे महामुने! वहां भक्त प्रहलाद आदि स्थित रहते हैं। चतुर्दशी को नरसिंह के शंख की ध्वनि सुनाई देती है।।९१।।

इससे एक कोस ऊपर के भाग में प्रयाग (अलकनन्दा-भागीरथी संगम) के समीप रामतीर्थ प्रसिद्ध है, जो सब यज्ञों के फल को देने वाला है।।९२।।

जहां कार्तवीर्य के वध की इच्छा से जमदग्नि-पुत्र परशुराम ने तीव्र तप किया था और हैहय देश के राजा को जीता था।।९३।।

ततः शीलवतीकुण्डाद्वर्त्तते तीर्थमुत्तमम्।
स्नात्वा सकृद्यत्र तीर्थे अश्वमेधफलं लभेत्।।९४।।

त्रिवेण्यास्तु अधोभागे तटे याम्योत्तरे तथा।
तीर्थानि प्रवराण्येव कथितानि तवाऽग्रतः।।९५।।

अशेषेण हि वक्तुं वै केन वा शक्यते बुध।
असङ्ख्यानि सुतीर्थानि वर्त्तन्ते मुनिसत्तम।।९६।।

तीर्थानां प्रवरोत्पत्तिं शृणोति व्याकरोति च।
स्मरणं चैव तीर्थानां तीर्थस्नानफलं लभेत्।।९७।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे देवप्रयागमाहात्म्यवर्णनं
नाम एकषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः।।

द्विषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः

गङ्गाऽलकनन्दयोः सङ्गमे तुण्डीश्वरशिवलिङ्गस्य वर्णनं, श्रीरामेण स्थापितस्य विश्वेश्वरलिङ्गस्य सेतिहासं वर्णनं, दक्षयज्ञे महेशापमानमसहमानायाः सत्याः प्राणपरित्यागेन परमकुपितेन शिवेन दक्षयज्ञविध्वंसनं, मृतसतीशवधृतस्कन्धेन तेन पृथिवीपरिभ्रमणं भूम्यां सतीताटङ्कपतनेन ताटङ्केश्वर-शिवलिङ्गप्रसिद्धिस्तस्य च माहात्म्यवर्णनम्।

नारद उवाच-

स्कन्द स्कन्द महाबाहो श्रुतं गङ्गोत्तरे तटे।
क्षेत्रं देवप्रयागाख्यं माहात्म्यं च मया प्रभो।।१।।

इदानीं श्रोतुमिच्छाम्यलकनन्दातटोर्ध्वके।
कियत्प्रमाणं क्षेत्रस्य देवतीर्थस्य सुव्रत।।२।।

कानि कानि च तीर्थानि तत्र सन्ति महामते।
तद्वदस्व महाभाग दासोऽहं तव धीमतः।।३।।

स्कन्द उवाच-

शृणु नारद विप्रेन्द्र यत्पृष्टोऽहं त्वया मुने।
अलकायां समायाताऽलकनन्दा ततः स्मृता।।४।।

तदनन्तर शीलवती कुण्ड के संगम तक उत्तम तीर्थ है, जहां एक बार स्नान करके मनुष्य अश्वमेघ यज्ञ के फल को प्राप्त करता है।।९४।।

त्रिवेणी के निचले भाग में और गङ्गा के उत्तरी तथा दक्षिणी तट पर जो उत्तम तीर्थ हैं, उनको मैंने तुम्हारे समक्ष कह दिया है।।९५।।

हे विद्वान् मुनिश्रेष्ठ ! इन सबको सम्पूर्ण रूप से कौन कह सकता है। यहां असंख्य उत्तम तीर्थ विद्यमान हैं।।९६।।

जो व्यक्ति तीर्थों की उत्तम उत्पत्ति का वृत्तान्त सुनता है और उसकी व्याख्या करता है और जो तीर्थों का स्मरण करता है, वह तीर्थों में स्नान के फल को प्राप्त करता है।।९७।।

इस प्रकार स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में देवप्रयागमाहात्म्य
वर्णन नाम का १६१ वां अध्याय समाप्त हुआ।।

अध्याय - १६२

गङ्गा-अलकनन्दा के सङ्गम पर तुण्डीश्वर नाम के शिवलिङ्ग का वर्णन, श्रीराम द्वारा स्थापित विश्वेश्वर लिङ्ग का इतिहास सहित वर्णन, दक्ष के यज्ञ में महेश के अपमान को न सहने वाली सती के प्राणों के परित्याग से परम कुपित हुये शिव द्वारा यज्ञ का विध्वंस, शिव द्वारा सती के मृत शरीर को कन्धे पर रख कर भूमि पर भ्रमण करना, यहां भूमि पर सती के कान से कर्णाभूषण (ताटङ्क) के गिरने से शिवलिङ्ग का नाम ताटङ्केश्वर प्रसिद्ध होना। इसके माहात्म्य का कथन।

नारद ने कहा-

हे महाबाहो प्रभो स्कन्द ! मैंने गङ्गा के उत्तरी तट पर स्थित देवप्रयाग नाम के क्षेत्र का माहात्म्य सुन लिया है।।१।।

हे सुव्रत ! अब मैं सुनना चाहता हूं कि अलकनन्दा से ऊपर की ओर देवप्रयाग तीर्थ के क्षेत्र का कितना परिमाण है।।२।।

हे महामते ! वहां कौन से तीर्थ हैं, हे महाभाग ! उसको मुझको बताओ। मैं तुम बुद्धिमान् का दास हूं।।३।।

स्कन्द ने कहा-

हे विप्रश्रेष्ठ मुने नारद ! जो तुमने मुझसे पूछा है। उसको सुनो। यह नदी अलकापुरी में आई थी, अतः इसको अलकनन्दा कहा गया है।।४।।

नारद उवाच-

केन वै हि प्रकारेण समायाता सरिद्वरा।
अलकायां महाभाग कौबेर्यां शिवपुत्रक।।५।।

स्कन्द उवाच-

साधु पृष्टं त्वया विप्र सर्वभूतोपकारकम्।
तद्वक्ष्यामि मुनिश्रेष्ठ शृणु चैकमना भव।।६।।

श्रीविष्णुर्वामनो भूत्वा गतो बलिगृहे मुने।
तत्र गत्वा ययाचे तं भूमिं त्रैपादिकां शुभाम्।।७।।

दत्तवान्दानवेन्द्रस्तु भूमिं श्रीवामनाय च।
[1]पदैकेन महाविष्णुः सर्वं भूमण्डलं मुने।।८।।

आक्रम्य च द्वितीयेन पातालं नीतवान्बलिम्।
तृतीयेन तु पादेनाक्रमिता ब्रह्माण्डभित्तिका।।९।।

ततस्तस्य महाभाग वामनस्य महात्मनः।
पदाङ्गुलिनखेनाऽसौ स्फुटिता रंहसा ततः।।१०।।

यदाधाराणि सर्वाणि ब्रह्माण्डानि महामुने।
तद्वै तु जलरूपेण वर्त्तते द्रवमुत्तमम्।।११।।

तद्वै ब्रह्मन्महाभाग गदितं मुनिसत्तमैः।
तस्माद् रन्ध्रान्मुनिश्रेष्ठ नखजातात्तु[2] निःसृतम्।।१२।।

ब्रह्मद्रवाख्यमम्भस्तु पतितं ध्रुवमण्डले।
गृहीतं शिरसा तेन ध्रुवेणौत्तानपादिना।।१३।।

विष्णुपादाब्जसम्भूतं जलं मोक्षप्रदायकम्।
निपपात ततस्तत्तु सप्तर्षीणां तु मण्डले।।१४।।

[3]तैश्च सप्तर्षिभिर्विप्र धृतं तच्छीर्षकैस्ततः।
ब्रह्मलोके मेरुशृङ्गे पतितं जलमुत्तमम्।।१५।।

ततो वै ब्रह्मसदनाच्चतुर्द्धा गां गता मुने।
जलधारा चतुर्भिश्च नामभिर्मुनिसत्तम।।१६।।

---

१. पादैकेन २. विनिःसृतम् ३. तच्च

नारद ने कहा-

हे महाभाग, शिव के पुत्र स्कन्द ! यह श्रेष्ठ नदी कौबेरी (उत्तर) दिशा में अलका में किस प्रकार आई थी । ।५ । ।

स्कन्द ने कहा-

हे विप्र ! सब प्राणियों का उपकार करने वाली बात को तुमने अच्छा पूछा है । उसको कहूंगा । हे मुनिश्रेष्ठ ! एकाग्र मन होकर सुनो । ।६ । ।

हे मुने ! श्री विष्णु वामन-अवतार धारण करके बलि के घर गये । वहां जाकर उन्होंने शुभ तीन पद वाली भूमि मांगी । ।७ । ।

दानवराज बलि ने भूमि को श्रीवामन के लिये दान कर दिया । हे मुने ! तब महाविष्णु एक पद से सारे भूमण्डल को.... । ।८ । ।

आक्रान्त करके दूसरे पद से बलि को पाताल में ले गये । तीसरे पद से उन्होंने ब्रह्माण्ड की भित्ति को आक्रान्त कर लिया । ।९ । ।

हे महाभाग ! तदनन्तर उस महात्मा वामन के पैर की अंगुलि के नख से वह धारा वेग से फूट पड़ी । ।१० । ।

हे महामुने ! जिसके आधार से सारे ब्रह्माण्ड स्थित हैं, वह जल रूप में उत्तम द्रव है । ।११ । ।

हे महाभाग मुनिश्रेष्ठ ! उस नख के रन्ध्र से जो जल प्रवाहित हुआ था, उसी द्रव को श्रेष्ठ मुनियों ने ब्रह्मन् कहा है । ।१२ । ।

वह ब्रह्मद्रव नाम का जल ध्रुवमंडल पर गिरा । वहां इसको उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव ने सिर पर ग्रहण किया । ।१३ । ।

विष्णु के चरण रूपी कमल से उत्पन्न हुआ और मोक्ष देने वाला वह जल तदनन्तर सप्तर्षियों के मण्डल में गिरा । ।१४ । ।

हे विप्र नारद ! तदनन्तर ब्रह्मलोक में मेरु पर्वत के शिखर पर गिरे हुये उस उत्तम जल को उन संप्तर्षियों ने सिर पर धारण किया । ।१५ । ।

हे मुनियों में श्रेष्ठ मुनि नारद ! तदनन्तर ब्रह्मलोक से वह जलधारा चार नामों से पृथिवी पर गई । ।१६ । ।

सीता चाऽलकनन्दा च चक्षुर्भद्रा तथैव च।
चतुर्दिक्षु समुद्रं वै क्षारं प्राप्तवती ततः।।१७।।

सीता नु ब्रह्मसदनादाजगाम च केसरान्।
अधोऽधः सा प्रस्रवन्ती गन्धमादनमूर्द्धसु।।१८।।

पतिता सा तु भद्राऽश्वं वर्षं प्राच्यां मुनीश्वर।
माल्यवच्छिखरात्सा तु चक्षुर्वै केतुमालकम्।।१९।।

प्रतीच्यां दिशि पतिता भद्रा चोत्तरतो मुने।
पर्वताद्वै शृङ्गवतः कौबेरं वर्षमाप सा।।२०।।

इयं त्वलकनन्दादिर्दक्षिणस्यां दिशि प्रभो।
बहूनि गिरिकूटानि आक्रम्य हिमपर्वते।
धारिता तु जटाभिश्च हरेणाऽमिततेजसा।।२१।।

ततः इक्ष्वाकुवंशे वै जातो राजा भगीरथः।
तुतोष तपसा देवं शिवं कैलाससंस्थितम्।।२२।।

ययाचे स महाराजो गङ्गां स्वपितृमुक्तये।
ततश्च पतिता सा तु अधः शृङ्गे हिमालयात्।।२३।।

तच्छृङ्गं हि द्विधा भूतं गङ्गाया रंहसा मुने।
जातौ तस्याः प्रवाहौ द्वावागतौ भारते शुभे।।२४।।

एकः प्रवाहो गङ्गाया अलकायां समागतः।
अतो वै मुनिशार्दूल नामाऽभूत्सर्वपापनुत्।।२५।।

अलकनन्देति चाऽऽख्याता प्राणिनां मुक्तिदायिनी।
देवप्रयागके क्षेत्रे एकीभूता तु सा मुने।।२६।।

गां गतेति गतो गङ्गा जाताऽसौ मुक्तिदायिनी।
प्रवाहयोर्महाभाग श्रीगङ्गाऽलकनन्दयोः।
भेदस्त्वया न ज्ञातव्यः पर्यायः कथितो मया।।२७।।

उत्पत्तिश्चैव गङ्गायाः कथिता हि तवाऽग्रतः।
द्विधाभूतो यथा गङ्गाप्रवाहो मुनिसत्तम।।२८।।

यावन्नदी भवेदेव बाणजा मुनिसेविता।
तावद्देवप्रयागाख्यं क्षेत्रं वै गदितं शुभम्।।२९।।

उनके नाम थे- सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा। तदनन्तर वे चारों दिशाओं में खारी समुद्र में पहुंचीं।।१७।।

ब्रह्मलोक से निकल कर सीता नाम की धारा गन्धमादन पर्वत के शिखरों पर नीचे और नीचे बहती हुई केसर के प्रदेश (काश्मीर) में पहुंची।।१८।।

वह भद्रा नाम की धारा, हे मुनीश्वर नारद ! माल्यवान् शिखर से बहती हुई पूर्व दिशा में अश्ववर्ष देश में गई। चक्षु नाम की धारा केतुमाल पर्वत पर...।।१९।।

हे मुने ! उत्तर दिशा की ओर से पश्चिम दिशा में पर्वत के शिखर से बहती हुई कौबेरवर्ष देश में पहुंची।।२०।।

हे प्रभो नारद ! यह अलकनन्दा नाम की धारा पहले तो हिमालय पर्वत पर दक्षिण दिशा में बहुत से पर्वत शिखरों पर गिरी। तदनन्तर अमित तेजस्वी शिव ने इसको जटाओं में धारण कर लिया।।२१।।

तदनन्तर इक्षवाकु वंश में भगीरथ नाम का राजा हुआ। उसने कैलाश पर्वत पर स्थित देवता शिव को तपस्या से प्रसन्न किया।।२२।।

उस महाराज ने अपने पितरों की मुक्ति के लिये उस गङ्गा की याचना की। तदनन्तर वह हिमालय से नीचे के शिखर पर गिरी।।२३।।

हे मुने ! गङ्गा के वेग से वह शिखर दो भागों में बंट गया। उसके दो प्रवाह हो गये और वे शुभ धारायें भारतवर्ष में आईं।।२४।।

गङ्गा का एक प्रवाह अलका प्रदेश में आया। हे मुनिश्रेष्ठ ! इसलिये उसका यह अलकनन्दा नाम सब पापों का विनाश करने वाला हुआ।।२५।।

वह प्राणियों को मुक्ति प्रदान करने वाली धारा अलकनन्दा कहलाई। हे मुने! देवप्रयाग क्षेत्र में वे दोनों प्रवाह पुनः एक हो गये।।२६।।

क्योंकि वह धारा 'गाम्' (पृथिवी पर) 'गता' (गई थी), अतः गङ्गा हो गई। यह मुक्ति को देने वाली है। हे महाभाग ! श्रीगङ्गा और अलकनन्दा इन दोनों प्रवाहों में तुम भेद को नहीं मानना। यह तो मैंने उसका पर्याय कहा है।।२७।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! जिस प्रकार से गङ्गा का प्रवाह दो भागों में बंट गया था, उसको और गङ्गा की उत्पत्ति के वृत्तान्त को मैंने तुम्हारे समक्ष कह दिया है।।२८।।

अलकनन्दा की धारा की ओर जहां तक मुनियों से सेवित बाणजा नदी है, वहां तक शुभ देवप्रयाग नाम का क्षेत्र कहा गया है।।२९।।

सङ्गमात्पूर्वभागे तु गङ्गाया दक्षिणे तटे।
तुण्डीश्वरो महादेवो भक्तानां प्रीतिवर्द्धनः।।३०।।

तीरे चाऽलकनन्दायाः कुण्डं पुण्यतमं स्मृतम्।
यत्र कुण्डे महाभागो भिल्लस्तुण्डी महायशाः।।३१।।

तपश्चकार भगवति मनो न्यस्य परे शिवे।
वर्षं द्विषट्सहस्राणि प्रसन्नोऽभूत्सदाशिवः।।३२।।

स्वगणं कृतवान्भिल्लं तुण्डिनं भक्तिसंयुतम्।
तेन तुण्डीश्वरो नाम्ना बभूवाऽस्मिन्स्थले शुभे।।३३।।

यस्य सन्दर्शनादेव नरो याति परां गतिम्।
अस्मिन्कुण्डे नरः स्नात्वा तुण्डिना सदृशो भवेत्।।३४।।

दन्वीश्वरो महादेवस्तस्माच्छरचतुष्टये।
तपस्तेपे महाभाग यत्र दाक्षायणी दनुः।।३५।।

पञ्चवर्षसहस्राणि पञ्चवर्षशतानि च।
एकपादेन ध्यायन्ती वर्तन्ती परमं शिवम्।।३६।।

ततः प्रसन्नो भगवान् महारुद्रो महामुने।
दनुं ह्युवाचेति वचो वरं वरय सुव्रते।।३७।।

शतं पुत्रा मे जायन्तां महाबलपराक्रमाः।
त्रैलोक्यसंक्षोभकाराश्च ययाचे वरमुत्तमम्।।३८।।

ततो जाताः शतं पुत्रा महाबलपराक्रमाः।
[1]झर्झरः शकुनिश्चैव महानादस्तथैव च।
कालनाभः शङ्कुशिरा विक्रान्ताद्या महासुराः।।३९।।

यस्य तीर्थस्य कृपया प्राप पुत्रान्महौजसः।
तदादि भगवाञ्छम्भुस्तत्रैव स्थितवान्स्वयम्।।४०।।

इदं क्षेत्रं महापुण्यं कृतं तेन महात्मना।
तत्रैव दक्षभागे तु नदी धनवती तथा।।४१।।

---

१. ऊर्ज्जरः

गङ्गा के दाहिने तट पर संगम से पूर्व की ओर तुण्डीश्वर महादेव हैं, जो भक्तों के प्रेम को बढाने वाले हैं। ।३०। ।

अलकनन्दा के तट पर एक पुण्यशाली कुण्ड है। इस कुण्ड में महायशस्वी तुण्डी नामक भील ने.... । ।३१। ।

भगवान् शिव को मन में निहित करके १२ हजार वर्ष तक तप किया था। इससे सदाशिव प्रसन्न हो गये। ।३२। ।

उन्होंने भक्तिभाव से भरे तुण्डी भील को अपना गण बना लिया। इसलिये इस शुभ स्थल पर वे तुण्डीश्वर नाम से प्रसिद्ध हुये। ।३३। ।

इसके दर्शनमात्र से ही मनुष्य परम गति को प्राप्त करता है। इस कुण्ड में स्नान करके मनुष्य तुण्डी के समान हो जाता है। ।३४। ।

उस स्थान से चार शरविक्षेप (लगभग ४०० हाथ) की दूरी पर दन्वीश्वर महादेव हैं, जहां दक्ष की पुत्री दाक्षायणी दनु ने तपस्या की थी। ।३५। ।

एक पैर से खड़ी हुई वह पांच हजार पांच सौ वर्षों तक परम शिव का ध्यान करती रही। ।३६। ।

तदनन्तर, हे महामुने ! भगवान् महारुद्र प्रसन्न हो गये। वे दनु से बोले कि हे सुव्रते! वर मांगो। ।३७। ।

उसने यह उत्तम वर मांगा कि मेरे महाबली पराक्रमी और तीनों लोकों को क्षुब्ध करने वाले सौ पुत्र उत्पन्न हों। ।३८। ।

तदनन्तर उसके महाबली पराक्रमी सौ पुत्र उत्पन्न हुये। वे झर्झर, शकुनि, महानाद, कालनाभ, शंकुशिरा, विक्रान्त आदि महान् असुर थे। ।३९। ।

जिस तीर्थ की कृपा से उसने महातेजस्वी पुत्रों को प्राप्त किया था, तबसे लेकर भगवान् शम्भु उसी तीर्थ में स्वयं स्थित हो गये। ।४०। ।

इस क्षेत्र को उस महात्मा ने महापुण्यशाली बना दिया। वहीं पर दाहिनी ओर धनवती नाम की नदी है। ।४१। ।

पूर्वं बभूव सा वेश्या रराध शिवमुत्तमम्।
हरसान्निध्यगा भूत्वा ह्युपचारैरनेकधा।।४२।।

गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैर्नानाविधैस्तथा।
दन्वीश्वरं महादेवं नन्द्यादिगणसेवितम्।।४३।।

जितेन्द्रिया जितक्रोधा जिताहाराऽभवत्सदा।
कदाचिद् भगवान् रुद्रः प्रसन्नोऽदात्स्वकं स्थलम्।
नदी भूत्वा तत्र गता नाम्ना धनवती तदा।।४४।।

तस्याश्च सङ्गमे स्नातो जायते न च जन्मने।
यं यं चिन्तयते कामं तं ददाति महेश्वरः।।४५।।

अस्मिन्क्षेत्रे महाभाग लिङ्गानां [1]पञ्चकं किल।
विश्वेश्वरं महालिङ्गं ताटङ्केश्वरमेव च।।४६।।

तथा तुण्डीश्वरं लिङ्गं दन्वीश्वरमथापि वा।
लिङ्गानां पञ्चकं दृष्ट्वा न च भूयोऽभिजायते।।४७।।

नारद उवाच-

श्रुतं हि त्वत्तो भगवंल्लिङ्गानां क्षेत्रमुत्तमम्।
कुत्र विश्वेश्वरं लिङ्गमुक्तं यद् भवता मम।।४८।।

उत्पत्तिश्च कथं तस्य श्रीविष्णोर्देवशर्मणः।।४९।।

स्कन्द उवाच-

रामो भूत्वा महाभाग गतो देवप्रयागके।
विश्वेश्वरं शिवं स्थाप्य पूजयित्वा यथाविधि।।५०।।

तस्योपरि क्षेत्रराजं भैरवं भीमदर्शनम्।
उवाच वचनं रामः सर्वान्वै मुनिपुङ्गवान्।
शिवस्य विश्वनाथस्य माहात्म्यं च महामुने।।५१।।

श्री राम उवाच-

शृणुध्वं मुनयः सर्वे विश्वनाथस्य वैभवम्।
प्रणामं विश्वनाथस्य यः करोति समाहितः।
ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते नाऽत्र संशयः।।५२।।

---
१. पञ्चके

पहले वह धनवती नाम की वेश्या थी। शिव के समीप जाकर उसने विविध उपचारों से उत्तम शिव की आराधना की।।४२।।

विविध प्रकार के गन्धों, पुष्पों, धूपों और दीपों से उसने नन्दी आदि गणों से सेवित दन्वीश्वर महादेव की उपासना की।।४३।।

वह सदा इन्द्रियों को जीतने वाली, क्रोध को जीतने वाली और आहार को जीतने वाली थी। कभी प्रसन्न होकर भगवान् रुद्र ने उसको अपना स्थान दिया। तब वह धनवती नाम की नदी होकर वहां बहने लगी।।४४।।

उसके संगम पर स्नान करने से मनुष्य का पुनर्जन्म नहीं होता। वह जिस जिस कामना का विचार करता है, महेश्वर उसको वह प्रदान करते हैं।।४५।।

हे महाभाग! इस देवप्रयाग क्षेत्र में निश्चय से पांच शिवलिङ्ग प्रसिद्ध हैं – विश्वेश्वर, महालिङ्ग, ताटङ्केश्वर...... ।।४६।।

तुण्डीश्वर, और दन्वीश्वर। इन पांचों लिङ्गों का दर्शन करके मनुष्य का पुनर्जन्म नहीं होता।।४७।।

नारद ने कहा-

हे भगवन्! मैंने तुमसे लिङ्गों के उत्तम क्षेत्र का वृत्तान्त सुन लिया है। यह जो आपने मुझको बताया है, वह विश्वेश्वर लिङ्ग कहां है।।४८।।

श्रीविष्णु के भक्त देवशर्मा के क्षेत्र में उस लिङ्ग की उत्पत्ति कैसे हुई।।४९।।

स्कन्द ने कहा-

हे महाभाग! राम के रूप में विष्णु देवप्रयाग क्षेत्र में गये। वहां शिव की स्थापना करके यथाविधि उनका पूजन किया।।५०।।

उसके ऊपर भयानक रूप वाले क्षेत्रपाल भैरव थे। हे महामुने! राम ने सब मुनि श्रेष्ठों को विश्वनाथ शिव के माहात्म्य के सम्बन्ध में ये वचन कहे।।५१।।

श्रीराम ने कहा-

हे सब मुनियो! विश्वनाथ शिव के वैभव को सुनो। जो कोई समाधिस्थ होकर विश्वनाथ को प्रणाम करता है, वह इस लोक में ब्रह्महत्या आदि पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें कोई संशय नहीं है।।५२।।

एकवारमपि येनाऽसौ पूजितः परमेश्वरः।
तेन वै कोटिलिङ्गानि पूजितानि शिवस्य वै।।५३।।

पूजनादस्य सर्वस्य पूजितोऽहं न संशयः।
रुद्राध्यायं यो जपति अत्र वै शिवसन्निधौ।
स वै महेश्वरो देवो ज्ञातव्यो भक्तिसंयुतैः।।५४।।

विश्वेश्वरमपूज्येह तीर्थाटनरतो भवेत्।
तत्सर्वं निष्फलं याति मृतो नरकमाप्नुयात्।।५५।।

गङ्गायाश्च जलेनैव रुद्राध्यायेन वाऽथवा।
अभिषिच्यते महादेवो यैश्च पुण्यवरात्मभिः।
त एव त्रिषु लोकेषु धन्याः पुण्यतमाः स्मृताः।।५६।।

अहोभाग्यमहोभाग्यं कुर्वतां शिवपूजनम्।
क्षेत्रपालं भैरवाख्यं पूजयित्वा यथाविधि।
तदा मे दर्शनं कार्यं पुण्यरक्षणहेतवे।।५७।।

स्कन्द उवाच-

इति वै कथयित्वा तु सर्वानेव मुनीश्वरान्।
स्थितवांस्तत्र देशे तु देवतीर्थे महामते।।५८।।

ते सर्वे मुनयो विप्र कृतवन्तः शिवार्चनम्।
रुद्राध्यायेन केचित्तु रुद्रसाम्ना तथैव च।
शिवस्य पूजनं कृत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।।५९।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूजयेद्विश्वनायकम्।
विश्वेश्वरमपूजित्वा यात्रां वै प्रकरोति यः।
अन्धो भवति दुर्बुद्धिर्महादेवप्रकोपतः।।६०।।

विषयेऽत्र कथा विप्र वर्त्तते तां शृणुष्व भो।
पूर्वं बभूव विप्रेन्द्रो वेदवेदाङ्गपारगः।।६१।।

षट्कर्मनिरतो विप्रश्शान्तात्मा विजितेन्द्रियः।
नाम्ना वेदनिधिः ख्यातो वेदानां निधिरेव सः।।६२।।

तस्य भार्या बभूवाऽसौ नाम्ना तु कमला तथा।
तयोर्द्वयोर्मनसि वै अभूत्तीर्थाटनाय च।।६३।।

जिसने एक बार भी उस परमेश्वर का पूजन कर लिया है, उसने निश्चय से करोड़ों शिव लोकों की पूजा कर ली है।।५३।।

इस शिव के पूजन करने से उसने मेरा पूजन कर लिया है, इसमें कोई संशय नहीं है। जो शिव के समीप रह कर रुद्राध्याय का जप करता है, भक्तों को चाहिये कि उसको महेश्वर देव ही समझें।।५४।।

विश्वेश्वर का पूजन न करके जो यहां तीर्थाटन करता है, उसका वह सब निष्फल हो जाता है और मरने पर वह नरक में पहुंचता है।।५५।।

गङ्गा के जल से और रुद्राध्याय का पाठ करके जो श्रेष्ठ पुण्यात्मा महादेव का अभिषेक करते हैं, वे ही तीनों लोकों में धन्य हैं और पुण्यतम कहे गये हैं।।५६।।

शिव का पूजन करने वालों का अहोभाग्य है, अहोभाग्य है। विधि के अनुसार भैरव नाम के क्षेत्रपाल का पूजन करके तब पुण्यों की रक्षा करने के लिये मेरा दर्शन करना चाहिये।।५७।।

स्कन्द ने कहा-

हे महामते नारद ! इस प्रकार सब मुनीश्वरों से कह कर भगवान् राम उस क्षेत्र में देवप्रयाग तीर्थ में स्थित हो गये।।५८।।

हे विप्र ! उन सब मुनियों ने शिव की अर्चना की। कुछ ने तो रुद्राध्याय का पाठ करके और कुछ ने रुद्र सामों का पाठ करके अर्चना की। शिव का पूजन करके पुनर्जन्म नहीं होता।।५९।।

इसलिये सब प्रकार के प्रयत्न से विश्व के नायक विश्वेश्वर का पूजन करे। शिव का पूजन न करके जो कोई तीर्थयात्रा करता है, महादेव के प्रकोप से वह दुर्बुद्धि अन्धा हो जाता है।।६०।।

हे विप्र ! इसके सम्बन्ध में एक कथा है, उसको सुनो। पहले वेद-वेदांगों में पारंगत एक ब्राह्मण था।।६१।।

वह शान्तात्मा और जितेन्द्रिय ब्राह्मण षट्कर्म में रत रहता था। वह वेदनिधि नाम से प्रसिद्ध था और वेदों की निधि ही था।।६२।।

उसकी पत्नी कमला नाम की थी। उन दोनों के मन में तीर्थों के भ्रमण के लिये इच्छा हुई।।६३।।

अस्मिंस्तीर्थे समायातावुक्तेन विधिना मुने।
अवज्ञाय शिवं देवं प्रभावज्ञौ न तस्य वै।।६४।।

चक्रतुर्न च पूजां वै पूर्वं तौ दम्पती किल।
गतौ तु ब्रह्मकुण्डे तु स्नात्वा यत्र यथाविधि।।६५।।

गतौ देवालये तस्य रामस्य परमात्मनः।
दर्शनं पूजनं कृत्वा समर्प्योपायनं तथा।।६६।।

ततो वसिष्ठकुण्डे तु गत्वा स्नातौ द्विजोत्तमौ।
ततो वै शिवतीर्थे तु स्नात्वा तु भगवत्प्रियौ।।६७।।

वैताले कुण्डके स्नात्वा शिलायाः पूजनं कृतम्।
कृतं च पिण्डदानं वै तर्पिताः पितृदेवताः।।६८।।

एवं क्रमेण सर्वत्र गतौ तौ द्विजदम्पती।
षड्रात्रमत्र संस्थित्या ब्राह्मणा भोजितास्ततः।।६९।।

गतौ तु तौ स्वदेशाय देवतीर्थान्महामुने।
अर्द्धमार्गे गतौ यावत्तावदन्धौ बभूवतुः।।७०।।

केन वै कर्म्मणा जातावन्धौ वै द्विजदम्पती।
विधिवद्धि कृताऽऽवाभ्यां यात्रा देवप्रयागके।
इति चिन्तापरौ जातौ तावद्रात्रिरवर्त्तत।।७१।।

सुप्तौ तत्रैव विपिने सिंहव्याघ्रादिसङ्कुले।
स्वप्ने ददर्शतुर्विप्रं मुण्डं काषायवाससम्।।७२।।

[1]कापालिकं वृहद्दन्तं कपालन्यस्तरक्तकम्।
भीमनादं भयकरं सर्वसत्त्वभयङ्करम्।।७३।।

कापाली तावुवाचाऽथ पिबामि रुधिरं हि वाम्।
यतो हि मामनादृत्य युवां वै मदसंयतौ।।७४।।

इति श्रुत्वा वचस्तस्य कापालिकमहात्मनः।
भयेन वेपमानौ तु स्वप्नतो विनिवर्त्तितौ।।७५।।

१. कपालिकं

हे मुने ! वे दोनों उक्त विधि के अनुसार तीर्थयात्रा करते हुये इस तीर्थ में आये। शिव के प्रभाव को न जान कर उन्होंने उनकी अवज्ञा की।।६४।।

उन दोनों दम्पती ने वहां विश्वेश्वर शिव का पूजन नहीं किया। वे दोनों ब्रह्मकुण्ड गये और वहां विधि के अनुसार स्नान किया।।६५।।

तदनन्तर वे दोनों परमात्मा राम के मन्दिर में गये। वहां दर्शन-पूजन करके उपहार समर्पित किये।।६६।।

तदनन्तर उन दोनों श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने वसिष्ठ कुण्ड में स्नान किया। तदनन्तर उस भगवत्प्रिय ने शिवतीर्थ में स्नान किया।।६७।।

वेतालकुण्ड में स्नान करके शिव का पूजन किया। वहां पिण्डदान किया और पितर देवताओं का तर्पण किया।।६८।।

इस प्रकार क्रमशः वे दोनों दम्पती सब तीर्थों में गये। तदनन्तर यहां छः रात्रियां ठहर कर ब्राह्मणों को भोजन कराया।।६९।।

हे महामुने ! वे दोनों देवप्रयाग तीर्थ से अपने देश की ओर गये। जबकि वे आधे मार्ग में ही गये थे कि वे अन्धे हो गये।।७०।।

हम दोनों ब्रह्मण दम्पती किस कर्म के कारण अन्धे हो गये हैं, हम दोनों ने निश्चय से देवप्रयाग में विधिवत् यात्रा की है, इस प्रकार से वे चिन्ता में पड़ गये और रात्रि हो गई।।७१।।

वे वहीं सिंहों, बाघों आदि से भरे हुये जंगल में सो गये। स्वप्न में उन्होंने काषाय वस्त्र पहने सिर मुंडे ब्राह्मण को देखा।।७२।।

वह कापालिक था, बड़े दान्त थे, कपाल पर रक्त लगा था, भयानक शब्द करता था, भय उत्पन्न करने वाला था और सब प्राणियों के लिये भयङ्कर था।।७३।।

कापालिक ने कहा कि मैं तुम दोनों का खून पिऊंगा, क्योंकि मद से युक्त होकर तुमने मेरा अनादर किया है।।७४।।

इस प्रकार उस महात्मा कापालिक के वचन को सुन कर वे दोनों भय से कांपने लगे और उनका स्वप्न टूट गया।।७५।।

किमिदं किमिदं जातमूचतुश्च परस्परम्।
ततो वेदनिधिर्विप्रो विचारं कृतवांस्तदा।।७६।।

विचार्य मनसा विप्रो बभाषे कमलां प्रियाम्।।७७।।

वेदनिधिरुवाच-

शृणु कान्ते प्रवक्ष्यामि स्वप्नस्य कारणं प्रिये।
येन वै कारणेनाऽऽवामन्धौ जातौ महावने।।७८।।

तत्रैव शिवलिङ्गं च वर्त्तते मोक्षदायकम्।
देवप्रयागके क्षेत्रे तीर्थानामुत्तमोत्तमे।।७९।।

अजानदभ्यां हि मूर्खाभ्यां विश्वनाथो न पूजितः।
तेन वै कारणेनाऽथ जातावावामनेत्रकौ।।८०।।

पुनस्तत्रैव गत्वा तु पूजयित्वा यथाविधि।
विश्वेश्वरं महालिङ्गं भविष्यावः पुनस्तथा।।८१।।

स्कन्द उवाच-

इत्युक्त्वा वचनं प्रेम्णा देवतीर्थे समागतौ।
आगत्य विधिवत्पूज्य शिवलिङ्गं हि मुक्तिदम्।
आजग्मतुः सुदृष्ट्या वै स्वदेशं द्विजसत्तम।।८२।।

इह भोगान्हि सम्भुज्य मृतौ मुक्तिमवापतुः।
इति ते कथितो दिव्य इतिहासः पुरातनः।।८३।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शिवलिङ्गं हि पूजयेत्।
विश्वेश्वरो महादेवः सर्वकामफलप्रदः।।८४।।

पूजितं येन लिङ्गं हि पूजिताः सर्वदेवताः।
इति ते कथितं विप्र विश्वनाथस्य वैभवम्।
यच्छ्रुत्वा हि नरो भक्त्या सर्वान् कामानवाप्नुयात्।।८५।।

नारद उवाच-

ताटङ्केश्वरलिङ्गं हि त्वदुक्तं वर्त्तते गुह।
तद् ब्रूहि तस्य माहात्म्यमुत्पत्तिञ्च महामते।।८६।।

यह क्या हुआ है, यह क्या हुआ है, इस प्रकार वे दोनों आपस में कहने लगे। तदनन्तर उस समय वेदनिधि ने विचार किया। ।७६। ।

मन से विचार करके विप्र ने प्रिया कमला से कहा। ।७७। ।

वेदनिधि ने कहा-

हे प्रिये ! मैं स्वप्न के कारण को बताऊंगा, जिस कारण से हम दोनों इस महावन में अन्धे हो गये हैं। ।७८। ।

तीर्थों में उत्तम तीर्थ देवप्रयाग क्षेत्र में वहीं पर मोक्ष प्रदाने करने वाला शिवलिङ्ग है। ।७९। ।

न जानते हुये हम दोनों ने विश्वनाथ का पूजन नहीं किया। इस कारण से हम दोनों नेत्ररहित हो गये हैं। ।८०। ।

पुनः वहीं जाकर और विश्वेश्वर महालिङ्ग का विधिवत् पूजन करके हम दोनों पुनः वैसे ही हो जायेंगे। ।८१। ।

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार प्रेम के वचन कह कर वे दोनों देवप्रयाग तीर्थ में आये। आकर उन्होंने विधिवत् मुक्तिदायक शिवलिङ्ग का पूजन किया। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ नारद ! तदनन्तर उत्तम दृष्टि पाकर वे दोनों स्वदेश आ गये। ।८२। ।

इस लोक में उन दोनों ने भोगों का भोग करके मरने पर मुक्ति प्राप्त की। इस प्रकार मैंने तुमसे पुरातन इतिहास को कह दिया है। ।८३। ।

इसलिये सब प्रकार से प्रयत्न करके शिवलिङ्ग का पूजन करे। विश्वेश्वर महादेव सब कामनाओं के फल को देने वाले हैं। ।८४। ।

जिसने उस विश्वेश्वर लिंग का पूजन कर लिया है, उसने सब देवताओं का पूजन कर लिया है। इस प्रकार हे विप्र नारद ! मैंने तुमसे विश्वेश्वर विश्वनाथ के वैभव का वर्णन कर दिया है, जिसको भक्ति से सुनने पर मनुष्य सभी कामनाओं को प्राप्त करता है। ।८५। ।

नारद ने कहा-

हे स्कन्द ! जो तुमने ताटङ्केश्वर लिङ्ग के विषय में कहा था, तो हे महामते ! उसकी उत्पत्ति और माहात्म्य का वर्णन करो। ।८६। ।

स्कन्द उवाच-

शृणु नारद वक्ष्यामि ताटङ्केश्वरवैभवम्।
यच्छ्रुत्वा हि नरो याति परमां गतिमुत्तमाम्।।८७।।

शान्ताया दक्षिणे तीरे वर्त्तते भक्तवत्सलः।
यं दृष्ट्वाऽपि नरो भक्त्या शिवलोके महीयते।।८८।।

पूर्वं युगादौ विप्रेन्द्र दक्षो नाम महायशाः।
दक्षाङ्गुष्ठाद् बभूवाऽसौ ब्रह्मणः परमात्मनः।।८९।।

सत्याद्यास्तस्य कन्या वै बभूवुरतुलाननाः।
सतीं ददौ महेशाय दक्षो वै हि प्रजापतिः।।९०।।

ततः कदाचिद्दक्षस्तु यज्ञं वै प्रचकार ह।
नाऽऽकारितो महादेवः सती च परमेश्वरी।।९१।।

श्रुत्वा सती पितुर्यज्ञमाजगाम स्वयं मुने।
सर्वाः दृष्टा भगिन्यस्तु देवाः सर्वे तथा द्विज।।९२।।

सत्युवाच-

कथं नाकारितावावां सर्वे चाकारितास्त्वया।
इति ब्रुवन्तीं तां देवीमुवाच स प्रजापतिः।।९३।।

दक्ष उवाच-

हे पुत्रि तव भर्त्ता तु मङ्गलं नार्हते शिवे।
इति ज्ञात्वा महादेवि शिवो नाऽऽकारितो मया।।९४।।

स्कन्द उवाच-

इति श्रुत्वा वचस्तस्य भर्तृनिन्दात्मकं मुने।
चुकोप सा भृशं देवी पपाताऽग्नौ समिन्धने।।९५।।

तच्छ्रुत्वा पतनं तस्याः शिवोऽपि स्वयमागतः।
दक्षयज्ञं विनाश्यैव स्कन्धे तां वै विधृत्य च।
पृथिव्यामटयामास भ्रान्तो भूत्वा सदाशिवः।।९६।।

ततश्चचाल वसुधा समुद्राश्च चकम्पिरे।
उल्कापातास्तथा जाता दिशां दाहस्तथैव च।।९७।।

स्कन्द ने कहा-

हे नारद ! सुनो । ताटङ्केश्वर लिङ्ग के वैभव को कहूंगा, जिसको सुन कर मनुष्य परम उत्तम गति को प्राप्त करता है।।८७।।

वह ताटङ्केश्वर लिङ्ग शान्ता नदी के दाहिने किनारे पर है, जिसका भक्तिपूर्वक दर्शन करने से मनुष्य शिवलोक में जाकर महिमा को प्राप्त करता है।।८८।।

पहले सत्ययुग के प्रारम्भ में महायशस्वी दक्ष थे। वह परमात्मा ब्रह्मा के दाहिने अंगूठे से उत्पन्न हुये थे।।८९।।

उस दक्ष की अतुलनीय सुन्दर मुख वाली सती आदि कन्यायें हुईं। प्रजापति दक्ष ने सती को शिव के लिये दे दिया।।९०।।

तदनन्तर कभी दक्ष ने यज्ञ किया। उस यज्ञ में उसने महादेव और सती परमेश्वरी को नहीं बुलाया।।९१।।

हे मुने ! पिता के यज्ञ की बात सुन कर सती स्वयं वहां आ गई। हे द्विज नारद! वहां उसने सभी बहनों को और देवताओं को देखा।।९२।।

सती ने कहा-

हे पिता ! तुमने सबको बुलाया है तो हम दोनों को क्यों नहीं बुलाया ? इस प्रकार कहती हुई उस देवी से प्रजापति ने कहा।।९३।।

दक्ष ने कहा-

हे पुत्रि ! मंगल कृत्यों में शिव को निमन्त्रित करना योग्य नहीं है। यह समझ कर हे महादेवि ! मैंने शिव को नहीं बुलाया।।९४।।

स्कन्द ने कहा-

हे मुने ! इस प्रकार से पति की निन्दा करने वाले उसके वचन को सुन कर वह देवी बहुत क्रुद्ध हुई और उसने अपने को जलती हुई अग्नि में गिरा दिया।।९५।।

अग्नि में गिरने की उस घटना को सुन कर शिव भी स्वयं वहां आ गये। दक्ष के यज्ञ का विनाश करके और उस सती को कन्धे पर रख कर विभ्रान्त से होते हुये सदाशिव पृथिवी पर भटकने लगे।।९६।।

तदनन्तर पृथिवी विचलित हो गई और समुद्र विकम्पित हो गये। उल्कापात होने लगे और दिशायें जलने लगीं।।९७।।

चण्डादयो महावाता वर्तुर्वै क्रोधिते शिवे।
ततो देवा भयोद्विग्ना ब्रह्माणं शरणं ययु:।।९८।।

स्तुतिं वै चक्रिरे तस्य ब्रह्मणस्तु महात्मन:।।९९।।

देवा ऊचु:-

नमस्ते भगवन्ब्रह्मन्सृष्टिकर्त्रे गुणात्मने।
नम: कमलनाभाय चतुरस्याय ते नम:।।१००।।

आदिभूताय सर्वेषां विश्वपालनहेतवे।
स्वर्णगर्भ नमस्तेऽस्तु नमस्ते देवपालक।।१०१।।

स्कन्द उवाच-

इत्यादिस्तुतिभिर्ब्रह्मा स्तुतो देवैर्भयाकुलै:।
उवाच भगवान्देवानिन्द्राद्यान्संहताञ्जलीन्।।१०२।।

ब्रह्मोवाच-

देवा: गच्छामहे सर्वे विष्णुं वै परमेश्वरम्।
सोऽपि देवो महादेवं शान्तात्मानं करिष्यति।।१०३।।

स्कन्द उवाच-

ततो देवा: सगन्धर्वा यक्षराक्षसतापसा:।
ब्रह्माणमनुजग्मुस्ते यत्र देवो रमापति:।।१०४।।

ददृशु: परमं देवं सनकाद्यैस्तु सेवितम्।
शंखचक्रगदापद्मवनमालाविराजितम्।
[1]वामाङ्गे न्यस्तलक्ष्मीकं भासमानं यथा रविम्।।१०५।।

स्तुतिमारेभिरे कर्त्तु देवा इन्द्रपुरोगमा:।।१०६।।

देवा ऊचु:-

नमो भगवते तुभ्यं वेधसे परमात्मने।
सर्वकर्त्रे नमस्तुभ्यं सर्वपालाय ते नम:।।१०७।।

सर्वहर्त्रे नमस्तुभ्यं गुणत्रयस्वरूपिणे।
त्रयीवेद्याय देवाय त्रयीरूपाय ते नम:।।१०८।।

---

१. वामांगे... रविम् पाठ सन्दिग्ध है

शिव के क्रोधित होने पर निश्चय से चण्ड आदि भयानक वायु बहने लगे। तब भय से घबराये देवता ब्रह्मा की शरण में गये।।९८।।

वे महात्मा ब्रह्मा की स्तुति करने लगे।।९९।।

देवताओं ने कहा-

हे भगवन् ब्रह्मन् ! सृष्टि की रचना करने वाले गुणस्वरूप आपको नमस्कार है। नाभि के कमल से उत्पन्न आपको नमस्कार है। चार मुखों वाले आपको नमस्कार है।।१००।।

विश्व का पालन करने के लिये सबके आदिभूत आपको नमस्कार है। हे हिरण्यगर्भ! आपको नमस्कार है। हे देवताओं के रक्षक ! आपको नमस्कार है।।१०१।।

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार भय से व्याकुल देवताओं द्वारा इन स्तुतियों से स्तुति किये जाते हुये भगवान् ब्रह्मा ने अंजलि बांधे हुये इन्द्र आदि देवताओं से कहा।।१०२।।

ब्रह्मा ने कहा-

हे देवताओ ! हम सब परमेश्वर विष्णु के पास चलते हैं। वे ही महादेव को शान्त करेंगे।।१०३।।

स्कन्द ने कहा-

तदनन्तर गन्धर्वो सहित देवता, यक्ष, राक्षस और तपस्वी ब्रह्मा के पीछे पीछे वहां गये, जहां लक्ष्मी के पति विष्णु थे।।१०४।।

उन्होंने सनक आदि ऋषियों से सेवित परम देव विष्णु को देखा। वे शंख, चक्र, गदा, पद्म और वनमाला से विभूषित थे। उनके वाम अंग में लक्ष्मी निहित थीं और वे सूर्य के समान दीप्यमान थे।।१०५।।

इन्द्र आदि देवताओं ने तब उनकी स्तुति करना आरम्भ कर दिया।।१०६।।

देवताओं ने कहा-

सबकी रचना करने वाले, परमात्मा, भगवन् तुम्हारे लिये नमस्कार है। सब जगत् की रचना करने वाले तुमको नमस्कार है। सबका पालन करने वाले तुमको नमस्कार है।।१०७।।

सबका संहार करने वाले तुमको नमस्कार है। तीनों गुणों के स्वरूप वाले तुमको नमस्कार है। वेदत्रयी से बोधगम्य तुमको नमस्कार है। वेदत्रयी रूप तुमको नमस्कार है।।१०८।।

निराकाराय ते देव भक्तानां भक्तवत्सल।
विश्वाकाराय ते विष्णो नमोऽनन्तस्वरूपिणे।।१०९।।

एकरूपाय ते देव बहुरूपाय ते नमः।
दुष्टदैत्यविनाशाय दशावतारधारिणे।।११०।।

स्कन्द उवाच-

इति स्तुतो वै भगवान्प्रसन्नोऽभूज्जनार्दनः।
उवाच वचनं देवानिन्द्रब्रह्मपुरोगमान्।।१११।।

श्रीभगवानुवाच-

ज्ञातं मया सुरगणा यदर्थं मम चाऽऽगताः।
स्वयं वै तद्विधास्यामि गच्छध्वं स्वगृहे सुराः।।११२।।

स्कन्द उवाच-

इति श्रुत्वा निगदितं गताः सर्वे दिवौकसः।
भगवानपि विश्वात्मा दाक्षायण्यां विवेश सः।।११३।।

निर्विश्य तत्र देहे तु खण्डशस्तु चकर्त तम्।
खण्डं खण्डं हि पतितं भूतले पीठतां गतम्।।११४।।

अत्र वै पतितं तस्यास्ताटङ्कं मुनिसत्तम।
तत्ताटङ्कस्य पतनादत्रैव स्थितवान्प्रभुः।।११५।।

तदादिभगवाञ्छम्भुस्ताटङ्केश्वरतां गतः।
शमयामास तत् क्रोधं चक्रपाणी रमापतिः।।११६।।

महादेवश्च देवी च चक्रतुर्वासमुत्तमम्।
एवंविधा तदुत्पत्तिर्भक्तानां मोक्षदायिनी।
यस्य सन्दर्शनादेव नरस्तु शिवतामियात्।।११७।।

अत्र वै निवसन्विप्रो जितात्मा जितविग्रहः।
समुच्चरंस्तु षड्वर्णं मंत्राणां मंत्रमुत्तमम्।
षण्मासाल्लभते सिद्धिं देवैरपि दुरासदाम्।।११८।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे देवप्रयागमाहात्म्य-
वर्णनं नाम द्विषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः।।१६२।।

भक्तों के भक्तवत्सल ! निराकार रूप वाले तुमको नमस्कार है। हे विष्णो ! विश्व के आकार वाले अनन्त स्वरूप तुमको नमस्कार है।।१०९।।

हे देव ! एक रूप वाले तुमको नमस्कार है और बहुत रूपों वाले तुमको नमस्कार है। दुष्ट दैत्यों का विनाश करने के लिये दस अवतार धारण करने वाले तुमको नमस्कार है।।११०।।

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार स्तुति किये जाने पर भगवान् जनार्दन प्रसन्न हो गये। वे इन्द्र, ब्रह्मा आदि देवताओं से यह वचन बोले।।१११।।

श्रीभगवान् ने कहा-

हे देवताओ ! मैं समझ गया हूं, जिस कार्य के लिये तुम यहां आये हो। हे देवताओ! अपने घर जाओ। उस कार्य को मैं स्वयं करूंगा।।११२।।

स्कन्द ने कहा-

विष्णु के इस कथन को सुन कर सब देवता चले गये। उस विश्वात्मा भगवान् ने भी दक्षपुत्री सती के अन्दर प्रवेश किया।।११३।।

उस शरीर में प्रवेश करके उसने उसको टुकड़े टुकड़े करके काट डाला। वे टुकड़े भूमि पर गिर कर पीठ बन गये।।११४।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! यहां उस सती का तांटङ्क (कान का आभूषण) गिर गया। उस ताटङ्क के गिरने से यहां पर ही प्रभु शिव स्थित हो गये।।११५।।

तब से लेकर भगवान् शम्भु ताटङ्केश्वर हो गये। उनके क्रोध को रमापति चक्रपणि विष्णु ने शान्त कर दिया।।११६।।

महादेव और देवी यहां उत्तम निवास करने लगे। इस प्रकार उस ताटङ्केश्वर महादेव की उत्पत्ति भक्तों को मोक्ष देने वाली हुई, जिसके दर्शनमात्र से ही मनुष्य शिवरूप को प्राप्त करता है।।११७।।

यहां निवास करते हुये जितात्मा, शरीर को जीत लेने वाला, षड्वर्ग का पालन करता हुआ और उत्तम मन्त्रों का उच्चारण करता हुआ ब्राह्मण छः पास की अवधि में देवों के लिये भी दुष्प्राप्य सिद्धि को प्राप्त करता है।।११८।।

इस प्रकार स्कन्दपुराणान्तर्यत केदारखण्ड में देवप्रयाग-
माहात्म्य वर्णन नाम का १६२ वां अध्याय पूरा हुआ।।

त्रिषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः

देवप्रयागयात्राविधानस्य विस्तरेण निरूपणम्, तीर्थस्नानादिमन्त्रनिरूपणञ्च

सूत उवाच-

गङ्गाऽधोभागतीर्थानां श्रुत्वा माहात्म्यमुत्तमम्।
तथैव शिवलिङ्गानां शिवदानां महाबलाः।।१।।

भुक्तिमुक्तिप्रदानां हि वैभवं मुनिपुङ्गवाः।
स्कन्दं सेनापतिं देवं पुनः पप्रच्छ नारदः।।२।।

नारद उवाच-

भगवन् पार्वतीपुत्र भक्तानां भक्तवत्सल।
देवप्रयागयात्राया विधानं मुनिसेवितम्।।३।।

कथं स्नानं प्रकर्तव्यं तत्र विष्णोर्महात्मनः।
पूजनं कीदृशं देव नियमाः के च सुव्रत।।४।।

के मन्त्राः शिवपूजायां सूर्यार्चायां च वै गुह।
एतन्मे तत्त्वतो ब्रूहि यदि चेन्मयि ते दया।।५।।

स्कन्द उवाच-

यत्त्वया परिपृष्टोऽहं तत्ते वक्ष्यामि वै मुने।
विधानं पुण्यदं श्रीदं कामदं वै सुपुत्रदम्।।६।।

शृणु प्राज्ञ महाबाहो मनः कृत्वा सुनिश्चलम्।
भक्तानां भक्तवर्यो वै त्वत्तो नान्योऽस्ति कश्चन।।७।।

प्रथमं तु गुरुं तोष्य भूषणाच्छादनासनैः।
महागणपतिं पूज्य यथाप्राप्तोपचारकैः।।८।।

अस्तेयं ब्रह्मचर्यं च शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
एकभक्तव्रतं चैव विष्णुपूजनमेव च।।९।।

एवमादिप्रनियमैर्युक्तः संनिःसरेद् गृहात्।
मनःशुद्ध्या रमानाथं ध्यायन्वै मुनिसत्तम।।१०।।

अध्याय -१६३

देवप्रयाग की यात्रा के विधान का विस्तार से निरूपण, तीर्थ-स्नान आदि के मन्त्रों का निरूपण

सूत ने कहा-

हे महाबलशालियो ! गङ्गा के नीचे के भाग के तीर्थों के माहात्म्य को सुन कर और शिव तक पहुंचाने वाले शिवलिङ्गों के....... ।।१।।

भोग और मोक्ष को देने वाले वैभव को सुनकर, हे मुनिश्रेष्ठो ! नारद ने देवताओं के सेनापति स्कन्द से पुनः पूछा ।।२।।

नारद ने कहा-

भक्तों के प्रति भक्तवत्सल हे भगवन् पार्वतीपुत्र ! देवप्रयाग की यात्रा के मुनियों से सेवित विधान को बताओ ।।३।।

हे देव ! वहां किस प्रकार स्नान करना चाहिये और महात्मा विष्णु का किस प्रकार पूजन करना चाहिये ? हे सुव्रत ! इसके नियम क्या हैं ।।४।।

हे स्कन्द ! शिव की पूजा के और सूर्य की अर्चना के मन्त्र कौन से हैं ? यदि तुमको मेरे प्रति दया है तो इस बात को मुझसे ठीक ठीक कहो ।।५।।

स्कन्द ने कहा-

हे मुने ! जो तुमने मुझसे पूछा है, वह तुमको बताऊंगा। तीर्थयात्रा का यह विधान पुण्य देने वाला, लक्ष्मी को देने वाला, काम को देने वाला और निश्चय से पुत्र को देने वाला है ।।६।।

हे महाबाहो बुद्धिमान् नारद ! मन को सुस्थिर करके सुनो। भक्तों में तुमसे अधिक श्रेष्ठ भक्त अन्य कोई नहीं है ।।७।।

पहले तो भूषण, आच्छादन और आसन द्वारा गुरु को सन्तुष्ट करे। तदनन्तर यथा प्राप्त उपचारों द्वारा महागणपति का पूजन करे ।।८।।

अस्तेय, ब्रह्मचर्य, शौच और इन्द्रियनिग्रह का पालन करे। एक भक्त के लिये यथोचित व्रत करे और विष्णु का पूजन करे ।।९।।

इस प्रकार के विशेष नियमों का पालन करके, हे मुनिश्रेष्ठ ! शुद्ध मन से रमानाथ विष्णु का ध्यान करता हुआ घर से बाहर निकले ।।१०।।

गच्छन्तं देवतीर्थं तु दृष्ट्वा वै पितरः सुतम्।
प्रहृष्यन्ति प्रनृत्यन्ति ते सर्वे मुक्तिलालसाः।।११।।

गच्छतो देवतीर्थे तु मानुषस्य महात्मनः।
पदेपदेऽश्वमेधस्य फलं भवति निश्चितम्।।१२।।

ततः क्षेत्रस्य निकटे गत्वा दृष्ट्वा च जह्नुजाम्।
क्षेत्रं च क्षेत्रपालं च श्रीरामं परमेश्वरम्।
प्रणमेद्दण्डवद् भूमाविति मन्त्रानुदीरयेत्।।१३।।

गङ्गे सरिद्वरे देवि भुक्तिमुक्तिप्रदायिनि।
तव सन्दर्शनादेव मुक्तिः प्राप्ता मया शुभा।।१४।।

क्षेत्रराज नमस्तेऽस्तु विष्णुप्रिय नमोऽस्तु ते।
ततो वै क्षेत्रपालं च प्रार्थयेद्विष्णुसेवकम्।।१५।।

क्षेत्रपाल महाभाग देह्यनुज्ञां मम प्रभो।
नारायणस्य महतो दर्शनाय महात्मनः।।१६।।

इत्याज्ञां भैरवीं प्राप्य विष्णुं वै प्रणमेत्सुधीः।।१७।।

नारायण दयासिन्धो नमस्ते भक्तवत्सल।
प्रणमामि भवन्तं वै प्रसन्नो भव मे सदा।।१८।।

ततो वै क्षेत्रमध्ये तु प्रगच्छेद् भक्तिसंयुतः।
उपोष्य चैकां रजनीं मनसा संस्मरन्हरिम्।।१९।।

ब्राह्मे मुहूर्ते शयनं त्यक्त्वा चाऽऽवश्यकी क्रियाः।
कृत्वाऽरुणोदये यायाद् ब्रह्मकुण्डे सुनिर्मले।।२०।।

प्रथमं भस्मना स्नानं कर्तव्यं मुनिपुङ्गव।
सन्ध्यादिब्रह्ममन्त्रैश्च भस्मनो ग्रहणं भवेत्।।२१।।

अभिमन्त्र्याऽग्निमिति वै भस्मेत्युद्धरणं भवेत्।
मानस्तोकेति मन्त्रेण लेपनं त्र्यम्बकेण वै।।२२।।

एवं यः स्नाति मर्त्यो हि भस्मना मुनिवन्दित।
तत्क्षणात्तस्य नश्यन्ति पापानि निखिलानि च।।२३।।

पुत्र को देवप्रयाग तीर्थ की ओर जाते देख कर मुक्ति की लालसा करने वाले वे सब पित्तर प्रसन्न होते हैं, और नाचने लगते हैं। ।११।।

देवप्रयाग तीर्थ में जाते हुये महात्मा मनुष्य को कदम कदम पर अश्वमेघ यज्ञ का फल मिलता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। ।१२।।

तदनन्तर देवप्रयाग क्षेत्र के निकट जाकर गङ्गा के दर्शन करे। क्षेत्र को और क्षेत्रपाल को तथा परमेश्वर राम को, भूमि पर लेट कर दण्डवत् प्रणाम करे और इन मन्त्रों का उच्चारण करे। ।१३।।

हे नदियों में श्रेष्ठ गङ्गे देवि ! तुम भोगों को और मोक्ष को प्रदान करने वाली हो। तुम्हारे दर्शन से ही मैंने शुभ मुक्ति को प्राप्त कर लिया है। ।१४।।

हे क्षेत्रराज ! तुमको नमस्कार है। हे विष्णु के प्रिय क्षेत्र ! तुम को नमस्कार है। तदनन्तर विष्णु के सेवक क्षेत्रपाल से प्रार्थना करे। ।१५।।

हे महाभाग क्षेत्रपाल प्रभो ! मुझ को महात्मा महान् नारायण के दर्शन के लिये अनुमति दीजिये। ।१६।।

इस प्रकार भैरव की आज्ञा को प्राप्त करके बुद्धिमान् यात्री विष्णु को प्रणाम करे। ।१७।।

हे दयासिन्धो भक्तवत्सल नारायण ! तुमको नमस्कार है। मैं आपकी प्रणाम करता हूं। आप सदा मेरे प्रति प्रसन्न रहें। ।१८।।

तदनन्तर भक्ति से युक्त होकर, एक रात्रि उपवास करके, मन से हरि का स्मरण करता हुआ क्षेत्र के मध्य में जावे। ।१९।।

ब्राह्ममुहूर्त में शयन को छोड़कर, आवश्यक क्रियाओं को करके अरुणोदय वेला में अतिस्वच्छ ब्रह्मकुण्ड में जावे। ।२०।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! पहले भस्म से स्नान करना चाहिये। सन्ध्या आदि ब्रह्ममन्त्रों से भस्म को ग्रहण करना चाहिये। ।२१।।

अग्नि को अभिमन्त्रित करके भस्म को निकाला जाता है। थोड़ी सी मात्रा में भस्म का शिव के मन्त्र के साथ लेपन करे। ।२२।।

हे मुनियों से वन्दनीय नारद ! इस प्रकार जो मनुष्य भस्म से स्नान करता है, उसके सारे पाप तत्क्षण नष्ट हो जाते हैं। ।२३।।

मृदा स्नानं ततः कुर्यान्मन्त्रैरेभिस्तु नारद।
येषामुच्चारणादेव मुच्यते सर्वपातकैः।।२४।।

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे।
शिरसा धारयिष्यामि रक्ष त्वं मां पदे-पदे।।२५।।

भूमिर्वै [1]धरणा धेनुः काश्यपी लोकधारिणी।
उद्धृताऽसि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।।२६।।

मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम्।
मृत्तिके ब्रह्मदत्ताऽसि कश्यपेनाऽभिमन्त्रिता।।२७।।

मृत्तिके देहि मे पुष्टिं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।
त्वया हतेन पापेन गच्छामि परमां गतिम्।।२८।।

इति वै मृत्तिकास्नानं कृत्वा गङ्गां तु प्रार्थयेत्।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि यानि तीर्थानि सागरे।
पुष्करे यानि तीर्थानि तानि ते सन्ति जह्नुजे।।२९।।

तिस्रःकोट्योऽर्द्धकोटी च तीर्थानां भूतले स्मृताः।
त्रयस्त्रिंशत्तथा देवास्त्वज्जले सन्ति जह्नुजे।।३०।।

त्वज्जले मज्जनान्मातर्ममाऽस्तु गतिरुत्तमा।
भवाऽकूपारतरणे पोतस्त्वज्जलमुत्तमम्।।३१।।

विना वै भवतीं मातर्नाऽन्यो मे गतिकारकः।
नमस्ते देवदेवेशि पतितं मां समुद्धर।।३२।।

इत्युच्चार्य नरो भक्त्या गङ्गायां प्रविशेत्ततः।
भैरवं प्रार्थयेदेभिर्मन्त्रवर्यैस्तु नारद।।३३।।

सागरस्वननिर्घोष दण्डहस्ताऽसुरान्तक।
जगत्स्रष्टर्जगन्मर्दिन्नमामि त्वां सुरेश्वरम्।।३४।।

तीक्ष्णदंष्ट्रं महाकायं कल्पान्तदहनोपमम्।
भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि।।३५।।

---

१. धरणी

हे नारद ! तदनन्तर इन मन्त्रों के साथ मिट्टी से स्नान करे। इन मन्त्रों का उच्चारण करने से ही मनुष्य सब पापों से छूट जाता है।।२४।।

हे अश्वक्रान्ते (घोड़ों द्वारा आक्रान्त), रथक्रान्ते (रथ द्वारा आक्रान्त) और विष्णुक्रान्ते (विष्णु द्वारा आक्रान्त) पृथिवि ! मैं तुमको सिर से धारण करूंगा। तुम मेरी कदम-कदम पर रक्षा करना।।२५।।

भूमि निश्चय से धारण करने वाली है। वह लोकों को धारण करने वाली काश्यप की गौ है। उसका सौ भुजाओं वाले कृष्ण वर्ण के वराह ने उद्धार किया था।।२६।।

हे मृत्तिके ! जो मैंने दुष्कृत किया है, तो मेरे उस पाप का हरण करो। हे मृत्तिके! कश्यप ने अभिमन्त्रित करके तुमको ब्राह्मणों के लिये दान किया था।।२७।।

हे मृत्तिके ! मुझ को तुम पुष्टि प्रदान करो। तुमसे ही सब कुछ प्रतिष्ठित है। तुम्हारे द्वारा पाप को नष्ट कर देने पर मैं परम गति को प्राप्त करता हूं।।२८।।

इस प्रकार मृत्तिका से स्नान करके गङ्गा से प्रार्थना करे। पृथिवी पर जितने तीर्थ हैं, समुद्र में जितने तीर्थ हैं, और पुष्कर में जितने तीर्थ हैं, हे जह्नु की पुत्री गङ्गे ! वे सब तुममें हैं।।२९।।

इस पृथिवीतल पर साढ़े तीन करोड़ तीर्थ कहे गये हैं। हे गङ्गे ! वे तीर्थ और ३३ देवता तुम्हारे जल में विद्यमान हैं।।३०।।

हे मातः ! तुम्हारे जल में डुबकी लगाने से मेरी उत्तम गति होवे। संसाररूपी समुद्र को पार करने में तुम उत्तम उज्ज्वल जहाज हो।।३१।।

हे मातः ! आपके विना अन्य कोई मेरी सद्गति कराने वाला नहीं है। हे देवताओं की स्वामिनि ! तुमको नमस्कार है। मुझ पतित का उद्धार करो।।३२।।

इस प्रकार का उच्चारण करके मनुष्य भक्ति से गङ्गा में प्रवेश करे। हे नारद ! तदनन्तर इन श्रेष्ठ मन्त्रों से भैरव की प्रार्थना करे।।३३।।

हे समुद्र के स्वर के समान घोष करने वाले, दण्ड को हाथ में रखने वाले, असुरों के विनाशक; जगत् की रचना करने वाले, और जगत् का मर्दन करने वाले भैरव ! तुम सुरेश्वर को मैं नमस्कार करता हूं।।३४।।

तीक्ष्ण दाढों वाले, विशालकाय, प्रलयकालीन अग्नि के सदृश दहनशील हे भैरव! तुम्हारे लिये नमस्कार है। मुझको अनुमति दीजिये।।३५।।

इत्याज्ञां भैरवीं प्राप्य तीर्थे स्नानं समाचरेत्।
अन्यथा तत्फलस्यार्द्धं तीर्थेशो हरति ध्रुवम्।।३६।।

देशकालौ च सङ्कीर्त्य ध्यायन्नारायणं हृदि।
स्नानं कुर्यात्प्रयत्नेन उक्तेन विधिना मुने।।३७।।

स्नात्वा गच्छेत्ततस्तीरे कृत्वा सन्ध्यादिकाः क्रियाः।
पितृक्रियाश्च कृत्वा वै ब्राह्मणांस्तोषयेत्तदा।।३८।।

भूमिदो राज्यमाप्नोति हयदो वाहनानि च।
धेनुदश्च महाभाग परमां गतिमाप्नुयात्।।३९।।

अन्नदानेन दारिद्र्यं रत्नदो गतिमुत्तमाम्।
हिरण्यदः सुवंशं हि सुन्दरं देहमेव च।।४०।।

अन्यान्यपि च दानानि दत्वा वै पुष्कलानि च।
विश्वेश्वरं शिवं गच्छेत्तत्र तस्य च पूजनम्।।४१।।

कृत्वा शैवेन मन्त्रेण षड्वर्णेन मुनीश्वर।
धूपदीपादिकं दत्त्वा स्तुत्वा नत्वा च भक्तितः।
ततः श्रीरामचन्द्रस्य दर्शनाय व्रजेत्सुधीः।।४२।।

विश्वेश्वरमसम्पूज्य यः कुर्यादन्यकर्मकम्।
तत्तस्य विफलं याति शिवक्रोधान्न संशयः।।४३।।

श्रीरामनिकटे गत्वा दण्डवत्प्रणमेत्सुधीः।
ततोऽनेन विधानेन पूजयेद्देवमव्ययम्।।४४।।

देवदेव रमाकान्त रामचन्द्र दयानिधे।
क्रियमाणां मया पूजां गृहाण सुरवन्दित।।४५।।

देवदेव जगन्नाथ नमस्ते धरणीधर।
स्वासनं ते मया दत्तं गृहाण मुनिसेवित।।४६।।

नारायण दयासिन्धो हिरण्याक्षनिषूदन।
पाद्यमेतत्सुखस्पर्शं गृहाण त्वं मयाऽर्पितम्।।४७।।

नमो नमस्ते गोविन्द वासुदेव जगत्प्रभो।
जनार्दन रमाकान्त चाऽर्घ्यं च प्रतिगृह्यताम्।।४८।।

इस प्रकार भैरव की आज्ञा को प्राप्त करके तीर्थ में स्नान करे। अन्यथा तीर्थ का स्वामी भैरव उसके फल के आधे अंश का निश्चय से हरण कर लेता है।।३६।।

हे मुने ! देश और काल का संकीर्तन करके हृदय में नारायण का ध्यान करते हुये उक्त विधि से प्रयत्नपूर्वक स्नान करे।।३७।।

स्नान करके, तदनन्तर किनारे पर सन्ध्या आदि क्रियायें निष्पन्न करके और पितरों की क्रियायें करके ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करे।।३८।।

भूमि का दान करने वाला राज्य को प्राप्त करता है और अश्व का दान करने वाला वाहनों को प्राप्त करता है। हे महाभाग ! गौ का दान करने वाला परम गति को प्राप्त करता है।।३९।।

अन्न का दान करने से दरिद्रता नहीं रहती। रत्न का दान करने से उत्तम गति मिलती है। स्वर्ण का दान करने से उत्तम वंश और सुन्दर शरीर प्राप्त होता है।।४०।।

अन्य भी बहुत से प्रचुर दान करके विश्वेश्वर शिव के समीप जावे और वहां उनका पूजन करे।।४१।।

हे मुनीश्वर नारद ! छः वर्णों वाले शैव मन्त्र (ऊं नमः शिवाय)का पाठ करके, धूप-दीप आदि देकर, भक्तिपूर्वक स्तुति करके और प्रणाम करके, तदनन्तर बुद्धिमान् तीर्थयात्री श्री रामचन्द्र के दर्शन करने के लिये जावे।।४२।।

विश्वेश्वर का पूजन न करके जो तीर्थयात्री अन्य कार्य करता है, शिव के क्रोध से उसका वह कार्य विफल हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।४३।।

बुद्धिमान् यात्री श्रीराम के निकट जाकर दण्डवत् प्रणाम करे। तदनन्तर इस विधान से अविनाशी देव का पूजन करे।।४४।।

हे देवताओं के भी देवता, रमाकान्त, दयानिधे, देवताओं से वन्दित रामचन्द्र ! मेरे द्वारा की जाती हुई पूजा को ग्रहण करो।।४५।।

हे देवदेव, पृथिवी को धारण करने वाले, जगत् के स्वामी मुनियों से सेवित राम! मैंने तुमको अपना आसन दिया है, ग्रहण करो।।४६।।

हे दयासिन्धो, हिरण्याक्ष का वध करने वाले नारायण ! स्पर्श में सुख देने वाले इस पाद्य को मैंने अर्पित किया है। इसको ग्रहण करो।।४७।।

हे जगत् के स्वामी, गोविन्द, वासुदेव, जनार्दन, रमाकान्त राम ! तुमको नमस्कार है, नमस्कार है। हमारे अर्घ्य को स्वीकार करो।।४८।।

भागीरथ्या इदं तोयं कर्पूरादिसुवासितम्।
आचम्यतां जगन्नाथ मया दत्तं हि भक्तितः।।४९।।

कंसासुरनिहन्ता त्वं सर्वतीर्थान्मया हृतम्।
जलमेतत्सुदिव्यं हि गृहाण स्नानहेतवे।।५०।।

सूक्ष्मं दुकूलयुगलं लोकलज्जानिवारकम्।
मयाऽर्पितमिदं देव गृह्णीष्व त्वं दयानिधे।।५१।।

दामोदर नमस्तेऽस्तु त्राहि मां भवसागरात्।
ब्रह्मसूत्रं चोत्तरीयं गृहाण परमेश्वर।।५२।।

श्रीखण्डं कुङ्कुमं चन्द्रकस्तूरीरोचनान्वितम्।
गन्धं गृहाण देवेश भक्त्या चैव मयाऽर्पितम्।।५३।।

अक्षतान् निर्मलान् देव कुङ्कुमेन च रञ्जितान्।
गृहाण देवदेवेश गोपीकान्त मदर्पितान्।।५४।।

पुष्पाणि देवदेवेश जातिकुन्दमुखानि च।
गृहाण भक्तितो देव तुभ्यं दत्तानि हे प्रभो।।५५।।

धूपं दिव्यं रमाकान्त जटागुग्गुलुसंयुतम्।
आघ्रेयं सर्वदेवानां गृह्णीष्व त्वं मयाऽर्पितम्।।५६।।

कर्पूरदीपिकायुक्तं दीपं त्रैलोक्यदीपकम्।
गृहाण मङ्गलं देव भक्त्या तुभ्यं मयाऽर्पितम्।।५७।।

अन्नं षड्रससंयुक्तं नानावस्तुमयं शुभम्।
नैवेद्यं गृह्यतां देव भक्तिस्त्वय्यस्तु मे सदा।।५८।।

हिरण्यं चैव रौप्यं च रत्नानां निचयं तथा।
दक्षिणात्वेन गृह्णीष्व भक्त्या वै प्रतिपादितम्।।५९।।

नमस्ते नाथ भगवन्नागवल्लीदलैर्युतम्।
कर्पूरादिसमायुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम्।।६०।।

नमोऽस्तु राम नाथाय साष्टाङ्गं तु मया कृतम्।।
प्रसीद भगवन्विष्णो मां समुद्धर माधव।।६१।।

हे जगन्नाथ ! कर्पूर आदि से सुगन्धित किये गये भागीरथी के इस जल को मैंने भक्तिभाव से दिया है, इसका आचमन करो।।४९।।

तुम कंस नामक असुर का वध करने वाले हो। मैं इस अति दिव्य जल को सभी तीर्थों से लाया हूं। इसको स्नान करने के लिये ग्रहण करो।।५०।।

हे दयानिधे देव ! लोक-लज्जा का निवारण करने वाले इस बारीक रेशमी जोड़े को मैंने अर्पित किया है, इसको ग्रहण करो।।५१।।

हे दामोदर ! तुमको नमस्कार है। भवसागर से मेरी रक्षा करो। हे परमेश्वर ! इस यज्ञोपवीत को और उत्तरीय को ग्रहण करो।।५२।।

हे देवेश ! श्रीखण्ड, केसर, कपूर, कस्तूरी और गोरोचना से युक्त गन्ध को मैंने भक्तिभाव से अर्पित किया है। इसको ग्रहण करो।।५३।।

हे देवदेवेश, गोपीकान्त देव ! कुंकुम से रंगे हुये और मेरे द्वारा अर्पित किये गये निर्मल अक्षतों को ग्रहण करो।।५४।।

हे देवदेवेश ! चमेली, कुन्द आदि पुष्पों को मैंने तुम्हारे लिये भक्तिभाव से दिया है। इनको ग्रहण करो।।५५।।

हे रमाकान्त ! मेरे द्वारा अर्पित किये गये जटामांसी और गूगल से युक्त दिव्य धूप को, जो सब देवताओं द्वारा सूंघने योग्य है, ग्रहण करो।।५६।।

हे देव ! कर्पूर की दीपिका (बत्ती) से युक्त और तीनों लोकों को प्रकाशित करने वाले मंगलदीप को भक्तिभाव से मैंने तुम्हारे लिये अर्पित किया है, इसको ग्रहण करो।।५७।।

हे देव ! छ: रसों से युक्त विविध वस्तुओं से बने शुभ अन्नरूप नैवेद्य को ग्रहण करो। तुम्हारे प्रति मेरी भक्ति सदा बनी रहे।।५८।।

भक्तिभाव से मेरे द्वारा प्रतिपादित किये गये स्वर्ण को, रजत को और रत्नों के समूह को दक्षिणा के रूप में ग्रहण करो।।५९।।

हे नाथ ! तुमको नमस्कार है। हे भगवन् ! पान के पत्तों से युक्त और कर्पूर आदि से मिश्रित ताम्बूल को स्वीकार कीजिये।।६०।।

हे राम ! तुझ नाथ के लिये नमस्कार है। मैंने साष्टाङ्ग प्रणाम किया है। हे भगवन्! प्रसन्न होओ। हे विष्णो ! माधव ! मेरा उद्धार करो।।६१।।

एवं विधाय पूजां वै रामं कृत्वा प्रदक्षिणम्।
कृतकृत्यमिवाऽऽत्मानं जानीयान्मानवः सदा।।६२।।

इत्थमेद शिवादीनां पूजां कृत्वा महामतिः।
ततो ध्यानपरो मर्त्यस्तत्र नामानुकीर्तनात्।।६३।।

वासिष्ठादिषु तीर्थेषु क्रमात्स्नायान्महामते।
पूर्वोक्तेन विधानेन विष्णुभक्तिपरायणः।।६४।।

भोजनं तीर्थवासिभ्यः सुस्निग्धं प्रीतिपूर्वकम्।
दद्याद्वै विष्णुप्रीत्यर्थं रामभक्तिपरायणः।।६५।।

सन्तुष्टा यस्य विप्रेन्द्रा देवक्षेत्रनिवासिनः।
सफलं तु कृतं तस्य विपरीते तु निष्फलम्।।६६।।

अनेन विधिना यस्तु प्रकरोति प्रदर्शनम्।
श्रीरामस्य दयासिन्धोर्यात्रां चैव तथा मुने।
स वै विष्णुः प्रजायेत श्रीरामस्य प्रसादतः।।६७।।

इह भोगान्वरान्प्राप्य विष्णुना सह मोदते।
इति ते कथितो दिव्यो यात्राविधिरनुत्तमः।।६८।।

यस्य वै पठनान्मर्त्यः श्रवणाच्छ्रावणात्तथा।
तीर्थस्नानफलं प्राप्य विष्णुना सह मोदते।।६९।।

सूत उवाच-

भो भो द्विजवरश्रेष्ठा नैमिषारण्यवासिनः।
एष वः कथितः सर्वो देवतीर्थस्य विस्तरः।।७०।।

भुक्तिमुक्तिप्रदः श्रीदः पुत्रदश्च तथैव च।
अतः परं महाभागाः किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ।।७१।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे देवप्रयागमाहात्म्यसमाप्ति-
र्नाम त्रिषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः।।१६३।।

इस प्रकार से पूजा करके और राम की प्रदक्षिणा करके मनुष्य अपने आपको सदा कृतकृत्य समझे।।६२।।

इसी प्रकार से वह बुद्धिमान् यात्री शिव आदि देवताओं की पूजा करके तदनन्तर नाम का संकीर्तन करते हुये देवता का ध्यान करे।।६३।।

हे महामते नारद ! विष्णु की भक्ति में परायण होकर पूर्वोक्त विधान से वासिष्ठ आदि तीर्थों में क्रमश: स्नान करे।।६४।।

राम के प्रति भक्ति में परायण होकर विष्णु को प्रसन्न करने के लिये तीर्थवासियों को प्रसन्नता से सुस्निग्ध भोजन देवे।।६५।।

देवप्रयाग क्षेत्र में निवास करने वाले श्रेष्ठ ब्राह्मण जिस यात्री से सन्तुष्ट होते हैं, उसके कार्य सफल होते हैं, इसके विपरीत होने पर निष्फल होते हैं।।६६।।

हे मुने । इस विधि से जो दया के सिन्धु श्रीराम के दर्शन करता है और तीर्थयात्रा करता है, वह श्रीराम की कृपा से निश्चय से विष्णु हो जाता है।।६७।।

इस लोक में श्रेष्ठ भोगों को प्राप्त करके परलोक में वह विष्णु के साथ निश्चय से आनन्द प्राप्त करता है। इस प्रकार मैंने तुमसे श्रेष्ठ दिव्य यात्रा की विधि कह दी है।।६८।।

जिस यात्रा विधि के पढने से, सुनने से और सुनाने से मनुष्य तीर्थस्नान के फल को प्राप्त करके विष्णु के साय आनन्द प्राप्त करता है।।६९।।

सूत ने कहा-

नैमिषारण्य में निवास करने वाले हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो ! इस प्रकार से मैंने तुमको देवप्रयाग तीर्थ के विषय में विस्तार से कह दिया है।।७०।।

यह वर्णन भोगों और मोक्ष को देने वाला है, लक्ष्मी देने वाला है और पुत्र देने वाला है। हे महाभागो ! इसके पश्चात् तुम क्या सुनना चाहते हो ?।।७१।।

इस प्रकार स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में देवप्रयाग-माहात्म्य समाप्ति नाम का १६३ वां अध्याय समाप्त हुआ।।

"चतुष्षष्ट्युत्तरशततमोऽध्याय:"

गङ्गानबालकासङ्गमे बलासुरनिषूदनायेन्द्रकृतशिवा-राधनतोऽस्य क्षेत्रस्येन्द्रप्रयागाभिधानम्, धर्मतीर्थे मत्स्य-मारकस्य दीर्घदन्ताख्यधीवरस्य मासमात्रं स्नानतो विष्णुपदावाप्तिस्तन्माहात्म्यकथनञ्च

ऋषय ऊचु:-

धन्या: स्म: कृतकृत्या: स्म: श्रुतं देवप्रयागकम्।
तीर्थमत्यद्भुततमं सोपाख्यानं च मोक्षदम्।।१।।

एतत्तीर्थसमं तीर्थमन्यत् क्वापि न वै श्रुतम्।
अन्यच्च तादृशं यद्वै वद सूत कृपान्वित।।२।।

सूत उवाच-

श्रुत्वा देवप्रयागं वै नारदो ब्रह्मपुत्रक:।
पप्रच्छ मुनिशार्दूल: कार्तिकेयं मुदान्वित:।।३।।

नारद उवाच-

ईशपुत्र महाबाहो श्रुत्वा त्वन्मुखपङ्कजात्।
नि:सृतं मधुरं सौधं वाङ्मयामृतकं बहु।।४।।

पिबत: श्रुतिपात्राभ्यां तृप्तिर्मे जायते न हि।
श्रोतुमिच्छामि भगवन् वद मां सुतरां प्रभो।।५।।

इदानीं श्रोतुमिच्छामि तीर्थान्यन्यानि षण्मुख।
श्रवणाद् गमनाद् येषां नृणां पापक्षयो भवेत्।।६।।

स्कन्द उवाच-

शृणु नारद तीर्थानि पुण्यानीशस्थलानि च।
येषां श्रवणतो विप्र महापातककोटय:।
नश्यन्ति विबुधश्रेष्ठ यथाऽग्नेस्तूलराशय:।।७।।

श्रुतवांश्च यथाऽगस्त्यो गौतमो विश्वहेतवे।
तथा त्वमपि धर्मज्ञ शृणु तीर्थान्यनेकश:।।८।।

अध्याय - १६४

बलासुर का वध करने के लिये इन्द्र द्वारा गङ्गा-नबालका (नयार) के सङ्गम पर शिव की आराधना करने से इस क्षेत्र का नाम इन्द्रप्रयाग प्रसिद्ध होना, मछली मारने वाले दीर्घदन्त नामक धीमर द्वारा धर्मतीर्थ में एक मास तक स्नान करने से विष्णुपद की प्राप्ति, उस तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

ऋषियों ने कहा-

हम धन्य हो गये हैं, हम कृतकृत्य हो गये हैं। हमने देवप्रयाग तीर्थ के अति अद्भुत, मोक्ष देने वाले वृत्तान्त को उपाख्यानों सहित सुन लिया है।।१।।

हे कृपा से युक्त सूत ! इस तीर्थ के समान तीर्थ और कोई नहीं सुना गया है। यदि उस प्रकार का कोई अन्य तीर्थ है, तो उसको बताइये।।२।।

सूत ने कहा-

ब्रह्मा के पुत्र मुनिश्रेष्ठ नारद ने देवप्रयाग तीर्थ का वृत्तान्त सुन कर प्रसन्नता से भर कर कार्तिकेय से पूछा।।३।।

नारद ने कहा-

हे शिव के पुत्र महाबाहो स्कन्द ! तुम्हारे मुख रूपी कमल से निकले हुये, मधुर सुधासिक्त वाणीमय, प्रभूत अमृत को सुन कर...।।४।।

इसका कान रूपी पात्रों से पान करते हुये निश्चय से मेरी तृप्ति नहीं हो रही है। हे भगवन् ! मैं और भी सुनना चाहता हूं। हे प्रभो ! मुझको और कहो।।५।।

हे छः मुखों वाले कार्तिकेय ! अब मैं अन्य तीर्थों के सम्बन्ध में सुनना चाहता हूं, जिनके सुनने से और जहां जाने से मनुष्यों का पाप नष्ट हो जाता है।।६।।

स्कन्द ने कहा-

हे विद्वानों में श्रेष्ठ नारद ! उन पुण्यशाली तीर्थों के और ईश्वर के स्थलों के विषय में सुनो, हे विप्र ! जिनके सुनने से करोड़ों महापाप उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जिस प्रकार अग्नि से रुई के ढेर।।७।।

हे धर्म को जानने वाले नारद ! जिस प्रकार विश्व का कल्याण करने के लिये अगस्त्य और गौतम ने इसको सुना था, इसी प्रकार तुम भी अनेक तीर्थों का वृत्तान्त सुनो।।८।।

देवप्रयागतो याम्यवारुण्यां दिशि ब्रह्मज।
यत्र भागीरथी गङ्गा सरितां प्रवरा तथा।
नबालकेति विख्याता सर्वपापप्रणाशिनी।।९।।

तयोः सुसङ्गमः पुण्यः सर्वकामफलप्रदः।
इन्द्रप्रयाग इति वै सर्वतीर्थोत्तमोत्तमः।।१०।।

आराधितस्तत्र देव इन्द्रेण शिव उत्तमः।
पूर्वं बलवधे विप्र धर्मतीर्थे महामते।
प्रसन्नश्चाऽभवद्देवो वासवस्य महात्मनः।।११।।

तदादीदं महाक्षेत्रमिन्द्रनाम्ना च लक्षितम्।
तत्रत्यानि च तीर्थानि सुपुण्यानि शृणुष्व मे।।१२।।

इन्द्रकुण्डमतः पूर्वं धर्मकुण्डान्महामुने।
सङ्गमो यत्र देशे तु धर्मतीर्थं शुभप्रदम्।।१३।।

तस्मिंस्तीर्थे नरो गत्वा पिबेदपि जलं ततः।
सोऽपि ब्रह्मत्वमाप्नोति किमुत स्नातका जनाः।।१४।।

तत्र चित्रं पुरा दृष्टं स्नानजन्यं महामते।
अभक्त्यापि कृतात्स्नानान्न गच्छेद्यममन्दिरम्[1]।।१५।।

दीर्घदन्त इति ख्यातो धीवरो मत्स्यमारकः।
एकदा स महाभाग समादाय च जालकम्।।१६।।

मत्स्यान्मारयितुं तत्र गतो धर्मसुकुण्डके।
प्रविष्टस्तत्र जालं च समादाय महामुने।।१७।।

मत्स्यघातप्रसङ्गाद्वै स्नानं तत्र चकार ह।
कृत्वा स्नानं तथाऽऽदाय मीनान्वै दीनजीवितान्।
गृहे गतः स्वकीये हि कुटुम्बपरिपोषकः।।१८।।

एवं हि सकले माघे तेन स्नातं सुतीर्थके।।
प्रसङ्गेन हि मीनानां दीनानां जलचारिणाम्।।१९।।

१. मन्दिरे

देवप्रयाग तीर्थ से दक्षिण-पश्चिम दिशा में, हे ब्रह्मा के पुत्र नारद ! जहां नदियों में श्रेष्ठ भागीरथी बहती हैं, सब पापों को विनाश करने वाली नबालका के नाम से प्रसिद्ध नदी है।।९।।

उन दोनों नदियों का संगम पुण्यशाली है और सब कामनाओं के फलों को देने वाला है। वह सब तीर्थों में उत्तमोत्तम तीर्थ इन्द्रप्रयाग कहलाता है।।१०।।

हे महामते विप्र नारद ! प्राचीन समय में इस महातीर्थ में वहां इन्द्र ने बलासुर का वध करने के लिये उत्तम शिव देवता की आराधना की थी। तदनन्तर उस महात्मा इन्द्र से शिव देवता प्रसन्न हो गये।।११।।

तब से लेकर यह महाक्षेत्र इन्द्र नाम से जाना जाने लगा। उत्तम पुण्यशाली वहां के तीर्थों के विषय में सुनो।।१२।।

हे महामुने ! जिस स्थान पर संगम है, वहां इन्द्रकुण्ड है और उससे पहले धर्मकुण्ड है। यह शुभ को देने वाला धर्मतीर्थ है।।१३।।

इस तीर्थ में जाकर यदि मनुष्य जल भी पी लेता है, तो वह ब्रह्मत्व को प्राप्त करता है,वहां स्नान करने वाले मनुष्यों का तो कहना ही क्या है।।१४।।

हे महामते नारद ! स्नान करने से उत्पन्न होने वाली आश्चर्य की बात वहां पहले यह देखी गई थी कि विना भक्ति के भी स्नान करने से मनुष्य यमलोक नहीं जाता।।१५।।

एक दीर्घदन्त नाम से प्रसिद्ध मछलियों को मारने वाला धीवर था। हे महाभाग ! एक दिन वह धीवर जाल को लेकर....।।१६।।

हे महामुने ! मछलियों को मारने के लिये वहां धर्मकुण्ड में गया। वह जाल को लेकर वहां प्रविष्ट हो गया।।१७।।

मछलियों को मारने के प्रसंग में उसने वहां स्नान किया। अपने कुटुम्ब का पालन करने वाला वह धीवर स्नान करके और दीन जीवित मछलियों को लेकर अपने घर चला गया।।१८।।

इस प्रकार जल में विचरण करने वाली दीन मछलियों के प्रसङ्ग से उसने सारे माघ मास में वहां स्नान किया।।१९।।

अथ काले व्.तीते तु महति द्विजसत्तम।
कालधर्ममनुप्राप्तः कुर्वन्पापमहर्निशम्।।२०।।

यमदूताः समायाताः प्रमथाश्चैकतस्तथा।
यमलोकं नेतुकामा यमदूता महामते।।२१।।

शिवलोकं नेतुकामाः शिवदूतास्तथैव च।
विवादश्चाभवत्तेषां किङ्कराणां तथा तयोः।।२२।।

निर्जित्य यमदूतान्वै शिवदूता महाबलाः।
समारोप्य वृषस्कन्धे निन्युर्यत्र महेश्वरः।।२३।।

हाहाकाररवास्ते च यमदूता हतप्रभाः।
गता यत्र यमो राजा पापिनां भयदायकः।।२४।।

ऊचुस्ते वै धर्मराजं न ते पापिषु शासनम्।
नित्यं पापरतो लुब्धो गतो रुद्रालयेऽधुना।।२५।।

कि कार्यं ते महाराज स्थितस्य पापिशासने।
रुद्रदूतैस्तु नीयन्ते पापिनोऽपि महत्तराः।
पुण्यात्मगम्ये कैलासे महादेवस्य सन्निधौ।।२६।।

इति श्रुत्वा वचस्तेषां किङ्कराणां परेतराट्।
पप्रच्छ तत्पुण्यपापं कृतं जन्मनि यत्पुरा।।२७।।

विचार्य निजगादेदं चित्रगुप्तो यमं तदा।
जातं तस्मान्महापुण्यं प्रसङ्गान्मत्स्यघातिनः।।२८।।

हिमवद्दक्षिणे भागे गङ्गा यत्र व्यवस्थिता।
नबालका च यत्राऽस्ति नदी परमपाविनी।।२९।।

इन्द्रप्रयाग इति वै धर्मतीर्थे शुभप्रदे।
कृतं स्नानं माघमासे मत्स्यघातनतो यम।।३०।।

हे द्विजश्रेष्ठ ! इस प्रकार बहुत समय व्यतीत हो जाने पर वह दिन-रात पाप करता हुआ कालधर्म को प्राप्त हुआ।।२०।।

हे महामते ! पहले तो उसको यमलोक ले जाने के लिये यम के दूत प्रमथ एक ओर से आये।।२१।।

उसी प्रकार से दूसरी ओर शिवलोक को ले जाने के लिये शिव के दूत आये। वहां यम और शिव इन दोनों के सेवकों का विवाद हुआ।।२२।।

महाबलशाली शिवदूतों ने निश्चय से यम के दूतों को जीत लिया। वे उसको बैल के कन्धे पर चढा कर वहां ले गये, जहां परमेश्वर शिव थे।।२३।।

हतप्रभ यम के दूत हाहाकार शब्द करते हुये वहां गये, जहां पापियों को भय देने वाले राजा यम थे।।२४।।

उन्होंने धर्मराज से कहा कि पापियों पर निश्चय से तुम्हारा शासन नहीं है। सदा पाप में लगा हुआ वह लोभी धीवर अब शिवलोक में गया है।।२५।।

हे महाराज ! पापियों के शासन में स्थित होते हुये तुमको अब्र क्या करना है ? शिव के दूतों द्वारा महापापी भी महादेव के समीप पुण्यात्माओं द्वारा गम्य कैलास पर्वत पर ले जाये जाते हैं।।२६।।

उन अपने सेवकों के वचन को सुन कर परेतों के राजा यम ने पहले जन्म में किये गये उस धीवर के पुण्यों और पापों के विषय में पूछा।।२७।।

विचार करके चित्रगुप्त ने तब यम से यह वचन कहा- मछलियों को मारने वाले उस धीवर से प्रसङ्गवश महान् पुण्य हो गया है।।२८।।

हिमालय के दक्षिण भाग में जहां गङ्गा नदी बहती है और जहां परम पावनी नबालका नदी है.....।।२९।।

हे यम ! वहां शुभ प्रदान करने वाले इन्द्रप्रयाग नामक धर्मतीर्थ में मछलियों को मारते हुये इस धीवर ने माघ मास में स्नान किया है।।३०।।

पुण्यमाजन्मजं तस्य माघस्नानभवं तथा।
तत्र स्नानप्रभावेण पातकं यत्कृतं पुरा।
यद्भाव्यं च महाभाग दग्धं तेनैव कर्मणा।।३१।।

तेन पुण्यप्रभावेण गतो रुद्रालये विभो।
दीर्घदन्त इति ख्यातो धीवरो मत्स्यघातकः।।३२।।

इति श्रुत्वा वचस्तस्य चित्रगुप्तस्य नारद।
उवाच वचनं क्रुद्धो दूतांस्तान्निजसेवकान्।।३३।।

भो भो दूता दुराचारास्तत्र यूयं निरर्थकम्।
गतास्तथा तमानेतुं पुण्यात्मानं गतांहसम्।।३४।।

धर्मतीर्थजलस्पर्शान्निश्यन्ते पापराशयः।
तेन स्नानं कृतं माघे मीनानामपि संगतः।।३५।।

अतः परं न गन्तव्यं युष्माभिस्तादृशे स्थले।
हिमवान्नाम गिर्यार्यः पुण्यः शैलोऽतिदुर्गमः।।३६।।

साक्षात्सा एव वसतिः शिवस्य परमात्मनः।
किमु तद्दक्षिणे भागे यत्र भागीरथी परा।।३७।।

इति तद्ववचनं श्रुत्वा त्रस्ताः सर्वे हि किङ्कराः।
नाऽऽजग्मुः स्नातकान्नेतुं तस्मिन्देशे महामुने।।३८।।

धर्मतीर्थात्परं नाऽस्ति तीर्थं पापप्रणाशनम्।
श्रुत्वा तद्विभवं चाऽपि सर्वपापैः प्रमुच्यते।।३९।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे इन्द्रप्रयागमाहात्म्ये धर्मकुण्डप्रशंसनं
नाम चतुष्षष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः।।१६४।।

उसको माघ मास में स्नान करने से आजन्म पुण्य उत्पन्न हो गया है। वहां स्नान करने के प्रभाव से उसने जो पाप पहले किये थे और जो भविष्य में किये जायेंगे, हे महाभाग! उसके इस कार्य से ही जल गये है।।३१।।

हे विभो ! उस पुण्य के प्रभाव से दीर्घदन्त नाम से प्रसिद्ध वह मछलियों को मारने वाला धीवर रुद्रलोक को गया है।।३२।।

हे नारद ! उस चित्रगुप्त के इस वचन को सुन कर क्रुद्ध यम ने अपने उन सेवकों से यह वचन कहा।।३३।।

हे हे दुष्ट दूतो ! तुम निरर्थक ही नष्ट पापों वाले उस पुण्यात्मा धीवर को लाने के लिये वहां गये थे।।३४।।

धर्मतीर्थ के जल के स्पर्श करने से पापों की राशियां नष्ट हो जाती हैं। मछलियों के मारने में लगे हुये भी उसने माघ मास में वहां स्नान किया है।।३५।।

इसके बाद तुमको ऐसे स्थल पर नहीं जाना चाहिये। पर्वतों में श्रेष्ठ हिमालय नाम का पर्वत पुण्यशाली है और अति दुर्गम है।।३६।।

वह पर्वत साक्षात् रूप से परमात्मा शिव का निवास स्थान है। उसके दक्षिण भाग में जहां परम श्रेष्ठ भागीरथी बहती है, उसका तो कहना ही क्या है।।३७।।

हे महामुने ! यम के उस वचन को सुनकर वे सब यम के सेवक डर गये। वे उस देश में स्नान करने वालों को लेने के लिये नहीं जाते थे।।३८।।

धर्मतीर्थ से परे अन्य कोई तीर्थ पापों का विनाश करने वाला नहीं है। उसके विभव को सुन कर भी मनुष्य सारे पापों से मुक्त हो जाता है।।३९।।

इस प्रकार स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में
इन्द्रप्रयाग-माहात्म्य प्रकरण में धर्मकुण्ड प्रशंसन नाम का
१६४ वां अध्याय समाप्त हुआ।।

पञ्चषष्ट्युत्तरशततमोऽध्याय:
इन्द्रप्रयागे इन्द्रेश्वरशिवलिङ्गस्य दर्शनपूजनादिवर्णनं तत्फलादिकथनञ्च

स्कन्द उवाच-

इन्द्रकुण्डमिति ख्यातमिन्द्रलोकप्रदायकम्।
यत्पय:पानमात्रेण निष्पापो जायते क्षणात्।।१।।

अथाऽत्र मुञ्चते प्राणानुपोष्य च दिनत्रयम्।
इन्द्रासनार्द्धहर्ता वै स ज्ञेयो मुनिसत्तम।।२।।

ततो वै दक्षिणे भागे धनुस्तीर्थमुदाहृतम्।
यत्र वै स्नानमात्रेण लभते परमं पदम्।।३।।

ततो गङ्गागमे विप्र ब्रह्मकुण्डं पुरातनम्।
रविवारेऽत्र संस्नाय रविलोके महीयते।।४।।

ब्रह्मधारा च तत्रैव पुण्यकर्मगतिर्द्विज।
तत्पय:पानमात्रेण हंसयानविमानग:।।५।।

ततो दक्षिणतो दिव्यं शिवलिङ्गमनुत्तमम्।
इन्द्रेश्वर इति ख्यातं पापराशिदवानल:।।६।।

तस्य चिह्नं समाख्यासे येन तत्र गतिर्भवेत्।
रक्तशीर्षो भुजङ्गस्तु तत्राऽऽस्ते मणिभूषित:।।७।।

चतुर्दश्यां दिने तत्र दृश्यते पुण्यसञ्चयै:।
सञ्छाद्य लिङ्गं तत्सर्वं शेते तत्र भुजङ्गराट्।।८।।

शिवरात्रिदिने यस्तु पूजयेत्प्रयत: शिवम्।
तेन सर्वं कृतं कर्म वाजपेयादिकं मुने।।९।।

नवालकातटे पूर्वे धारा याति सुपुण्यदा।
त्रिशूलेति समाख्याता सङ्गमे पुण्यके तयो:।।१०।।

सुपुण्यतममाख्यातं पापिनामपि शैवदम्।
नवालकातटे दक्षे नद्यायाति शरान्मुने।
ऊर्मिकेति समाख्याता स्नानात्स्वर्गविलासदा।।११।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे इन्द्रप्रयागमाहात्म्यवर्णनं नाम
पञ्चषष्ट्युत्तरशततमोऽध्याय:।।

– अध्याय - १६५

इन्द्रप्रयाग में इन्द्रेश्वर शिवलिङ्ग के दर्शन-पूजन आदि के वर्णन और उसके फल आदि का कथन

स्कन्द ने कहा-

इन्द्रकुण्ड इन्द्रलोक को देने वाला प्रसिद्ध है। इसके जल को पीने से व्यक्ति क्षण भर में निष्पाप हो जाता है।।१।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! जो व्यक्ति यहां तीन दिनों तक उपवास करके प्राणों का परित्याग करता है, वह आधे इन्द्रासन को प्राप्त करता है, यह जानना चाहिये।।२।।

उस इन्द्रकुण्ड के दाहिने भाग में धनुस्तीर्थ है। यहां स्नान करने मात्र से मनुष्य परम पद को प्राप्त करता है।।३।।

हे विप्र नारद ! तदनन्तर गङ्गा के संगम पर प्राचीन ब्रह्मकुण्ड है। यहां रविवार को स्नान करने वाला सूर्यलोक में जाकर महिमा को प्राप्त करता है।।४।।

हे द्विज ! वहीं पर पुण्य कर्मों की गति प्राप्त कराने वाली ब्रह्मधारा है। उसके जल को पीने मात्र से हंसयान विमान पर गति प्राप्त होती है।।५।।

उसके दक्षिण की ओर श्रेष्ठ शिवलिङ्ग है। इसका नाम इन्द्रेश्वर प्रसिद्ध है। यह पापों की राशि को जला देने वाला है।।६।।

मैं उसका चिह्न बताऊंगा, जिससे कि वहां जा सकोगे। वहां मणि से विभूषित लाल रंग के सिर वाला सर्प रहता है।।७।।

वह सर्प वहां पुण्य का संचय होने पर चतुर्दशी के दिन दिखाई देता है। वह सर्पराज वहां उस सारे लिङ्ग को आच्छादित करके शयन करता है।।८।।

हे मुने ! जो उस शिवलिङ्ग का पूजन शिवरात्रि के दिन करता है, उसने समझ लो कि सारे वाजपेय आदि यज्ञ कार्य कर लिये हैं।।९।।

नवालका (नयार) नदी के पूर्वी तट पर उत्तम पुण्यों को देने वाली त्रिशूला नाम की नदी आती है। उन दोनों नयार और त्रिशूला का संगम पुण्यशाली है।।१०।।

यह संगम अति पुण्यतम कहा गया है। यह पापियों को भी शिव को प्राप्त कराने वाला है। हे मुने ! नवालका के दाहिने तट पर शरों के वन से ऊर्मिका नाम की नदी आती है। इसमें स्नान करने से स्वर्ग के विलास मिलते हैं।।११।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में इन्द्रप्रयागमाहात्म्यवर्णन नाम का १६५ वां अध्याय समाप्त हुआ।।

षट्षष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः

नवालकासरित उत्पत्तिः। धर्मारण्यनिवासिनो धर्मचिन्तकवैश्यस्य सुतायाः सौन्दर्यमञ्जर्याः कथा। अपमानकुपितस्य च्यवनस्य शापाद् बाल्य एव वृद्धाया ऋषिवचनाल्लाङ्गलपर्वते शिवप्रसादात्तारुण्यावाप्तिः। नवालकानामकरणं च्यवनवचनाच्च नदीभावः। इन्द्रप्रयागे गङ्गायां सङ्गमः तन्माहात्म्यनिरूपणञ्च।

नारद उवाच-

नवालकोत्पत्तिमहं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः।
का सा नवालका नाम त्वासीत्पुण्यतमा नदी।।१।।

केन वै कारणेनाऽसौ नदी जाता शिवात्मज।
इतिहासमिमं पुण्यं वद सर्वमशेषतः।।२।।

स्कन्द उवाच-

शृणु नवालकोत्पत्तिं यथा पूर्वमशेषतः।
यस्याः स्मरणमात्रेण निष्पापो जायते नरः।।३।।

धर्मारण्ये पुरा विप्र वैश्योऽभूद्धर्मचिन्तकः।
स वन्ध्यत्वमनुप्राप्तो धर्मात्मा पूर्वपापतः।।४।।

ततस्तु वैश्यो धर्मात्मा धर्मचिन्तकनामकः।
वन्ध्यत्वदुःखसन्तप्तो ययौ कैलासमन्दिरे।।५।।

पूजनं नीलकण्ठस्य स्नात्वा नद्यां व्यधत्त सः।
ततः क्रमादसौ वैश्यो वर्षे तीर्थेष्वपूजयत्।।६।।

ततः केदारभवनं चाऽऽययौ दुःखितो भृशम्।
स्नात्वा मन्दाकिनीतीरे ज्योतीरूपं महेश्वरम्।
ददर्श पूजनं चैव चकार विधिपूर्वकम्।।७।।

नबालका नदी की उत्पत्ति। धर्मारण्य निवासी धर्मचिन्तक वैश्य की पुत्री सौन्दर्यमञ्जरी की कथा। अपमान से कुपित च्यवन ऋषि के शाप से बचपन में ही बूढ़ी हो जाने वाली उसकी लाङ्गल पर्वत पर तपस्या और शिव की कृपा से पुनः यौवन की प्राप्ति। नवालका नाम होना। च्यवन ऋषि के कहने से उसका नदी रूप में परिणत होना तथा इन्द्रप्रयाग में गङ्गा में मिल जाना। उसके माहात्म्य का कथन।

नारद ने कहा-

मैं नवालका (नयार) नदी की उत्पत्ति के वृत्तान्त को ठीक ठीक सुनना चाहता हूं। यह नवालका नाम की अतिपुण्यशाली नदी कौन थी।।१।।

हे शिव के पुत्र ! वह किस कारण से नदी हो गई थी? इस पुण्यशाली इतिहास को मुझसे पूर्णरूप से बताओ।।२।।

स्कन्द ने कहा-

नवालका की उत्पत्ति के वृत्तान्त को क्रमशः सुनो, जिसके स्मरणमात्र से मनुष्य पापरहित हो जाता है।।३।।

हे विप्र ! पहले समय में एक धर्मचिन्तक नाम का वैश्य था। पूर्वजन्म के पापों के कारण वह धर्मात्मा नपुंसक हो गया।।४।।

तदनन्तर वह धर्मचिन्तक नाम का धर्मात्मा वैश्य नपुंसकता के दुःख से सन्तप्त होता हुआ कैलास पर्वत पर गया।।५।।

नदी में स्नान करके वह नीलकण्ठ शिव का पूजन करता था। तदनन्तर वह वैश्य एक वर्ष तक तीर्थों में पूजन करता रहा।।६।।

तदनन्तर बहुत अधिक दुःखी होता हुआ वह केदारनाथ के मन्दिर में आया। वहां मन्दाकिनी के तट पर स्नान करके उसने ज्योतीरूप महेश्वर शिव के दर्शन किये और विधिपूर्वक उनका पूजन किया।।७।।

प्रार्थयामास धर्मात्माऽपत्यार्थं जगदीश्वरम्।
ततः समाययौ स्वीये गृहे वै धर्मचिन्तकः।।८।।

ततः कातपयैर्वर्षैः प्राप पुत्रं तथोत्कटम्।
कन्यां च रूपिणीं साक्षाल्लक्ष्मीं सौभाग्यसंयुताम्।।९।।

साऽपि तत्र महाभागा रूपयौवनशालिनी।
कालेन वय आपन्ना धर्मचिन्तककन्यका।।१०।।

अथैकस्मिन्दिने विप्र नाम्ना सौन्दर्यमञ्जरी।
गृहारामे वयस्काभिः सखीभिः परिवारिता।
क्रीडन्ती सहसा विप्र ददृशे च्यवनेन सा।।११।।

दृष्ट्वा तां यौवनोन्मतां रूपाढ्यां भार्गवीमिव।
चकमे कामवशगो जगाद च शुचिस्मिताम्।।१२।।

रम्भोरु मां कामबाणैः पीडितं जीवय द्विजम्।
त्वादृशी कन्यका क्वाऽपि न दृष्टा पृथ्वीतले।।१३।।

इत्युक्त्वा तेन विप्रेण ह्यवमन्य मुनीरितम्।
पराङ्मुखी जगामाशु स्वगृहं गजगामिनी।।१४।।

ततः क्रुद्धो मुनिस्तां तु यौवनोन्मदशालिनीम्।
मत्वा शशाप सहसा जरा त्वां वै गृहीष्यति।।१५।।

इत्युत्सृष्टे तु शापाग्नौ च्यवनेन महीयसा।
बभूव श्लथसर्वाङ्गा श्वेतकेशा जरान्विता।।१६।।

वेपमाना ययौ शीघ्रं यत्र तज्जनकः स्थितः।
उवाच सर्वं वृत्तान्तं शापबीजं महामते।।१७।।

तामादाय ततः सोऽपि यत्राऽसौ मुनिसत्तमः।
आययौ भक्तिनम्रो वै प्रणनाम च तं द्विजम्।।१८।।

प्रसादयामास बहु परिक्रम्य पुनः पुनः।
पुनर्दयार्द्रचेतास्तु च्यवनो मुनिसत्तमः।
उवाच चेति वैश्यं तं गच्छ कैलासमन्दिरम्।।१९।।

उसने सन्तान के लिये जगत् के ईश्वर शिव से प्रार्थना की। तदनन्तर वह धर्मचिन्तक वैश्य अपने घर आ गया।।८।।

तदनन्तर कुछ वर्षों में उसने उत्कट पुत्र को प्राप्त किया और सौभाग्य से युक्त साक्षात् लक्ष्मी रूप कन्या को पाया।।९।।

वह महासौभाग्यशालिनी, सौन्दर्य और यौवन से सम्पन्न धर्मचिन्तक की कन्या समय के अनुसार युवती हो गई।।१०।।

हे विप्र! एक दिन वह सौन्दर्यमंजरी नाम की कन्या अपने घर की वाटिका में समान आयु वाली सखियों से घिरी हुई खेल रही थी कि उसको एकाएक च्यवन ऋषि ने देख लिया।।११।।

भार्गवी के समान यौवन से उन्मत्त और सौन्दर्यशालिनी कन्या को देख कर काम के वशीभूत होकर च्यवन ने उसकी कामना की और पवित्र मुस्कान वाली उस कन्या से कहा।।१२।।

हे कदली के समान जांघों वाली! काम के बाणों से पीडित मुझ ब्राह्मण को तुम जीवनदान दो। तुम जैसी कन्या मैंने पृथिवीतल पर कहीं नहीं देखी।।१३।।

विप्र च्यवन के कहे गये इस कथन का उस कन्या ने तिरस्कार किया और मुख को मोड़ कर गज के समान गति वाली वह शीघ्र अपने घर चली गई।।१४।।

तदनन्तर मुनि ने क्रुद्ध होकर यौवन के मद से भरी हुई उस कन्या को शाप दिया कि वह वृद्धा हो जायेगी।।१५।।

इस प्रकार महायशस्वी च्यवन ऋषि के शाप की अग्नि के छोड़े जाने पर वह वृद्धा हो गई। उसके अंग शिथिल हो गये और केश श्वेत हो गये।।१६।।

हे महाबुद्धिमान् नारद! कांपती हुई वह कन्या शीघ्र वहीं पहुंची, जहां कि उसका पिता था। उसने उस शाप का सारा वृत्तान्त कह दिया।।१७।।

तदनन्तर वह वैश्य भी उसको लेकर मुनिश्रेष्ठ च्यवन के पास आया और भक्ति से नम्र होकर उसने उस ब्राह्मण को प्रणाम किया।।१८।।

उसने अनेक बार परिक्रमा करके उसको प्रसन्न किया। तदनन्तर दया से आर्द्र चित्त वाले मुनिश्रेष्ठ च्यवन ने उस वैश्य से कहा कि तुम कैलास पर्वत पर जाओ।।१९।।

तत्राऽमेयानि तीर्थानि वर्तन्ते धर्मचिन्तक।
तत्रेयं लप्स्यते शीघ्रं यौवनं लाङ्गले गिरौ।।२०।।

इत्युक्तौ तौ परिक्रम्य ययतुर्हिमवद्गिरौ।
यत्र ब्रह्मादयो नित्यं वर्तन्ते तप आस्थिताः।।२१।।

यत्र लाङ्गलनामा वै पर्वतो मुनिसेवितः।
चकार पूजनं शम्भोः सा वै सौन्दर्यमञ्जरी।।२२।।

सप्तरात्रं निराहारा शिवसंन्यस्तमानसा।
प्रसन्नश्च महादेवो ददौ वरमनुत्तमस्।।२३।।

नवालका भविष्यन्ति तव शुभ्रं तथा वयः।
वलयश्च तथा तन्वि नाशमेष्यन्ति सत्वरम्।।२४।।

इत्युक्त्वा भगवाञ्छम्भुस्तत्रैवान्तरधाद्धरः।
साऽपि कन्याऽविशच्छीघ्रं यौवनं च नवालकान्।
सम्प्राप च महाभाग महादेवप्रसादतः।।२५।।

ददृशुः सर्वमुनयो जातां कन्यां तथाविधाम्।
साधु साध्विति तां प्रोचुराश्चर्यचकितास्ततः।।२६।।

नाम चक्रुस्तदा तस्या यस्मात्प्राप नवालकान्।
नवालकेति विख्याता भविष्यति सुकन्यका।।२७।।

ततः प्रभृति सा कन्या जाता परमसुन्दरी।
नवालकेति विख्याता च्यवनाश्रममाययौ।।२८।।

सोऽपि वैश्यो गृहं गत्वा संनिवेश्यासने सुतम्।
केदारमण्डले शीघ्रमाययौ तपसे मुने।।२९।।

सा च्यवनाश्रममागत्य तत्सेवानिरताऽभवत्।
एवं बहुतिथे काले व्यतीते मुनिसत्तमाः।।३०।।

पप्रच्छ च्यवनं सा वै यदि ते मय्यनुग्रहः।
नित्यमत्र स्थले स्वच्छे वासं देहि महामते।।३१।।

हे धर्मचिन्तक ! वहां अनुपमेय तीर्थ हैं। वहां लांगल पर्वत पर यह शीघ्र ही यौवन को प्राप्त कर लेगी।।२०।।

इस प्रकार कहने पर मुनि की परिक्रमा करके वे दोनों हिमालय पर्वत पर गये जहां कि ब्रह्मा आदि नित्य तप में स्थित रहते हैं।।२१।।

जहां कि मुनियों से सेवित लाङ्गल नाम का पर्वत था, वहां उस सौन्दर्यमञ्जरी ने निश्चय से शिव का पूजन किया।।२२।।

शिव को मन में निहित करके उसने सात रात्रियों तक उपवास किया। प्रसन्न होकर महादेव ने उसको श्रेष्ठ वर दिया।।२३।।

हे कन्ये ! तुम्हारे नये केश हो जायेंगे और वैसी ही शुभ यौवन की अवस्था हो जायेगी। हे तन्वि ! तुम्हारी ये झुर्रियां शीघ्र नष्ट हो जायेंगी।।२४।।

यह कह कर भगवान् शम्भु शिव वहीं अन्तर्धान हो गये। वह कन्या भी शीघ्र ही यौवन को प्राप्त हो गई। हे महाभाग ! शिव की कृपा से उसके केश नये हो गये (नवाः नवीनाः अलकाः केशाः तान् नवालकान्)।।२५।।

उस कन्या को सारे मुनियों ने उस प्रकार का हुआ देखा। तदनन्तर आश्चर्य से चकित होकर उन्होंने साधु-साधु, इस प्रकार कहा।।२६।।

क्योंकि उसको नवीन केश प्राप्त हुये थे, अतः उन्होंने उसका नाम रखा कि यह श्रेष्ठ कन्या नवालका नाम से प्रसिद्ध होगी।।२७।।

तब से लेकर वह कन्या परम सुन्दरी होकर नवालका नाम से प्रसिद्ध हो गई और च्यवन के आश्रम में आई।।२८।।

हे मुने नारद ! तदनन्तर वह वैश्य घर पर जाकर अपने आसन पर पुत्र को प्रतिष्ठित करके तपस्या करने के लिये शीघ्र केदारक्षेत्र में आ गया।।२९।।

हे मुनिश्रेष्ठो ! वह च्यवन ऋषि के आश्रम में आकर उनकी सेवा में निरत हो गई। इस प्रकार बहुत समय व्यतीत हो जाने पर.........।।३०।।

उसने च्यवन ऋषि से कहा कि हे महाबुद्धिमान् महामुने ! यदि तुम्हारी मुझ पर कृपा है, तो इसी स्वच्छ स्थान पर मुझको नित्य निवास दो।।३१।।

प्रसन्नश्चाब्रवीत्तां तु नदी भव शुचिस्मिते।
पुण्या भागीरथीव त्वं भवोद्भवविनाशिनी।।३२।।

त्वयि स्नास्यन्ति ये मर्त्याः प्राप्स्यन्ति परमं पदम्।
करिष्यन्त्यन्यकर्माणि वर्द्धिष्यन्ति बहूत्तरम्।।३३।।

स्कन्द उवाच-

इत्युक्तेयं तेन कन्या नाम्ना साऽपि नवालका।
बभूव सहसा तत्र स्फुरत्कल्लोलशालिनी।।३४।।

च्यवनोऽपि महाभागस्तत्रैव कृतवांस्तपः।
सोऽपि वैश्यो महास्तेजास्तपस्तेपे ह्यनुत्तमम्।।३५।।

प्राप वै परमां सिद्धिं पुनरावृत्तिवर्जिताम्।
साऽपि गङ्गां समायाता सरिच्छ्रेष्ठा नवालका।।३६।।

स्नात्वा तस्यां मार्गशीर्षे माघे वाऽपि विशेषतः।
प्राप्नोति परमं स्थानं देवराजेन सम्मतम्।।३७।।

लक्षं तत्राऽपि सम्प्राप्ता राक्षसाः परमां गतिम्।
बहूनां तीर्थवर्याणां श्रेष्ठा जाता नवालका।।३८।।

इति सर्वमशेषेण कथितं ते मयाऽनघ।
इन्द्रप्रयागमाहात्म्यं वैभवं सरितस्तथा।
नवालकाया ब्रह्मर्षे सर्वाघौघनिवारणम्।।३९।।

एतच्छ्रुत्वाऽपि माहात्म्यं तत्तीर्थस्नानजं फलम्।
लभते नाऽत्र सन्देहस्सत्यमेव प्रकीर्तितम्।।४०।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे इन्द्रप्रयागमाहात्म्ये नवालकोत्पत्तिर्नाम
षट्षष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः।।

प्रसन्न होकर च्यवन ऋषि ने उससे कहा कि हे शुचिस्मिते ! तुम नदी हो जाओ और भागीरथी के समान पुण्यशाली एवं भव की बाधा का नाश करने वाली बनो।।३२।।

तुम्हारे अन्दर जो मनुष्य स्नान करेंगे, वे परम पद को प्राप्त करेंगे। उनके द्वारा किये गये अन्य कार्य बहुत अधिक वृद्धि को प्राप्त हों।।३३।।

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार मुनि द्वारा कहने पर वह नवालका नाम की कन्या भी वहां सहसा लहराती हुई लहरों से युक्त नदी हो गई।।३४।।

महाभाग च्यवन ने भी वहां पर तपस्या की। उस महातेजस्वी वैश्य ने भी श्रेष्ठ तप किया।।३५।।

उसने पुनर्जन्म का निराकरण करने वाली परम सिद्धि को प्राप्त किया। वह श्रेष्ठ नवालका नदी भी श्री गङ्गा में आकर मिल गई।।३६।।

जो मनुष्य उस नदी में मार्गशीर्ष महीने में तथा विशेष रूप से माघ महीने में स्नान करता है, वह देवराज इन्द्र से सम्मत परम स्थान को पाता है।।३७।।

वहां लाखों राक्षसों ने भी परम गति को पाया था। वह नवालका नदी अनेक उत्तम तीर्थों में भी श्रेष्ठ हो गई।।३८।।

हे निष्पाप ब्रह्मर्षि नारद ! इस प्रकार मैंने तुमसे इन्द्रप्रयाग के माहात्म्य को और सब पापों का निवारण करने वाले उस नवालका नदी के वैभव के वृत्तान्त को सम्पूर्ण रूप से कह दिया।।३९।।

इस नवालका के माहात्म्य को सुन कर भी मनुष्य उस तीर्थ में स्नान करने के फल को प्राप्त करता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। यह मैंने सत्य ही कहा है।।४०।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में इन्द्रप्रयागमाहात्म्य प्रकरण में नवालका की उत्पत्ति नाम का १६६ वां अध्याय समाप्त हुआ।।

सप्तषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः

अमृताहरणोद्यतस्य वैनतेयस्य प्रमादतो विप्रहननादुद्भूतं पापं विचिन्त्य कश्यपेनारचितस्य महेश्वरस्य प्रसादान्नयनाभ्यामश्रुपातः । अश्रुप्रवाहस्य वैनतेयनदी-नामकरणम् । गरुडेश्वरादिवर्णनम् ।

स्कन्द उवाच-

अन्यान्यपि शृणु प्राज्ञ तीर्थानि प्रवराणि च ।
येषां श्रवणमात्रेण वर्द्धन्ते पुण्यसञ्चयाः ।।१।।

ततः प्राचीविभागे वै सङ्गमेऽतीव पुण्यदे ।
वैनतेयनदी पुण्या तथाऽसौ च नवालका ।।२।।

एतयोः सङ्गमे विप्र तीर्थं तद्वैनतेयकम् ।
यत्र वै वैनतेयेन ह्यमृताहरणे पुरा ।।३।।

निगीर्णे च तथा विप्रे हतरूपेण कर्मणा ।
ब्रह्महत्यावृतेनाऽथ पतितेन व्यशुच्यत ।।४।।

ततः काले गते विप्राऽनागते गरुडे ततः ।
कश्यपो नाम ब्रह्मर्षिर्दध्यौ तत्कारणं परम् ।।५।।

ज्ञात्वा सर्वमशेषेण ययौ तत्राऽऽश्रमे मुनिः ।
यत्राऽऽस्ते गरुडः क्लिष्टो निगीर्णो ब्रह्महत्यया ।।६।।

ददर्श वैनतेयं तु पतितं स्रस्तपक्षकम् ।
वमन्तं रुधिरं विप्र निगीर्णब्राह्मणं ध्रुवम् ।।७।।

तुष्टाव हरमीशानं दृष्ट्वा पुत्रं तथाविधम् ।
प्रत्यक्षश्चाभवच्छम्भुः कश्यपस्य महामतेः ।।८।।

दण्डवत्प्रणनामाऽथ वारंवारमुमापतिम् ।
अवस्थां निजपुत्रस्य श्रावयामास सत्वरम् ।।९।।

जगाद सोऽपि रुद्रो वै ब्राह्मणब्रुवभक्षणम् ।
अजानता कृतं कर्म शमं शीघ्रं भविष्यति ।।१०।।

अध्याय - १६७

अमृत को लाने के लिये उद्यत गरुड द्वारा अनजाने में एक ब्राह्मण को निगल लेना। ब्रह्महत्या के पाप को दूर करने के लिये कश्यप द्वारा महेश्वर की स्तुति और उनकी कृपा से आंखों से अश्रुपात। अश्रुधारा का वैनतेयी नदी नाम होना। गरुडेश्वर आदि का वर्णन

स्कन्द ने कहा-

हे बुद्धिमान् नारद ! अन्य भी श्रेष्ठ तीर्थों के विषय में सुनो, जिनके सुनने मात्र से पुण्यों के संचय बढते हैं।।१।।

अत्यधिक पुण्य प्रदान करने वाले संगम के पूर्वी भाग में पुण्यशालिनी वैनतेया नदी है और वह नवालका नदी है।।२।।

हे विप्र नारद ! इन दोनों नदियों के संगम पर वह वैनतेयक तीर्थ है, जहां प्राचीन समय में गरुड ने अमृत का आहरण करते हुये.....।।३।।

एक विप्र को निगल लिया था। इस प्रकार ब्राह्मण की हत्यारूप पाप करने के कारण वह ब्रह्महत्या से आवृत होकर पतित हुआ और शोक करने लगा।।४।।

हे ब्राह्मण नारद ! तदनन्तर जब समय व्यतीत होने लगा और गरुड नहीं आये, तब कश्यप नाम के ब्रह्मर्षि ने उस कारण के विषय में ध्यान किया।।५।।

सारे वृत्तान्त को पूर्ण रूप से जान कर मुनि उस आश्रम में गये, जहां ब्रह्महत्या से निगले गये कष्ट से दु:खी गरुड थे।।६।।

हे विप्र ! उन्होंने निश्चय से ब्राह्मण को निगलने वाले पतित हुये गरुड को देखा, जिसके पंख ढीले हो गये थे और जो रक्त का वमन कर रहे थे।।७।।

पुत्र की उस प्रकार की अवस्था को देखकर उन्होंने ईशान शिव की स्तुति की। तब महामति कश्यप के समक्ष शिव प्रत्यक्ष रूप से आविर्भूत हुये।।८।।

इसके बाद कश्यप ने बार बार उमापति शिव को प्रणाम किया और शीघ्र ही अपने पुत्र की अवस्था को सुना दिया।।९।।

ब्राह्मण बालक का भक्षण करने वाले उस गरुड से शिव ने कहा, कि यह पाप कार्य क्योंकि अनजाने में किया गया है, अतः यह शीघ्र शान्त हो जायगा।।१०।।

निष्कासयामास तदा तद्गलाद् ब्राह्मणब्रुवम्।
तं पुनर्जीवयामास स्वहस्तेनाऽपमार्जितम्।।११।।

गरुडोऽपि महादेवं समीक्ष्याऽऽनन्दनिर्भरः।
अश्रूणि मोचयामास ततोऽसौ गारुडी नदी।।१२।।

पुनर्बलं ददौ तस्य परमात्मा शिवः स्वयम्।
गरुडेशत्वमापन्नस्तत्रैव शुभकन्दरे।।१३।।

गरुडोऽपि बलं प्राप्य प्रणम्य पितरं शिवम्।
जगामाऽमृतमानेतुं पश्यतामूर्ध्वरेतसाम्।।१४।।

गरुडाश्रुसमुद्भूतां नदीं दृष्ट्वा महेश्वरः।
चकार नामकरणं वैनतेयनदीति च।।१५।।

कश्यपोऽपि महाभाग गत्वा तीर्थान्यनेकशः।
गङ्गाद्वारे ययौ विप्र शिवश्चान्तरधत्त वै।।१६।।

तदादीदं महाभाग तीर्थं गारुडकं परम्।
यत्र वै स्नानमात्रेण ब्रह्महत्या व्यपोहति।।१७।।

गरुडेशं महादेवं दृष्ट्वा पापक्षयो भवेत्।।१८।।

ततो दक्षिणदिग्भागे सरिदस्ति विभाविनी।
तस्याश्च सङ्गमे स्नात्वा राजा भवति धार्मिकः।।१९।।

तत्र भावेश्वरी देवी सर्वसिद्धिप्रदायिनी।
धन्यैः सा दृश्यते देवी सर्वोपद्रवनाशिनी।।२०।।

तस्या वामप्रदेशे हि मन्दधारा सुपुण्यदा।
ततो याम्यप्रदेशे हि राजेन्द्री नाम वै नदी।।२१।।

तस्यां स्नानं कृतं येन स्नानं तेन कृतं भवेत्।
राजेन्द्रीसङ्गमे विप्र पृथुतीर्थमिति स्मृतम्।
यत्र राजा पृथुः पूर्वमारराध महेश्वरम्।।२२।।

तत्र माहेश्वरं लिङ्गं नाम्ना पृथ्वीश्वरं परम्।
ततो दक्षिणदिग्भागे कपर्दकगिरेर्गता।
नदी कपिञ्जला नाम्नी शिवसायुज्यदायिनी।।२३।।

तब शिव ने उस ब्राह्मण बालक को गरुड के गले से बाहर निकाल लिया और अपने हाथ से अपमार्जन करके उसको पुनः जीवित कर दिया।।११।।

गरुड ने भी महादेव को देखकर आनन्द से भर कर आंसुओं को गिराया। उससे यह गारुडी (वैनतेय) नदी उत्पन्न हुई।।१२।।

स्वयं परमात्मा शिव ने उस गरुड के लिये पुनः बल प्रदान किया। वे वहां उसी शुभ कन्दरा में गरुडेश कहलाये।।१३।।

बल को प्राप्त करके और पिता तथा शिव को प्रणाम करके गरुड भी ऊद्ध्वरिता मुनियों के देखते देखते ही अमृत लाने के लिये चले गये।।१४।।

गरुड के आंसुओं से उत्पन्न नदी को देख कर महेश्वर शिव ने उसका नाम वैनतेय नदी रखा।।१५।।

हे विप्र महाभाग नारद! कश्यप भी अनेक तीर्थों में जाकर गङ्गाद्वार (हरिद्वार) गये और शिव अन्तर्धान हो गये।।१६।।

हे महाभाग! तबसे लेकर यह तीर्थ गारुडक (वैनतेयक) कहलाया, जहां स्नान-मात्र से ब्रह्महत्या दूर हो जाती है।।१७।।

गरुडेश महादेव को देख कर पापों का विनाश होता है।।१८।।

उसके दक्षिण दिशा में विभाविनी नाम की नदी है। उसके संगम में स्नान करके मनुष्य धार्मिक राजा होता है।।१९।।

वहां सब सिद्धियों को प्रदान करने वाली भावेश्वरी देवी हैं। सब उपद्रवों को शान्त करने वाली उस देवी को धन्य लोग ही देख पाते हैं।।२०।।

उसके बायें भाग में उत्तम पुण्यों को देने वाली मन्दधारा नाम की नदी है। उसके दक्षिण प्रदेश में राजेन्द्री नाम की नदी है।।२१।।

उस नदी में जिसने स्नान कर लिया, उसने सभी तीर्थों में स्नान कर लिया। हे विप्र! राजेन्द्री के संगम पर पृथुतीर्थ कहा गया है। यहां प्राचीन समय में राजा पृथु ने महेश्वर की आराधना की थी।।२२।।

वहां का माहेश्वर (शिव) लिङ्ग पृथ्वीश्वर नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसके दक्षिण दिशा में कपर्दक पर्वत से आने वाली कपिञ्जला नाम की नदी है, जो शिव के साथ सायुज्य प्रदान करने वाली है।।२३।।

तत्र देवेन विप्रर्षे कपर्दे नर्तिते पुरा।
उत्क्षिप्तस्तेन स गिरिः कपर्देति परिश्रुतः।।२४।।

कपिञ्जलेश्वरो देवस्तत्राऽस्ति गिरिकन्दरे।
तमभ्यर्च्य शिवं भक्त्या रुद्रलोके महीयते।।२५।।

उत्क्षिप्ते तु जटाजूटे निर्गताः गाङ्गबिन्दवः।
धारारूपास्तु शतशो गङ्गा एव न संशयः।।२६।।

ततो वै पूर्वदिग्भागे चन्द्रकूटे गिरौ परम्।
देवेश्वरो महादेवः सर्वपापनिवारकः।।२७।।

चन्द्रतोया ततो रम्या समायाति नदी वरा।
तस्यां स्नात्वा नरो याति चन्द्रलोकं न संशयः।।२८।।

लाङ्गले पर्वते दिव्ये लाङ्गलीशः सदाशिवः।
तस्य दर्शनमात्रेण राजराजेश्वरो भवेत्।।२९।।

तस्य नैर्ऋत्यभागे वै नदी मञ्जुकुला मता।
तस्याः सम्मेलनं यत्र भीमतीर्थमिति स्मृतम्।।३०।।

ततः पूर्वे क्रोशमात्रे शिला पिङ्गलिका भवेत्।
तस्याः स्पर्शेन नश्यन्ति पातकान्यखिलान्यपि।।३१।।

वनदेवी ततः प्रोक्ता देवीलोकप्रदायिनी।
धेनुगङ्गा ततः पश्चात्क्रोशार्द्धे शिवदायिनी।।३२।।

तस्याः सुसङ्गमे स्नात्वा धेनुलोके वसेच्चिरम्।
धेनुस्वेदात्समुत्पन्ना नदी परमपाविनी।।३३।।

अत्रिपुत्रीति तद्वामे वराऽस्ति सरिदुत्तमा।
तस्यां स्नात्वा वसेत्स्वर्गे भोगान्ते नृपतिर्भवेत्।।३४।।

शूलेश्वरी महादेवी तद्वामे क्रोशखण्डके।
इति ते कथितान्येव सङ्क्षेपाद् द्विजसत्तम।।३५।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे नानातीर्थवैभववर्णनं नाम
सप्तषष्ट्युत्तरतमोऽध्यायः।।

हे विप्रर्षे नारद ! वहां पहले समय में कौड़ी (कपर्द) को नचाते हुये शिव ने उसको उछाल दिया था, अतः वह पर्वत कपर्दक नाम से प्रसिद्ध हुआ।।२४।।

वहां पर्वत की कन्दरा में कपिञ्जलेश्वर महादेव विद्यमान हैं। उस शिव की भक्तिपूर्वक अर्चना करने से मनुष्य शिवलोक में जाकर महिमा को प्राप्त करता है।।२५।।

वहां शिव के द्वारा जटाजूट को ऊपर उछालने पर गङ्गाजल की बूंदें निकल पड़ीं। धारारूप में होकर सैंकड़ों गङ्गायें हो गईं, इसमें सन्देह नहीं है।।२६।।

वहां से पूर्व दिशा में चन्द्रकूट गिरि पर सब पापों का विनाश करने वाले परम देवेश्वर महादेव हैं।।२७।।

वहां से चन्द्रतोया नाम की सुन्दर श्रेष्ठ नदी आती है। उसमें स्नान करने से मनुष्य चन्द्रलोक में जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।२८।।

दिव्य लांगल पर्वत पर लाङ्गलीश सदाशिव विद्यमान हैं। उनके दर्शन-मात्र से मनुष्य राजराजेश्वर हो जाता है।।२९।।

उस लांगल पर्वत की नैर्ऋत्य दिशा में मंजुकुला नाम की नदी है। उसका जहां नवालका में मिलन होता है, उसको भीमतीर्थ कहते हैं।।३०।।

उस संगम से एक कोस दूर पिंगलिका नाम की शिला है। उसका स्पर्श करने से सारे पाप नष्ट हो जाते हैं।।३१।।

तदनन्तर देवीलोक को प्रदान करने वाली वनदेवी है। उसके पश्चात् आधे कोस दूर शिव को प्रदान करने वाली धेनुगङ्गा नदी है।।३२।।

उसका जहां नवालका में उत्तम संगम है, वहां स्नान करने से मनुष्य चिरकाल तक गोलोक में निवास करता है। यह परमपाविनी नदी धेनु के स्वेद से उत्पन्न हुई थी।।३३।।

उसके वाम भाय में अत्रिपुत्री नाम की उत्तम श्रेष्ठ नदी है। उसमें स्नान करने से मनुष्य स्वर्ग में निवास करता है और स्वर्ग का भोग करने के अनन्तर राजा होता है।।३४।।

उसके वाम भाग में एक कोस दूर शूलेश्वरी महादेवी हैं। हे द्विजश्रेष्ठ नारद ! इस प्रकार मैंने तुमसे संक्षेप से तीर्थों को कह दिया है।।३५।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में अनेक तीर्थों के
वैभव-वर्णन नाम का १६७ वां अध्याय समाप्त हुआ।।

अष्टषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः

नवालकानद्यास्तटे दीप्तज्वालेश्वरीपीठम् । देवराजमिन्द्रं पतिरूपेण कामयमानायाः पुलोमजायाः सखीवचनाद्दीप्त- ज्वालाभगवत्या आराधनम् । इन्द्रासनार्धसम्प्राप्तिः । दीप्तज्वालेश्वरीमाहात्म्यवर्णनम् ।

स्कन्द उवाच-

अथाऽन्यच्छृणु पीठं वै देव्याः परमकं शिवम् ।
पुण्ये नवालकातीरे तन्मानं योजनार्द्धकम् ।।१।।

अतिपुण्यतमं पीठं सद्यः प्रत्ययकारकम् ।
दीप्तज्वालेश्ववरी ख्याता सर्वसिद्धिप्रदायिनी ।।२।।

पूर्वं तत्र पुलोम्नश्च कन्ययाऽऽराधिता परा ।
दृष्टा तया प्रदीप्ताग्निज्वालेव नगकन्यका ।।३।।

ततः सर्वे मुनिगणाः दीप्तज्वालेति तां विदुः ।
इन्द्रासनार्द्धसम्प्राप्तिर्जाता तस्या महामते ।।४।।

नारद उवाच-

पुलोमकन्यया स्कन्द कथमाराधिता सती ।
कथमिन्द्रस्य पत्नी सा जाता तद्वद मे प्रभो ।।५।।

स्कन्द उवाच-

शृणु देव पुरावृत्तं सर्वपापप्रणाशनम् ।
पुलोमजा यथा कन्या देवीमाराधयत्सतीम् ।।६।।

दैत्यवर्यः पुलोमाऽभूत्सर्वसत्त्वभयंकरः ।
तस्य कन्येयमाख्याता शची नाम्नेति विश्रुता ।।७।।

एकदा सा सखीभिस्तु वेष्टिता हिमवद्गिरिम् ।
ययौ द्रष्टुं विमानेन कामगेन महामते ।।८।।

पश्यन्ती सा महाशोभां शची वै हिमवद्गिरेः ।
नानानदीनदाकीर्णतीर्थराजोपशोभितम् ।।९।।

नवालका नदी के तट पर दीप्तज्वालेश्वरी पीठ। देवराज इन्द्र की पति के रूप में कामना करती हुई पुलोमजा द्वारा सखी के कहने से दीप्तज्वाला भगवती की आराधना। इन्द्रासन के अर्धभाग की प्राप्ति। दीप्तज्वालेश्वरी के माहात्म्य का वर्णन।

स्कन्द ने कहा-

इसके अनन्तर तुम परम कल्याण करने वाले देवी के पीठ के विषय में सुनो। नवालका के पुण्यशाली तट पर वह आधा योजन के परिमाण में है।।१।।

यह अति पुण्यशाली पीठ तत्काल ज्ञान को उत्पन्न करने वाला है। यह सब सिद्धियों को प्रदान करने वाला पीठ दीप्तज्वालेश्वरी (ज्वाला देवी) नाम से प्रसिद्ध है।।२।।

पहले समय में वहां पुलोमा की कन्या ने परा शक्ति की आराधना की थी। उसने प्रदीप्त अग्नि की ज्वाला के समान पर्वतपुत्री पार्वती को देखा।।३।।

हे महामते नारद! तब सब मुनियों ने उस देवी को दीप्तज्वाला नाम से जाना। उस पुलोमा की कन्या को आधे इन्द्रासन की प्राप्ति हुई।।४।।

नारद ने कहा-

हे प्रभो स्कन्द! पुलोमा की कन्या ने सती की आराधना किस प्रकार की थी। वह इन्द्र की पत्नी कैसे हुई, इस बात को मुझको बताओ।।५।।

स्कन्द ने कहा-

हे देव नारद! सब पापों को नष्ट करने वाले प्राचीन वृत्तान्त को सुनो, जिस प्रकार से पुलोमा की कन्या ने सती देवी की आराधना की थी।।६।।

दैत्यों में श्रेष्ठ पुलोमा था, जो सब प्राणियों में सबसे अधिक भयानक था। उसकी एक कन्या थी, जो शची नाम से प्रसिद्ध हुई।।७।।

हे महामते नारद! एक दिन वह सखियों से घिरी हुई शची इच्छानुसार गति करने वाले विमान द्वारा हिमालय पर्वत को देखने के लिये गई।।८।।

वह शची हिमालय पर्वत की शोभा को देख रही थी, जो अनेक नदियों और नदों से भरा हुआ था और श्रेष्ठ तीर्थों से सुशोभित था।।९।।

नानालिङ्गशताकीर्णं नानाप्रस्रवणैर्युतम्।
नानामृगगणैर्जुष्टं सिंहव्याघ्रनिषेवितम्।।१०।।

नानापक्षिशताघुष्टं दृष्टिरम्यं शिवालयम्।
प्रमथैस्तु तदाकीर्णं देवीदेवनिषेवितम्।।११।।

दृष्ट्वा हिमालयं दिव्यं गङ्गाधारोर्मिमालिनम्।
विजहार शची तत्र सवयस्कसखीवृता।।१२।।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र शिवदर्शनलालसः।
आययौ वासवो देवः सर्वदेवगणैर्युतः।।१३।।

ऐरावतसमारूढो गन्धर्वगणशोभितः।
किन्नरैर्गीयमानो वै त्वप्सरोगणशोभितः।।१४।।

नानाविभूतिभिर्युक्तो लोकपालगणैर्वृतः।
दृष्ट्वा विभूतिमन्तं तमिन्द्रं वृत्रनिषूदनम्।।१५।।

चकमे सा पतिं तं तु पुलोमतनया शची।
अपृच्छत्सा सखीं किञ्चित्कथमिन्द्रः पतिर्भवेत्।।१६।।

साऽवदत्सहसा बालां यौवनोन्मुखशालिनीम्।
पुण्येन लभ्यते भर्त्ता सानुरूपोऽनुकूलकः।।१७।।

पुण्यं तु त्रिविधं ख्यातं तीर्थसेवनजं तथा।
दानजन्यं व्रतभवं चतुर्थं नैव विद्यते।।१८।।

इदं हिमवतः स्थानं देवानामपि दुर्लभम्।
अत्राऽऽराधय देवेशीं महादेवीं पुलोमजे।।१९।।

ततः सम्पत्स्यते सर्वं यद्यन्मनसि वर्तते।
इति सख्याः वचः श्रुत्वा पुलोमतनया शची।।२०।।

नवालकातटे पुण्ये देवर्षिगणसेविते।
चकार पूजनं देव्या अष्टम्यां विधिवन्मुने।।२१।।

धूपैर्दीपैस्तु नैवेद्यैर्बलिभिश्च तथाऽपरैः।
निराहारा तन्मनस्का देवीध्यानपरायणा।।२२।।

वह अनेकों सैंकड़ों शिवलिङ्गों से भरा हुआ था, अनेक झरनों से युक्त था, विविध मृगों से सेवित था और सिंहों एवं बाघों से सेवित था।।१०।।

वहां अनेक सैंकड़ों पक्षियों का शब्द हो रहा था, देखने में सुन्दर शिवमन्दिर थे, शिव के गणों से वह भरा था और देवी पार्वती एवं देव शिव से सेवित था।।११।।

गङ्गा की धारा की लहरों से युक्त दिव्य हिमालय को देख कर, समान आयु वाली सखियों से घिरी हुई वह शची वहां विहार करने लगी।।१२।।

इसी मध्य में वहां शिव के दर्शन की लालसा रखने वाले देवराज इन्द्र सब देवताओं से युक्त होकर आये।।१३।।

वे ऐरावत हाथी पर सवार थे, गन्धर्वों से शोभित थे, किन्नर उनकी स्तुति गा रहे थे और अप्सरायें उनको सुशोभित कर रही थीं।।१४।।

वे अनेक विभूतियों से युक्त थे और लोकपालों से घिरे हुये थे। वृत्र का वध करने वाले ऐश्वर्यशाली उस इन्द्र को देख कर...।।१५।।

पुलोमा की पुत्री शची ने उसकी पति के रूप में कामना की। उसने अपनी किसी सखी से पूछा कि इन्द्र मेरा पति किस प्रकार हो सकता है।।१६।।

यौवन से सुशोभित उस बाला शची से वह सखी सहसा बोली- "अनुकूल और अनुरूप पति पुण्यों से प्राप्त होता है"।।१७।।

पुण्य तीन प्रकार से होता है- एक तो तीर्थों का सेवन करने से, दूसरे दान से और तीसरे व्रतों से। चौथे प्रकार से नहीं होता।।१८।।

हिमालय का यह स्थान देवताओं को भी दुर्लभ है। इसलिये हे पुलोमा की पुत्रि ! तुम यहां देवेश्वरी महादेवी सती की आराधना करो।।१९।।

तदनन्तर जो कुछ तुम्हारे मन में है, वह सब पूरा हो जायगा। इस प्रकार के सखी के वचन को सुनकर पुलोमा की पुत्री शची ने.....।।२०।।

हे मुने नारद ! देवर्षियों से सेवित नवालका के पुण्यशाली तट पर अष्टमी तिथि में देवी का विधिवत् पूजन किया।।२१।।

वह निराहार रह कर देवी के ध्यान में लगी हुई उनके प्रति मन लगा कर धूप, दीप, नैवेद्य, बलि और अन्य साधनों से देवी का पूजन करती रही।।२२।।

एवं तस्या ययौ कालो महान्वै वर्षसम्मितः।
ततोऽर्द्धरात्रसमये ददर्श जगदम्बिकाम्।।२३।।

कोटिसूर्यप्रतीकाशां दीप्तज्वालां महेश्वरीम्।
दृष्ट्वा तां प्राणमद् भूमौ दण्डवत्पतिता शची।।२४।।

पतिर्मे दीयतां शक्रस्त्वया विश्वविभाविनि।
एवमस्त्विति साऽप्युक्त्वा तत्रैवाऽन्तर्दधे शिवा।।२५।।

तद्वरस्य प्रभावेण वृता सेन्द्रेण वै शची।
इतीदं कथितं विप्र यथा शच्या कृतं तपः।।२६।।
नवालकाप्रभावश्च यत्स्नानात्पुण्यमाप्नुयात्।
नित्यं स्नाति पुमान्यस्तु विधिना सरिति स्वयम्।
यत्फलं प्राप्यते तेन शृणु सर्वमशेषतः।।२७।।

सर्वयज्ञेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम्।
तत्फलं समवाप्नोति तेन चैकेन कर्मणा।।२८।।

इति ते कथितं दिव्यं दीप्तज्वालेश्वरीस्थलम्।।२९।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे दीप्तज्वालेश्वरीमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः।।

एकोनसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः

काण्डवीसरितस्तटे उमादेवीपीठवर्णनम्, केवलेश्वर-शिवलिङ्गवर्णनम्, राष्ट्रकूटगिरिशिखरे वन्यश्रीकेश्वरा-ख्यशिवलिङ्गवर्णनम्। तन्माहात्म्यवर्णनम्।

स्कन्द उवाच-

अतः परं शृणु प्राज्ञ तत्पूर्वदिशि संस्थितः।
कण्डुर्नाम महाभाग ब्रह्मर्षिर्नरपूजितः।।१।।

ततः स्थानं तस्य विप्र कथितं देवपूजनम्।
तत्र सरिद्वरा पुण्या काण्डवी पुण्यगोचरा।।२।।

इस प्रकार पूजन करते हुये उसको एक वर्ष का दीर्घ समय व्यतीत हो गया। तदनन्तर आधी रात के समय उसने जगत् की माता देवी को देखा।।२३।।

करोड़ों सूर्यों के समान जलती हुई ज्वाला के समान महेश्वरी को देख कर शची ने भूमि पर गिर कर दण्डवत् प्रणाम किया।।२४।।

हे विश्व को उत्पन्न करने वाली देवि ! आप मुझको पति के रूप में इन्द्र को प्रदान करें। ऐसा ही होगा, यह कह कर शिवा वहीं अन्तर्धान हो गईं।।२५।।

उस वर के प्रभाव से इन्द्र ने निश्चय से शची का वरण किया। हे विप्र ! इस प्रकार मैंने तुमसे शची के तप का वृत्तान्त कह दिया है।।२६।।

नवालका का जो प्रभाव है और उसमें स्नान करने से जिस पुण्य को मनुष्य प्राप्त करता है, जो मनुष्य स्वयं विधिपूर्वक इस नदी में स्नान करता है, उससे वह जिस फल को प्राप्त करता है, उसको तुम सम्पूर्ण रूप से सुनो।।२७।।

सब यज्ञों के करने से जो पुण्य प्राप्त होता है और सब तीर्थों में जाने से जो फल प्राप्त होता है, उस फल को वह इस एक कार्य से (स्नान करने से) प्राप्त कर कर लेता है।।२८।।

इस प्रकार मैंने तुमसे दीप्तज्वालेश्वरी के स्थान का वृत्तान्त कह दिया है।।२९।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में दीप्तज्वालेश्वरी का माहात्म्यवर्णन नाम का १६८ वां अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय - १६९

काण्डवी नदी के तट पर उमा देवी पीठ का वर्णन। केवलेश्वर शिवलिङ्ग का वर्णन। राष्ट्रकूट पर्वत शिखर पर वन्यश्रीकेश्वर नामक शिवलिङ्ग का वर्णन और उसके माहात्म्य का कथन

स्कन्द ने कहा-

हे बुद्धिमान् नारद ! इसके बाद सुनो। हे महाभाग ! उस दीप्तज्वालेश्वरी के पूर्व दिशा में मनुष्यों से पूजित कंडु नाम के ब्रह्मर्षि रहते थे।।१।।।।

हे विप्र ! वहां उसका देवपूजन नाम का स्थान है। वहां नदियों में श्रेष्ठ पुण्यशालिनी काण्डवी नदी है, जो पुण्यों से दिखाई देती है।।२।।

तस्यां स्नानान्नरो याति विमानवरमास्थितः।
नन्दने विपिने दिव्ये ह्यप्सरोगणसेविते।।३।।

गन्धर्वैर्गीयमानस्तु नानाभोगपरिप्लुतः।
भुक्त्वा भोगं तत्र दिव्यं सहस्रं परिवत्सरान्।
पुनः पृथिव्यां सञ्जातः सप्तद्वीपपतिर्भवेत्।।४।।

उमा देवीति तत्राऽस्ति सर्वपापप्रणाशिनी।
तस्या दर्शनमात्रेण शिवलोके महीयते।।५।।

सप्तरात्रं तु यस्तत्र देवीपूजनतत्परः।
स प्राप्नोति परां सिद्धिं योगिनामपि दुर्लभाम्।।।६।।
भाग्येन यस्त्यज्येत्प्राणान् देवीसालोक्यमाप्नुयात्।।७।।

काण्डवीस्नानतो विप्र तथोमायाः प्रपूजनात्।
प्रयाति भवनं देव्याः पुनरावृत्तिदुर्लभम्।।८।।

तत्राऽस्ति शिवलिङ्गं वै केवलेश्वरसञ्ज्ञितम्।
तस्य पूजनतो मर्त्यो रुद्रलोके वसेच्चिरम्।।९।।

केवलेश्वरलिङ्गन्तु चतुर्वर्गप्रसाधनम्।
संश्रयेत ततस्तद्वै लिङ्गं परममद्भुतम्।।१०।।

तस्य वै दक्षिणे भागे नदी कपिलनीरिणी।
कपिलेन पुरा तत्र याता कपिलरूपिणी।।११।।

स्नातः कपिलनीरिण्यां शिवलोके महीयते।
कपिलस्याऽऽश्रमस्तत्र पूर्वभागे शुभार्थदः।।१२।।

ततो नारद पूर्वस्या दक्षिणस्यास्तु मध्यमे।
राष्ट्रकूट इति ख्यातः पर्वतोऽतीव सुन्दरः।।१३।।

धर्मचिन्तकवैश्योऽत्र पूर्वं यो वै व्यवस्थितः।
लेभे च परमां सिद्धिं योगिनामपि दुर्लभाम्।।१४।।

तत्र दिव्यं सरस्तद्वद्वर्धनं सुखसम्पदाम्।
सञ्जज्ञे नरशार्दूल तत एव नदीद्वयम्।।१५।।

उसमें स्नान करने से मनुष्य श्रेष्ठ विमान में बैठ कर अप्सराओं से सेवित दिव्य नन्दन वन में विहार करता है। ।३। ।

गन्धर्व उसकी स्तुति गाते हैं और विविध भोग मिलते हैं। वहां सहस्र दिव्य वर्षों तक भोगों को भोग कर तदनन्तर वह पृथिवी पर उत्पन्न होकर सात द्वीपों का स्वामी होता है। ।४। ।

वहां सब पापों का विनाश करने वाली उमादेवी हैं। उनके दर्शनमात्र से मनुष्य शिवलोक में जाकर महिमा को प्राप्त करता है। ।५। ।

जो वहां सात रात्रियों तक रह कर देवी के पूजन में तत्पर रहता है, वह योगियों के लिये भी दुर्लभ परम सिद्धि को प्राप्त करता है। ।६। ।

जो भाग्यवश वहां प्राणों का परित्याग करता है, वह देवी के लोक को प्राप्त करता है। ।७। ।

हे विप्र ! काण्डवी में स्नान करने से और उमा का पूजन करने से मनुष्य देवी के लोक को प्राप्त करता है, जहां से पुनः लौटना दुर्लभ है। ।८। ।

वहां केवलेश्वर नाम का शिवलिङ्ग है। उसका पूजन करने से मनुष्य चिरकाल तक शिवलोक में निवास करता है। ।९। ।

केवलेश्वर लिङ्ग चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) को सिद्ध करने वाला है। अतः उस परम अद्‌भुत लिङ्ग का निश्चय से आश्रय लेना चाहिये। ।१०। ।

उसके दक्षिण भाग में कपिलनीरिणी नदी है। कपिल मुनि पहले समय में वहां गये थे, अतः वह कपिलरूप है। ।११। ।

कपिलनीरिणी में स्नान करने से मनुष्य शिवलोक में जाकर महिमा को प्राप्त करता है। वहां उसके पूर्व दिशा में शुभ अर्थों को देने वाला कपिल मुनि का आश्रम है। ।१२। ।

हे नारद ! वहां से पूर्व और दक्षिण दिशा के मध्य भाग में अति सुन्दर प्रसिद्ध राष्ट्रकूट नाम का पर्वत है। ।१३। ।

पहले जिस धर्मचिन्तक नाम के वैश्य की बात कही थी, उसने यहां पर योगियों के लिये भी दुर्लभ परम सिद्धि को प्राप्त किया था। ।१४। ।

हे मनुष्यों में श्रेष्ठ नारद ! वहां सुख-संपदाओं को बढाने वाला एक दिव्य जलाशय है। वहां से दो नदियां उत्पन्न होती हैं। ।१५। ।

अन्तर्हितं सरस्तद्वै पापिनां चैव दुर्लभम्।
नवालकेति या प्रोक्ता तथैव रथवाहिनी।।१६।।

तद्दक्षिणे महाभाग योजनद्वयसम्मिते।
भूमिभागे महालिङ्गं सद्यः प्रत्ययकारकम्।।१७।।

चिह्नं तत्र प्रवक्ष्यामि येन ते प्रत्ययो भवेत्।
तत्रैव गुञ्जितागुल्मो नित्यं पुष्पैस्तु मण्डितः।
तत्रैवाऽस्ति जलं पुण्यं पीताभं पुण्यवर्द्धनम्।।१८।।

वन्यश्रीकास्तु मुनयो रराधुः परमं शिवम्।
वन्यश्रीकेश्वरः ख्यातस्ततः सर्वेश्वरः शिवः।।१९।।

अतः परतरं नाऽस्ति तीर्थं पुण्यतमं क्वचित्।
सिध्यत्यन्यत्र यद्वर्षैस्तदिहाह्नैव सिध्यति।।२०।।

अधोभूमौ बिले पुण्ये तस्य स्थानं परं मतम्।
गमनादेव लभ्यन्ते कार्याणि किमु पूजनैः।।२१।।

शिवावासमिदं ख्यातं शिवलोकप्रदायकम्।
गुह्यमेतन्मयाऽऽख्यातं न वक्तव्यं हि पापिषु।।२२।।

शिवा शिवश्चाऽत्राऽऽसाते भुक्तिमुक्तिप्रदायकौ।।२३।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे उमादिवर्णनं नामैको-
नसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः।।

सप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः

ऐन्द्रीसरितस्तटे देवेश्वरशिवलिङ्गवर्णनम्। देवराष्ट्रे-
श्वरीदुर्गापीठनिरूपणम्। तन्माहात्म्यवर्णम्।

स्कन्द उवाच-

ततो दक्षिणदिग्भागे योजनत्रयसम्मिते।
देवराष्ट्रेश्वरी ख्याता देवराज्यप्रदायिनी।।१।।

पूर्वं सा देवराजेन प्रार्थिता राज्यवृद्धये।
इयं ततो महाभाग देवराष्ट्रेश्वरी मता।।२।।

वह जलाशय छिपा रहता है और पापियों के लिये दुर्लभ है। वहां से दो नदियां नवालका और रथवाहिनी उत्पन्न हुई हैं।।१६।।

हे महाभाग नारद! वहां से दो योजन दूर दक्षिण दिशा के भूमिभाग में तत्काल ज्ञान उत्पन्न कराने वाला महालिङ्ग है।।१७।।

मैं तुमको उसका चिह्न बताऊंगा, जिससे तुमको उसकी पहचान होगी। वहां सदा पुष्पों से सुशोभित रत्तियों का गुल्म है। वहीं पर पुण्यों को बढाने वाला पीताभ पुण्य जल है।।१८।।

वहां वन्यश्रीक मुनियों ने परम शिव की आराधना की थी। इसलिये वहां सर्वेश्वर शिव वन्यश्रीकेश्वर नाम से प्रसिद्ध हुये।।१९।।

इससे अधिक महान् पुण्यशाली तीर्थ अन्य कोई नहीं है। जो कार्य अन्य तीर्थों में वर्षों में सिद्ध होते हैं, वे यहां एक दिन में ही सिद्ध हो जाते हैं।।२०।।

उस वन्यश्रीकेश्वर शिव का स्थान भूमि में नीचे बिल में विद्यमान है। मनुष्यों के कार्य वहां जाने से ही सिद्ध हो जाते हैं, पूजन करने का तो कहना ही क्या है।।२१।।

यह स्थान शिवावास नाम से प्रसिद्ध है, जो शिवलोक को देने वाला है। मैंने तुमको यह गुप्त बात कह दी है, जो पापियों से नहीं कहनी चाहिये।।२२।।

यहां भोगों और मुक्ति को देने वाले शिव और शिवा निवास करते हैं।।२३।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदराखण्ड में उमादिवर्णन नाम का १६९ वां अध्याय समाप्त हुआ।।

अध्याय - १७०

ऐन्द्री (रिन्दी) नदी के किनारे देवेश्वर शिवलिङ्ग का वर्णन। देवराष्ट्रेश्वरी दुर्गापीठ का वर्णन और उसके माहात्म्य का कथन।

स्कन्द ने कहा-

उसके दक्षिण दिशा में तीन योजन दूर देवराष्ट्रेश्वरी का पीठ प्रसिद्ध है, जो देवताओं के राज्य को प्रदान करने वाली है।।१।।

हे महाभाग! पहले समय में देवराज इन्द्र ने राज्य की वृद्धि के लिये उनसे प्रार्थना की थी, अतः यह देवराष्ट्रेश्वरी नाम से प्रसिद्ध हुई।।२।।

देवेश्वरो महादेवस्तत्राऽऽस्ते शिवदायकः।
ऐन्द्री नाम नदी विप्र तत्र सौभाग्यदायिनी।।३।।

इन्द्रनेत्रोद्भवाऽसौ हि नदी परमपाविनी।
यः स्नाति गुरुवारेऽस्यामिन्द्रलोके वसेच्चिरम्।।४।।

यस्तत्र निवसेन्मासं देवीभक्तिपरायणः।
यं यं कामयते कामं तं तं प्राप्नोति मानवः।।५।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे देवराष्ट्रेश्वरीमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः।।

एकसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः

पुण्यकूटपर्वते नन्दप्रस्वेदात्समुत्पन्नायाः नन्दनासरितस्तटे नन्देश्वरीदुर्गापीठम्। नन्देश्वराख्यशिवस्थानम्। तन्माहात्म्यवर्णनम्।।

स्कन्द उवाच-

ततः पश्चिमदिग्भागे पुण्यकूटो महागिरिः।
पुण्यभाग्योदयाल्लभ्या यत्र साक्षान्महेश्वरी।।१।।

तत्र नन्दो महाराजस्तपस्तेपे सुदारुणम्।
नन्दप्रस्वेदसम्भूता नन्दनेति सरिद्वरा।।२।।

तत्र स्नात्वा व्रजेन्नाकं यावद्वर्षसहस्रकम्।
तत्राऽऽस्ते परमा देवी नाम्ना नन्देश्वरी परा।
यस्या दर्शनमात्रेण देवीप्रीतिः प्रजायते।।३।।

नन्देश्वरीं समभ्यर्च्य बलिपूजोपहारकैः।
सुवर्णाभविमानेन स गच्छेच्छिवमन्दिरम्।।४।।

तत्र नन्देश्वरो देवः सर्वदेवप्रपूजितः।
अभिषेकं तु गाङ्गेन यः कुर्यादम्बुना मुने।
स गच्छेत्प्रमथैः सेव्ये रुद्रलोके महामुने।।५।।

इत्येतत्परमं गुह्यं पीठमुक्तं शिवप्रदम्।।६।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे नन्देश्वरीमाहात्म्यवर्णनं नामैकसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः।।

वहां शिव को प्रदान करने वाले देवेश्वर महादेव हैं। हे विप्र ! वहां सौभाग्य को देने वाली ऐन्द्री (रिन्दी) नाम की नदी है।।३।।

वह परमपाविनी नदी इन्द्र के नेत्रों से उत्पन्न हुई थी। जो इसमें बृहस्पतिवार के दिन स्नान करता है, वह चिरकाल तक इन्द्रलोक में निवास करता है।।४।।

जो मनुष्य यहां देवी के प्रति भक्ति में परायण होकर एक महीने तक निवास करता है, वह जिस-जिस वस्तु की कामना करता है, उसको पाता है।।५।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में देवराष्ट्रेश्वरीमाहात्म्यवर्णन नाम का १७० वां अध्याय समाप्त हुआ।।

अध्याय - १७१

पुण्यकूट पर्वत पर नन्द के पसीने से उत्पन्न नन्दना नदी के तट पर नन्देश्वरी दुर्गापीठ। नन्देश्वर नाम के शिवलिङ्ग का स्थान। उनके माहात्म्य का वर्णन।

स्कन्द ने कहा-

इससे पश्चिम दिशा में पुण्यकूट नाम का महान् पर्वत है। जहां पुण्य भाग्यों के उदय से साक्षात् महेश्वरी प्राप्त होती है।।१।।

वहां नन्द महाराज ने अति कठोर तप किया था। वहां नन्द के पसीने से नन्दना नाम की श्रेष्ठ नदी उत्पन्न हुई थी।।२।।

वहां स्नान करने से मनुष्य एक हजार वर्ष तक स्वर्ग में रहता है। वहां नन्देश्वरी नाम की परम श्रेष्ठ देवी हैं। इनके दर्शनमात्र से देवी के प्रति प्रीति उत्पन्न होती है।।३।।

बलि, पूजन और उपहारों से नन्देश्वरी देवी का पूजन करने से मनुष्य स्वर्ण की कान्ति वाले विमान पर बैठ कर शिवलोक को जाता है।।४।।

वहां सब देवों से पूजित नन्देश्वर महादेव हैं। हे मुने ! जो मनुष्य गङ्गाजल से उनका अभिषेक करता है, हे महामुने नारद ! वह शिव के गणों से सेवित शिवलोक को जाता है।।५।।

इस प्रकार मैंने शिवलोक को प्रदान करने वाले परम गुप्तपीठ का वृत्तान्त कह दिया है।।६।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में नन्देश्वरीमाहात्म्यवर्णन नाम का १७१ वां अध्याय समाप्त हुआ।।

द्विसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः

सुन्दरपर्वते सुन्दरानद्यास्तटे सुन्दरेश्वरशिवस्थानम्। भूरिदेवपर्वते भूरिदेवासरितस्तटे भूरिदेवमहेशस्थानम्। कालिकादिदेवीस्थानवर्णनम्। इन्द्रप्रयागाद्दक्षिणदिशि वैनायकतीर्थवर्णनम्। पूर्वोक्तस्थानमाहात्म्यवर्णनम्।।

स्कन्द उवाच-

ततो नैर्ऋत्यभागे वै नाम्ना सुन्दरपर्वतः।
तत्र नारद देवेशः सुन्दरेश्वरसञ्ज्ञितः।।१।।

तं दृष्ट्वा रुद्रलोके तु शुद्धो व्रजति पुण्यभाक्।
सुन्दरेति सरित्ख्याता स्नातुः सौन्दर्यदायिनी।।२।।

ततो गव्यूतिषट्के वै पश्चिमे निर्ऋतौ पुनः।
अद्रिरस्ति महापुण्यो भूरिदेव इति श्रुतः।।३।।

अत्रिवंश्यो द्विजश्रेष्ठो भूरिदेव इति श्रुतः।
तेनाऽत्र तपसा शम्भुः स्तुतोऽसौ भूरिदेवकः।।४।।

भूरिदेवा तत्र नदी पातकाद्रिपविर्द्विज।
स्नात्वा वै भूरिदेवायां दृष्ट्वा लिङ्गद्वयं मुने।
गच्छेद्वै परमां सिद्धिं यामाप्त्वा नैव शोचति।।५।।

नवालकायां सा यत्र सङ्गता ह्यतिपुण्यदा।
भवनाशनकं नाम तत्र तीर्थमुदाहृतम्।।६।।

यत्र त्यक्त्वा शुभान्प्राणान्न पुनर्भवमाव्रजेत्।
ततो वै शम्भुकोणे च परे पारे नवालकम्।
भवानीति च विख्याता भवबन्धविमोचिनी।।७।।

सप्तरात्रं निराहारो यस्तत्र व्रतमाचरेत्।
साधयेत्सर्वकर्माणि तथा सर्वमनोरथान्।।८।।

सुन्दर पर्वत पर सुन्दरा नदी के तट पर सुन्दरेश्वर शिव के स्थान का वर्णन। भूरिदेव पर्वत पर भूरिदेवा नदी के तट पर भूरिदेव शिव का स्थान। कालिकादि देवियों के स्थानों का वर्णन। इन्द्रप्रयाग से दक्षिण दिशा में वैनायक तीर्थ का वर्णन। इन स्थानों के माहात्म्य का कथन।

स्कन्द ने कहा-

उस नन्देश्वरी पीठ से नैर्ऋत्य दिशा में सुन्दर नाम का पर्वत है। हे नारद ! वहां सुन्दरेश्वर नाम के देवेश महादेव हैं।।१।।

उन सुन्दरेश्वर महादेव का दर्शन कर पुण्यशाली मनुष्य शुद्ध होकर शिवलोक को जाता है। वहां स्नान करने वाले के लिये सौन्दर्य से सम्पन्न सुन्दरा नाम की नदी है।।२।।

वहां से पश्चिम नैर्ऋत्य दिशा में छः गव्यूति (१२ कोस) दूर महापुण्यशाली भूरिदेव नाम से प्रसिद्ध पर्वत है।।३।।

अत्रि मुनि के वंश में उत्पन्न भूरिदेव नाम का एक श्रेष्ठ ब्राह्मण था। उसने वहां तपस्या द्वारा शिव की स्तुति की थी। अतः वह पर्वत भूरिदेव के नाम से प्रसिद्ध हुआ।।४।।

हे ब्राह्मण नारद ! वहां पापों के पर्वत को भी वज्र के समान नष्ट करने वाली भूरिदेवा नाम की नदी है। भूरिदेवा नदी में स्नान करके और दो शिवलिङ्गों का दर्शन करके, हे मुने नारद ! मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त करता है। उसको पाकर मनुष्य को शोक नहीं रहता।।५।।

उस भूरिदेवा नदी का जहां नवालका में संगम होता है, वहां भवनाशनक नाम का तीर्थ कहा गया है।।६।।

वहां शुभ प्राणों का परित्याग होने पर पुनर्जन्म नहीं होता। वहां से शिव के कोण में नवालका नदी के पार संसार के बन्धन को छुड़ाने वाली प्रसिद्ध भवानी देवी हैं।।७।।

जो सात रात्रियों तक निराहार रह कर वहां व्रत का पालन करता है, वह सब कार्यों को और सारे मनोरथों को सिद्ध कर लेता है।।८।।

नद्योर्द्वयोः सङ्गमे तु भवमोचननामके।
यो ददाति नरो गां वै रुद्र एव न संशयः।।९।।

आश्विनस्य नवम्यां वै बलिमस्यै प्रयच्छति।
स भवेन्नरशार्दूलो वाजिवारणवाहकः।।१०।।

ततो वै दक्षिणे पार्श्वे शिह्लो नाम महागिरिः।
तत्र शिह्लो महाभिल्लो महादेवमथाऽस्मरत्।।११।।

ततोऽयं पर्वतो ख्यातस्तन्नाम्ना लक्षितो भृशम्।
रेणुका च नदी तत्र वामभागे दशार्द्धके।
गव्यूतौ सा महाभाग सरिदस्ति मनोहरा।।१२।।

तस्या जलस्पर्शनाद्वै रुद्रलोके महीयते।।१३।।

ततः पश्चिमदिग्भागे नदी श्वेततरङ्गिणी।
तयोस्तु सङ्गमे विप्र स्नानाद् रुद्रसमो भवेत्।।१४।।

ततो नैर्ऋत्यकोणे वै करीन्द्राद्रिः प्रकीर्त्तितः।
करिणी नाम तत्राऽस्ति नदी पुण्यतमा किल।।१५।।

तत्सङ्गमे महाभाग तीर्थं भैरवसञ्ज्ञकम्।
स्नात्वा जपेत्तु तत्तीर्थे तुष्टः स्यात्तस्य भैरवः।।१६।।

ततः पर्वतके मूर्ध्नि मन्दिरेश्वरनामकः।
शिवोऽस्ति पूजनाद्यस्तु ददाति निजमन्दिरम्।।१७।।

ततोऽधो दक्षिणे पार्श्वे नदी भद्रतरा परा।
भृगुपत्नी च विख्याता द्वितीयोत्तरवाहिनी।।१८।।

तयोस्तु सङ्गमे तीर्थं दारिद्र्यविनिवारणम्।
यत्र लक्ष्मीः स्वयं विप्र नित्यं वसति भूतिदा।।१९।।

तत्र वै स्नानमात्रेण लक्ष्मीवाञ्जायते नरः।
तस्याः पारे परा पुण्या धारा रोगविनाशिनी।।२०।।

जो मनुष्य इन दोनों नदियों के भवमोचन नामक संगम पर गौ का दान करता है, वह रुद्र ही हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ।।९।।

जो मनुष्यों में श्रेष्ठ इस देवी के लिये आश्विन मास की नवमी तिथि में बलि प्रदान करता है उसको वाहन के लिये घोड़े और हाथी मिलते हैं ।।१०।।

उससे दक्षिण में शिह्ल नाम का महान् पर्वत है। वहां शिह्ल नाम के महाभील ने महादेव का स्मरण किया था ।।११।।

इसलिये यह पर्वत उसके शिह्ल नाम से लक्षित हुआ। हे महाभाग ! उसके वाम भाग में पांच गव्यूति (कोस) दूर रेणुका नाम की एक सुन्दर नदी है ।।१२।।

उसके जल का स्पर्श करने से मनुष्य निश्चय रूप से शिवलोक में जाकर महिमा को प्राप्त करता है ।।१३।।

उसके पश्चिम दिशा में श्वेततरंगिणी नाम की नदी है। हे विप्र ! उन रेणुका और श्वेततरंगिणी नदियों के संगम पर स्नान करने से मनुष्य शिव के समान हो जाता है ।।१४।।

उससे नैर्ऋत्य दिशा में करीन्द्र नाम का पर्वत है। वहां निश्चय से पुण्यशालिनी करिणी नाम की नदी है ।।१५।।

हे महाभाग ! उसके संगम पर भैरव नाम का तीर्थ है। उस तीर्थ में स्नान करके जो जप करता है, उससे भैरव प्रसन्न होते हैं ।।१६।।

वहां पर्वत के शिखर पर मन्दिरेश्वर नाम के शिव हैं। पूजन करने से वे अपने लोक को प्रदान करते हैं ।।१७।।

उससे नीचे दक्षिण दिशा में श्रेष्ठ भद्रतरा नदी है। वह उत्तरवाहिनी नदी दूसरी भृगुपत्नी के रूप में प्रसिद्ध है ।।१८।।

उन दोनों के संगम पर दारिद्र्यविनिवारण नाम का तीर्थ है। हे विप्र ! यहां ऐश्वर्यों को देने वाली लक्ष्मी स्वयं नित्य निवास करती हैं ।।१९।।

वहां स्नान करने मात्र से मनुष्य लक्ष्मी से सम्पन्न हो जाता है। उसके पार परम पुण्यशालिनी रोगों को नष्ट करने वाली धारा है ।।२०।।

अगदेति समाख्याता जलपानान्न रोगभाक्।
ततो दक्षिणदिग्भागे योजनद्वयसम्मिते।
कालिकेति समाख्याता सर्वापत्तिनिवारिणी।।२१।।

ततः पूर्वदिशि ब्रह्मन्योजनत्रयसम्मिते।
वीरिणीति समाख्याता सरिदस्ति सुपुण्यदा।।२२।।

अन्या च भरिणी नाम तयोः सङ्गस्तु पुण्यदः।
तत्राऽस्ति भृगुकुण्डं तु यत्र स्नात्वा हरिर्भवेत्।।२३।।

इति ते कथितान्येव महातीर्थानि नारद।
येषां सन्दर्शनादेव मुच्यन्ते पापराशयः।।२४।।

अतः परं प्रवक्ष्यामि गङ्गायाः सुतटे मुने।
इन्द्रप्रयागतो याम्ये गव्यूतिद्वयसम्मिते।
तीर्थ वैनायकं नाम सर्वविघ्ननिवारणम्।।२५।।

वैशाखे मासि यस्तत्र नित्यं च स्नानमाचरेत्।
तस्य पुण्यफलं वक्ष्ये संक्षेपेण महामते।।२६।।

गङ्गाद्वारे त्रयो मासाः प्रयागे माघसप्तकम्।
नैमिषे कार्तिकाष्टौ च बदर्या च चतुष्टयम्।
आषाढादिचतुर्मासं तेन स्नातं महात्मना।।२७।।

येन तत्र महाभाग दत्ता किञ्चिद्वसुन्धरा।
सप्तजन्मसु पृथ्वीशो वाजिवारणभूमिपः।
जायते नाऽत्र सन्देहस्ततो मुक्तिमवाप्नुयात्।।२८।।

इति ते कथितानीह तीर्थश्रेष्ठानि नारद।
अशेषेण पुनर्वक्तुं न शक्नोति शिवोऽपि हि।।२९।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डेऽनेकतीर्थाभिधानवर्णनं
नाम द्विसप्तत्युत्तरशततमोध्यायः।।

उसका नाम अगदा प्रसिद्ध है। उसके जल को पीने से मनुष्य रोगी नहीं होता। उससे दक्षिण दिशा में दो योजन दूरी पर सब आपत्तियों का निवारण करने वाली कालिका नाम की धारा है।।२१।।

हे ब्रह्मन् नारद! उससे पूर्व दिशा में तीन योजन दूर उत्तम पुण्यों को देने वाली वीरिणी नाम से प्रसिद्ध नदी है।।२२।।

वहां एक अन्य भरणी नाम की धारा है। इन दोनों वीरिणी और भरणी धाराओं का संगम पुण्यों को देने वाला है। वहां एक भृगुकुण्ड है। इसमें स्नान करने से मनुष्य हरि हो जाता है।।२३।।

हे नारद! इस प्रकार से मैंने महान् तीर्थों का वर्णन कर दिया है, जिनके दर्शन से ही पापों की रशियां छूट जाती है।।२४।।

हे मुने नारद! इसके बाद मैं तुमको बताऊंगा कि गङ्गा के सुन्दर तट पर इन्द्रप्रयाग से दो गव्यूति (चार कोस) की दूरी पर सब विघ्नों का निवारण करने वाला वैनायक नाम का तीर्थ है।।२५।।

हे महामते! वैशाख मास में जो वहां नित्य स्नान करता है, उसका फल मैं तुमको संक्षेप से कहूंगा।।२६।।

जिसने यहां वैशाख मास में स्नान कर लिया है, उस महात्मा ने हरिद्वार में तीन मास तक, प्रयाग में सात माघ महीनों तक, नैमिषारण्य में आठ कार्तिक महीनों तक और बदरीनाथ में आषाढ आदि चार महीनों तक स्नान कर लिया है।।२७।।

हे महाभाग! जिसने वहां कुछ भी भूमि का दान किया है, वह सात जन्मों तक घोड़ों, हाथियों और भूमि का पालक होकर पृथिवी का राजा होता है। तदनन्तर वह मुक्ति को प्राप्त करता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है।।२८।।

हे नारद! इस प्रकार मैंने तुमसे श्रेष्ठ तीर्थों का वृत्तान्त कह दिया है। इनको सम्पूर्ण रूप से तो स्वयं शिव भी नहीं बता सकते।।२९।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में अनेकतीर्थाभिधानवर्णन नाम का १७२ वां अध्याय समाप्त हुआ।।

त्रिसप्तत्युत्तरशततमोध्यायः

कुब्जाम्रक्षेत्रादीशानदिग्विभागे गङ्गापश्चिमतीरे योगेश्वराख्यशिवस्थानम्। तत्सन्निधौ सूर्यकुण्डवर्णनम्। तन्माहात्म्यनिरूपणम्।

नारद उवाच-

अन्यान्यपि महाभाग शिवतीर्थानि वह्निज।
नोक्तानि तानि ते मह्यं गुह्यान्यपि वद प्रभो।।१।।

स्कन्द उवाच-

गुह्यं परमकं पीठं शृणु विप्र महार्थदम्।
वात्सल्यात्तव सर्वं हि कथ्यते वै रहस्यकम्।।२।।

कुब्जाम्रकमहाक्षेत्रादीशानदिशि संस्थितः।
योगेश्वरो महादेवो गङ्गायाः पश्चिमे तटे।।३।।

तत्रैव मुनयो विप्र परमं योगमास्थिताः।
ते प्रापुः परमां सिद्धिं ततो योगीश्वराः स्मृताः।।४।।

तत्र वै भगवान् पूर्वं त्रिपुरस्य वधोद्यमे।
चकार युद्धसामग्रीं सर्वदेवहितेच्छया।।५।।

ब्रह्मणा विष्णुनाऽत्रैव संस्तुतः परमेश्वरः।
चकाराऽत्रैव वसतिं योगिरूपो महेश्वरः।।६।।

शिवतीर्थं च तत्रैव गङ्गावासवयोर्मुने।
सङ्गमे पुण्यगम्ये हि तत्र स्नातः शिवं व्रजेत्।।७।।

सूर्यकुण्डं च तत्रैव श्रीशिवस्य समीपतः।
गङ्गाकूले महाभाग हयमेधफलप्रदम्।।८।।

अतिपुण्यतमं पीठं मूढानामपि सिद्धिदम्।
तत्र यः परमेशस्य पीठे परमभास्वरे।।९।।

अध्याय - १७३

कुब्जाम्र क्षेत्र से ईशान दिशा में गङ्गा के पश्चिमी तट पर योगेश्वर नाम के शिव का स्थान। उसके समीप सूर्यकुण्ड का वर्णन। उनके माहात्म्य का कथन।

नारद ने कहा-

हे अग्नि से उत्पन्न प्रभो स्कन्द महाभाग ! अन्य भी जिन शिव-तीर्थों को तुमने मुझे नहीं बताया है, उन गुप्त तीर्थों का वृत्तान्त मुझसे कहो।।१।।

स्कन्द ने कहा-

हे विप्र ! नारद ! महान् अर्थ को देने वाले परम गुप्त पीठ का वृत्तान्त सुनो। वात्सल्य के कारण मैं तुमसे इस रहस्य को कह रहा हूं।।२।।

कुब्जाम्रक नामक महाक्षेत्र से ईशान दिशा में गङ्गा के पश्चिम तट पर योगेश्वर महादेव स्थित हैं।।३।।

हे विप्र ! वहां परम योग में स्थित होकर मुनियों ने परम सिद्धि को प्राप्त किया था, इसलिये वे योगीश्वर कहलाये।।४।।

वहां निश्चय से पहले समय में भगवान् शिव ने सब देवों का हित करने की इच्छा से त्रिपुरासुर का वध करने के उद्योग में युद्ध की सामग्री को तैयार किया था।।५।।

ब्रह्मा और विष्णु ने यहीं पर परमेश्वर शिव की स्तुति की थी। यहीं पर योगीरूप महेश्वर ने निवास किया था।।६।।

हे मुने ! वहीं गङ्गा और वासव नदियों के संगम पर शिवतीर्थ है। पुण्यों से गम्य उस संगम पर स्नान करने से मनुष्य शिव के समीप जाता है।।७।।

हे महाभाग ! वहीं श्रीशिवतीर्थ के समीप गङ्गा के तट पर सूर्यकुण्ड है, जो निश्चय से अश्वमेघ यज्ञ के फल को देने वाला है।।८।।

यह अति पुण्यतम पीठ है, जो मूर्ख व्यक्तियों को भी सिद्धि प्रदान करता है। वहां परम दीप्तिशाली इस परमेश्वर के पीठ पर.... ।।९।।

अहोरात्रत्रयं कश्चिज्जपेद्धैर्ययुतो नरः।
निराकृत्य तु विघ्नानि स स्वयं वृषभध्वजः।।१०।।

तस्य दर्शनमात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत्।
अत्र यत्क्रियते कर्म तत्सर्वं कोटिसंख्यकम्।।११।।

अत्र स्वयं महादेवो वसते सर्वभावतः।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शिवमाराधयेदिह।।१२।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे योगीश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः।।

चतुःसप्त्युत्तरशततमोऽध्यायः

अलकनन्दातटपूर्वदिग्विभागे ताम्राचले गुह्येश्वरी महादेवीपीठम्। तत्सन्निधौ दिव्यभैरवस्थानम्। तन्माहात्म्यकथनम्।

स्कन्द उवाच-

अथान्यदपि देव्यास्तु पीठं परमगुह्यकम्।
अलकनन्दापूर्वतटात्पूर्वभागे महार्थदम्।।१।।

यत्र पूर्वं महाराजो वेणुर्नाम तपोऽकरोत्।।२।।

ततो वै पश्चिमे पार्श्वे योजनद्वयसम्मिते।
विश्वाधारे महापुण्ये पर्वते द्विजसत्तम।
अतिपुण्यतमं पीठं सर्वसिद्धिप्रदायकम्।।३।।

तत्र ताम्राचले दिव्ये महादेवी व्यवस्थिता।
गुह्येश्वरीति विख्याता सर्वसिद्धिप्रदायिनी।।४।।

अतिगुह्यतमाऽऽख्याता नाम्ना गुह्येश्वरी यतः।
वर्षमध्ये द्विवारं स्यात्तत्र दर्शनगोचरा।।५।।

दृष्टा यदा तदा देवी समूलं नाशयेन्नरम्।
अनेकजन्मजपिता देवी परमसिद्धिदा।।६।।

जो कोई धैर्य से युक्त होकर तीन दिन-रात जप करता है, वह सब विघ्नों का निराकरण करके स्वयं वृषभध्वज शिव हो जाता है।।१०।।

उनके दर्शनमात्र से सब पापों का क्षय हो जाता है। यहां जो भी कर्म किया जाता है, वह करोड़ गुना हो जाता है।।११।।

यहां स्वयं महादेव सब भावों से निवास करते हैं। अतः यहां सभी प्रयत्नों से शिव की आराधना करे।।१२।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में योगीश्वरमाहात्म्यवर्णन नाम का १७३ वां अध्याय समाप्त हुआ।।

अध्याय - १७४

अलकनन्दा नदी के पूर्व दिशा में ताम्राचल पर्वत पर गुह्येश्वरी महादेवी का पीठ। उसके समीप दिव्य भैरव का स्थान। उसके माहात्म्य का वर्णन।

स्कन्द ने कहा-

अलकनन्दा के पूर्वी तट से पूर्व दिशा में महान् अर्थों को देने वाला एक अन्य भी परम गुप्त देवी का पीठ है।।१।।

यहां पहले समय में वेणु नाम के महाराज ने तप किया था।।२।।

हे द्विजश्रेष्ठ नारद ! उससे पश्चिम दिशा में दो योजन की दूरी पर विश्वाधार नाम के महापुण्यशाली पर्वत पर सभी सिद्धियों को प्रदान करने वाला अति पुण्यतम पीठ है।।३।।

वहां ताम्राचल नामक दिव्य शिखर पर महादेवी सती स्थित हैं। सब सिद्धियों को देने वाली वे देवी गुह्येश्वरी नाम से प्रसिद्ध हैं।।४।।

क्योंकि गुह्येश्वरी नाम से प्रसिद्ध वे देवी अति गुह्यतम हैं, अतः वर्ष में दो बार उनके दर्शन होते हैं।।५।।

यदि वे देवी अन्य समय में दिखाई देती हैं तो मनुष्य को समूल नष्ट कर देती हैं। वे देवी अनेक जन्मों तक जप करने पर परम सिद्धि को देती है।।६।।

येनाऽत्र स्थीयते विप्र तस्य सिद्धिः स्थिरान्विता।
तत्रैव भैरवो दिव्यो दृषद्रूपो भयानकः।।७।।

रात्रौ तिष्ठति यस्तत्र तं बिभीषयति ध्रुवम्।
धैर्यहीनस्तु यस्तत्र तिष्ठते मुग्धमानसः।
अथवा म्रियते विप्र वातुलो वा नरो भवेत्।।८।।
तस्माद्धैर्येण संयुक्तो निवसेत्तत्र पीठके।।९।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे गुह्येश्वरीमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुःसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः।।

पञ्चसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः

मेनाख्यसरित्तीरे नन्दभद्रेश्वरीपीठम्, तस्य वामभागे गुणश्रीपीठम्, चण्डमुण्डगिरौ नारायणीनदीतीरे कालेश्वराख्यभैरवस्थानम्, तन्माहात्म्यकथनम्।

स्कन्द उवाच-

ततः पूर्वदिशायां तु पीठमन्यन्महामते।
नन्दभद्रेश्वरी यत्र सर्वदेवनमस्कृता।।१।।

नन्दभद्रो महाराजो हृतराज्यो ह्यरातिभिः।
समारराध देवेशीं पुत्रराज्याप्तये पुनः।।२।।

लब्धवांश्च पुरा राज्यं देव्याश्चैव प्रसादतः।
इयं ततः समाख्याता नन्दभद्रेश्वरी मुने।।३।।

यस्तस्या मानवो भक्त्या शरत्कालेऽर्चनं मुने।
प्रकरोति गतिस्तत्र यत्र सा परमेश्वरी।।४।।

तत्र मेनेति विख्याता सुपुण्या सरिदुत्तमा।
जलस्पर्शेन तस्यास्तु मुच्यते सर्वपातकैः।।५।।

हे विप्र ! जो यहां स्थिर रूप से रहता है, उसकी सिद्धि स्थिर हो जाती है। वहां पर ही पाषाणरूप में भयानक दिव्य भैरव हैं।।७।।

जो वहां रात्रि में ठहरता है, उसको वे निश्चय से डराते हैं। मुग्ध मन वाला धैर्य से रहित जो व्यक्ति यहां ठहरता है, हे विप्र नारद ! वह मनुष्य या तो मर जाता है या वातरोगी हो जाता है।।८।।

इसलिये उस पीठ पर धैर्य से युक्त होकर निवास करे।।९।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में गुह्येश्वरीमाहात्म्यवर्णन नाम का १७४ वां अध्याय समाप्त हुआ।।

अध्याय - १७५

मेना नाम की नदी के किनारे नन्दभद्रेश्वरी पीठ, उसके वाम भाग में गुणश्रीपीठ, चण्डमुण्ड पर्वत पर नारायणी नदी के किनारे कालेश्वर नाम के भैरव का स्थान, उनके माहात्म्य का वर्णन

स्कन्द ने कहा-

हे महामते नारद ! उस गुह्येश्वरी पीठ से पूर्व दिशा में एक अन्य पीठ है। उसका नाम नन्दभद्रेश्वरी है, जिसको सब देवता नमस्कार करते हैं।।१।।

नन्दभद्र नाम के राजा के राज्य को शत्रुओं ने छीन लिया था। उसने पुनः पुत्र और राज्य की प्राप्ति के लिये देवेश्वरी देवी की आराधना की।।२।।

उसने पहले देवी की कृपा से राज्य को प्राप्त किया। इसलिये, हे मुने ! वह देवी नन्दभद्रेश्वरी नाम से प्रसिद्ध हुई।।३।।

हे मुने ! जो मनुष्य शरद् ऋतु में भक्तिभाव से उस देवी की अर्चना करता है, उसकी वहीं गति होती है, जहां वह परमेश्वरी है।।४।।

वहां मेना नाम से प्रसिद्ध उत्तम पुण्यशालिनी नदी है। उसके जल का स्पर्श करने से मनुष्य सारे पापों से छूट जाता है।।५।।

तस्मिन्नेव महाभाग वामभागे सुसिद्धिदा।
गुणश्रीरिति विख्याता देव्यसौ त्रिगुणात्मिका।।६।।

त्रेतायां सात्त्विकी मूर्तिर्द्वापरे राजसी मता।
कलौ सा तामसी देवी ततोऽसौ त्रिगुणात्मिका।।७।।

त्रेतायां सा महाभाग विष्णुनाऽऽराधिता परा।
द्वापरे ब्रह्मणा विप्र कलौ रुद्रेण सेविता।।८।।

इयं ततः समाख्याता गुणश्रीरिति विश्रुता।
तस्याः दर्शनमात्रेण नरो धन्यत्वमाप्नुयात्।।९।।

गृहस्थैश्च सदा पूज्या धनधान्यविवर्द्धिनी।
पुत्रपौत्रादिसम्पत्तिं ददाति परिपूजिता।।१०।।
नारायणीति विख्याता तत्राऽस्ति सरिदुत्तमा।
तस्यां स्नानान्नरो याति गतिं परमिकां मुने।।११।।

चण्डमुण्डगिरिस्तत्र ततः पूर्वदिशि स्मृतः।
कालेश्वर इति ख्यातो भैरवो भीषणाकृतिः।।१२।।

तस्य यः पूजनं कृत्वा बलिपुष्पोपहारकैः।
प्रकरोति नरश्रेष्ठः सर्वर्द्धिपरिपूजितः।।१३।।
तमपूज्य महाभाग कार्यं किञ्चित्करोति यः।
नाशमायाति तत्कार्यं स च वै दुःखितो भवेत्।।१४।।

तत्र संस्थायिभिस्तस्मात्सम्पूज्यः प्रथमं नरैः।
इति ते परमं स्थानं कथितं मुनिपुङ्गव।।१५।।

पीठानां यस्तु माहात्म्यं शृणुयाद्वा पठेदपि।
सर्वपापविनिर्मुक्तो जायते मुनिसत्तम।।१६।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे नन्दभद्रेश्वरीमाहात्म्यवर्णनं नाम
पञ्चसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः।।

हे महाभाग नारद ! उस नन्दभद्रेश्वरी पीठ के वाम भाग में उत्तम सिद्धियों को देने वाली गुणश्री नाम से प्रसिद्ध वे त्रिगुणात्मिका (सत्त्व-रजस्-तमोमयी) देवी हैं।।६।।

उन गुणश्री देवी का स्वरूप त्रेतायुग में सात्त्विक है, द्वापर युग में राजस माना गया है। कलियुग में वे तामसी हैं। इसलिये वे त्रिगुणात्मक हैं।।७।।

हे महाभाग विप्र नारद ! त्रेता युग में उस परम देवी की विष्णु ने आराधना की थी। द्वापर युग में ब्रह्मा ने और कलियुग में रुद्र ने उसकी आराधना की।।८।।

उसके बाद ये गुणश्री के नाम से प्रसिद्ध हो गईं। उसके दर्शनमात्र से मनुष्य धन्य हो जाता है।।९।।

गृहस्थों को चाहिये कि धन-धान्य की वृद्धि करने वाली उस देवी का पूजन करें। पूजन करने पर वह पुत्र-पौत्र आदि सम्पत्ति को देती है।।१०।।

वहां नारायणी नाम से प्रसिद्ध उत्तम नदी है। हे मुने ! उसमें स्नान करने से मनुष्य परम गति को प्राप्त करता है।।११।।

वहां उससे पूर्व दिशा में चण्डमुण्ड नाम का पर्वत है। वहां भीषण आकृति वाले कालेश्वर नाम के भैरव हैं।।१२।।

जो मनुष्य श्रेष्ठ बलि और पुण्यों के उपहारों से उसका पूजन करता है, वह सभी ऋद्धियों से पूजित होता है।।१३।।

हे महाभाग ! जो मनुष्य उसका पूजन न करके कोई कार्य करता है, उसका वह कार्य नष्ट हो जाता है और वह दुःखी होता है।।१४।।

इसलिये वहां रहने वाले मनुष्यों को उसका पहले पूजन करना चाहिये। हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार मैंने उस परम स्थान का वर्णन कर दिया है।।१५।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! जो मनुष्य इन पीठों के माहात्म्य को सुनता है और पढता है, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है।।१६।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में नन्दभद्रेश्वरी माहात्म्यवर्णन नाम का १७५ वां अध्याय समाप्त हुआ।।

षट्सप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः

अलकनन्दागङ्गासङ्गमे श्रीक्षेत्रकथनम्, अत्राऽनुष्ठान-कर्तृकनामनिर्देशपूर्वकं तन्माहात्म्यकथनम्

सूत उवाच-

इति तन्नारदः श्रुत्वा स्कन्देन समुदीरितम्।
आश्चर्यं परमं प्राप श्रुत्वा तत्तीर्थवैभवम्।।१।।

आनन्दं च समापन्नो न किञ्चित्प्रत्यपद्यत।
पुनः स्वस्थो महाभाग पर्यपृच्छद् भवापहम्।
माहात्म्यं तीर्थवर्याणां भक्तिनम्रो महामुनिः।।२।।

सोऽपि स्कन्दो महाभागः कथयामास पूर्ववत्।
तीर्थानां चैव माहात्म्यं पीठानां च महर्षयः।।३।।

हिमवद्दक्षिणे पार्श्वे क्षेत्रराजो भवापहः।
यत्राऽस्त्यलकनन्दाख्या गङ्गा परमपावनी।।४।।

तथा नानाविधानीह तीर्थानि मुनिपुङ्गवाः।
यत्र श्रीश्च महादेवी समग्रा वर्त्तते पुरा।।५।।

कथितं विस्तरात्तेन शिवरूपेण धीमता।
नाम्ना श्रीक्षेत्रकं पुण्यं महादेव्याः निवासभूः।।६।।

नानारूपेश्वरस्तत्र तथा सन्ति सरिद्वराः।
लिङ्गानि बहुरूपाणि तत्र सन्ति महामते।।७।।

पुण्यं पवित्रमाख्यानं सर्वपापक्षयावहम्।
तत्र ब्रह्मादयो देवास्तपस्तेपुस्तथर्षयः।।८।।

इदं परमकं गुह्यं सद्यः प्रत्ययकारकम्।
यत्रोत्फालकनामा वै मुनीशो मुनिसत्तमाः।
तपश्चाऽत्र परं तप्त्वा सर्वयोगीश्वरोऽभवत्।।९।।

कुबेरोऽपि महाभाग त्विहैव तपसि स्थितः।
सम्प्राप परमामृद्धिं लोकपालश्च सोऽभवत्।।१०।।

अध्याय - १७६

अलकनन्दा-गङ्गा के सङ्गम पर श्रीक्षेत्र का वर्णन, यहां अनुष्ठान करने वालों के लिये नाम-निर्देश पूर्वक उसके माहात्म्य का वर्णन

सूत ने कहा-

इस प्रकार स्कन्द के कथन को सुन कर और उन तीर्थो के वैभव का वृत्तान्त सुन कर नारद को बहुत आश्चर्य हुआ।।१।।

आनन्द को प्राप्त करते हुये वे कुछ कह नहीं सके। हे महाभाग! पुनः स्वस्थ होकर भक्ति से विनम्र महामुनि नारद ने भव-बन्धन को दूर करने वाले स्कन्द से श्रेष्ठ तीर्थो के माहात्म्य को पूछा।।२।।

हे महर्षियो! उस महाभाग स्कन्द ने भी तीर्थो और पीठों के माहात्म्य को पहले के समान कहा।।३।।

हिमालय के दक्षिण पार्श्व में भव-बन्धन को दूर करने वाला क्षेत्रराज है, जहां अलकनन्दा नाम की परमपाविनी गङ्गा नदी है।।४।।

हे मुनिश्रेष्ठो! वहां अनेक प्रकार के तीर्थ हैं, जहां कि लक्ष्मीं और महादेवी पार्वती प्राचीन काल से समग्र रूप से विद्यमान हैं।।५।।

बुद्धिमान् शिवरूप उस स्कन्द ने विस्तार से सारे वर्णन किये। वह महादेवी का निवासस्थान पुण्यशाली श्रीक्षेत्र नाम से प्रसिद्ध है।।६।।

हे महामते नारद! वहां रूपेश्वर शिव विविध रूपों में हैं, श्रेष्ठ नदियां हैं और अनेक रूपों वाले लिङ्ग हैं।।७।।

वह पुण्य पवित्र आख्यान सब पापों को नष्ट करने वाला है। वहां ब्रह्मा आदि देवताओं ने और ऋषियों ने तपस्या की थी।।८।।

यह परम गुप्त वर्णन तत्काल ज्ञान को उत्पन्न करने वाला है। हे मुनिश्रेष्ठ! यहां उत्फालक नाम के मुनीश्वर ने परम तप किया था और वे सर्वयोगीश्वर हो गये थे।।९।।

हे महाभाग! कुबेर भी यहीं पर तपस्या में स्थित हुये थे। उन्होंने परम सिद्धि को प्राप्त किया और वे लोकपाल हो गये।।१०।।

अत्र सर्वे देवगणाः निलीना भयकम्पिताः।
अत एव पुरा प्रापुः स्वं स्वं स्थानं मुनीश्वराः।।११।।

आयुःपुत्रो महाराजो नहुषो नाम विश्रुतः।
जगामाऽत्रैव परमामृद्धिं परमदुर्लभाम्।।१२।।

यत्राऽर्जुनः पाण्डुपुत्रस्तपस्तेपे मुनीश्वराः।
शस्त्रं पाशुपतं नाम प्राप देवान्महेश्वरात्।।१३।।

अजेयः सर्वसैन्यानामभूत्कुन्तीसुतोऽर्जुनः।
देव्या च निहतौ यत्र चण्डमुण्डौ महासुरौ।।१४।।

सत्यसन्धेन वै राज्ञा निहतः कोलरूपधृक्।
इदं क्षेत्रं महाभागाः श्रुत्वा ब्रह्मसुतो मुनिः।
हर्षं च परमं प्राप क्षेत्राण्यन्यानि पृष्टवान्।।१५।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे श्रीक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं नाम
षट्सप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः।।

सप्तसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः

हैहयपुत्रस्य धर्मनेत्रनृपस्य पुत्रार्थं तप आचरितुं हिमालयप्रदेशे भ्रमणम्, तत्रोत्फालकमुनिमुखान्नृपस्य श्रीक्षेत्रमाहात्म्यश्रवणम्

ऋषय ऊचुः-

सूत सूत महाबाहो व्यासप्रतिनिधे शुभ।
श्रीक्षेत्रं पुण्यदं लोके श्रूयते हि महामते।।१।।

कियत्प्रमाणं तत्क्षेत्रं कुत्र तद्विद्यते बुध।
उत्पत्तिं चैव माहात्म्यं तस्य विस्तरतो वद।।२।।

सूत उवाच-

शृणुध्वं मुनिशार्दूला मत्तो निगदतो द्विजाः।
यथा पुरा महासेनं पृष्टवान्नारदो मुनिः।।३।।

एकदा सुखमासीनं स्कन्दं वै पार्वतीसुतम्।
उवाच वचनं रम्यं नारदो मुनिसत्तमाः।।४।।

हे मुनीश्वरो ! यहां सभी देवता भय से कम्पित होकर छिप गये थे और उन्होंने इसके प्रभाव से अपने अपने स्थान को प्राप्त किया था।।११।।

आयु के पुत्र नहुष के नाम से प्रसिद्ध महाराज ने यहीं पर अति दुर्लभ परम सिद्धि को प्राप्त किया था।।१२।।

हे मुनीश्वरो ! यहीं पर पाण्डु के पुत्र अर्जुन ने तपस्या की थी और महेश्वर देव शिव से पाशुपत नाम के शस्त्र को प्राप्त किया था।।१३।।

इससे कुन्तीपुत्र अर्जुन सभी सेनाओं से अजेय हो गये। यहीं देवी ने चण्ड और मुण्ड नाम के महान् असुरों का वध किया था।।१४।।

यहीं पर सूअर (कोल) के रूप को धारण करने वाले असुर को राजा सत्यसन्ध ने मारा था। हे महाभागो ! इस क्षेत्र के वृत्तान्त को सुन कर ब्रह्मा के पुत्र नारद बहुत प्रसन्न हुये और उन्होंने अन्य क्षेत्रों के विषय में पूछा।।१५।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में श्रीक्षेत्रमाहात्म्यवर्णन नाम का १७६ वां अध्याय समाप्त हुआ।।

अध्याय - १७७

हैहय के पुत्र राजा धर्मनेत्र का पुत्र के हेतु तप करने के लिये हिमालय प्रदेश में भ्रमण, वहां उत्फालक मुनि के मुख से राजा द्वारा श्रीक्षेत्र के माहात्म्य को सुनना

ऋषियों ने कहा-

व्यास ऋषि के प्रतिनिधि, शुभ, महाबाहो, हे महामते सूतपुत्र ! सुना जाता है कि श्रीक्षेत्र पुण्यों की देने वाला है।।१।।

हे विद्वान् सूत ! उस क्षेत्र का कितना प्रमाण है, वह कहां है ? उसकी उत्पत्ति और माहात्म्य का विस्तार से वर्णन करो।।२।।

सूत ने कहा-

हे मुनिश्रेष्ठ ब्राह्मणो ! मेरे कथन को सुनो। जैसे कि पहले नारद मुनि ने स्कन्द से पूछा था।।३।।

एक दिन मुनिश्रेष्ठ नारद ने सुख से बैठे हुये पार्वतीपुत्र स्कन्द से यह सुन्दर वचन कहा।।४।।

नारद उवाच-

देव देव महासेन भक्तानां भक्तवत्सल।
अनेकविधतीर्थानां पुण्यदानां महामते।।५।।

माहात्म्यानि सुरम्याणि कथाभिश्च जगत्प्रभो।
श्रुतानि त्वन्मुखादेव सर्वदेवनमस्कृत।।६।।

इदानीं श्रोतुमिच्छामि माहात्म्यं श्रीस्थलस्य हि।
कियत्प्रमाणं तत्क्षेत्रं किं पुण्यं तत्र जायते।।७।।

कुत्र तद्विद्यते क्षेत्रं कथं पुण्यतमं ह्यभूत्।
एतन्मे शंस भगवन्पार्वतीसुत नायक।।८।।

स्कन्द उवाच-

साधु पृष्टं महाबाहो परोपकृतये त्वया।
तत्ते सम्प्रति वक्ष्यामि शृणु नारद भक्तिमन्।।९।।

कोलोत्तमाङ्गमारभ्य यावत्कोलकलेवरम्।
तावच्छ्रीसञ्ज्ञकं क्षेत्रं योजनानां चतुष्टयम्।।१०।।
योजनानां त्रयं ख्यातं तिर्यगायतमेव च।
अतिपुण्यतमं क्षेत्रं सर्वशास्त्रेषु गोपितम्।।११।।

इदं स्थूलतमं ज्ञेयं सूक्ष्मं तु कथ्यतेऽधुना।।१२।।
जीवनेन्द्रपुराद्विप्र यावद्धर्षवती नदी।
इति सूक्ष्मं हि कथितं ह्यतिसूक्ष्मं निगद्यते।।१३।।

खाण्डवाख्यनदीतीराद्यावच्छिबिपुरं भवेत्।
यस्मिन्क्षेत्रे मुनिश्रेष्ठ धर्मनेत्र इति श्रुतः।।१४।।

राजा परमधर्मज्ञः सञ्चकार महत्तपः।
विष्णुना सदृशः पुत्रो जायतामिति चिन्तयन्।
वरं प्राप्य कदाचित्तु कृतकृत्यो बभूव ह।।१५।।

नारद ने कहा-

हे देव देव, महासेन, भक्तों के प्रति भक्तवत्सल, महामते स्कन्द ! तुमने पुण्य देने वाले अनेकविध तीर्थों का वर्णन किया है।।५।।

सब देवताओं से नमस्कृत हे जगत् के प्रभो ! सुन्दर कथाओं के द्वारा मैंने तुम्हारे मुख से ही इन तीर्थों के माहात्म्य को सुना है।।६।।

अब मैं श्रीक्षेत्र के माहात्म्य को सुनना चाहता हूं। वह क्षेत्र कितने प्रमाण का है और वहां कौनसा पुण्य मिलता है ?।।७।।

वह क्षेत्र कहां है और वह कैसे पुण्यतम हो गया ? हे पार्वती के पुत्र देवसेना के नायक भगवन् स्कन्द ! यह बात मुझको बताओ।।८।।

स्कन्द ने कहा-

हे भक्तिशाली महाबाहो नारद ! परोपकार करने के लिये यह बात तुमने अच्छी पूछी है। उसको मैं तुम्हें बताऊंगा। सुनो।।९।।

कोलासुर के सिर से लेकर जहां तक कोलासुर का धड़ गिरा था, उतने विस्तार का श्रीक्षेत्र नाम का स्थान है, जो चार योजन विस्तृत है।।१०।।

यह तिरछी चौड़ाई में तीन योजन विस्तृत है। यह अति पुण्यतम क्षेत्र है और सभी शास्त्रों में सुरक्षित है।।११।।

श्रीक्षेत्र के इस विस्तार को स्थूलतम समझना चाहिये। अब मैं तुमसे इसके सूक्ष्म प्रमाण को कहता हूं।।१२।।

हे विप्र नारद ! जीवनेन्द्रपुर से लेकर जहां तक हर्षवती नदी है, वहां तक सूक्ष्म श्रीक्षेत्र कहा गया है। अब मैं अति सूक्ष्म श्रीक्षेत्र को कहता हूं।।१३।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! जिस क्षेत्र में खाण्डव नाम की नदी के किनारे से लेकर जहां तक शिविपुर है, वहां धर्मनेत्र नाम का....।।१४।।

परम धर्मज्ञ राजा यह विचार करता हुआ महान् तप कर रहा था कि उसका विष्णु के समान पुत्र होवे। वह किसी समय वर को प्राप्त करके कृतकृत्य हो गया।।१५।।

नारद उवाच-

भो भोः षण्मुख देवेश सर्वशास्त्रार्थपारग।
कथं वै धर्मनेत्रस्तु चकार सुमहत्तपः।।१६।।

स्कन्द उवाच-

शृणु विप्र पुरावृत्तं श्रुतं शिवमुखान्मया।
तत्ते सम्प्रति वक्ष्यामि विस्तरेण तपोधन।।१७।।

हैहयस्य च पुत्रोऽभूद्धर्मनेत्र इति श्रुतः।
राजा परमधर्मज्ञो राज्यपालनतत्परः।।१८।।

अपुत्रः पालयामास राज्यं लोकानुरोधतः।
कस्मिंश्चित्त्वथ काले तु निर्गतो धर्मनेत्रकः।।१९।।

निर्ययौ स्वगृहाद्राजा राज्यलोभपराङ्मुखः।
तपस्तप्तुं महद्देशे ह्याजगाम हिमालये।।२०।।

स ददर्श महाक्षेत्रे श्रीसञ्ज्ञे देवपूजिते।
देवान्मुनिगणान् यक्षांस्तथा गन्धर्वसत्तमान्।
तान्दृष्ट्वा सहसा राजा परमं विस्मयं ययौ।।२१।।

धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि जीवन्स्वर्गे वसाम्यहम्।
इति वै संवसन् राजा विचचार वनान्तरे।।२२।।

ददर्शाऽथ महाभाग गङ्गातीरे महामुनिम्।
उत्फालकं तप्यमानं मीलिताक्षं समाधिना।।२३।।

तं दृष्ट्वा सहसा राजा प्रणनाम भुवि प्रभुः।
पुनः पुनः पपाताऽसौ पादयोस्तस्य धीमतः।।२४।।

कृत्यकृत्यमिवाऽऽत्मानं मेने स जगतीपतिः।
तस्याऽग्रे मुनिवर्यस्य तस्थौ बद्धं करद्वयम्।।२५।।

एवं वै वर्तमानस्य वर्षाणां शतमभ्यगात्।
ततो वै मुनिशार्दूलो ददर्श नृपमन्तिके।।२६।।

उवाच वचनं प्रेम्णोत्फालको मुनिवन्दितः।।२७।।

नारद ने कहा-

हे देवेश, सब शास्त्रों के अर्थों में पारङ्गत छः मुखों वाले स्कन्द ! धर्मनेत्र राजा ने किस प्रकार से महान् तप किया था ?।।१६।।

स्कन्द ने कहा-

हे विप्र ! सुनो, जो प्राचीन वृत्तान्त मैंने शिव के मुख से सुना था। हे तपोधन ! उसको मैं तुम्हें विस्तार से बताऊंगा।।१७।।

हैहय नाम के राजा का पुत्र धर्मनेत्र नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह राजा परम धर्मज्ञ और राज्य के पालन में तत्पर रहता था।।१८।।

वह पुत्ररहित धर्मनेत्र लोक के अनुरोध से राज्य का पालन करता था। तदनन्तर किसी समय वह धर्मनेत्र बाहर निकल गया।।१९।।

राज्य के लोभ से पराङ्मुख होकर वह राजा अपने घर से निकल गया और तपस्या करने के लिये हिमालय पर्वत पर महान् देश में आ गया।।२०।।

उसने देवताओं से पूजित श्री नाम के महाक्षेत्र में देवताओं, मुनियों, यक्षों और श्रेष्ठ गन्धर्वों को देखा। उनको देख कर उस राजा को बहुत आश्चर्य हुआ।।२१।।

मैं धन्य हो गया हूं, कृतकृत्य हो गया हूं और जीवित ही स्वर्ग में रह रहा हूं। इस प्रकार वहां निवास करता हुआ राजा वनों में विचरण करता रहा।।२२।।

हे महाभाग ! तदनन्तर उस राजा ने गङ्गा के तट पर तपस्या करते हुये तथा समाधि में आंखों को बन्द किये हुये महामुनि उत्फालक को देखा।।२३।।

प्रभु राजा ने उस मुनि को देख कर भूमि पर स्थित होकर प्रणाम किया। वह उस बुद्धिमान् मुनि के पैरों पर पुनः पुनः गिरा।।२४।।

उस राजा ने अपने आपको कृतकृत्य माना। वह मुनिश्रेष्ठ के आगे दोनों हाथ बांध कर खड़ा हो गया।।२५।।

इस प्रकार करते हुये उस राजा को निश्चय से सौ वर्ष व्यतीत हो गये। तदनन्तर उस मुनिश्रेष्ठ उत्फालक ने राजा को अपने समीप देखा।।२६।।

मुनियों से वन्दित उत्फालक ने राजा से प्रेम से यह वचन कहा।।२७।।

उत्फालक उवाच-

कस्त्वं पुरुषशार्दूल भक्तिमानिव लक्ष्यसे।
किमर्थमागतो ह्यत्र वने मुनिगणान्विते।।२८।।

राजोवाच-

अहं सोमकुलोत्पन्नो धर्मनेत्र इति श्रुतः।
पुत्रो वै हैहयेन्द्रस्य दासोऽहं तव धीमतः।।२९।।

दर्शनं त्वादृशानां तु कर्त्तुं वै हि समागतः।
अहं वै पुत्ररहितो वैराग्याविष्टमानसः।
आगतोऽस्मि तपस्तप्तुं क्षेत्राणामधिपे शुभे।।३०।।

अत्राऽऽगत्य मया विप्र दृष्टं कौतूहलं परम्।
देवा यक्षास्तथा नागा मुनयः किन्नरास्तथा।
गन्धर्वाप्सरसो दैत्याः दृष्टाः सर्वे दिवौकसः।।३१।।

दृष्ट्वा तान् विस्मयाविष्टोऽभूवं मुनिवरार्चित।
अथवाऽयं स्वर्गलोको वर्तते मुनिनायक।।३२।।

अथवा दृष्टिदोषो मे ह्यथवा चित्तसम्भ्रमः।
किमिदं भो महाभाग वर्तते मुनिवन्दित।।३३।।

स्कन्द उवाच-

इति श्रुत्वा वचस्तस्य धर्मनेत्रस्य धीमतः।
प्रहस्योवाच भगवानुत्फालो भूपतिं पुनः।।३४।।

उत्फालक उवाच-

शृणु देव नृपश्रेष्ठ यद् वै दृष्टं त्वयाऽत्र वै।
भाग्यवानसि हे राजन्नागतः क्षेत्रके परे।।३५।।

विस्मयो न त्वया भूप मन्तव्यो देवदर्शनात्।
अत्र वै देवताः सर्वा वसन्त्येव हि नित्यशः।।३६।।

पूर्वजन्मकृतात्पुण्यात्प्राप्यते हिममन्दिरम्।
अत्र वै हि मृतः कश्चिन्न च भूयोऽभिजायते।।३७।।

उत्फालक ने कहा-

हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम कौन हो ? भक्त से दिखाई देते हो। मुनियों से युक्त यहां इस वन में क्यों आये हो ?।।२८।।

राजा ने कहा-

मैं सोमवंश में उत्पन्न धर्मनेत्र नाम से प्रसिद्ध हूं। मैं हैहयराज का पुत्र हूं। आप बुद्धिमान् का दास हूं।।।२९।।

पुत्र से रहित और वैराग्य से भरे मन वाला मैं आप जैसों के दर्शन करने के लिये आ गया हूं। मैं क्षेत्रों के अधिपति इस क्षेत्र में तपस्या करने आया हूं।।३०।।

हे विप्र ! यहां आकर मैंने परम आश्चर्य को देखा। मैंने देवताओं, यक्षों, नागों, मुनियों, किन्नरों, गन्धर्वों, अप्सराओं, दैत्यों और सभी स्वर्ग-निवासियों को देखा है।।३१।।

मुनिश्रेष्ठों से पूजित हे मुने ! उनको देख कर मैं आश्चर्य से अभिभूत हो गया हूं। हे मुनिनायक! अथवा क्या यह स्वर्ग है ? ।।३२।।

अथवा क्या यह मेरी दृष्टि का दोष है, अथवा क्या यह मेरी बुद्धि की भ्रान्ति है? मुनियों से वन्दित हे महाभाग ! तो यह क्या है ?।।३३।।

स्कन्द ने कहा-

इस प्रकार उस बुद्धिमान् राजा धर्मनेत्र के वचन को सुन कर भगवान् उत्फालक ने हंस का पुनः राजा से कहा।।३४।।

उत्फालक ने कहा-

हे राजाओं में श्रेष्ठ देव ! जो कुछ तुमने यहां देखा है, तो हे राजन् ! तुम भाग्यवान् हो, जो इस परम क्षेत्र में आये हो।।३५।।

हे राजन् ! यहां देवताओं को देखने से तुमको आश्चर्य नहीं मानना चाहिये। यहां सभी देवता निश्चय से नित्य रहते हैं।।३६।।

पूर्व-जन्म में किये गये पुण्यों से हिमालय पर्वत प्राप्त होता है। जो कोई यहां मरता है, उसका पुनः जन्म नहीं होता।।३७।।

यत्र देवः शिवः साक्षाद्वर्तते शिवया सह।
स्वयं समग्रभावेन नन्दिभृङ्ग्यादिभिर्नृप।।३८।।

काश्यादिषु च तीर्थेषु वसति ह्यंशमात्रतः।
अत्र वै हिमवत्प्रान्ते सर्वो निवसति प्रभु।।३९।।

अहो धन्या मनुष्येषु पश्यन्ति सकृदेव हि।
इदं क्षेत्रं महापुण्यं देवा एव न संशयः।।४०।।

महापातकिनोऽप्यत्र ययुर्वै परमां गतिम्।
किं पुनर्ब्राह्मणा राजन् स्वधर्ममनुवर्त्तिनः।।४१।।

पूर्वं हि तारकेणाऽपि वासवाद्या दिवौकसः।
स्वर्गान्निष्कासिताः सर्व आजग्मुः पृथिवीं नृप।।४२।।

पृथिव्यामटमानास्ते निवासाय महामते।
स्थानं कुत्राऽपि न प्रापुस्तारकस्य भयाकुलाः।।४३।।

विचिन्वन्त इदं स्थानं देवा इन्द्रपुरोगमाः।
केदारेश्वरके क्षेत्रे आजग्मुः शिवदायके।।४४।।

इदमेव महास्थानं स्थित्यै चक्रमिरे सुराः।
इन्द्रकीले महाद्रौ हि इन्द्रश्चक्रे निवासकम्।।४५।।

ततो वै दक्षिणे भागे शुभे कीनाशपर्वते।
यमश्चकार स्वगृहं रम्यं सर्वसुखप्रदम्।।४६।।

एवं क्रमेण सर्वत्र निवासं चक्रिरे सुराः।
युगानि कतिचित्तेषां व्यतीयुर्वसतां नृप।।४७।।

समाराध्य महादेवं सर्वज्ञं पार्वतीपतिम्।
ततः सेनापतिं प्राप्य ययुः स्वर्गे दिवौकसः।।४८।।

जित्वाऽसुरगणान्सर्वान्प्रापुर्वै निजकं पदम्।
अस्य वै क्षेत्रराजस्य प्रसादेन नरोत्तम।।४९।।

धर्मनेत्र महाराज सुरास्तदवधि ध्रुवम्।
अत्रैव निवसन्त्येव क्षेत्रे वै मुक्तिलालसाः।।५०।।

हे राजन् यहां साक्षात् देव शिव समग्र भाव से, शिवा पार्वती के साथ और नन्दी-भृंगी आदि के साथ विद्यमान रहते हैं।।३८।।

वे प्रभु शिव काशी आदि तीर्थों में तो अंश मात्र से निवास करते हैं, परन्तु यहां हिमालय के प्रान्त में सम्पूर्ण रूप से रहते हैं।।३९।।

अहो ! मनुष्यों में वे धन्य हैं, जो एक बार भी इस महापुण्यशाली क्षेत्र का दर्शन कर लेते हैं। वे देवता ही हैं, इसमें संशय नहीं है।।४०।।

हे राजन् ! यहां महापापी भी परम गति को प्राप्त हो गये, पुनः अपने धर्म का पालन करने वाले ब्राह्मणों का तो कहना ही क्या है ?।।४१।।

पहले समय में तारकासुर ने भी इन्द्र आदि देवताओं को स्वर्ग से निकाल दिया था। हे राजन्! वे सब पृथिवी पर आ गये।।४२।।

हे महामते राजन् ! तारकासुर के भय से व्याकुल वे देवता निवास के लिये पृथिवी पर भटकने लगे, किन्तु कहीं पर भी स्थान नहीं पाया।।४३।।

इन्द्र को आगे करके वे देवता इस स्थान की खोजते हुये, शिव को प्रदान करने वाले केदारेश्वर क्षेत्र में आये।।४४।।

देवताओं ने रहने के लिये इस महान् स्थान की ही कामना की। इन्द्र ने महान् इन्द्रकील पर्वत पर अपना निवास बनाया।।४५।।

तदनन्तर उस पर्वत के दक्षिण भाग में शुभ कीनाश पर्वत पर यम ने सब सुख देने वाले अपने रमणीय घर को बनाया।।४६।।

हे राजन् ! इस प्रकार से सभी देवताओं ने क्रमशः अपना वहां निवास बना लिया और उनको वहां रहते हुये कुछ युग व्यतीत हो गये।।४७।।

पार्वती के पति सर्वज्ञ महादेव की आराधना करके, तदनन्तर सेनापति के रूप में स्कन्द को पाकर वे स्वर्ग में रहने वाले देवता स्वर्ग चले गये।।४८।।

हे श्रेष्ठ राजन् ! निश्चय ही इस क्षेत्रराज की कृपा से उन देवताओं ने असुरों को जीत कर अपने पद को प्राप्त किया।।४९।।

हे धर्मनेत्र महाराज! उस समय से लेकर वे देवता निश्चय से मुक्ति की लालसा करते हुये इसी क्षेत्र में निवास करते हैं।।५०।।

केदारमण्डलं यावच्छिवलोको न संशयः।

प्राप्ते कलियुगे घोरे सुरा भूमिं त्यजन्ति हि।
विना केदारकं देशं शिवस्थानं नृपोत्तम।।५१।।

गङ्गा विश्वकलाभिश्च वर्त्तते सर्वदाऽत्र वै।।५२।।

इति श्रुतं महाराज वर्त्तते क्षेत्रमुत्तमम्।
तस्य सन्दर्शनादेव यः कश्चिच्छिवतां व्रजेत्।।५३।।

स्कन्द उवाच-

निशम्येति वचस्तस्य विस्मयं परमं ययौ।
पुनः प्रपच्छ राजा तु मुनिमुत्फालकं मुने।।५४।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे उत्तरभागे श्रीक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः।।

अष्टसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः

कृतयुगे सत्यकेतुसुतसत्यसन्धनृपस्य कोलासुरेण सह बहुकालं सङ्ग्रामकरणम्। आकाशवाचः श्रवणतो युद्धं विहाय गङ्गातीरे शिलायां श्रीयन्त्रं विलिख्य नृपस्य भगवत्याराधनम्, भगवतीवरप्रभावात् कोलासुरविनाशः, असुरशरीरादुत्कृत्य शिरःस्कन्धौ प्रक्षिप्तौ। तत्रयदन्तरं तस्यैव श्रीक्षेत्रनामाभिधानम्, तन्माहात्म्यकथनञ्च।।

राजोवाच-

मुने मुनिगणश्रेष्ठ श्रुतं त्वन्मुखतो मया।
अस्य वै तीर्थराजस्य वैभवं मुक्तिदं शुभम्।।१।।

धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि त्वत्प्रसादाद् द्विजोत्तम।
विस्मयो मे बभूवाऽथ नामाऽस्य किं नु वर्तते।।२।।

कानि कानि च तीर्थानि भवमोक्षप्रदानि वै।
केन केन तपस्तप्तमस्मिन्क्षेत्रेऽघदाहके।।३।।

हे राजश्रेष्ठ ! केदारमण्डल ही शिवलोक है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। घोर कलियुग के आने पर देवता इस शिव के स्थान केदार देश के अतिरिक्त अन्य सारी भूमि को छोड़ देते हैं।।५१।।

यहां निश्चय से गङ्गा अपनी सम्पूर्ण कलाओं से सदा विद्यमान रहती हैं।।५२।।

हे महाराज ! इस प्रकार यह उत्तम क्षेत्र सुना जाता है। इसका दर्शन कर लेने से ही मनुष्य शिवत्व को प्राप्त कर लेता है।।५३।।

स्कन्द ने कहा-

हे मुने ! नारद ! इस प्रकार उस उत्फालक मुनि के वचन को सुन कर राजा को बहुत आश्चर्य हुआ। उसने उत्फालक मुनि से पुनः पुछा।।५४।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में उत्तर भाग में श्रीक्षेत्रमाहात्म्यवर्णन नाम का १७७ वां अध्याय पूरा हुआ।।

अध्याय - १७८

सत्ययुग में सत्यकेतु के पुत्र राजा सत्यसन्ध का कोलासुर के साथ बहुत समय तक युद्ध करना, आकाशवाणी को सुन कर सत्यसन्ध द्वारा युद्ध को छोड़ कर गङ्गा के तट पर शिला पर श्रीयन्त्र की रचना करके भगवती की आराधना करना, भगवती के वर के प्रभाव से कोलासुर का विनाश, असुर के सिर को शरीर से काट कर धड़ को एक ओर तथा सिर को एक ओर फैंकना, दोनों के मध्य का क्षेत्र श्रीक्षेत्र कहलाना, श्रीश्रेत्र के माहात्म्य का कथन

राजा ने कहा-

मुनियों में श्रेष्ठ हे मुने ! मैंने तुमसे इस तीर्थराज के मुक्ति प्रदान करने वाले शुभ वैभव के वर्णन को सुन लिया है।।१।।

हे द्विजश्रेष्ठ मुने ! तुम्हारी कृपा से मैं धन्य हो गया हूं, कृतकृत्य हो गया हूं। मुझको यह आश्चर्य हुआ था कि इसका यह नाम क्यों है ?।।२।।

पापों को जला देने वाले इस क्षेत्र में संसार से मुक्ति दिलाने वाले कौन-कौन से तीर्थ हैं और किस-किस ने यहां तप किया था।।३।।

एतन्मे शंस भगवंस्तृप्तिर्मे जायते न हि।
एतत्पुण्यतमं क्षेत्रं कथं वै समजायत।।४।।

उत्फालक उवाच-

धन्योऽसि त्वं महाराज भक्तिमानसि सुव्रत।
यस्य तीर्थस्य माहात्म्यं श्रोतुमिच्छाऽभवत्प्रभो।।५।।

साधु पृष्टं त्वया साधो सर्वभूतोपकारकम्।
यज्ज्ञात्वाऽपि नरो भक्त्या परमैश्वर्यभाग्भवेत्।।६।।

पुरा कृतयुगे राजा सत्यकेतुरिति श्रुतः।
यस्य वंशे महाराज विश्वामित्रो बभूव ह।।७।।

सत्यकेतुश्च धर्मात्मा राज्यमत्र चकार ह।
प्राचीसमुद्रमारभ्य पश्चिमान्तं महायशाः।।८।।

उदक्समुद्रमारभ्य दक्षिणान्तं नरेश्वरः।
पुत्रानिव प्रजा राजन् पालयामास सर्वतः।।९।।

राज्यं शासति तस्मिंस्तु न कश्चिद्व्यसनं गतः।
काले ववर्ष पर्जन्यः पृथिवी शस्यशालिनी।।१०।।

बालवैधव्यमापन्ना काचिन्नैव बभूव ह।
ममार पुत्रो न पुनर्जनके जीवति प्रभो।।११।।

सर्वे वै सुखिनः शान्ता ब्राह्मणाश्च जितेन्द्रियाः।
विद्याभ्यासरता एव परद्रोहपराङ्मुखाः।।१२।।

आसंस्तथा क्षत्रियाश्च विप्रपूजनतत्पराः।
सङ्ग्रामेऽभिमुखाः सर्वे भक्तिमन्तः सुरार्चने।।१३।।

तथा वैश्याश्च शूद्राश्च स्वधर्ममनुवर्त्तिनः।
न तेषु सङ्करः कश्चिच्चौरो नो दुष्टबुद्धिमान्।।१४।।

न लोभो न च मात्सर्यं न गदो नाऽशुभा मतिः।
नाऽभवत्कस्यचिद्राजंस्तस्मिन् राज्यं प्रशासति।।१५।।

हे भगवन् ! इस बात को मुझको बताइये। मुझको तृप्ति नहीं हो रही है। यह क्षेत्र किस प्रकार से पुण्यतम हो गया।।४।।

उत्फालक ने कहा-

हे महाराज, उत्तम व्रत का पालन करने वाले प्रभो ! तुम धन्य हो, और भक्ति से युक्त हो, जो तुम्हारे अन्दर इस तीर्थ का माहात्म्य सुनने की इच्छा उत्पन्न हुई।।५।।

हे साधो राजन् ! सब प्राणियों का उपकार करने वाली यह बात तुमने अच्छी पूछी है। भक्ति-भाव से इसको जान कर भी मनुष्य परम ऐश्वर्य का भागी होता है।।६।।

हे महाराज ! सुना जाता है कि पहले सत्ययुग में सत्यकेतु नाम के राजा हुये थे, जिनके वंश में विश्वामित्र हुये थे।।७।।

महायशस्वी धर्मात्मा सत्यकेतु इस क्षेत्र में पूर्व दिशा के समुद्र से लेकर पश्चिम समुद्र पर्यन्त शासन करते थे।।८।।

उनका शासन उत्तर समुद्र से लेकर दक्षिण समुद्र तक भी था। हे राजन् ! वे राजा सत्यकेतु प्रजाओं का सब प्रकार से पुत्रों के समान पालन करते थे।।९।।

उस राजा का शासन होने पर किसी पर भी विपत्ति नहीं आती थी। समय पर मेघ बरसता था और पृथिवी धान्यों से युक्त होती थी।।१०।।

हे प्रभो ! कोई भी स्त्री बालविधवा नहीं होती थी। पिता के जीवित रहते हुय किसी पुत्र की मृत्यु नहीं होती थी।।११।।

सब प्रजायें सुखी और शान्त रहती थीं। ब्राह्मण जितेन्द्रिय होते थे। विद्या के अभ्यास में लगे रहते थे और दूसरों के प्रति द्रोह नहीं करते थे।।१२।।

क्षत्रिय ब्राह्मणों का सत्कार करने में तत्पर रहते थे, युद्ध के लिये अभिमुख रहते थे और वे सब देवताओं का पूजन करने में भक्तिमान् थे।।१३।।

वैश्य और शूद्र भी अपने धर्म का पालन करते थे। उनमें कोई संकर नहीं था, कोई चोर नहीं था, कोई दुष्ट बुद्धिवाला नहीं था।।१४।।

हे राजन् ! उस राजा सत्यकेतु के शासन में किसी को लोभ नहीं था, किसी को कोई ईर्ष्या नहीं थी, कोई रोग नहीं था और अशुभ बुद्धि नहीं थी।।१५।।

इति पालयतस्तस्य वर्षाणामयुतं ययौ।
पुत्रो बभूव तस्याऽपि सत्यसन्ध इति श्रुतः।।१६।।

राजा वै सत्यसन्धं तु ह्यभिषिच्य नृपासने।
स्वयं जगाम तपसे चेन्द्रकीले महागिरौ।।१७।।

तत्र गत्वा नृपश्रेष्ठो गुहायां हि दृढासनः।
समाधिस्थो महाराज महाराजो बभूव ह।।१८।।

अद्याऽपि वर्त्तते तत्र चिन्तयन्परमं शिवम्।
दशयोजनविस्तीर्णगुहामध्ये नृपालकः।।१९।।

सत्यसन्धोऽपि राज्यं हि पालयामास धर्मतः।
एवं पालयतस्तस्य सत्यसन्धस्य धीमतः।
कोलासुरो बभूवाऽथ रिपुस्तस्य महीभृतः।।२०।।

अयुतत्रिगजानां हि बलधर्त्ता प्रचण्डकः।
आजगाम नृपश्रेष्ठ योद्धुं तेन महासुरः।।२१।।

विदार्य च मही पादैर्मुखेन च महाबलः।
श्रुत्वा तदागमं राजा धृतबाणशरासनः।
हयस्थो नृपशार्दूल आजगाम बहिः प्रभुः।।२२।।

गङ्गाया उत्तरे तीरे ह्यधो योजनखण्डके।
दक्षभागे कुबेरस्य पर्वतस्य नृपेश्वर।।२३।।

दृष्ट्वा कोलासुरो दुष्टः सत्यसन्धं महीपतिम्।
प्रहस्योवाच दुष्टात्मा वचो दम्भोद्भवं नृप।।२४।।

कोलासुर उवाच-

गच्छ गच्छ वनं राजंस्त्यक्त्वा शस्त्रं नृपास्पदम्।
किमर्थं म्रियसे तुच्छ वृथा तव परिश्रमः।।२५।।

अहं कोलासुरो नाम विख्यातोऽस्मि त्रिलोकके।
येन सन्त्रासिताः देवाः स्थानं तत्यजुराकुलाः।।२६।।

मनो नोत्सहते मेऽद्य योद्धुं राजंस्त्वया सह।
त्वां दृष्ट्वा साम्प्रतं दीनं कृपाऽऽविष्टोऽस्मि भूमिप।।२७।।

इस प्रकार प्रजा का पालन करते हुये उस राजा को दस लाख वर्ष व्यतीत हो गये। उसका पुत्र सत्यसन्ध नाम से प्रसिद्ध हुआ।।१६।।

वह राजा सत्यकेतु राजसिंहासन पर सत्यसन्ध का अभिषेक करके स्वयं तपस्या करने के लिये इन्द्रकील नामक महान् पर्वत पर चला गया।।१७।।

हे महाराज ! वहां इन्द्रकील पर्वत पर जाकर राजाओं में श्रेष्ठ महाराज सत्यकेतु गुफा में दृढ़ आसन लगा कर समाधि में स्थित हो गये।।१८।।

मनुष्यों को पालने वाले वे राजा सत्यकेतु दस योजन तक विस्तृत गुफा के मध्य में आज भी परम शिव का चिन्तन करते हुये विद्यमान हैं।।१९।।

सत्यसन्ध भी धर्म के अनुसार राज्य का पालन करने लगे। इस प्रकार जबकि बुद्धिमान् राजा सत्यसन्ध पृथिवी का पालन कर रहे थे, उनका शत्रु कोल नाम का असुर हुआ।।२०।।

हे राजाओं में श्रेष्ठ धर्मनेत्र ! तीस लाख हाथियों के बल को धारण करने वाला वह प्रचण्ड महासुर कोल उस राजा सत्यसन्ध से युद्ध करने के लिये आया।।२१।।

उस महाबली कोलासुर ने पैरों से और मुख से पृथिवी को विदीर्ण कर दिया। हे श्रेष्ठ राजन्! वे प्रभु राजा सत्यसन्ध भी उसके आगमन को सुन कर धनुष-बाण को धारण करके और घोड़े पर बैठकर बाहर आ गये।।२२।।

हे राजन् ! गङ्गा के उत्तरी तट पर एक योजन के क्षेत्र में कुबेर पर्वत के दक्षिण भाग में आये।।२३।।

उस दुष्टात्मा कोलासुर ने राजा सत्यसन्ध को देख कर हंस कर दम्भ से भरे वचन को कहा।।२४।।

कोलासुर ने कहा-

हे राजन् ! शस्त्र को और राज्यासन को छोड़ कर वन को चले जाओ, चले जाओ। हे तुच्छ ! तुम क्यों मरते हो। तुम्हारा परिश्रम व्यर्थ है।।२५।।

मैं तीनों लोकों में कोल नाम का असुर प्रसिद्ध हूं, जिससे डराये गये देवताओं ने व्याकुल होकर अपने स्थान को छोड़ दिया था।।२६।।

हे राजन् ! आज तुमसे युद्ध करने के लिये मेरा मन उत्साहित नहीं हो रहा है। हे राजन्! अब तुझ दीन को देख कर मैं दया से भर गया हूं।।२७।।

उत्फालक उवाच-

इति श्रुत्वा वचस्तस्य रक्षसः कोलरूपिणः।
क्रोधाविष्टो नृपश्रेष्ठ उवाच दनुजाधिपम्।।२८।।

सत्यसन्ध उवाच-

किमर्थं जल्पसे दुष्ट हन्ताऽहं तव कोलक।
इदानीमेव याम्ये त्वं नगरे यास्यसि ध्रुवम्।।२९।।

उत्फालक उवाच-

इति श्रुत्वा वचस्तस्य सत्यसन्धस्य धीमतः।
क्रोध-संरक्तनयन आययौ सम्मुखं नृपम्।।३०।।

सोऽपि राजा सत्यसन्धो धनुः सज्यं चकार ह।
टङ्कारमकरोत्तीव्रं बाणान्वै सन्दधे ततः।।३१।।

तेन टङ्कारनादेन कम्पितं रक्षसो मनः।
ततो देवास्सगन्धर्वा यक्षकिन्नरतापसाः।
द्रष्टुं युद्धं तयोर्देवा विमानैरागमन्मृधे।।३२।।

ततः कोलासुरो दन्तैर्निर्भिद्य गिरिशृङ्गकम्।
चिक्षेप सहसा रक्षः सत्यसन्धोपरि ध्रुवम्।।३३।।

सत्यसन्धोऽपि तच्छृङ्गं चूर्णयामास बाणकैः।
पञ्च बाणान्प्रचिक्षेप कोलस्योपरितो नृपः।।३४।।

तान्बाणान्सहसा दुष्टो निजगार महीपते।
पुनर्द्वितीयं शृङ्गं स गृहीत्वा पर्वतस्य हि।
सञ्चिक्षेप महाराज सत्यसन्धोपरि ध्रुवम्।।३५।।

तच्छृङ्गमपि राजाऽसावकरोत्कणशो विभो।
एवं तयोर्महाराज युद्धं वै रोमहर्षणम्।।३६।।

बभञ्ज तस्य चास्त्राणि बहूनि कोलरूपकः।
सोऽपि राजा सत्यसन्धश्चूर्णयामास पर्वतान्।।३७।।

अम्लानयोस्तयो राजन्परस्परजयैषिणोः।
बभूव च महान्कालो जयाजयविवर्जितः।।३८।।

उत्फालक ने कहा-

हे नृपश्रेष्ठ धर्मनेत्र ! सूअर (कोल) का रूप धारण करने वाले उस राक्षस के इस वचन को सुन कर वह सत्यसन्ध क्रोध से भर गया और असुरराज से बोला।।२८।।

सत्यसन्ध ने कहा-

हे दुष्ट कोलासुर ! इस प्रकार तुम कैसे कहते हो। मैं तुमको मारने वाला हूं। तुम निश्चय से अभी यम के नगर को जाओगे।।२९।।

उत्फालक ने कहा-

बुद्धिमान् सत्यसन्ध के इस वचन को सुन कर क्रोध से लाल नेत्रों वाला वह कोलासुर राजा के सामने आ गया।।३०।।

उस राजा सत्यसन्ध ने भी धनुष पर डोरी चढा ली। उसने तीव्र टंकार किया और तदनन्तर बाण को चढा लिया।।३१।।

उस टंकार की ध्वनि से राक्षस का मन कांप गया। तब गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, तपस्वी और देवता उन दोनों का युद्ध देखने के लिये विमानों में बैठ कर युद्धक्षेत्र में आ गये।।३२।।

तदनन्तर राक्षस कोलासुर ने दान्तों से पर्वत के शिखर को तोड़ कर सहसा सत्यसन्ध के ऊपर फैंका।।३३।।

तब राजा सत्यसन्ध ने भी उस शिखर को बाणों से चूर्ण कर दिया और उस कोलासुर के ऊपर पांच बाण फैंके।।३४।।

हे राजन् धर्मनेत्र ! वह दुष्ट कोलासुर उन बाणों को सहसा निगल गया। हे महाराज! उसने पर्वत के दूसरे शिखर को लेकार सत्यसन्ध के ऊपर फैंका।।३५।।

हे विभो ! उस राजा सत्यसन्ध ने उस शिखर को भी कण-कण चूरा कर दिया। हे महाराज! इस प्रकार उन दोनों का रोमाञ्चित कर देने वाला युद्ध हुआ।।३६।।

कोलरूपधारी असुर ने उस राजा के बहुत से अस्त्रों को तोड़ दिया। उस राजा सत्यसन्ध ने भी पर्वतों को चूरा कर दिया।।३७।।

हे राजन् ! परस्पर जीतने की इच्छा रखने वाले उन दोनों को विना थके युद्ध करते हुये बहुत समय बीत गया, परन्तु हार-जीत का फैसला नहीं हो सका।।३८।।

आस्तां वै युद्धदुर्द्धर्षौ रक्तनेत्रौ महाबलौ।
ततः शुश्राव नृपतिः खे वाचं देवतेरिताम्।।३९।।

सत्यसन्ध महाराज समाराधय हीश्वरीम्।
गत्वोत्फालकक्षेत्रात्तु ह्यूद्‌र्ध्वभागे नराधिप।।४०।।

माने शरद्वये गङ्गादक्षतीरे महीपते।
अयं दुष्टो महादेव्या निहतः प्रधने पुरा।।४१।।

स एवाऽसौ समुत्पन्नः कोलरूपी महासुरः।
तस्मात्तामेव श्रीविद्यां समाराधय भूपते।।४२।।

चर्तुवर्गप्रदां देवीं श्रीविद्यां सत्यकेतुज।
समाराधय गन्धैश्च धूपैर्दीपैः सपुष्पकैः।।४३।।

नानाबल्युपहारैश्च तथा नैवेद्यकैः शुभैः।
अतो जेष्यसि दुष्टं हि राक्षसं कोलरूपिणम्।।४४।।

उत्फालक उवाच-

इति श्रुत्वा निगदितं देवतानां महीपते।
शीघ्रं जगाम नृपतिर्गङ्गातीरे महायशाः।।४५।।

एकां शिलां समानीय सत्यसन्धो नरेश्वरः।
तस्यां तद्यन्त्रमालिख्य स्थित्वा तत्र दृढ़ासनः।।४६।।

पूजां चकार देवेश्या विद्याया भक्तितत्परः।
गन्धैः पुष्पैस्तथा दीपैर्नैवेद्यैर्बलिभिस्तथा।।४७।।

प्रजजाप महाविद्यां चतुर्वर्गफलप्रदाम्।
एवं वै वर्तमानस्य वर्षाणां शतमभ्यगात्।।४८।।

आजगाम ततः काचित्कन्या द्वादशवार्षिकी।
रूपलावण्यसम्पन्ना विशालाक्ष्यरुणाधरा।।४९।।

एकवस्त्रपरीधाना रक्तमाल्योपशोभिता।
स्मितानना श्यामकेशी सुन्दराङ्गी सुदन्तिका।।५०।।

उवाच वचनं सा तु राजानं ध्यानसंस्थितम्।
सिंहचर्मासनं वीरं स्मितेन परिशोभितम्।।५१।।

लाल नेत्रों वाले महाबली वे दोनों युद्ध में दुर्द्धर्ष थे। तब राजा ने आकाश में देवताओं द्वारा कही गई उस वाणी को सुना।।३९।।

हे राजन् सत्यसन्ध महाराज ! उत्फालक क्षेत्र से ऊपर के भाग में जाकर ईश्वरी की आराधना करो।।४०।।

हे राजन् ! गङ्गा के दाहिने तट पर दो शरविक्षेप दूर इस दुष्ट राक्षस का पहले समय में युद्ध में महादेवी ने वध किया था।।४१।।

वह ही यह महान् असुर अब कोलरूप में उत्पन्न हुआ है। अतः हे राजन् ! उस श्रीविद्या की ही आराधना करो।।४२।।

हे सत्यकेतु के पुत्र सत्यसन्ध ! चतुवर्ग (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) को देने वाली उस श्रीविद्या देवी की गन्ध, धूप, दीप और पुष्पों से आराधना करो।।४३।।

विविध बलियों और उपहारों से तथा शुभ नैवेद्यों से उस देवी की आराधना करो। अतः देवी की कृपा से ही तुम दुष्ट कोलरूपधारी राक्षस को जीतोगे।।४४।।

उत्फालक ने कहा-

हे राजन् धर्मनेत्र ! इस प्रकार देवताओं के कथन को सुनकर वह महायशस्वी राजा सत्यसन्ध गङ्गा के तट पर शीघ्र चला गया।।४५।।

वह राजा सत्यसन्ध एक शिला को लाकर, उस पर श्रीविद्या यन्त्र का आलेखन करके दृढ आसंन लगाकर स्थित हो गया।।४६।।

उसऩे भक्ति से तत्पर होकर गन्ध, पुष्प, दीप, नैवेद्य और बलि से उस देवेश्वरी श्रीविद्या का पूजन किया।।४७।।

वह चतुवर्ग को प्रदान करने वाली महाविद्या का जाप करता रहा। इस प्रकार जप करते हुये उसको सौ वर्ष व्यतीत हो गये।।४८।।

तदनन्तर रूप-लावण्य से सम्पन्न, विशाल नेत्रों वाली और लाल अधर वाली कोई बारह वर्ष की आयु की कन्या वहां आई।।४९।।

उसने एक वस्त्र पहना हुआ था, लाल माला से सुशोभित थी, मुख पर मुस्कराहट थी, केश काले थे, अंग सुन्दर थे और सुन्दर दांत थे।।५०।।

सिंह के चर्म के आसन पर बैठे हुये, वीर, स्मित से सुशोभित एवं ध्यान में स्थित राजा से उसने यह वचन कहा।।५१।।

कन्यावाच-

किं करोषि महाराज राज्यं त्यक्त्वा सुपुष्कलम्।
किं वा ध्यायसि भूमीश गङ्गातीरे दृढासनः।।५२।।

उत्फालक उवाच-

तद्वचो जगदम्बायाः प्रविवेश श्रुतौ नृप।
शनैरुन्मील्य नयने अपश्यत्कन्यकां पुरः।।५३।।

तां दृष्ट्वा सहसा राजा स्मृत्वा तद्वचनं परम्।
उवाच वचनं कन्यां सुदतीं स्मितशोभिताम्।।५४।।

सत्यसन्ध उवाच-

का वा त्वं मृगशावाक्षि कृपया मां हि पृच्छसि।
मन्येऽहं तु महादेवी त्वमेव हि न संशयः।।५५।।

उत्फालक उवाच-

इति श्रुत्वा वचस्तस्य सत्यसन्धस्य धीमतः।
दर्शयामास रूपं हि स्वकं परमदुर्लभम्।।५६।।

चतुर्भुजां महादेवीं सर्वाभरणभूषिताम्।
बालार्कसदृशीं दिव्यां रक्तवस्त्रोपशोभिताम्।।५७।।

नानामणिगणानद्धस्वर्णसिहांसनस्थिताम्।
चामरैर्वीज्यमानां च श्वेतच्छत्रोपशोभिताम्।।५८।।

तां दृष्ट्वा सहसा राजा प्रणनाम भुवि प्रभुः।
अम्बिकां स्तोतुमारेभे सत्यसन्धो दृढव्रतः।।५९।।

सत्यसन्ध उवाच-

वन्दे सर्वमयीं देवीं सर्गस्थित्यन्तकारिणीम्।
सर्वदेवस्तुतां देवीं प्रतिपद्ये महेश्वरीम्।।६०।।

नानारत्नविभूषां च सिंहासनकृतासनाम्।
इन्द्रादिमुकुटाच्छन्नपादपीठां सुलोचनाम्।।६१।।

कोटिबालार्कसदृशीं सुन्दराङ्गीं महाबलाम्।
ईळे सकलसम्पत्त्यै जगत्कारणमम्बिकाम्।।६२।।

कन्या ने कहा-

हे महाराज ! प्रचुर समृद्ध राज्य को छोड़ कर यह क्या कर रहे हो ? हे राजन्! दृढ आसन लगाकर गङ्गा के तट पर किसका ध्यान कर रहे हो ? ।।५२।।

उत्फालक ने कहा-

हे राजन् धर्मनेत्र ! जगदम्बा का यह वचन राजा सत्यसन्ध के कान में प्रविष्ट हुआ। उसने धीरे से आंखों को खोल कर सामने कन्या को देखा।।५३।।

सहसा उस कन्या को देख कर और उसके परम वचन को स्मरण करके राजा सत्यसन्ध ने सुन्दर दांतों वाली एवं स्मित से शोभित कन्या से यह वचन कहा।।५४।।

सत्यसन्ध ने कहा-

हे मृगशावक के समान सुन्दर आंखों वाली कन्ये ! तुम कौन हो, जो कृपा करके मुझसे पूछती हो ? मैं समझता हूं कि तुम महादेवी हो, इसमें संशय नहीं है।।५५।।

उत्फालक ने कहा-

बुद्धिमान् सत्यसन्ध के इस वचन को सुन कर उस कन्या ने अपने अति दुर्लभ रूप को दिखाया।।५६।।

वह महादेवी चार भुजाओं वाली, सभी आभूषणों से अलंकृत, बाल सूर्य के समान तेज वाली तथा लाल वस्त्रों से सुशोभित विद्या थी।।५७।।

वह अनेक मणियों से जड़े हुये स्वर्ण के सिंहासन पर बैठी थी, उस पर चंवर डुलाये जा रहे थे और वह श्वेत छत्र से सुशोभित थी।।५८।।

उसको देख कर दृढ व्रत का पालन करने वाले राजा प्रभु सत्यसन्ध ने सहसा भूमि पर लेट कर प्रणाम किया और अम्बिका की स्तुति करना आरम्भ कर दिया।।५९।।

सत्यसन्ध ने कहा-

सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करने वाली सर्वगुणमयी देवी की मैं वन्दना करता हूं। सब देवों से स्तुति की जाने वाली देवी महेश्वरी की मैं शरण में जाता हूं।।६०।।

देवी विविध रत्नों से विभूषित हैं, सिंह के आसन पर बैठी हैं, उनका पादपीठ इन्द्र आदि देवताओं के मुकुटों से आच्छन्न हैं और सुन्दर नेत्र हैं।।६१।।

वे करोड़ों बाल सूर्यों के समान तेजस्विनी हैं, सुन्दर अंगों वाली और महाबलशालिनी हैं। जगत् की कारणभूत उन अम्बिका की, सकल सम्पत्तियों की प्राप्ति के लिये मैं स्तुति करता हूं।।६२।।

त्वमेव मूलप्रकृतिर्माया विश्वविमोहिनी।
त्वया व्याप्तं जगत्सर्वं मोहितं च त्वया वरे।।६३।।

त्वमिन्द्रस्त्वं यमो देवो महादेवस्त्वमेव हि।
शेषः सर्वस्य धर्त्ता त्वं त्वत्तो नान्योऽस्ति किञ्चन।।६४।।

वेदमाता त्वमेवाऽसि ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका।
सर्वरूपाभिधा देवि विष्णूत्सङ्गनिवासिनी।।६५।।

दर्पिष्ठदुष्टदैत्यघ्नी महादेवकुटुम्बिनी।
इन्द्रस्य राज्यलक्ष्मीस्त्वं भवपाशविमोचिनी।।६६।।

सरस्वती त्वमेवाऽसि सर्वशास्त्रप्रबोधिनी।
प्रभा त्रैलोक्यमाणिक्यरूपा संयमिनी शिवे।।६७।।

कुबेरगृहसम्पस्त्वं यत्स्त्रीरूपं त्वमेव हि।
असुराणां निहन्त्री च भक्तदारिद्र्यनाशिनी।।६८।।

यावत् त्वत्पादकमले भक्तिर्नैवोपजायते।
तावत्संसारदुःखौघैर्बाध्यते भुवि मानवः।।६९।।

नाऽहं तव महिम्नो ह्रि पारं जानामि पार्वति।
स्तोतुं त्वां जननीं मेऽद्य योग्यता स्यात्कथं शिवे।।७०।।

तथाऽप्यहं महाभागे स्तोतुं त्वां भगवत्प्रिये।
न विलज्जे हि दुष्प्राप्ये विरञ्च्यादिभिरीश्वरैः।।७१।।

उत्फालक उवाच-

इति स्तुता महादेवी सत्यसन्धेन धीमता।
प्रसन्ना साऽब्रवीद्वाक्यं राजानं सत्यकेतुजम्।।७२।।

देव्युवाच-

जहि त्वं तं महादुष्टं राजन्कोलासुरं शुभ।
यावत्त्वद्धस्तसङ्क्षिप्तं शिरः कायात्पतिष्यति।
तावच्छ्रीसञ्ज्ञकं क्षेत्रं भविष्यति सुपुण्यदम्।।७३।।

सर्वपापहरं भूप मृतानां मुक्तिदायकम्।
अस्मिन्यस्तीर्थराजे तु करिष्यति मदर्चनम्।
अचिरात्स महाराज मत्तुल्यो भवति प्रभुः।।७४।।

हे श्रेष्ठ देवी ! तुम ही मूल प्रकृति हो, तुम ही माया हो और विश्व को विमोहित करने वाली हो। सब जगत् तुमसे व्याप्त है और तुमने इसको मोहित किया हुआ है। ।६३।।

तुम ही इन्द्र हो, तुम ही यम हो, तुम ही देव हो और तुम ही महादेव हो। तुम ही शेष हो। तुम सबको धारण करने वाली हो। तुमसे अतिरिक्त और कुछ नहीं है। ।६४।।

हे देवि ! तुम ही वेदों की माता हो। तुम ब्रह्मरूप, विष्णुरूप और शिवरूप हो। तुम सब रूपों को धारण करने वाली हो और विष्णु की गोदी में निवास करने वाली हो। ।६५।।

तुम घमण्डी दुष्ट दैत्यों का विनाश करने वाली हो, तुम महादेव की पत्नी हो। तुम इन्द्र की राज्यलक्ष्मी हो। तुम संसार के पाश से मुक्त कराने वाली हो। ।६६।।

हे शिवे ! तुम ही सब शास्त्रों का ज्ञान कराने वाली सरस्वती हो। तुम त्रैलोक्यरूपी माणिक्य की कान्ति हो। तुम सबको संयम में रखती हो। ।६७।।

तुम कुबेर के घर में सम्पत्तिरूप हो। तुम नारी का रूप हो। तुम असुरों का वध करने वाली और भक्तों की दरिद्रता को नष्ट करने वाली हो। ।६८।।

जब तक मनुष्य की तुम्हारे चरणरूपी कमल में भक्ति उत्पन्न नहीं होती, तभी तक वह मनुष्य संसार के दुःखों के समूह से पीडित होता है। ।६९।।

हे पार्वति ! मैं निश्चय से तुम्हारी महिमा के पार को नहीं जानता। हे शिवे ! तुझ माता की स्तुति करने की योग्यता आज मुझमें कैसे आ सकती है ? । ।७०।।

हे भगवत्प्रिये महाभागे ! तो भी ब्रह्मा आदि ईश्वरों से दुष्प्राप्य तुम्हारी स्तुति करने में मैं लज्जा नहीं कर रहा। ।७१।।

उत्फालक ने कहा-

इस प्रकार बुद्धिमान् सत्यसन्ध के द्वारा स्तुति करने पर वह महादेवी प्रसन्न हो गई और उसने सत्यकेतु के पुत्र राजा सत्यसन्ध से यह वाक्य कहा। ।७२।।

देवी ने कहा-

हे शुभ राजन् ! तुम उस महादुष्ट कोलासुर का वध करो। तुम्हारे हाथ से फैंका गया उसका सिर धड़ से जितनी दूर जाकर गिरेगा, उतना क्षेत्र उत्तम पुण्यों का देने वाला श्रीक्षेत्र कहलायेगा। ।७३।।

हे राजन् ! यह क्षेत्र सब पापों का हरने वाला और मृतकों को मुक्ति दिलाने वाला होगा। इस तीर्थराज में जो मेरी अर्चना करेगा, हे महाराज ! वह व्यक्ति शीघ्र ही मेरे समान प्रभु हो जायेगा। ।७४।।

यस्य कस्याऽपि देवस्य भक्तोऽस्मिन्प्रवरे स्थले।
करोति हि शुभां पूजां सोऽपि मत्सेवकः स्मृतः।।७५।।

अस्मिन्नेव महाक्षेत्रे नित्यं शिवसमन्विता।
वसामि सिद्धगन्धर्वदेवकिन्नरतापसैः।।७६।।

गङ्गाया उत्तरे तीरे ह्यतः क्रोशार्द्धखण्डके।
राजराजेश्वरी नाम्ना प्रथिताऽहं नराधिप।।७७।।

पूर्वं तत्र महाराज राजराजेन धीमता।
सम्पत्त्यै राधिताऽहं वै ततोऽत्र निवसाम्यहम्।।७८।।

राजराजो महाराज सम्प्राप्य महतीं श्रियम्।
अस्मिन्वै तीर्थराजे तु मदाराधनकर्मणा।।७९।।

ततो मां नरशार्दूल स्थापयामास राजराट्।
त्रिंशत्कोटिसुवर्णस्य स्थण्डिलस्योपरि ध्रुवम्।।८०।।

ततो मे नाम विख्यातं राजराजेश्वरीति वै।
इदं स्तोत्रं त्वयाऽऽख्यातं पठिष्यन्ति मदालये।
ते वै मम महाराज भक्तानां भक्तनायकाः।
यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति साधकः।।८१।।
गच्छ शीघ्रं महाराज कोलासुरवधाय च।
त्वत्तुल्यो नाऽस्ति त्रैलोक्ये मम भक्तो नराधिप।।८२।।

उत्फालक उवाच-

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवी पश्यतस्तस्य भूभृतः।
श्रुत्वा तदुदितं वाक्यं जगाम रणमूर्द्धनि।।८३।।

आजगाम ततः सोऽपि कोलरूपी महासुरः।
दिदारयन्मही पादैर्गर्जयन्निव मेघराट्।।८४।।

तर्जयन्कुत्सितैः शब्दैर्भीषयन् घुर्घरारवैः।
आगच्छतस्तस्य राजन्देवा अपि चकम्पिरे।।८५।।

आगत्य तत्समीपे तु सत्यसन्धस्य धीमतः।
उवाच वचनं रोषात्प्रहस्य च पुनः पुनः।।८६।।

इस श्रेष्ठ स्थल में जो कोई भक्त अन्य किसी भी देवता की शुभ पूजा करेगा, वह भी मेरा सेवक समझा जायेगा।।७५।।

मैं इसी महाक्षेत्र में शिव से युक्त होकर सिद्धों, गन्धर्वों, देवताओं, किन्नरों और तपस्वियों के साथ निवास करती हूं।।७६।।

हे राजन् ! गङ्गा के उत्तरी तट पर यहां से आधे कोस की दूरी तक मैं राजराजेश्वरी नाम से प्रसिद्ध हूं।।७७।।

हे महाराज ! पहले समय में बुद्धिमान् कुबेर (राजराज) ने सम्पत्ति के लिये मेरी आराधना की थी, अतः मैं यहां निवास करती हूं।।७८।।

हे राजन् ! इसी तीर्थराज में मेरी आराधना करके कुबेर ने निश्चय से महती लक्ष्मी को प्राप्त किया था।।७९।।

हे नरश्रेष्ठ ! तदनन्तर तीस करोड़ स्वर्ण से युक्त यज्ञवेदी (स्थण्डिल) के ऊपर कुबेर ने मेरी स्थापना की थी।।८०।।

तदनन्तर मेरा नाम राजराजेश्वरी प्रसिद्ध हो गया। तुम्हारे द्वारा कहे गये स्तोत्र को जो व्यक्ति मेरे मन्दिर में पढेंगे, हे महाराज ! वे निश्चय से मेरे भक्तों में भक्तनायक होंगे। साधक जिस-जिस वस्तु का विचार करता है, वह उस-उस वस्तु को प्राप्त करता है।।८१।।

हे महाराज ! कोलासुर का वध करने के लिये तुम शीघ्र जाओ। हे राजन् ! तुम्हारे समान मेरा भक्त तीनों लोकों में कोई नहीं है।।८२।।

उत्फालक ने कहा-

यह कह कर, उस राजा के देखते-देखते ही देवी अन्तर्धान हो गई। उस देवी के कहे गये वाक्य को सुन कर राजा रणक्षेत्र में गया।।८३।।

तदनन्तर वह सूअर रूपधारी महान् असुर भी पैरों से पृथिवी को विदीर्ण करता हुआ और मेघों के समान गर्जना करता हुआ आ गया।।८४।।

वह कुत्सित शब्दों से झिड़क रहा था और घुर-घुर शब्दों से डरा रहा था। हे राजन् ! उसके आने पर देवता भी कांप गये।।८५।।

उस बुद्धिमान् सत्यसन्ध के समीप आकर पुनः पुनः उपहास करके उसने क्रोध से कहा।।८६।।

कोलासुर उवाच-

किमर्थमागतोऽसि त्वं युद्धाद्धि विनिवर्त्त हि।
गमिष्यसि तथैव त्वं यथा पूर्वं नराधिप।।८७।।

इदानीमेव हे तुच्छ प्रेषयिष्यामि दक्षिणाम्।
अतो जीवन्गृहे गच्छ त्यक्त्वा शस्त्राणि भूचर।।८८।।

उत्फालक उवाच-

इति श्रुत्वा वचस्तस्य सत्यसन्धो नराधिपः।
बाणानासन्दधच्चाप उवाच वचनं रुषा।।८९।।

राजोवाच-

एतत्समयपर्यन्तं नाऽऽगतो मृत्युकालकः।
अद्य मत्कार्मुकोत्सृष्टाः बाणास्ते प्राणहारिणः।।९०।।

भविष्यन्ति महादुष्ट मुनीनां शान्तचेतसाम्।
प्रसन्नानि मनांस्याशु निहते कोलके त्वयि।।९१।।

ऋषिरुवाच-

सन्तत्याज ततो बाणं कोलस्योपरि रक्षसः।
सोऽपि कोलो महादुष्टश्चर्बयामास बाणकम्।।९२।।

पुनः पर्वतमुत्थाप्य दंष्ट्रया तीक्ष्णया तदा।
चिक्षेप नरशार्दूले ह्यनेकतरुशोभितम्।।९३।।

तमप्यचलमायान्तं दूरतो नृपनन्दनः।
चूर्णयामास बाणैश्च कणशः कणशस्ततः।।९४।।

इति वै तुमुलैर्युद्धै रोमहर्षणकारकैः।
बभूवुस्तिमिराच्छन्ना दिशः सर्वत एव हि।।९५।।

यं यं बाणं सत्यसन्धः सन्तत्याजाऽसुरोपरि।
कञ्चिद्वै चूर्णितं चक्रे कञ्चिद्वै निजगाल हि।।९६।।

सोऽपि राजा सत्यसन्धो यान्यान्वृक्षाश्मपर्वतान्।
तत्क्षिप्तांश्चूर्णयामास निपेतुस्ते महीतले।।९७।।

ते बभूवुर्महाराज पर्वता रेणवो भृशम्।
अत्राऽऽसन्प्रथमं कोटिसंख्यकानि गृहाणि च।।९८।।

कोलासुर ने कहा-

तुम किसलिये आये हो। युद्ध से निश्चय ही लौट जाओ। हे राजन्! तुम उसी प्रकार चले जाओगे, जैसे पहले गये थे।।८७।।

हे तुच्छ! अभी ही तुमको दक्षिण (यम की दिशा) में भेजता हूं। भूमि पर विचरने वाले मनुष्य! तुम शस्त्रों को छोड़ कर जीवित रहते हुये ही घर को लौट जाओ।।८८।।

उत्फालक ने कहा-

उस कोलासुर के इस वचन को सुन कर राजा सत्यसन्ध ने धनुष पर बाण का सन्धान किया और क्रोधं से यह वचन कहा।।८९।।

राजा ने कहा-

इतने समय तक तुम्हारा मृत्यु का समय नहीं आया था। मेरे धनुष द्वारा छोड़े गये बाण तुम्हारे प्राणों का हरण करने वाले हैं।।९०।।

हे महादुष्ट! तुझ कोलासुर के मारे जाने पर शान्त मन वाले मुनियों के मन शीघ्र प्रसन्न होंगे।।९१।।

उत्फालक ऋषि ने कहा-

तदनन्तर राजा ने राक्षस कोल के ऊपर बाणों को छोड़ा। वह महादुष्ट कोल भी बाणों को चबा गया।।९२।।

तब उस राक्षस ने तीक्ष्ण दाढ से अनेक वृक्षों से सुशोभित पर्वत को उठाकर नरश्रेष्ठ राजा पर फैंका।।९३।।

तदनन्तर दूर से आते हुये उस पर्वत को भी राजा सत्यसन्ध ने अपने बाणों से कण-कण करके चूरा कर दिया।।९४।।

इस प्रकार रोमाञ्चित कर देने वाले तुमुल युद्धों से दिशायें सब ओर से अन्धकार से आच्छन्न हो गईं।।९५।।

सत्यसंध उस असुर के ऊपर जिस जिस बाण को छोड़ता था, उनमें से किसी का वह चूरा कर देता था और किसी को निगल जाता था।।९६।।

राजा सत्यसन्ध भी राक्षस द्वारा फैंके गये जिन-जिन वृक्षों, पत्थरों और पर्वतों को चूरा कर देता था, वे पृथिवीतल पर गिर जाते थे।।९७।।

हे महाराज! उन पर्वतों से बहुत अधिक धूलि हो गई। यहां पहले करोड़ों की संख्या में घर थे।।९८।।

देवानां मुनिवर्याणां सिद्धानां निर्मितानि च।
पर्वतैः कणभूतैश्च पाषाणैश्चूर्णितानि च।।९९

बभूविरे ततो राजन्नसंख्याताश्च पर्वताः।
केचिन्नष्टास्तु तत्रैव गताः केचिद्दिगन्तरम्।।१००।।

नागराः सैनिकाश्चैव भीतास्तस्माद् दुरात्मनः।
इति जाते महायुद्धे सर्वे लोकाश्चकम्पिरे।।१०१।।

ततो वै बाहुयुद्धेन युयुधाते परस्परम्।
मुष्टिभिर्दृढबद्धैश्च पादघातैरितस्ततः।।१०२।।

प्रतिशब्दो महानासीच्चचाल वसुधा भृशम्।
संरक्तनयनौ भीमौ रुधिराक्तकलेवरौ।।१०३।।

द्विज निष्पीडितौ जातौ जयाजयविवर्जितौ।
रेजतुर्नृपकोलौ तावुदयास्ताचलाविव।।१०४।।

तयोस्तु कुर्वतोर्युद्धं पृथिवी विव्यथे भृशम्।
एतस्मिन्नन्तरे भूप राजा तस्य महौजसः।
मुष्टिना तत्र तुण्डं हि व्यथयामास भूमिप।।१०५।।

सोऽपि कोलासुरो दुष्टस्तुण्डेनोत्थापयन्नृपम्।
ततो राजा सत्यसन्धो दृढेन मुष्टिना पुनः।
प्रहारं कृतवान्मूर्ध्नि विव्यथे राक्षसस्ततः।।१०६।।

व्यथितो वसुधापृष्ठे चिक्षेप नृपतिं ततः।
उत्थाय सत्यसन्धस्तु पुनः कोलदुरात्मना।
बाहुयुद्धेन युयुधे प्रहारैरतिदारुणैः।।१०७।।

न तयोर्म्लानवदनं न वै दरसमन्वितम्।
एवं तयोर्युद्ध्यतोर्हि व्यतीयुर्दिवसान्यपि।।१०८।।

बहुशस्तेन राज्ञा हि मुष्टिभिः शस्त्रकैस्तथा।
ताडितो न बभूवाऽसौ म्लानचित्तो महासुरः।।१०९।।

अथ तस्य नृपस्याशु कर्ण आगत्य पार्वती।
ददौ विमोहिनीं मायां ययारिर्मोहितो भवेत्।।११०।।

वे घर देवताओं, मुनिश्रेष्ठों और सिद्धों द्वारा निर्मित किये गये थे। कणभूत पर्वतों और पत्थरों से उनका चूरा हो गया।।९९।।

हे राजन् ! तदनन्तर वहां असंख्य पर्वत हो गये। उनमें से कुछ तो वहीं नष्ट हो गये और कुछ दूसरी दिशाओं में चले गये।।१००।।

नगरनिवासी और सैनिक उस महादुष्ट असुर से डर गये। इस प्रकार महान् युद्ध के होने पर सब लोक कांप गये।।१०१।।

तदनन्तर वे बाहुयुद्ध द्वारा दृढता से बांधे गये मुक्कों से और इधर-उधर पैरों के आघातों से युद्ध करने लगे।।१०२।।

महान् प्रतिध्वनि होने लगी, पृथिवी बहुत अधिक हिलने लगी। उन दोनों की आंखें लाल हो गईं, वे भयानक लगने लगे और उनके शरीर रक्त से भीग गये।।१०३।।

हे द्विज ! जय और पराजय का निर्णय नहीं हुआ और वे एक दूसरे को पीसने लगे। वे दोनों राजा और कोलासुर उदयाचल और अस्ताचल के समान शोभित होने लगे।।१०४।।

उन दोनों के युद्ध करते हुये पृथिवी बहुत अधिक व्यथित हो गई। हे राजन् ! इसी बीच में राजा ने महाबलशाली कोलासुर के थूंथन को मुक्के से व्यथित कर दिया।।१०५।।

उस दुष्ट कोलासुर ने भी राजा को थूंथन से ऊपर उठा लिया। तब राजा सत्यसन्ध ने पुनः दृढ मुक्के से उसके मस्तक पर प्रहार किया। तदनन्तर वह राक्षस पीडित हो गया।।१०६।।

तब व्यथित होकर उसने राजा को पृथिवी पर डाल दिया। उठ कर राजा सत्यसन्ध पुनः उस दुष्ट कोलासुर के साथ बाहुयुद्ध में अति कठोर प्रहारों से युद्ध करने लगा।।१०७।।

न तो उन दोनों का मुख मुरझाया और नाहीं उनको जरा सा भी भय हुआ। इस प्रकार युद्ध करते हुये उन दोनों को कई दिन बीत गये।।१०८।।

राजा द्वारा बहुत बार मुक्कों से तथा शस्त्रों से प्रहार करने पर भी उस महान् असुर का मन म्लान नहीं हुआ।।१०९।।

तदनन्तर पार्वती ने शीघ्र आकर उस राजा के कान में विमोहिनी माया को दिया, जिससे कि शत्रु मोहित हो जाता है।।११०।।

श्रुत्वा तदुदितं मन्त्रं युद्धचमानो जजाप ह।
जपावसाने नृपतेर्निपपाताऽसुरो भुवि।।१११।।

मोहितो मायया देव्यास्त्रिगुणाया नराधिप।
तयैव सृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम्।।११२।।

पाल्यते चाऽद्यते भूप तथैव हि न संशयः।
सृष्टिं कर्त्तुं प्रवृत्ता हि यदा भवति निर्गुणा।
जायते हि तदा सैव प्रकृतिः परमेश्वरी।।११३।।

स्वयमेव महादेवी भूत्वा पुरुषनामिका।
लोकबुद्धौ महादेवी वर्त्तते स्त्रीकलेवरा।।११४।।

सैव माया परं ब्रह्म प्रसूते हि गुणत्रयम्।
तदा रजोगुणाद् ब्रह्मा सत्त्वाद् विष्णुरजायत।।११५।।

तमोगुणात्तु रुद्रोऽभूत्तस्यामेव न संशयः।
ब्रह्मरूपेण सृजति रक्षते विष्णुरूपतः।
अत्ति सा रुद्ररूपेण दुष्टदैत्यविनाशिनी।।११६।।

तथैव मोहितो जन्तुस्तां न वेत्ति हि तत्त्वतः।
स लोको मृतकल्पस्तु बभूव सहसा तदा।।११७।।

अथ राजा सत्यसन्धः खड्गमुत्थाप्य सत्वरम्।
शिरश्चिच्छेद तेनैव रक्षसः कोलरूपिणः।।११८।।

दिवि दुन्दुभयो नेदुर्हर्षितास्त्रिदिवौकसः।
ववुः पुण्या वायवश्च सरितो मार्गगास्ततः।।११९।।

साधुवादो बभूवाऽथ ननृतुश्चाप्सरोगणाः।
मनांस्यासन्प्रसन्नानि सर्वेषां निहतेऽसुरे।।१२०।।

अथ राजा सत्यसंधः शिरः कायान्मृतस्य हि।
हस्ताभ्यां तोलचित्वा तु सञ्चिक्षेप पृथक्पृथक्।।१२१।।

शिरस्तु पतितं तस्य नैर्ऋत्यां योजने ततः।
तद्वपुः पूर्वभागे तु योजनानां त्रयेऽपतत्।।१२२।।

पार्वती के द्वारा कहे गये उस मन्त्र का राजा युद्ध करते हुय जप करने लगा। राजा द्वारा जप की समाप्ति होने पर असुर भूमि पर गिर पड़ा।।१११।।

हे राजन् ! त्रिगुणरूप देवी की माया से वह असुर मोहित हो गया। वह देवी ही इस चर-अचर जगत् की सृष्टि करती है।।११२।।

हे राजन् ! वही इसका पालन करती है और वही इसका विनाश करती है, इसमें सन्देह नहीं है। जब वह निर्गुण होकर सृष्टि की रचना करने के लिये प्रवृत्त होती है, तब वह परमेश्वरी प्रकृति हो जाती है।।११३।।

वह महादेवी ही पुरुष के रूप में होती है और लोक की बुद्धि में वह महादेवी ही स्त्री का शरीर धारण करती है।।११४।।

वह ही परम ब्रह्म है, जो माया होकर तीन गुणों (सत्त्व, राजस्, तमस्) की सृष्टि करती है। तब रजोगुण से ब्रह्मा और सत्त्वगुण से विष्णु उत्पन्न होते हैं।।११५।।

उससे ही तमोगुण से रुद्र उत्पन्न होते हैं, इसमें संशय नहीं है। ब्रह्मा के रूप में वह सृष्टि की रचना करती है और विष्णु के रूप में इसकी रक्षा करती है। दुष्ट दैत्यों का विनाश करने वाली वह रुद्र के रूप में इसका भक्षण कर लेती है।।११६।।

उससे ही मोहित होकर प्राणी उसको ठीक-ठीक जान नहीं पाता। उस से कोलासुर के मोहित होने पर लोक मृतक के समान हो गया।।११७।।

इसके बाद राजा सत्यसन्ध ने शीघ्र ही खड्ग को उठा कर उससे कोलरूप राक्षस का सिर काट दिया।।११८।।

प्रसन्न हुये देवताओं ने आकाश में दुन्दुभियों को बजाया। तदनन्तर मार्ग में चलने वाली नदियां और पुण्यशाली वायु बहने लगीं।।११९।।

उस असुर के मारे जाने पर साधुवाद होने लगा, अप्सरायें नाचने लगीं और सबके मन प्रसन्न हो गये।।१२०।।

इसके बाद राजा सत्यसन्ध ने मरे हुये कोलासुर के सिर को धड़ से अलग करके हाथों से उठा कर अलग अलग दिशाओं में फैंका।।१२१।।

तब उसका सिर नैर्ऋत्य (दक्षिण-पश्चिम) दिशा में एक योजन दूर गिरा। उसका धड़ पूर्व दिशा में तीन योजन दूर गिरा।।१२२।।

तदेव मानं क्षेत्रस्य बभूव परितो भृशम् ।
चतुर्योजनविस्तीर्णं तिर्यग्वै योजनत्रयम् । ।१२३ । ।

अद्याऽपि तन्महाराज नामाऽस्य शिरस: प्रभो ।
कोलासुरमिति ख्यातं वर्त्तते धर्मनेत्र भो: । ।१२४ । ।

तत्रापि तत्कायदेशे पर्वत: कोलनामक: ।
एतयोरन्तरे यस्तु मृत: शिवपुरे वसेत् । ।१२५ । ।

इति ते कथिता देव श्रीक्षेत्रस्य जनिश्शुभा ।
नामोत्पत्तिश्च तस्यैव कथिता हि तवाऽग्रत: । ।१२६ । ।

पुण्यं पवित्रमायुष्यं पुत्रीयं धनधान्यदम् ।
अत: परं महाभाग किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि । ।१२७ । ।

यो वै नरो नरवरो भुवि क्षेत्रराजस्योत्पत्तिवैभवमिदं शृणुयात्पठेद्य: ।
सो देव देववनितादिकटाक्षजातहर्षातिहर्षनृपसंहतिसेविताङ्घ्रि: । ।१२८ । ।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे श्रीक्षेत्रमाहात्म्ये कोलासुरवधो
नामाष्टसप्तत्युत्तरशततमोऽध्याय: । ।

एकोनाशीत्युत्तरशततमोऽध्याय:

श्रीक्षेत्रस्थिततीर्थवर्णनप्रसङ्गेन मेनकाख्यनदीपूर्व-वृत्तकथनम्,कोलासुरकन्याया: श्यामलाया: सरिद्रूपत्व-कथनम्, गङ्गातीरे भानुमत्याऽऽख्यशिलाया इतिहास-निरूपणम्, कण्डिकाश्मशानवासिनीस्थाननिरूपणम्, नहुषेश्वरकथादिकथनम् ।

स्कन्द उवाच-

श्रुत्वा श्रीक्षेत्रमाहात्म्यमुत्पत्तिं चापि नारद ।
विस्मयं परमं मत्वा पुन: प्रपच्छ तं मुनिम् । ।१ । ।

धर्मनेत्र उवाच-

धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि त्वादृशानां हि सङ्गत: ।
यत्सङ्गतो मुनिश्रेष्ठ जायते भगवद्गति: । ।२ । ।

चारों ओर उस क्षेत्र का वही लम्बा-चौड़ा परिमाण हुआ, जो चार योजन लम्बा और तीन योजन चौड़ा था।।१२३।।

हे धर्मनेत्र राजन् प्रभो महाराज! आज भी उस सिर के उस स्थान का नाम कोलासुर प्रसिद्ध है।।१२४।।

वहां भी, जहां उसका धड़ गिरा था, कोल नाम का पर्वत है। कोलासुर और कोल पर्वत के मध्य में जिसकी मृत्यु होती है, वह शिवलोक में निवास करता है।।१२५।।

इस प्रकार हे देव! मैंने तुमसे श्रीक्षेत्र की शुभ उत्पत्ति का वर्णन कर दिया है और इसका यह नाम कैसे हुआ, इसका भी वर्णन तुम्हारे आगे कह दिया है।।१२६।।

यह वर्णन पुण्यशाली है, पवित्र है, आयु बढाने वाला है, पुत्र देने वाला है और धन-धान्य देने वाला है। हे महाभाग! इससे अधिक और क्या सुनना चाहते हो?।।१२७।।

जो कोई मनुष्यों में श्रेष्ठ मनुष्य इस क्षेत्रराज की उत्पत्ति के वैभव को सुनता है और पढता है, परमेश्वरी के कटाक्षों से प्रसन्न और अति प्रसन्न राजाओं का समुदाय उसके चरणों की सेवा करता है।।१२८।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में श्रीक्षेत्रमाहात्म्यप्रकरण में
कोलासुरवध नाम का १७८ वां अध्याय समाप्त हुआ।।

अध्याय - १७९

श्रीक्षेत्र के तीर्थों का वर्णन, मेनका नाम की नदी के पूर्व वृत्तान्त का कथन, कोलासुर की कन्या श्यामला के नदी रूप का वर्णन, गङ्गा के तट पर भानुमती नाम की शिला के इतिहास का निरूपण, श्मशानवासिनी कण्डिका के स्थान का निरूपण, नहुषेश्वर की कथा आदि का वर्णन

स्कन्द ने कहा-

हे नारद! श्रीक्षेत्र के माहात्म्य और उत्पत्ति के वृत्तान्त को सुन कर उस राजा धर्मनेत्र को बहुत आश्चर्य हुआ और उसने उत्फालक मुनि से पूछा।।१।।

धर्मनेत्र ने कहा-

हे मुनिश्रेष्ठ! आप जैसों की संगति से मैं धन्य हो गया हूं और कृतकृत्य हो गया हूं। आप जैसों की संगति से भगवद्गति प्राप्त होती है।।२।।

त्वन्मुखाम्भोजगलितात् कथामृतरसायनात्।
तृप्तोऽस्मि सुतरां विप्र बाधते न च मां क्षुधा।।३।।

इदानीं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण तपोधन।
श्रीक्षेत्रे यानि तीर्थानि सुपुण्यानि महान्ति च।।४।।

तानि मे शंस भगवन्प्राणिनां च हिते रत।
या याः पुण्यतमा नद्यो ह्रदा येऽन्यत्र कुत्रचित्।।५।।

उत्फालक उवाच-

साधु साधु महाराज सम्यक्पृष्टोऽस्मि तेऽनघ।
शृणु चैकमना भूत्वा यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽनघ।।६।।

श्रीक्षेत्रदक्षिणे भागे गव्यूतित्रयसम्मिते।
कोलासुरशिरःक्षेपात्स्थलं श्रीक्षेत्रतां गतम्।।७।।

यमो यस्मिंस्तपस्तेपे तारकार्त्तः शतं समाः।
तेन कीनाशनामाऽसौ सुन्दरोत्तुङ्गपर्वतः।।८।।

वंजाडोजाडनामाख्ययमभृत्याश्रमद्वयम्।
पूर्वपश्चिममयोर्भीममारात्संराजते ध्रुवम्।।९।।

तपसा तोषितः शम्भुः प्रत्यक्षं वरदोऽभवत्।
वरद्वयं ययाचेऽथ धर्मराजो महातपाः।।१०।।

सदा त्वयाऽत्र स्थातव्यं पार्वत्या सह शङ्कर।
त्वत्पादपङ्कजे भक्तिरचला स्यान्ममेति च।।११।।

श्रीसदाशिव उवाच-

गिरीन्द्रराजकन्यया सदैव यक्षकिन्नरैः।
अहं वसामि नित्यदा तपःस्थले त्वदीयके।।१२।।

मदीयपादपङ्कजे सदाऽस्तु ते दृढा मतिः।
त्वदीयहृत्सरोरुहे ममाऽस्तु सर्वदा स्थितिः।।१३।।

सुगुप्तरूपमास्थाय प्रकटिष्याम्यहं कलौ।
कङ्कालेश्वरनामा वै भुक्तिमुक्तिप्रदोऽस्म्यहम्।।१४।।

हे विप्र उत्फालक ! तुम्हारे मुखरूपी कमल से निकले हुये कथारूपी इस रसायन से मैं तृप्त हो गया हूं और मुझको भूख भी पीडित नहीं करती ।।३।।

हे तपोधन ! अब मैं विस्तार से सुनना चाहता हूं कि जो जो इस श्रीक्षेत्र में पुण्यशाली महान् तीर्थ हैं ।।४।।

प्राणियों के हित में लगे हुये हे भगवन् ! इस क्षेत्र में और अन्यत्र कहीं भी जो जो पुण्यतम नदियां हैं और जलाशय हैं, उनको मुझे बताओ ।।५।।

उत्फालक ने कहा-

हे महाराज ! साधु, साधु । हे निष्पाप ! तुमने ठीक बात पूछी है । हे निष्पाप ! तुमने जो बात पूछी है, उसको एकाग्र मन होकर सुनो ।।६।।

श्रीक्षेत्र के दक्षिण भाग में तीन गव्यूति (६ कोस) के बराबर भूमिभाग, जहां कि कोलासुर का सिर गिरा था, वहां से श्रीक्षेत्र कहलाता है ।।७।।

जिस स्थान पर तारकासुर से पीडित यम ने १०० वर्ष तक तप किया था । इसलिये उस ऊंचे पर्वत का नाम कीनाश पर्वत हुआ ।।८।।

वहां पूर्व और पश्चिम दिशा में समीप-समीप वंजाडो और जाड नाम के यम के सेवकों के दो महान् भयानक आश्रम पास-पास सुशोभित हैं ।।९।।

यम की तपस्या से प्रसन्न होकर शिव प्रत्यक्ष उपस्थित होकर वर देने लगे । महातपस्वी धर्मराज यम ने तब दो वर मांगे ।।१०।।

पहला वर था- हे शंकर ! ! तुम पार्वती के साथ यहां रहो । दूसरा वर था- तुम्हारे चरणकमलों में मेरी अचल भक्ति हो ।।११।।

श्री सदाशिव ने कहा-

मैं तुम्हारे इस तपःस्थल पर पर्वतराज की पुत्री पार्वती के और यक्षों-किन्नरों के साथ सदा निवास करूंगा ।।१२।।

मेरे चरणकमल में तुम्हारी बुद्धि सदा स्थिर रहेगी । तुम्हारे हृदयरूपी सरोवर में मैं सदा स्थित रहूंगा ।।१३।।

मैं अति गुप्त रूप में यहां स्थित रह कर कलियुग में प्रकट होऊंगा । मैं निश्चय से भोगों और मोक्ष को देने वाला कङ्कालेश्वर हूं ।।१४।।

तेन मुक्तेश्वरो नाम चाऽपरं मे भविष्यति।
मेनका च सरिच्छ्रेष्ठाऽलकनन्दाभिसम्मुखी।।१५।।

तस्यां स्नात्वा च सम्पूज्य कङ्कालेशं शिवं शिवाम्।
मम सायुज्यतामेति मर्त्यो मम सुनिश्चितम्।।१६।।

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे शम्भू राजन् परमधार्मिक।
श्रीक्षेत्रवैभवं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्।।१७।।

कोलासुरशिरोभागे नदी परमपावनी।
मेनकेति समाख्याता सर्वकामप्रदायिनी।।१८।।

यत्र स्नात्वा नरो भक्त्या सर्वान्कामानवाप्नुयात्।
पूर्वं हि सा महाराज जात्या शूद्रा बभूव ह।।१९।।

सुदती तु समाख्याता विकलाङ्गी घटोदरी।
विडालनयना सा तु परं मदविमोहिता।।२०।।

न कश्चित्तत्पतिश्चासीत्कुरूपत्वान्महीपते।
इत्यस्यां वर्तमानायां यौवनं प्रत्यपद्यत।।२१।।

ददर्श स्वसखीनां हि पतीन्परमसुन्दरान्।
चिन्तयामास बहुशः पतिना रहिता तु सा।।२२।।

किं कर्त्तव्यं मयेदानीं यौवनं मेऽतिवर्त्तते।
कथं मम विवाहः स्यात्को वा मत्सदृशः पतिः।।२३।।

इत्येवं चिन्तयन्ती सा मार्गे स्थितवती ततः।
पथिकानेव पप्रच्छ को वा मम पतिर्भवेत्।।२४।।

अत्राऽन्तरे महाराज पथिको ब्राह्मणो युवा।
आययौ रूपसम्पन्नः कन्दर्प इव चाऽपरः।।२५।।

उवाच तं धर्मनेत्र ब्राह्मणं पथिकं तदा।
स्मितेन शोभमानास्या कटाक्षेन सुशोभना।।२६।।

सुदत्युवाच-

कुत्र वा गम्यते साधो कुतो वाऽऽगम्यते त्वया।
स्थिरो भव क्षणं साधो श्रोतव्यं वचनं मम।।२७।।

मेरा दूसरा नाम मुक्तेश्वर होगा। यहां नदियों में श्रेष्ठ मेनका नदी अलकनन्दा की ओर प्रवाहित होगी।।१५।।

उस नदी में स्नान करके और कङ्कालेश्वर शिव एवं पार्वती का पूजन करके मनुष्य मेरी सायुज्यता (जीवात्मा का परमात्मा में मिलन हो जाना) को प्राप्त करता है। मेरा यह सुनिश्चित कथन है।।१६।।

हे परम धार्मिक राजन् ! शिव यह कह कर अन्तर्धान हो गये। इस श्रीक्षेत्र का वैभव पुण्यशाली है और सब पापों को नष्ट करने वाला है।।१७।।

जहां कोलासुर का सिर गिरा था, उस भाग में परम पवित्र, सब कामनाओं को पूरा करने वाली मेनका नाम से प्रसिद्ध नदी है।।१८।।

इस नदी में भक्ति-भाव से स्नान करके मनुष्य सभी कामनाओं को प्राप्त करता है। हे महाराज! वह पहले जाति से शूद्र कन्या थी।।१९।।

उसका नाम सुदती था, अंग विकट था, पेट घड़े के समान था, आंखें बिल्ली के समान थीं, परन्तु वह मद से विमोहित रहती थी।।२०।।

हे राजन् ! कुरूप होने के कारण उसका कोई पति नहीं था। इस प्रकार रहते हुये वह यौवन को प्राप्त हुई।।२१।।

उसने अपनी सखियों के परम सुन्दर पतियों को देखा। पति से रहित होकर वह बहुत अधिक चिन्ता करने लगी।।२२।।

मुझको अब क्या करना चाहिये। मेरा यौवन बीता जा रहा है। मेरा विवाह कैसे हो और मेरे योग्य पति कैसे मिलेगा।।२३।।

इस प्रकार से विचार करती हुई वह मार्ग में खड़ी हो गई और पथिकों से पूछने लगी कि मेरा पति कौन होगा।।२४।।

हे महाराज ! इसी बीच में रूप से सम्पन्न युवा एक ब्राह्मण पथिक, जो मानों दूसरा कामदेव था, वहां आया।।२५।।

हे धर्मनेत्र ! स्मित से और कटाक्ष से सुशोभित वह शूद्रा उस ब्राह्मण पथिक से कहने लगी।।२६।।

सुदती ने कहा-

हे सज्जन ! तुम कहां जा रहे हो और कहां से आ रहे हो। हे साधो ! क्षण भर स्थिर होकर मेरे वचन को सुनो।।२७।।

अहं भवामि जात्या हि शूद्रा षोडशवार्षिकी।
पत्या सुरहिता[1] चाऽस्मि वयो मां बाधते तराम्।।२८।।

कस्त्वं पुरुषशार्दूल विस्तरेण वदस्व मे।
तवाऽपि वयसः कालो वृथा सङ्गच्छते विभो।।२९।।

ब्राह्मण उवाच-

अहमत्रिकुलोत्पन्नो ब्राह्मणो गौडदेशजः।
केदारेश्वरयात्रां वै कृत्वा दर्शनमुत्तमम्।
गमिष्यामि स्वदेशे हि विवाहो मे भविष्यति।।३०।।

सुदत्युवाच-

अत्रैव निवसिष्याव आवां यौवनगर्वितौ।
मया सह विवाहञ्च कुरु शीघ्रं द्विजेश्वर।।३१।।

धन्यास्ते पुरुषा लोके सदाराः क्लेशवर्जिताः।
प्रमदाधरसम्पानजातरोमाञ्चकञ्चुकाः।।३२।।

कियद्भिः क्रियते साधो नरैः कर्म शुभाशुभम्।
तेन तेन कृतेनाऽस्ति सुखं दुःखं द्विजेश्वर।।३३।।

पुण्येन कर्मणा विप्र सुखमेवाऽनुभूयते।
वामाधरसुधापानजनितं स्वर्गसम्मितम्।।३४।।
पापेन कर्मणा विप्र दुःखमेवाऽनुभूयते।
तस्मात्त्वमेव धन्योऽसि यस्याऽग्रे स्वयमास्थिता।।३५।।

उत्फालक उवाच-

इति श्रुत्वा निगदितं ब्राह्मणो विस्मितोऽभवत्।
प्रहस्योवाच तां शूद्रां स्मितेन परिशोभितः।।३६।।

ब्राह्मण उवाच-

सत्यमुक्तं त्वया शूद्रे परं शृणु वचो मम।
नाऽहं तवाऽस्मि सदृशो भर्त्ता हि कमलेक्षणे।।३७।।

त्वं तु रूपवती साक्षान्मेनकेव यथा पुरा।
अहं तु रूपरहितो दुर्बलो ब्राह्मणो मुनिः।।३८।।

१. विरहिता

मैं सोलह वर्ष की आयु की जाति से शूद्रा हूं। मैं पति से रहित हूं और यौवन की आयु मुझको बहुत पीडित कर रही है।।२८।।

हे पुरुषशार्दूल ! तुम कौन हो, यह बात मुझको विस्तार से बताओ। हे विभो ! तुम्हारी भी यह यौवन की आयु व्यर्थ बीत रही है।।२९।।

ब्राह्मण ने कहा-

मैं गौड देश में उत्पन्न हुआ हूं। मैं अत्रि के कुल में उत्पन्न हुआ हूं। केदारेश्वर की यात्रा करके और उनका उत्तम दर्शन करके मैं अपने देश को जाऊंगा और वहां मेरा विवाह होगा।।३०।।

सुदती ने कहा-

हम दोनों यौवन से गर्वित यहीं निवास करेंगे। हे द्विजराज! मेरे साथ शीघ्र विवाह कर लो।।३१।।

इस लोक में वे पुरुष धन्य हैं, जो पत्नी से युक्त होकर क्लेश से रहित रहते हैं। वे प्रमदा के अधर का पान करके रोमाञ्चित होते हैं।।३२।।

हे सज्जन ! कितने ही मनुष्य शुभ और अशुभ कर्म करते हैं। हे द्विजराज ! उन-उन शुभ और अशुभ कर्मों से उनको सुख और दुःख मिलता है।।३३।।

हे विप्र ! पुण्य कर्म से मनुष्य को सुख का अनुभव होता है। यह सुन्दर युवती के अधररूप सुधा के पान से उत्पन्न होता है और स्वर्ग के समान है।।३४।।

हे विप्र ! पाप के कार्य से दुःख का ही अनुभव होता है। इसलिये तुम धन्य हो, जिसके आगे मैं स्वयं खड़ी हूं।।३५।।

उत्फालक ने कहा-

इस प्रकार के उस शूद्रा के कथन को सुन कर ब्राह्मण विस्मित हो गया।स्मित से शोभित वह हंस कर उस शूद्रा से बोला।।३६।।

ब्राह्मण ने कहा-

हे शूद्रे ! तुमने सत्य कहा है। परन्तु मेरे वचन को सुनो। हे कमल के समान सुन्दर आंखों वाली ! मैं तुम्हारे लिये योग्य पति नहीं हूं।।३७।।

तुम तो साक्षात् मेनका के समान रूपवती हो और मैं रूप से रहित दुर्बल ब्राह्मण मुनि हूं।।३८।।

तस्मात्त्वमन्यभर्त्तारमन्वेषय समानकम्।
येन साकं मेनकेव देवेन विहरिष्यसि।।३९।।

उत्फालक उवाच-

इत्युक्त्वा वचनं विप्रो ययौ केदारमण्डले।
साऽपि खिन्ना प्ररुदन्ती वचसा तस्य भूमिप।।४०।।

आययौ तीर्थके पुण्ये तपस्तप्तुं हिमालये।
कोलस्य शिरसोऽधस्ताद् गङ्गातीरे दृढासना।।४१।।

अहं मेनकया तुल्या स्यामिति प्रेत्य सुन्दरी।
तस्थौ दिनाष्टकं तत्र सस्नौ सा विधिपूर्वकम्।।४२।।

ततो दिनाष्टकं स्नात्वा ययौ देशे स्वके घरे।
कालेन मरणं तस्या बभूव नृपनन्दन।।४३।।

कस्यचित्त्वथ राज्ञश्च गृहे कन्या बभूव ह।
राज्ञे ददौ महाराज तां वै त्रैलोक्यसुन्दरीम्।।४४।।

पट्टराज्ञी बभूवाऽसौ प्राप्य पुत्रं महारथम्।
समा मेनकया नाम्ना मेनकेव बभूव ह।।४५।।

कृत्वा राज्यादिभोगांश्च तपः कर्त्तुं समाययौ।
अस्मिन्नेव स्थले रम्ये पूर्ववत्तपसि स्थिता।।४६।।

दध्यावेकाग्रमनसा शिवं भक्तिसमन्विता।
अथ कालेन महता प्रसन्नोऽभूत्सदाशिवः।।४७।।

नदीं तां कृतवान्पुण्यां मेनकां सर्वकामदाम्।
स्वयं च न्यवसत्तत्र नाम्ना वै मेनकेश्वरः।।४८।।

यस्य दर्शनमात्रेण नश्यन्ते पापराशयः।
गुहायां हि नदीतीरे वर्त्तते भक्तवत्सलः।।४९।।

मेनकायां नरः स्नात्वा सङ्गमे शिवसन्निधौ।
यं यं कामयते कामं तं तं प्राप्नोति मानवः।।५०।।

तस्माद्वै क्रोशखण्डे हि देवतीर्थं च वर्त्तते।
यत्र भुक्कुण्डनाम्ना वै स्तुतो देवः सदाशिवः।।५१।।

इसलिये तुम अपने समान अन्य पति की खोज करो, जिसके साथ तुम उसी प्रकार विहार करोगी, जिस प्रकार देवता मेनका के साथ विहार करते हैं।।३९।।

उत्फालक के कहा-

इस प्रकार कह कर वह ब्राह्मण केदारमण्डल में चला गया। हे राजन् ! वह भी उसके वचनों से खिन्न होकर रोने लगी।।४०।।

वह पुण्य हिमालय के तीर्थ में तप करने के लिये आई और कोलासुर के सिर के नीचे के हिस्से में गङ्गा के तट पर दृढ आसन लगा कर बैठ गई।।४१।।

मैं मरने के अनन्तर मेनका के समान सुन्दरी हो जाऊं, इस प्रकार वह वहां आठ दिन तक तप में स्थित रही और विधिपूर्वक स्नान करती रही।।४२।।

हे नृपनन्दन ! तदनन्तर आठ दिन स्नान करके वह अपने देश में चली गई। समय पाकर उसकी मृत्यु हो गई।।४३।।

उसका किसी राजा के घर में कन्या के रूप में जन्म हुआ। हे महाराज ! राजा ने उस त्रैलोक्यसुन्दरी कन्या को किसी राजा के लिये दे दिया।।४४।।

वह पटरानी हो गई और उसको महारथी पुत्र हुआ। मेनका के समान रूपवती उसका नाम भी मेनका हुआ।।४५।।

वह राज्य आदि भोगों का भोग करके तपस्या करने के लिये इसी रमणीय स्थान पर आई और पहले के समान तपस्या में स्थित हो गई।।४६।।

भक्ति से युक्त होकर वह एकाग्र मन से शिव का ध्यान करने लगी। तदनन्तर बहुत समय व्यतीत होने पर सदाशिव उससे प्रसन्न हो गये।।४७।।

उन्होंने उसको सब कामनाओं को पूरा करने वाली मेनका नाम की नदी बना दिया और वे स्वयं वहां मेनकेश्वर नाम से निवास करने लगे।।४८।।

उनके दर्शनमात्र से पापों की राशियां नष्ट हो जाती हैं। वे भक्तवत्सल नदी के किनारे गुफा में रहते हैं।।४९।।

शिव के समीप संगम में मेनका नदी में स्नान करके मनुष्य जिस-जिस वस्तु की कामना करता है, उस-उस वस्तु को प्राप्त करता है।।५०।।

उस मेनकेश्वर से एक कोस की दूरी पर देवतीर्थ है। यहां भुक्कुण्ड नाम के सदाशिव देव की स्तुति की गई थी।।५१।।

आविर्बभूव भगवानरूपो भक्तवत्सलः।
तत्रैव स्थापयामास निजरूपं वृषध्वजः।।५२।।

ततोऽवधि महाराज भुक्कुण्डेश्वरतां गतः।
धारास्तिस्रस्तत्र सन्ति सूर्यचन्द्राग्निकाः शुभाः।।५३।।

भुक्कुण्डेश्वरदक्षे तु सूर्यधारा स्मृता बुधैः।
ततो वै वामभागे तु शरविक्षेपमात्रके।
चन्द्रधारा समाख्याता सर्वपापप्रणाशिनी।।५४।।

ततोऽपि शरमाने हि वह्निधारा स्मृता बुधैः।
गङ्गायाः सङ्गमे देव प्राप्नुवन्ति नरेश्वर।।५५।।

तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या भवप्रियतरो भवेत्।।५६।।

ततो गङ्गोत्तरे तीरे विख्याता यत्र सुन्दरी।
श्यामलेति समाख्याता कन्या कोलासुरस्य सा।।५७।।

मृते पितरि दुःखार्त्ता तपस्तेपे सुदुष्करम्।
शोकेनाविष्टहृदया वैराग्याविष्टमानसा।।५८।।

शिवं च शरणं प्राप्ता स्थिता गजशिलोच्चये।
कतिचित्त्वथ वर्षाणि व्यतीयुर्नृपनायक।
निराहारस्थितायाश्च ध्यायन्त्याः शिवमुत्तमम्।।५९।।

अथ तस्यां स्थितायां हि भगवान्भूतभावनः।
आविर्बभूवं तस्याश्च ह्यग्रे वै वृषवाहनः।।६०।।

उवाच वचनं तां हि मधुरं दीनवत्सलः।।६१।।

शिव उवाच-

तावद् भव नदी रम्या सर्वर्षिगणसेविता।
अन्ते प्राप्स्यसि मत्स्थानं देवैरपि सुदुर्लभम्।।६२।।

भवत्यां ये महाभागाः स्नास्यन्ति भक्तिसंयुताः।
ते वै मम पुरे वासं प्राप्स्यन्ति श्यामले शुभे।।६३।।

ऋषिरुवाच-

इत्युक्त्वा वचनं देवीं विरराम महाद्युतिः।
साऽपि कोलासुरभवा जगाद वचनं शिवम्।।६४।।

अरूप रूप भक्तवत्सल भगवान् यहां आविर्भूत हुये थे। वृषभध्वज शिव ने वहीं अपने रूप को स्थापित किया था।।५२।।

हे महाराज ! तबसे लेकर वे भुक्कुण्डेश्वर हो गये। वहां सूर्य, चन्द्र और अग्नि नाम की तीन शुभ धारायें बहती हैं।।५३।।

विद्वान् लोग बताते हैं कि भुक्कुण्डेश्वर के दाहिने भाग में सूर्यधारा है। तदनन्तर वाम भाग में एक शरविक्षेप दूर सब पापों का विनाश करने वाली चन्द्रधारा कही गई है।।५४।।

उससे भी एक शरविक्षेप दूर विद्वान् लोग अग्निधारा को बताते हैं। हे देव राजन्! उनका गङ्गा में संगम होता है।।५५।।

वहां भक्तिभाव से स्नान करके मनुष्य शिव का अत्यधिक प्रिय हो जाता है।।५६।।

तदनन्तर गङ्गा के उत्तरी तट पर श्यामला नाम से प्रसिद्ध कोलासुर की सुन्दरी कन्या रहती थी।।५७।।

पिता के मरने पर दुःख से पीडित, शोक से भरे हृदय वाली और वैराग्य से आविष्ट हृदय वाली वह सुदुष्कर तप करने लगी।।५८।।

शिव की शरण में जाकर वह ऊंची गजशिला पर स्थित हो गई। हे नृपनायक! निराहार रह कर, उत्तम शिव का ध्यान करते हुये उसको कितने ही वर्ष व्यतीत हो गये।।५९।।

इस प्रकार जबकि वह शिव के ध्यान में स्थित थी, भगवान् भूतभावन और वृषवाहन शिव उसके समक्ष आविर्भूत हुये।।६०।।

उन दीनवत्सल शिव ने उस श्यामला से यह वचन कहा।।६१।।

शिव ने कहा-

तो तुम सब ऋषियों से सेवित रमणीय नदी हो जाओ। अन्त में तुम देवताओं को दुर्लभ मेरे स्थान को प्राप्त करोगी।।६२।।

हे शुभे श्यामले ! भक्ति से युक्त होकर जो महाभाग तुम्हारे में स्नान करेंगे, वे भी मेरे शिवलोक में निवास को प्राप्त करेंगे।।६३।।

ऋषि उत्फालंक ने कहा-

उस श्यामला देवी से इस प्रकार वचन कह कर महातेजस्वी शिव चुप हो गये। कोलासुर की पुत्री उस श्यामला ने भी शिव से यह वचन कहा।।६४।।

श्यामलोवाच-

भगवन्सर्वधर्मज्ञ प्रसन्नो यदि मे प्रभो।
अहं स्त्रीयोनिसंप्राप्ता पुरुषः स्यां महेश्वर।।६५।।

हतो मम पिता येन वध्यो भवतु मत्करात्।
त्वदीयचरणाम्भोजे निवासोऽस्तु सदा मम।।६६।।

शिव उवाच-

भविष्यसि कदाचिद्धि पुरुषोऽपि न संशयः।
कारणैर्येन केनाऽपि जेष्यसे पितृहन्नृपम्।।६७।।

ऋषिरुवाच-

इति दत्त्वा वरं देवस्तत्रैवाऽन्तरधत्त सः।
साऽपि कोलासुरभवा नदी वै समजायत।।६८।।

पुनः कदाचिद्राजा तु ममार च स्वकर्मतः।
बभूव ब्राह्मणः शान्तस्सर्वशास्त्रविशारदः।।६९।।

साऽपि राक्षसकन्या हि बभूव पुरुषः पुनः।
योनौ मृगेन्द्रजातीनां नित्यं मांसपरायणः।।७०।।

स कदाचिद्वने विप्रो जगाम कर्मपाशगः।
आनेतु समिधो दर्भान्सर्वलोकभयङ्करे।।७१।।

उत्थाय तं महासिंहो निजगाल वनान्तरे।
सिंहोऽपि ब्राह्मणश्चाऽपि गतौ तौ यममन्दिरे।।७२।।

राजोवाच-

केन वै कारणेनाऽथ हतो भक्तो महामतिः।
तपस्विज्ञानिनां श्रेष्ठो बभूवोभयजन्मनि।।७३।।

भक्षयित्वा च तं विप्रं मृतोऽसौ केन हेतुना।
एतन्मे संशयं छिन्धि भक्तोऽस्मि तव सुव्रत।।७४।।

ऋषिरुवाच-

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि य उक्तः संशयस्त्वया।
पूर्वे वयसि राजा तु सत्यसन्धो महामते।
बभूव मृगयासक्तो मृगमारणतत्परः।।७५।।

श्यामला ने कहा-

सब धर्मों को जानने वाले हे प्रभो महेश्वर ! यदि आप मुझसे प्रसन्न हैं, तो स्त्री की योनि को प्राप्त मैं पुरुष हो जाऊं।।६५।।

जिसने मेरे पिता का वध किया है, वह मेरे हाथ से मारा जावे। तुम्हारे चरणरूपी कमल में मेरा सदा निवास होवे।।६६।।

शिव ने कहा-

कभी तुम पुरुष भी बनोगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है। तुम जिस किसी भी कारण से अपने पिता को मारने वाले राजा को जीतोगी।।६७।।

ऋषि ने कहा-

इस प्रकार वर देकर वे महेश्वर देव वहीं अन्तर्धान हो गये। वह कोलासुर की पुत्री भी नदी हो गई।।६८।।

पुनः वह राजा सत्यसन्ध भी अपने कर्मों से मर गया। वह सब शास्त्रों में विशारद शान्त ब्राह्मण हुआ।।६९।।

वह राक्षस कोलासुर की कन्या भी सिंह जाति की योनि में नित्य मांस का भक्षण करती हुई पुरुष हो गई।।७०।।

कर्म के पाश में बंधा हुआ वह ब्राह्मण किसी समय सब लोगों के लिये भयानक उस वन में समिधायें लाने के लिये गया।।७१।।

उस महान् सिंह ने उस ब्राह्मण को वन में निगल लिया। तदनन्तर वह ब्राह्मण और सिंह यमलोक में चले गये।।७२।।

राजा धर्मनेत्र ने कहा-

दोनों जन्मों में तपस्वियों और ज्ञानियों में श्रेष्ठ वह महामति भक्त किस कारण से मारा गया।।७३।'

उस ब्राह्मण को खाकर वह सिंह भी किस कारण से मर गया। हे सुव्रत ! मेरे इस सन्देह को काट दो। मैं तुम्हारा भक्त हूं।।७४।।

ऋषि ने कहा-

हे राजन् ! जो संशय की बात तुमने कही है, मैं उसको बताऊंगा। हे महामते ! वह राजा सत्यसन्ध यौवन की आयु में मृगया में आसक्त था और मृगों को मारने में तत्पर रहता था।।७५।।

एकस्मिन्समये राजा मन्त्रिभिः परिवारितः।
मृगयायै गतोऽटव्यां धनुर्बाणधरः प्रभुः।।७६।।

तेन तस्मिन्दिने राज्ञा प्राप्तो नैकोऽपि वै मृगः।
सङ्क्षुब्धं तेन तत्सर्वं वनं मृगयाविवर्जितम्।।७७।।

तस्याऽन्वेषयतो राज्ञः सायं वै समजायत।
अथ राजा सत्यसन्धो वनाद्वै सन्न्यवर्त्तत।।७८।।

खिन्नोऽतिविमना भूत्वा सरस्तावद्ददर्श सः।
हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम्।।७९।।

जुष्टं पक्षिगणैर्भूप नानावृक्षसमन्वितम्।
कमलैरुत्पलैश्चाऽपि शतपत्रैर्महालिभिः।।८०।।

एतादृशं सरो दृष्ट्वा राजा तत्र जगाम ह।
यावत्तत्र गतो राजाऽऽजगाम कुहरान्मृगः।।८१।।

मृग्या च सहितो भूप सुन्दराङ्गोऽतिशोभनः।
राजा तु तं मृगं दृष्ट्वा धनुः सज्यं चकार ह।।८२।।

बाणं सन्धाय बाणासे संससर्ज मृगोपरि।
बाणो राज्ञो गतस्तत्र मृगपृष्ठे विवेश ह।।८३।।

मृगो मानुषया वाचा निजगाद नृपं तदा।।८४।।

मृग उवाच-

धिक्त्वां नृप प्राणिहन्तर्गतिः का ते भविष्यति।
यतो व्याघ्रभयान्मां हि मारयामास दुष्टक।।८५।।

तेन त्वामपि व्याघ्रो हि हनिष्यति दुरासदः।
मया कस्याऽप्यपकृतन्नो क्वचित्तृणचारिणा।।८६।।

ऋषिरुवाच-

इति श्रुत्वा निगदितं विस्मितोऽभून्नराधिपः।
उवाच वचनं त्रस्तस्तस्य शापान्नराधिपः।।८७।।

एक समय धनुष-बाण को धारण करने वाला वह प्रभु राजा मन्त्रियों से घिरा हुआ शिकार खेलने के लिये वन में गया।।७६।।

उस दिन उस राजा ने एक भी मृग नहीं पाया। उसने शिकार से रहित होकर सारे वन को क्षुब्ध कर दिया।।७७।।

मृग का अन्वेषण करते हुये राजा को सन्ध्या हो गई। तदनन्तर वह राजा सत्यसन्ध वन से लौटने लगा।।७८।।

खिन्न और अन्यमनस्क उसने एक जलाशय को देखा। वह जलाशय हंसों और कारण्डवों से भरा हुआ था और चक्रवाकों से सुशोभित था।।७९।।

हे राजन् ! वह जलाशय पक्षियों से सेवित था। उसके किनारे विविध वृक्ष थे। वह कमलों, उत्पलों, शतपत्रों और बड़े भ्रमरों से शोभित था।।८०।।

इस प्रकार के जलाशय को देख कर राजा वहां गया। जब वह वहां गया तो एक खोह से मृग आ निकला।।८१।।

हे राजन् ! वह मृगी के साथ था, सुन्दर अङ्गों वाला बहुत सुन्दर था। राजा ने उस मृग को देख कर धनुष पर डोरी चढा ली।।८२।।

धनुष पर बाण चढा कर उसने मृग के ऊपर बाण को छोड़ दिया। बाण वहां जाकर मृग की पीठ में प्रविष्ट हो गया।।८३।।

तब मृग ने मनुष्य की वाणी में राजा से कहा।।८४।।

मृग ने कहा-

प्राणों का नाश करने वाले हे राजन् ! तुमको धिक्कार है। तुम्हारी कौनसी गति होगी, जो कि हे दुष्ट ! बाघ के भय से डरे तुमने मुझ को मारा है।।८५।।

इसलिये दुष्प्राप्य बलशाली बाघ भी निश्चय से तुमको मारेगा। घास चरने वाले मैंने किसी का भी अपकार नहीं किया है।।८६।।

ऋषि ने कहा-

इस प्रकार उस मृग के कथन को सुन कर राजा विस्मित हो गया। उसके शाप से डरे हुये राजा ने यह वचन कहा।।८७।।

राजोवाच-

कस्त्वं मृगवरो भूत्वा वने तृणचरः कथम्।
अस्माकं मृगयायां हि हिंसा दोषाय नो किल।।८८।।

किमर्थं शापितो राजा मृगयासक्तमानसः।
त्वमेव हि मया प्राप्तो मृगोऽस्मिन्दिवसे गते।।८९।।

मृग उवाच-

अहं मुनिर्वेदवादी ब्राह्मणोऽस्मि नराधिप।
विहर्त्तुं मृगयोनौ हि ममाभून्मन उत्तमम्।।९०।।

राजोवाच-

मया त्वं मृगबुद्ध्या हि मारितोऽसि न संशयः।
तत्क्षमस्व मुनिश्रेष्ठ दयावन्तो भवादृशाः।।९१।।

ऋषिरुवाच-

इत्युक्त्वा सहसा राजा ननाम चरणौ मुनेः।
तुष्टः प्रोवाच मृगको राजानं भक्तिसंयुतम्।।९२।।

मृग उवाच-

सिंहस्त्वां मामकाच्छापाद्धनिष्यत्यन्यजन्मनि।
सोऽपि राजन्हि सहसा मरिष्यति न संशयः।।९३।।

ऋषिरुवाच-

देहं त्यक्त्वा मुनिवरो जगाम गतिमुत्तमाम्।
सोऽपि राजा महाभाग आजगाम गृहे पुनः।।९४।।

अनेन कारणेनेश हतः सिंहेन भूमिपः।
शिवस्य वरदानाच्च सिंहोऽभूच्छ्यामला तदा।।९५।।

सर्वाभिश्च कलाभिश्च सा बभूव सरिद्वरा।
इति ते कथितं सर्वं यत्पृष्टोऽहं त्वया नृप।।९६।।

गङ्गायाः संगमो यत्र तत्तीर्थं शिवदायकम्।
शिवप्रयागविख्यातं स्नानात्सर्वफलप्रदम्।।९७।।

श्यामलेशो महादेवो गङ्गामध्ये हि वर्त्तते।
शिवरात्रौ महादेवो दृश्यते पुण्यकर्तृभिः।।९८।।

राजा ने कहा-

तुम कौन हो ? मृगों में श्रेष्ठ होकर वन में घास को कैसे चरते हो ? हम राजाओं के लिये शिकार खेलने में हिंसा करना निश्चय से दोष नहीं है।।८८।।

मृगया में आसक्त मन वाले मुझ राजा को तुमने किसलिये शाप दिया है ? मैंने सारे दिन के बीत जाने पर तुम मृग को ही पाया है।।८९।।

मृग ने कहा-

हे राजन् ! मैं वेद का अध्ययन करने वाला ब्राह्मण मुनि हूं। मेरा उत्तम मन मृग की योनि में विहार करने के लिये हुआ।।९०।।

राजा ने कहा-

हे मुनिश्रेष्ठ ! मैंने तो तुमको मृग के विचार से मारा है, इसमें सन्देह नहीं है। तो क्षमा करो। आप जैसे मुनि दयावान् होते हैं।।९१।।

ऋषि ने कहा-

इस प्रकार कह कर सहसा राजा ने मुनि के चरणों में प्रणाम किया। प्रसन्न होकर मृग ने भक्ति से युक्त राजा से कहा।।९२।।

मृग ने कहा-

मेरे शाप से सिंह तुमको अन्य जन्म में मारेगा। वह सिंह भी सहसा मर जायगा, इसमें सन्देह नहीं है।।९३।।

ऋषि ने कहा-

वह मुनिश्रेष्ठ शरीर को छोड़ कर उत्तम गति को प्राप्त हुआ। हे महाभाग ! राजा भी अपने घर को आ गया।।९४।।

हे राजन् ! इस कारण से वह राजा सिंह द्वारा मारा गया। उस समय शिव के वरदान से वह श्यामला भी सिंह हो गई थी।।९५।।

वह सभी कलाओं से श्रेष्ठ नदी हुई। हे राजन् ! जो तुमने पूछा था, वह सब मैंने बता दिया है।।९६।।

जहां उसका गड्गा में संगम होता है, वह शिव को प्रदान करने वाला तीर्थ है। उसका नाम शिवप्रयाग प्रसिद्ध है। उसमें स्नान करने से सब फल प्राप्त होते हैं।।९७।।

गड्गा के मध्य में वे श्यामलेश विद्यमान हैं। वे महादेव शिवरात्रि में पुण्य करने वालों को दिखाई देते हैं।।९८।।

ततो वै क्रोशखण्डे हि धारा गजवती किल।
गजाचलात्समायाति परमैश्वर्यदायिनी।।९९।।

ततः क्रोशार्द्धके भूप गङ्गाया दक्षिणे तटे।
समायाति सरिच्छ्रेष्ठा नाम्ना वै पुष्पदन्तिका।।१००।।

यस्याः जलं समभ्युक्ष्य शीर्षे भक्तिसमन्वितः।
प्रयागे मासमात्रं तु स्नात्वा राजा भवेन्नरः।।१०१।।

ततोऽपि शरविक्षेपे गङ्गातीरे शिला शुभा।
नाम्ना भानुमती ख्याता स्पृष्टा सौन्दर्यदायिनी।।१०२।।

याऽसौ भानुमती पूर्वं राजकन्या बभूव ह।।१०३।।

अस्मिन्नेव स्थले रम्ये मत्स्याक्षो नाम वै द्विजः।
तपश्चकार परमं भावयन्मनसा रविम्।।१०४।।

सूर्यकुण्डे सदा स्नानं प्रचकार महामतिः।
शिष्यैश्च बहुभिर्युक्त ऊर्द्ध्वं क्रोशार्द्धके द्विजः।।१०५।।

वसति स्म महीपालाऽध्यायपयन्ब्रह्म ब्राह्मणान्।
एकदा स तु मत्स्याक्षः स्नानाय कृतमानसः।
तीरे ह्यलनन्दाया आययौ शिष्यसंयुतः।।१०६।।

यावत्तत्र समायाति तावद् भानुमतीं नृप।
सखीभिः सवयस्काभिर्वेष्टितां यौवनोन्मदाम्।।१०७।।

कुचकुङ्कुमसंरक्तसमीपजललोहिताम्।
ददर्श हृद्यसर्वाङ्गीं कामस्यैवाऽपरां रतिम्।।१०८।।

तां दृष्ट्वा सहसा विप्रस्तस्थौ दूरे महामतिः।
तस्याश्चिक्रीडमानाया दिनं सर्वं क्षयं गतम्।।१०९।।

दृष्ट्वाऽपि तं द्विजवरमुत्तस्थुर्न विमोहिताः।
हास्यं चक्रुश्च ताः सर्वा दृष्ट्वा दृष्ट्वा पुनः पुनः।।११०।।

ततः सर्वैर्हि मत्स्याक्षो तां दृष्ट्वा स्थावरोपमाम्।
शशाप क्रोधसंविष्टः स च रक्तातिलोचनः।।१११।।

उससे एक कोस की दूरी पर गजवती नाम की धारा है। वह परम ऐश्वर्य को देने वाली धारा गजाचल से आती है।।९९।।

हे राजन् ! उससे आधे कोस की दूरी पर गङ्गा के दक्षिणी तट पर पुष्पदन्तिका नाम की श्रेष्ठ नदी आती है।।१००।।

भक्ति से युक्त होकर जो मनुष्य इसके जल के छींटे सिर पर डालता है और शिवप्रयाग में एक महीने तक स्नान करता है, वह राजा हो जाता है।।१०१।।

उससे एक शरविक्षेप दूर गङ्गा के तट पर भानुमती नाम की शुभ शिला है, जो स्पर्श करने पर सौन्दर्य को प्रदान करती है।।१०२।।

वह भानुमती शिला पूर्वजन्म में राजकन्या थी।।१०३।।

इसी रमणीय स्थल पर मत्स्याक्ष नाम के ब्राह्मण ने मन से सूर्य का ध्यान करते हुये परम तप किया था।।१०४।।

वह महामति ब्राह्मण सदा बहुत से शिष्यों के साथ आधे कोस ऊपर सूर्यकुण्ड में स्नान करता था।।१०५।।

हे राजन् ! वह ब्राह्मण ब्राह्मणों को पढाता हुआ वहां निवास करता था। एक बार वह मत्स्याक्ष नामक ब्राह्मण स्नान करने के लिये मन बनाकर शिष्यों सहित अलकनन्दा के तट पर आया।।१०६।।

हे राजन् ! जब वह वहां आया, तभी उसने समान आयुवाली सखियों से घिरी हुई और यौवन के मद से भरी हुई भानुमती को......।।१०७।।

जिसके स्तनों पर लगे हुये केसर ने समीप के जल को लाल कर दिया था और जो सुन्दर अङ्गों वाली और मानों कामदेव की दूसरी रति थी, देखा।।१०८।।

उसको देख कर वह महामति ब्राह्मण दूर खड़ा हो गया। उस भानुमती को क्रीडा करते हुये सारा दिन बीत गया।।१०९।।

उस श्रेष्ठ ब्राह्मण को देख कर भी वे विमोहित हुई, उठी नहीं। वे सब सखियां उसको पुनः पुनः देख कर हंसी करने लगी।।११०।।

तब पाषाण के सदृश उसको देख कर क्रोध से भरे हुये और अत्यन्त लाल नेत्रों वाले मत्स्याक्ष ने शाप दिया।।१११।।

मत्स्याक्ष उवाच-

यस्मात्त्वं राजकन्ये हि स्थिता पाषाणवज्जले।
शिला भूत्वा त्वमत्रैव स्थिता स्याः कतिचित्समाः।।११२।।

ऋषिरुवाच-

इति श्रुत्वा वचो विप्र भीताः सर्वाः समाययुः।
पादयोस्तस्य विप्रस्य निपेतुश्चकितास्तदा।।११३।।

एवं प्रसाद्यमानस्तु मत्स्याक्षो नाम वै द्विजः।
उवाच वचनं प्रीत्या कन्यां भानुमतीं पुनः।।११४।।

ब्राह्मण उवाच-

ममाऽमोघाच्च शापाद्वै भविष्यस्येव सुन्दरि।
शिला पुण्यतमा भद्रे स्पृष्टा सौन्दर्यदायिनी।।११५।।

शापमोक्षोऽपि भविता कदाचिच्चरमे युगे।
वृन्दानाथ इति ख्यातस्तत्पाददर्शनात्किल।।११६।।

ऋषि उवाच-

इत्याभाष्य मुनीशोऽसौ स्नात्वा निजगृहं गतः।
साऽपि भानुमती तत्र शिलारूपा बभूव ह।।११७।।

एवं तस्याश्च विभव उत्पत्तिश्च मया तव।
कथिता नृपते धर्मनेत्र शत्रुविमर्दन।।११८।।

सूर्यकुण्डे नरः स्नात्वा कुष्ठरोगैः प्रमुच्यते।
लभते च तथा स्थानं सूर्यस्याऽतिसुखप्रदम्।।११९।।

अथ तस्मादपि स्थानादलकनन्दातटे शुभे।
क्रोशमात्रे नृदेवी च सङ्गमे यत्र तीर्थके।
इन्द्रप्रयाग इति वै ख्यातो मुक्त्यै सुचेतसाम्।।१२०।।

यत्र तीर्थे नृदेवी हि तपश्चक्रे सुदारुणम्।
बभूव च नदी पुण्या इन्द्रलोकप्रदायिनी।।१२१।।

यत्र चेन्द्रस्तपस्तेपे भ्रष्टो लक्ष्म्या सुदारुणम्।
सम्प्राप महतीं लक्ष्मीं यस्य तीर्थस्य सेवनात्।।१२२।।

मत्स्याक्ष ने कहा-

हे राजकन्ये ! क्योंकि तुम यहां जल में पाषाण के समान खड़ी हो, अत: कुछ वर्षो तक तुम यहां ही शिला बन कर स्थित रहोगी।।११२।।

ऋषि ने कहा-

हे विप्र ! इस प्रकार उस मत्स्याक्ष के वचन को सुन कर डरी हुई वे सब आईं और चकित होकर उस ब्राह्मण के पैरों पर गिर पड़ीं।।११३।।

इस प्रकार प्रसन्न किये जाते हुये उस ब्राह्मण मत्स्याक्ष ने पुन: भानुमती राजकन्या से प्रसन्नता से यह वचन कहा।।११४।।

ब्राह्मण ने कहा-

हे भद्रे सुन्दरि ! मेरे अमोघ शाप से तुम निश्चय से पुण्यतम शिला बनोगी ही, परन्तु स्पर्श करने पर सौन्दर्य प्रदान करने वाली होओगी।।११५।।

वृन्दानाथ नाम से प्रसिद्ध ऋषि के चरणों के दर्शन से कलियुग में निश्चय से तुम्हारा शाप से छुटकारा होगा।।११६।।

ऋषि ने कहा-

इतना कह कर वह मुनीश्वर मत्स्याक्ष स्नान करके अपने घर को चला गया। वह भानुमती भी वहां शिलारूप हो गई।।११७।।

शुत्रओं का मर्दन करने वाले हे राजन् धर्मनेत्र ! इस प्रकार मैंने उस शिला के सामर्थ्य और उत्पत्ति के वृत्तान्त को तुमसे कह दिया है।।११८।।

सूर्यकुण्ड में स्नान करके मनुष्य कुष्ठ रोगों से मुक्त हो जाता है और सूर्य के अति सुखप्रद स्थान को प्राप्त करता है।।११९।।

तदनन्तर उस स्थान से एक कोस दूर अलकनन्दा के शुभ तट पर नृदेवी है, जहां कि संगम पर तीर्थ है। वह संगम इन्द्रप्रयाग नाम से प्रसिद्ध है। वहां स्नान करने से शुद्ध मन वालों को मुक्ति प्राप्त होती है।।१२०।।

इस तीर्थ में नृदेवी ने कठोर तप किया था। और वह इन्द्रलोक को प्रदान करने वाली नदी बन गई थी।।१२१।।

यहा अपनी राजलक्ष्मी से भ्रष्ट इन्द्र ने कठोर तप किया था। इस तीर्थ के सेवन से उसने पुन: महती लक्ष्मी को प्राप्त किया।।१२२।।

तदादि तीर्थराजस्य नामाऽभूत्सर्वपापनुत्।
ततो द्विशरविक्षेपे नदी दृषद्वती पुनः।।१२३।।

दृषद्वतः पर्वताद्वै समायाता ततः स्मृता।
स्नानं कृत्वा च तत्राऽपि लभते च वराङ्गनाः।।१२४।।

यदि स्त्री स्नाति सत्पुत्रं कन्या प्राप्नोति सत्पतिम्।
ततोऽपि क्रोशखण्डार्द्धे ख्याता नाम्ना हि कण्डिका।।१२५।।

सङ्गमे स्नानमात्रेण ददाति शिवमन्दिरम्।।१२६।।

तदर्द्धे पर्वते रम्ये गव्यूतौ नृपनन्दन।
गुहामध्ये महादेवी कण्डिकेत्यमिधा मता।।१२७।।

कण्डिकापूजनान्मर्त्यो बलिदानसमर्पणात्।
यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोत्यसंशयम्।।१२८।।

गङ्गाया उत्तरे तीरे समायाति नदी वरा।
शक्तिजेति समाख्याता देवीचरणनिर्गता।।१२९।।

सङ्गमाच्छरविक्षेपे शक्तिजायाः परे तटे।
गणेश्वरो महादेवः सर्वेषां मुक्तिदायकः।।१३०।।

समाराध्य गणा यत्र देवदेवमुमापतिम्।
प्राप्नुयुः परमैश्वर्यं यदन्यैर्भुवि दुर्लभम्।।१३१।।

शक्तिजायां सदा स्नाति शिवपूजारतो भवेत्।
गणो भवेच्छिवाग्रे तु नन्दिभृङ्ग्यादिकस्तथा।।१३२।।

ततोऽपि क्रोशखण्डार्द्धे भवानीस्थानमद्भुतम्।
यत्र देवास्सगन्धर्वा वर्त्तन्ते नित्यमेव हि।।१३३।।

तत्रैका परमा देवी श्मशानवासिनी शुभा।
प्रेतानां स्वामिनी सा तु प्रेतमुक्तिकरा मता।।१३४।।

अस्मिन्नेव महाक्षेत्रे शीघ्रं सिद्धिप्रदायिनी।
सप्तरात्रं प्रजपति मनुं नाम समन्वितम्।।१३५।।

अजेयमपि राजानं जयेत्स सार्वभौमकम्।
अविद्यो लभते विद्यां निर्धनो धनमाप्नुयात्।।१३६।।

तबसे लेकर उस तीर्थराज का नाम सब पापों को नष्ट करने वाला प्रसिद्ध हुआ। पुनः वहां से दो शरविक्षेप दूर दृषद्वती नदी है।।१२३।।

वह नदी दृषद्वान् पर्वत से आती है, अतः उसका नाम दृषद्वती हुआ। उसमें स्नान करके मनुष्य उत्तम स्त्रियों को प्राप्त करता है।।१२४।।

यदि स्त्री उसमें स्नान करती है तो उत्तम पुत्र को पाती है। कन्या उसमें स्नान करके उत्तम पति को पाती है। उससे भी आधे कोस दूर कण्डिका नाम की नदी है।।१२५।।

उसके संगम में स्नान करने से शिवलोक मिलता है।।१२६।।

हे राजन्! उस स्थान से आधा गव्यूति (एक कोस) दूर रमणीय पर्वत पर गुहा के मध्य में कण्डिका नाम से प्रसिद्ध महादेवी है।।१२७।।

बलि का दान करके कण्डिका का पूजन करने से मनुष्य जिस-जिस कामना का विचार करता है, उस-उसको निस्सन्देह रूप से प्राप्त करता है।।१२८।।

गङ्गा के उत्तरी तट पर देवी के चरणों से निकली शक्तिजा नाम की नदी आती है।।१२९।।

संगम से एक शरविक्षेप दूर शक्तिजा के दूसरे तट पर सबको मुक्ति देने वाले गणेश्वर महादेव हैं।।१३०।।

यहां देवों के देव, उमा के पति शिव की आराधना करके शिव के गणों ने परम ऐश्वर्य को प्राप्त किया था, जो पृथिवी पर अन्य को दुर्लभ है।।१३१।।

शक्तिजा नदी में स्नान करके जो सदा शिव की पूजा में रत रहता है, वह शिव के समक्ष नन्दी-भृङ्गी आदि के समान शिव का गण बन जाता है।।१३२।।

वहां से आधे कोस दूर भवानी का अद्भुत स्थान है, जहां कि गन्धर्वों सहित देवता नित्य निवास करते हैं।।१३३।।

वहां पर श्मशान में निवास करने वाली एक शुभ परमा देवी है, जो प्रेतों की स्वामिनी है और प्रेतों को मुक्ति देने वाली मानी गई है।।१३४।।

वह शीघ्र सिद्धि को देने वाली है। इसी महाक्षेत्र में जो उसके नाम सहित मन्त्र का सात रात्रियों तक जप करता है।।१३५।।

वह अजेय सार्वभौम राजा को भी जीत लेता है। यहां विद्या से रहित विद्या को प्राप्त करता है और धन से रहित धन को प्राप्त करता है।।१३६।।

अपुत्रो लभते पुत्रं राज्यार्थी तत्पदं लभेत् ।।१३७।।

यं यं सञ्चिन्त्य कामं हि करोति शिवपूजनम् ।
निश्चयेनैव भूमीश तं तं प्राप्नोत्यसंशयम् ।।१३८।।

भवान्याः क्षेत्रकं पुण्यं चतुर्दिक्षु तथा स्मृतम् ।
गव्यूतौ पश्चिमे प्रोक्तमुत्तरे च तथा स्मृतम् ।।१३९।।

पूर्वभागे क्रोशमात्रं दक्षिणे सङ्गमावधि ।।१४०।।

एतस्मिन्मण्डले मर्त्यो वसन्यो न ददाति हि ।
नवान्नादि भवेन्मर्त्यो दरिद्रो दुःखपीडितः ।।१४१।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन दातव्यं नव्यवस्तु हि ।
पूर्वं देव्यै तदा मर्त्यः स्वयं भुञ्जीत भूपते ।।१४२।।

अस्या वै पूजनासक्तो नित्यं शिवपरायणः ।
लभते सुतरां देव देवैरपि गतिं पराम् ।।१४३।।

ततोऽपि क्रोशमात्रे हि शङ्खवत्याश्च सङ्गमे ।
शक्तिजायां यत्र देशे स्नात्वा देवीपुरे वसेत् ।।१४४।।

ततोऽप्युत्तरदिग्भागे शक्तिजायाश्च पश्चिमे ।
तीरे क्रोशार्द्धके स्थानं महादेवस्य भूपते ।।१४५।।

यत्र स्थाने महाराजो नहुषो नाम विश्रुतः ।
सोमवंशोद्भवो राजा तपश्चक्रे सुदारुणम् ।।१४६।।

प्राप्तवानिन्द्रराज्यं हि यत्र तप्त्वा तपः परम् ।
तदाद्ययं महादेवो नहुषेश्वरतां गतः ।।१४७।।

राजोवाच–

कथमत्र तपस्तप्तं नहुषेण महात्मना ।
कथमिन्द्रासनं प्राप्तं कथं वै संस्तुतो हरः ।।१४८।।

एतत्सर्वं मुनिश्रेष्ठ कथयस्व प्रसादतः ।
तृप्तिर्मे जायते नैव पायं पायं वचोऽमृतम् ।।१४९।।

पुत्र से रहित पुत्र को और राज्य का इच्छुक राजपद को प्राप्त करता है।।१३७।।

वह जिस जिस कामना का विचार करके शिव का पूजन करता है, हे राजन्! वह निश्चय ही उस कामना को निस्सन्देह प्राप्त करता है।।१३८।।

चारों दिशाओं में भवानी का क्षेत्र है। यह पश्चिम और उत्तर दिशा में एक एक गव्यूति (दो कोस) तक है।।१३९।।

पूर्व दिशा में एक कोस तक और दक्षिण दिशा में संगम तक है।।१४०।।

इस मण्डल में निवास करता हुआ जो मनुष्य नव अन्न आदि का दान नहीं करता, वह दरिद्र रहता है और दुःखों से पीडित होता है।।१४१।।

हे राजन् ! इसलिये मनुष्य को चाहिये कि नई वस्तु का पहले तो दान करे और तब उसका स्वयं उपभोग करे।।१४२।।

जो व्यक्ति शिवपरायण होकर इस देवी की पूजा में आसक्त रहता है, हे देव ! वह देवों को भी दुर्लभ परम गति को प्राप्त करता है।।१४३।।

उससे भी एक कोस की दूरी पर और शंखवती के संगम पर, शक्तिजा नदी के प्रदेश में स्नान करके मनुष्य शिवलोक में निवास करता है।।१४४।।

हे राजन् ! उससे भी उत्तर दिशा में और शक्तिजा नदी के पश्चिम में उस नदी के तट पर महादेव का स्थान है।।१४५।।

इस स्थान पर चन्द्रवंश में उत्पन्न नहुष नाम से प्रसिद्ध महाराज ने कठोर तप किया था।।१४६।।

उसने इस स्थान पर परम तप करके इन्द्र के राज्य को प्राप्त किया था, अतः तबसे लेकर ये महादेव नहुषेश्वर कहलाये।।१४७।।

राजा ने कहा-

इस स्थान पर महात्मा नहुष ने किस प्रकार तपस्या की थी, कैसे इन्द्रासन को पाया था और कैसे शिव की स्तुति की थी ?।।१४८।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! इस बात को कृपा करके कहो। इस वचनरूपी अमृत का पान कर करके मुझको तृप्ति नहीं हो रही।।१४९।।

ऋषिरुवाच-

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि साधु पृष्टं त्वयाऽनघ।
यथा तेन तपस्तप्तं प्रसन्नोऽभूद्यथा शिवः।।१५०।।

पुरा कृतयुगे राजा नहुषोऽभून्महायशाः।
सभायां संस्थितो भूपः शुशुभे मन्त्रिभिः सह।।१५१।।

सुधर्मायां यथा देवः शुशुभे च शचीपतिः।
नानामणिगणानद्धस्वर्णसिंहासने स्थितः।।१५२।।

चामरैर्वीज्यमानश्च श्वेतच्छत्रोपशोभितः।
देवतुल्यैर्मन्त्रिवर्यैर्युक्तो भूमीन्द्रनायकः।।१५३।।

एतस्मिन्समये भूप नारदो मुनिरभ्यगात्।
आयान्तं तं मुनिं दृष्ट्वा ह्युत्तस्थौ च महीपतिः।।१५४।।

पाद्यादिभिश्च सम्पूज्य स्वासने सन्निवेश्य च।
पप्रच्छ सुतरां राजा स्वागतं मुनिसत्तम।।१५५।।

नहुष उवाच-

भो भो मुनिगणश्रेष्ठ कृतार्थोऽस्मि त्वदागमात्।
धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि दर्शनात्ते मुनीश्वर।।१५६।।

कुत आगमनं तेऽद्य वर्त्तते मुनिनायक।
किं कर्त्तव्यं मयेदानीं कार्यं तव यदिच्छसि।।१५७।।

नारद उवाच-

इन्द्रलोकान्महाराज आगतोऽस्म्यत्र भूपते।
दृष्ट्वेन्द्रस्य सभां दिव्यां त्वदीयां द्रष्टुमागतः।।१५८।।

न शोभते महाबाहो यथा सेन्द्रसभा शुभा।
त्वद्योग्यमस्ति तद्राज्यं धरायोग्यो भवान्न हि।।१५९।।

ऋषिरुवाच-

इत्याभाष्य नृपश्रेष्ठं ययौ देवगतिं पुनः।
तत्संश्रुत्यैव सहसा नहुषो मोहितोऽभवत्।।१६०।।

ऋषि ने कहा-

हे निष्पाप राजन् ! तुमने पूछा है, मैं तुमको कहूंगा, जिस प्रकार से कि उस नहुष ने तपस्या की थी और जिस प्रकार से शिव प्रसन्न हुये थे।।१५०।।

पहले सत्ययुग में महायशस्वी राजा नहुष हुये थे। वे राजा नहुष राजसभा में बैठे हुये मन्त्रियों के साथ शोभायमान थे।।१५१।।

वे उसी प्रकार शोभायमान थे, जिस प्रकार देवसभा में इन्द्रदेव शोभायमान होते हैं। वे विविध मणियों से जड़े हुये स्वर्ण-सिंहासन पर स्थित थे।।१५२।।

पृथिवी के राजा उन नहुष पर चंवर डुलाये जा रहे थे और श्वेत छत्र सुशोभित था। वे देवताओं के तुल्य मन्त्रियों से युक्त थे।।१५३।।

हे राजन् ! इसी समय नारद मुनि आ गये। मुनि को आता हुआ देख कर राजा नहुष उठ खड़े हुये।।१५४।।

हे मुनिश्रेष्ठ राजन् ! पाद्य आदि सामग्रियों से उनका सत्कार करके और उनको अपने आसन पर बिठा कर राजा ने बहुत स्वागत किया और पूछा।।१५५।।

नहुष ने कहा-

मुनियों में श्रेष्ठ हे मुनीश्वर ! मैं आपके आगमन से कृतार्थ हो गया हूं। मैं आपके दर्शन से धन्य हूं और कृतकृत्य हूं।।१५६।।

हे मुनियों के नायक ! आज आपका आगमन कहां से हुआ है, मुझे अब क्या करना है, आपका क्या कार्य है और आप क्या चाहते हैं ?।।१५७।।

नारद ने कहा-

हे राजन् महाराज ! मैं इन्द्रलोक से यहां आया हूं। इन्द्र की दिव्य सभा को देख कर तुम्हारी सभा को देखने आया हूं।।१५८।।

हे महाबाहो ! जिस प्रकार इन्द्र की शुभ सभा शोभित होती है, वैसी तुम्हारी नहीं है। उस इन्द्र का राज्य तुम्हारे योग्य है। आप पृथिवी के योग्य नहीं है।।१५९।।

ऋषि ने कहा-

इस प्रकार नृपश्रेष्ठ नहुष से कह कर नारद पुनः देवताओं के स्थान पर चले गये। नारद के उस कथन को सुन कर सहसा नहुष मोहित हो गया।।१६०।।

पुत्रं राज्ये समावेश्य तपस्तप्तुं समाययौ।
अस्मिन्नेव महास्थान इन्द्रराज्याय भूमिप।।१६१।।

षडक्षरेण मन्त्रेण ह्याराध्य शिवमुत्तमम्।
तथा धूपैश्च दीपैश्च नैवेद्यैश्च तथा परैः।।१६२।।

ततः क्रमेण नहुषस्तताप परमं तपः।
शिवमेव सदा ध्यायन्मनसा नाऽन्यगामिना।।१६३।।

एवं तस्य महाभाग तप्यमानस्य भूपतेः।
जातानि स्थावरस्येव स्थितस्य नियतात्मनः।।१६४।।

पञ्चाशद्धि सहस्राणि वर्षाण्यचलचेतसः।
व्यतीयुश्च महाभाग नहुषस्य महात्मनः।।१६५।।

तस्योपरि तु वल्मीक् बभूवाऽमिततेजसः।
एतस्मिन्नन्तरे मेघा ववृषुः सुतरां पुनः।।१६६।।

तन्मुखस्थं च वल्मीकं जलेन क्षालितं तदा।
शुशोभ तन्मुखं देव उदयाद्रौ रविर्यथा।।१६७।।

तदुन्मीलितयोरक्ष्णोस्तेजसा सकलं जगत्।
तापितं वै बभूवाऽथ जग्मुः सर्वे दिवौकसः।।१६८।।

महादेवोऽपि भगवान्वृषस्थो भस्मलेपनः।
व्यालयज्ञोपवीती च चन्द्रार्द्धकृतशेखरः।।१६९।।

स्रवद्रक्तेभचर्माऽसौ नीलकण्ठो गणैर्युतः।
अर्द्धाङ्गन्यस्तगौरीशो रजताद्रिरिवापरः।।१७०।।

तं दृष्ट्वा सहसा राजा समुत्थाय कृताञ्जलिः।
स्तुतिं वै कर्त्तुमारेभे त्रैलोकस्यैकनायकम्।।१७१।।

नहुष उवाच-

धन्योऽस्मि हे नाथ तव प्रसादाद्यन्मांसचक्षुर्भवदङ्घ्रिपद्मकम्।
ब्रह्मादिदेवैः सुतरां महेश दृष्टं न पश्याम्यधुना मनुष्यः।।१७२।।

तव स्तुतौ नाथ महेश योग्यका भवन्ति नो विष्णुपितामहादयः।
अहं कथं वै मनुजेषु दुर्बलः संसारवारांनिधिमग्न ईशे।।१७३।।

हे राजन् ! पुत्र को राज्य सौंप कर वह इन्द्र के राज्य को प्राप्त करने के निमित्त तप करने के लिये इसी महास्थान पर आ गया।।१६१।।

छः अक्षरों वाले मन्त्र से तथा धूप, दीप, नैवेद्य और अन्य श्रेष्ठ पदार्थों से उसने उत्तम शिव की आराधना की।।१६२।।

तदनन्तर नहुष ने क्रमशः परम तप किया। वह सदा शिव का ही ध्यान करता रहा। उसका मन अन्य कहीं नहीं जाता था।।१६३।।

हे महाभाग इस प्रकार वह राजा नहुष तप करता रहा। स्वयं को नियन्त्रित करके इस प्रकार स्थित रहते हुये वह स्थावर के समान हो गया।।१६४।।

हे महाभाग ! इस प्रकार स्थिर मन वाले महात्मा नहुष को तप करते हुये ५० हजार वर्ष व्यतीत हो गये।।१६५।।

अमित तेजस्वी उसके शरीर पर बांबी बन गई। इसी बीच में मेघ पुनः बहुत अधिक बरसे।।१६६।।

तब उसके मुख पर स्थित बांबी को जल ने धो दिया। हे देव ! तब उसका मुख उसी प्रकार शोभित होने लगा, जैसे कि उदय पर्वत पर सूर्य शोभित होता है।।१६७।।

आंखों को खोल देने पर उसके तेज से सारा जगत् संतप्त होने लगा। तब सब देवता महादेव के पास गये।।१६८।।

भगवान् महादेव भी वृष पर बैठ कर आये। उन्होंने भस्म का लेप कर रखा था, सर्प का यज्ञोपवीत पहन रखा था और आधे चन्द्र का शिरोभूषण था।।१६९।।

बहते हुये रक्त से भीगा गजचर्म ओढ रखा था, कण्ठ नीला था, वे गणों से घिरे थे, आधे अंग में पार्वती विरामान थीं और वे मानों दूसरे रजताद्रि थे।।१७०।।

उनको देख कर सहसा राजा हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया। उसने तीनों लोकों के एकमात्र नायक शिव की स्तुति करना प्रारम्भ कर दिया।।१७१।।

नहुष ने कहा-

हे नाथ महेश ! मैं धन्य हो गया हूं, जो तुम्हारी कृपा से ब्रह्मा आदि देवताओं से भी भली प्रकार न देखे जाने वाले भी आपके चरणकमल को मांस-चक्षु मनुष्य होते हुये भी देख रहा हूं १७२।।

हे नाथ महेश ! तुम्हारी स्तुति करने में तो विष्णु, पितामह ब्रह्मा आदि भी योग्य नहीं होते हैं। मनुष्यों में दुर्बल और संसाररूपी सागर में डूबा हुआ मैं किस प्रकार समर्थ हो सकता हूं।।१७३।।

तथाऽपि मे नाथ तव स्तुतौ हि भवेद्धि योग्यत्वमहो महेश।
ब्रह्मादिदेवा अनुमार्गमाणा न प्रापुरन्तं भवतः पुरारे।।१७४।।

सृष्टिं यदा त्वं कुरुषे स्वलीलया सशक्तिको वै भवसि प्रभो त्वम्।
गुणैरतीतोऽपि रजोगुणात्मा ब्रह्मा त्वमेवासि च सृष्टिकर्त्ता।।१७५।।

पुनश्च वै सत्त्वगुणप्रधानो महेश मायागुणसम्प्रविष्टः।
विष्णुस्वरूपो भवसि प्रभो भोः सर्वस्य लोकस्य च पालकस्त्वम्।।१७६।।

यदा तवेच्छा भवति प्रहर्त्तुं तदैव देवासुरदानवादीन्।
तदा तमोदेहगुणप्रविष्टो रुद्रोऽसि कालः कलनात्मकस्त्वम्।।१७७।।

न वेद कश्चिद्भवतो महेश मध्यं न चान्तं न च वै तवादिम्।
त्वयैव सर्वाणि जगन्ति देव व्याप्तानि सेन्द्रासुरमानुषाणि।।१७८।।

यथा जलेषु प्रतिबिम्बभूताः सूर्यस्य बिम्बाः प्रभवन्ति भूमौ।
तथा त्वमेकः किल सर्वभूतो नानाविधस्त्वं भवजीवभूतः।।१७९।।

कृतं न ते देव पदारविन्दसमर्चनं जन्मजरापनुत्तये।
विमोहितेनेह गृहादिषु प्रभो क्षमस्व मे नाथ कृतापराधम्।।१८०।।

हे देव देवेश महेश जन्म यत्राऽपि कुत्राऽपि परं ययाचे।
त्वदीयपादाम्बुजध्यानशक्तिर्भवेन्मम प्राणगतेऽथ काले।।१८१।।

श्रीशिव उवाच-

प्रसन्नोऽस्मि महाराज स्तुत्या च तपसा तव।
वरं वरय यत्ते वै मनसि प्रबभूव हि।।१८२।।

नहुष उवाच-

वरार्हो यद्यहं देव तदा स्यामिन्द्रलोकभाक्।
अनेनैव हि देहेन देवानां हि पुरो वसन्।।१८३।।

सर्वेषां च देवानां मर्त्यानां सुरविद्विषाम्।
शासिता स्यां यथा देव पौलोम्याः पतिरुत्तमः।।१८४।।

श्रीशिव उवाच-

गच्छ गच्छसि देवस्त्वं सदेहो देवलोकके।
दुर्लभं न हि ते किञ्चित्तपसा तव भूपते।।१८५।।

हे नाथ महेश ! तथापि तुम्हारी स्तुति करने में मेरी योग्यता हो सकती है। हे पुर नामक असुर के शत्रु ! ब्रह्मा आदि देवताओं ने भी आपके अन्त को खोज नहीं पाया था। ।१७४।।

हे प्रभो ! जब तुम अपनी लीला से सृष्टि की रचना करते हो, तब शक्ति के साथ होते हो। उस समय तुम गुणों से अतीत होते हुये भी रजोगुणात्मा होते हो और सृष्टि की रचना करने वाले ब्रह्मा तुम ही हो। ।१७५।।

हे महेश ! पुनः सत्त्वगुणप्रधान होकर माया के गुण तुममें प्रवेश करते हैं। हे प्रभो! तब तुम विष्णुस्वरूप होते हो और तुम सब लोक के पालक हो। ।१७६।।

जब तुम्हारी देव, असुर, दानव आदि पर प्रहार करने की इच्छा होती है, तब तुम्हारे अन्दर तमोगुण प्रवेश करता है। तब तुम काल की गणना करने वाले रुद्र होते हो। ।१७७।।

हे महेश ! आपका कोई न तो मध्य् जानता है, न अन्त जानता है और न आदि जानता है। देव ! आपने इन्द्र, असुर और मनुष्यों सहित सारे लोकों को व्याप्त कर रखा है। ।१७८।।

जिस प्रकार से जलों में प्रतिबिम्बित होते हुये सूर्य के अनेक बिम्ब भूमि पर पड़ते हैं, उसी प्रकार निश्चय से तुम एक सर्वभूत होते हुये भी विविध प्रकार से संसार के सम्पूर्ण जीवों के रूप में होते हो। ।१७९।।

हे देव ! मैंने जन्म-जरा (बुढापा) की निवृत्ति के लिये आपके चरण कमल की अर्चना गृह आदि के प्रति विमोहित होकर नहीं की है। हे प्रभो नाथ ! मेरे किये गये अपराध को क्षमा करो। ।१८०।।

हे देवदेवेश महेश ! मेरा जहां कहीं भी जन्म हो, मैं यह याचना करता हूं कि समय पर प्राणों के निकलने पर मेरी ध्यान की शक्ति तुम्हारे चरण-कमल के प्रति होवे। ।१८१।।

श्रीशिव ने कहा-

हे महाराज ! तुम्हारी स्तुति से और तपस्या से मैं प्रसन्न हूं। जो कुछ तुम्हारे मन में है, उस वर को मांग लो। ।१८२।।

नहुष ने कहा-

हे देव ! यदि आप मुझको वर के योग्य समझते हैं तो इसी शरीर से देवताओं के समक्ष रहता हुआ इन्द्रलोक को प्राप्त करूं। ।१८३।।

मैं सभी देवताओं का, मनुष्यों का और असुरों का शासन करने वाला उसी प्रकार होऊं, जिस प्रकार कि इन्द्राणी का उत्तम पति इन्द्र है। ।१८४।।

श्रीशिव ने कहा-

तुम देवता होकर सशरीर देवलोक में जाओ। हे राजन् ! तपस्या से तुमको कुछ भी दुर्लभ नहीं है। ।१८५।।

इदं स्तोत्रं त्वयाऽऽख्यातं पठिष्यन्ति मदालये।
ते वै मत्सदृशा लोके भविष्यन्ति न संशयः।।१८६।।

उत्फालक उवाच-

प्रणिगद्येति भगवांस्तत्रैव स्थितवान्प्रभुः।
नन्दिभृङ्ग्यादिभिर्युक्तो नहुषेश्वरतां गतः।।१८७।।

सोऽपि राजा देवलोके ययौ देवैः स्तुतः प्रभुः।
चामरैर्वीज्यमानश्च नानाछत्रैर्विराजितः।।१८८।।

इन्द्रो बभूव तत्राऽपि यस्य क्षेत्रस्य सेवनात्।
इति ते कथितं भूयो यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽधुना।।१८९।।

अद्याऽपि तत्प्रदेशे हि सिंहव्याघ्रस्वरूपकाः।
समायान्ति गणास्तत्र सेवितु पार्वतीपतिम्।।१९०।।

एको हि कालसर्पो वै तक्षको नाम भूपते।
वर्त्तते तत्प्रदेशे हि सेवते शिवमुत्तमम्।।१९१।।

रुद्राध्यायेन यः कश्चिदभिषेकं करोति च।
तेन वै सुतपस्तप्तं देवैरपि दुरासदम्।।१९२।।

पुत्रार्थी पक्षमेकं तु धनार्थी च तथैव हि।
अभिषेकं तु यः कश्चिद् भक्त्या प्राप्नोत्यसंशयम्।।१९३।।

तदूर्ध्वं नरशार्दूल देवीपीठमुदाहृतम्।
गव्यूतिद्वयविस्तीर्णं पर्वते शुभदायके।।१९४।।

तत्पीठदर्शनादेव महापापैः प्रमुच्यते।
यत्र देवी महेशानी वर्त्तते शिवसंयुता।।१९५।।

तत्पीठस्य तु माहात्म्यं को वा वर्णयितुं क्षमः।
तत्र पीठं महापुण्यं नाम्ना वै भौवनं स्मृतम्।।१९६।।

इति ते कथितान्येव शक्तिजायां नरेश्वर।
तीर्थानि तीर्थवर्याणि स्वर्गमोक्षप्रदानि च।।१९७।।

शक्तिजासङ्गमादूर्ध्वं गङ्गायाः दक्षिणे तटे।
उपेन्द्रजा समाख्याता ह्युपेन्द्रपुरदायिनी।।१९८।।

तुम्हारे द्वारा कहे गये इस स्तोत्र को जो व्यक्ति मेरे मन्दिर में पढेंगे, वे संसार में मेरे सदृश हो जायेंगे, इसमें सन्देह नही है। ।१८६।।

उत्फालक ने कहा-

इस प्रकार से कह कर भगवान् प्रभु शिव नन्दी, भृंगी आदि के साथ वहीं पर स्थित हो गये और नहुषेश्वर कहलाये। ।१८७।।

वह राजा भी देवलोक में गया। वहां उस प्रभु की देवताओं ने स्तुति की। उस पर चंवर डुलाये गये और वह विविध छत्रों से सुशोभित हुआ। ।१८८।।

इस क्षेत्र का सेवन करने से वह वहां देवलोक में इन्द्र हुआ था। इस प्रकार जो अब तुमने पूछा था, वह मैंने पुनः तुमसे कह दिया है। ।१८९।।

आज भी उस प्रदेश में सिंहों और बाघों के रूप में शिव के गण पार्वती के पति शिव की सेवा करने के लिये आते हैं। ।१९०।।

हे राजन् ! वहां तक्षक नाम का एक काला सर्प है, जो उस प्रदेश में उत्तम शिव की सेवा करता है। ।१९१।।

जो व्यक्ति वहां रुद्राध्याय का पाठ करके शिव का अभिषेक करता है, उसने निश्चय से देवताओं से भी दुष्प्राप्य तप को कर लिया है। ।१९२।।

पुत्र को चाहने वाला और धन को चाहने वाला जो कोई व्यक्ति भक्तिभाव से एक पक्ष (१५ दिन) तक अभिषेक करता है, वह उसको निस्सन्देह प्राप्त करता है। ।१९३।।

हे नरश्रेष्ठ ! उससे ऊपर शुभदायक पर्वत पर देवीपीठ बताया गया है, जो दो गव्यूति (४ कोस) विस्तृत है। ।१९४।।

जहां देवी महेशानी शिव के साथ विद्यमान रहती हैं। उस पीठ के दर्शन करने से ही मनुष्य महान् पापों से मुक्त हो जाता है। ।१९५।।

उस पीठ के माहात्म्य का वर्णन करने में कौन समर्थ है ? वह पीठ महापुण्यशाली है और उसको नाम भौवन है। ।१९६।।

हे राजन् ! इस प्रकार शक्तिजा के क्षेत्र में स्वर्ग और मोक्ष को देने वाले जो श्रेष्ठ तीर्थ हैं, उनको मैंने वर्णन कर दिया है। ।१९७।।

शक्तिजा के संगम से ऊपर गङ्गा के दक्षिणी तट पर उपेन्द्रजा नाम की नदी है, जो विष्णुलोक को देने वाली है। ।१९८।।

उपेन्द्रो ब्राह्मणो यां तु पुत्रीत्वेनाऽन्वकल्पयत्।
यत्सङ्गमे हि सुस्नातो नित्यं स्वर्गे वसत्यहो।।१९९।।

तत ऊर्ध्वप्रदेशे हि माने शरचतुष्टये।
पर्वते परितो राजन्कन्दुकेश्वरभैरवः।।२००।।

जीवनेन्द्रेण राज्ञा वै स्थापितः सुखहेतवे।
भैरवाज्ञां गृहीत्वा वै गच्छेत्सूक्ष्मे हि क्षेत्रके।।२०१।।

एतदन्तं महाराज स्थूलक्षेत्रं हि पर्वते।
पुनर्हर्षवती तीराद्यावत्कोलगिरिर्भवेत्।।२०२।।

एतानि तीर्थराजानि स्थूलक्षेत्रे हि नैर्ऋते।
कथितानि तवाग्रे हि श्रोतुर्मोक्षप्रदानि च।।२०३।।

य इदं शृणुयान्मर्त्यस्तीर्थानां कथनं महत्।
स एतत्सर्वतीर्थेषु स्नातो भवति निश्चितम्।।२०४।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे श्रीक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं नाम
एकोनाशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः।।

अशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः

सुखाश्रमकथनप्रसङ्गेन जीवनेन्द्रवृत्तकथनम्, लास्यतीर्थ-
कथनम्, गङ्गागौरीसङ्गमस्थिततीर्थवर्णनम्, मञ्जुघो-
षाख्यभैरवस्य नदीनां पञ्चकन्यानां कथनम्, भैरवस्थान-
कथनम्

उत्फालक उवाच-

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि सूक्ष्मक्षेत्रे हि भूपते।
यानि क्षेत्राणि पुण्यानि प्रवराण्येव सन्ति हि।।१।।

जीवनेन्द्रो महाराजश्चन्द्रवंशविवर्द्धनः।
तस्याऽयमाश्रमः पूर्वं बभूव नृपशेखर।।२।।

पश्चात्सुखाश्रमत्वं हि प्राप्तो वै शान्तचेतसाम्।
मुनीनां मुनिवर्याणां तपसा दग्धपाप्मनाम्।।३।।

उपेन्द्र नाम के ब्राह्मण ने इसकी पुत्री के रूप में कल्पना कर ली थी। अहो ! इसके संगम में अच्छी प्रकार नित्य स्नान करने से मनुष्य स्वर्ग में निवास करता है।।१९९।।

हे राजन् ! उससे ऊपर चार शरविक्षेप दूर पर्वत पर चारों ओर कन्दुकेश्वर नाम के भैरव हैं।।२००।।

जीवनेन्द्र नाम के राजा ने सुख प्राप्त करने के लिये इस भैरव की स्थापना की थी। इस भैरव की आज्ञा लेकर ही सूक्ष्म श्रीक्षेत्र में जावे।।२०१।।

हे महाराज ! पुन: हर्षवती के तट से लेकर कोलगिरि पर्वत के अन्त तक स्थूल श्रीक्षेत्र है।।२०२।।

स्थूल श्रीक्षेत्र की नैर्ऋत (दक्षिण-पाश्चिम) दिशा में इन तीर्थराजों का वर्णन तुम्हारे समक्ष कह दिया है। ये सुनने वालों को मोक्ष प्रदान करते हैं।।२०३।।

जो मनुष्य इन तीर्थों के महान् कथन को सुन भी लेता है, उसने निश्चित रूप से इन सब तीर्थों में स्नान कर लिया है।।२०४।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में श्रीक्षेत्रमाहात्म्यवर्णन नाम का १७९ वां अध्याय समाप्त हुआ।।

अध्याय - १८०

सुखाश्रम का वर्णन, जीवनेन्द्र की कथा, लास्य तीर्थ का वर्णन, गङ्गा-गौरी नदियों के सङ्गम पर स्थित तीर्थों का वर्णन, मञ्जुघोष नामक भैरव की पञ्चकन्या रूप नदियों का कथन, भैरव के स्थान का वर्णन

उत्फालक ने कहा-

हे राजन् ! सुनो। मैं तुमको बताऊंगा कि सूक्ष्म श्रीक्षेत्र में जो श्रेष्ठ पुण्य क्षेत्र हैं।।१।।

हे राजाओं में श्रेष्ठ! चन्द्रवंश की वृद्धि करने वाले महाराज जीवनेन्द्र थे। यहां पहले उनका यह आश्रम था।।२।।

वृद्धावस्था में वे शान्त मन वाले एवं तपस्या से पापों को जला देने वाले श्रेष्ठ मुनियों के सुखदायक आश्रम में गये थे।।३।।

एकदा स महाराजो मृगयायै गतः प्रभुः।
अश्ववारैश्च बहुभिर्नानाशस्त्रविराजितैः।।४।।

हतास्तेन वराहाश्च मृगाः सिंहादयस्तथा।
एवं वै क्रीडतस्तस्य जीवनेन्द्रस्य भूपते।
अग्रे वै आगतोऽकस्माद्वराहः पर्वतोपमः।।५।।

वराहमागतं दृष्ट्वा धनुः सज्जं चकार ह।
बाणं सन्धाय बाणासे शूकराय ससर्ज ह।।६।।

तस्य वै पृष्ठदेशे हि लग्नो बाणो महीभृतः।
सः बाणः शूकरं प्रागान्महारण्ये भयानके।।७।।
सोऽपि राजा महाबाहुस्तस्य वै पृष्ठतोऽन्वगात्।
त्यक्त्वा सेनां स्वकीयां च जनहीनो बभूव ह।।८।।

एकाकी स महाराजो हयपृष्ठस्थितः प्रभुः।
तृषार्त्तः स बभूवाऽथ चिन्ताविष्टमनास्तथा।।९।।

जगाम विपिने देशे झिल्लिझङ्कारनादिते।
एतस्मिन्नन्तरे भूप शूकरं न ददर्श ह।।१०।।

ततो राजा जीवनेन्द्रो जललोभेन भूपते।
अवतीर्य हयात्तूर्णं गुहायां प्रविवेश ह।।११।।

ततोऽग्रे जीवनेन्द्रस्तु गुहामध्ये महायशाः।
अधोऽधश्चलतस्तस्य जीवनेन्द्रस्य धीमतः।
प्रकाशो हि मणीनां च बभूवाऽग्रे रसाधिप।।१२।।

ततो वै योजनेऽधस्ताद्ददर्शाऽश्वत्थवृक्षकम्।
पत्रे पत्रेऽल्पमुनिकं योजनायामविस्तृतम्।।१३।।

गजप्रमाणफलकं स्रवद्दुग्धं कलेवरात्।
ततो मुनिगणं पश्चाद्ददर्शाऽश्वत्थमूलके।।१४।।

तत्रैकं मुनिवन्द्यं च शालवृक्षोपमं शुभम्।
व्याघ्रचर्मासनं ध्यानसंलग्ननयनं तथा।।१५।।

एक दिन वे महाराज प्रभु विविध शस्त्रों से सुशोभित अनेक घुड़सवारों से घिरे हुये शिकार खेलने के लिये गये।।४।।

उन्होंने अनेक सूअरों, मृगों, सिंह आदि का वध किया। इस प्रकार, हे राजन्! जबकि जीवनेन्द्र शिकार खेल रहे थे, उसके आगे अकस्मात् एक पर्वत के समान विशालकाय सूअर आ गया।।५।।

सूअर को आया देख कर उन्होंने धनुष पर डोरी चढा ली। धनुष पर बाण का सन्धान करके उन्होंने सूअर पर छोड़ दिया।।६।।

उस राजा का बाण सूअर की पीठ पर लगा। वह बाण सूअर को महान् भयानक वन में ले गया।।७।।

वे महाबाहु राजा भी अपनी सेना को छोड़ कर उसके पीछे चले गये। इस प्रकार वे साथियों से बिछुड़ गये।।८।।

अकेले वे महाराज प्रभु घोड़े की पीठ पर स्थित प्यास से पीडित हो गये और उनका मन चिन्ता से भर गया।।९।।

वे झिल्लियों की झङ्कार से ध्वनित जंगल में पहुंचे। हे राजन्। इसी मध्य में उन्होंने सूअर को नहीं देखा।।१०।।

हे राजन्! उसके पश्चात् वे राजा जीवनेन्द्र जल के लोभ से शीघ्र घोड़े से उतर कर गुफाओं में प्रवेश कर गये।।११।।

तदनन्तर महायशस्वी राजा जीवनेन्द्र गुहा के मध्य आगे और आगे गये। हे पृथिवी के स्वामी धर्मनेत्र! उस राजा जीवनेन्द्र के नीचे और नीचे चलते हुये उनके समक्ष मणियों का प्रकाश हुआ।।१२।।

तदनन्तर उन्होंने एक योजन नीचे एक अश्वत्थ वृक्ष को देखा। वह एक योजन विस्तार का था और उसके पत्ते-पत्ते पर छोटे मुनि थे।।१३।।

उस वृक्ष पर हाथी के बराबर बड़े फल थे और कलेवर से दूध बह रहा था। तदनन्तर उसने अश्वत्थ के मूल में मुनियों को देखा।।१४।।

वहां एक शाल वृक्ष के समान शुभ वन्दनीय मुनि थे। वे व्याघ्र-चर्म के आसन पर बैठे थे और आंखें ध्यान में बन्द थीं।।१५।।

दृष्ट्वा च तं मुनिं राजा ननाम शिरसा ततः।
पादयोः पतितः पश्चात्पुनः पुनरुदारधीः।।१६।।

तस्याऽग्रे चाऽञ्जलिं बद्ध्वा मुनिसंन्यस्तमानसः।
जातानि तस्य राज्ञश्च हायनानि ह्यनेकशः।।१७।।

कदाचित्तं महाराजं ददर्श मुनिपुङ्गवः।
स्थितमग्रे ह्येकचित्तं क्षुत्तृष्णारहितं प्रभो।।१८।।

उवाच वचनं प्रीत्या मुनिवर्यो महाद्युतिः।
कस्त्वं पुरुषशार्दूल किमर्थमागतोऽत्र वै।।१९।।

राजोवाच-

अहं तु जीवनेन्द्रो वायागतस्त्वत्समीपके।
सेवितुं चरणौ देव तव सर्गविनाशकौ।।२०।।

ऋषि उवाच-

कोऽधुना वासवस्स्वर्गे के वा हि मुनयस्तथा।
देवाः के मनवश्चैव सर्वं वद महामते।।२१।।

राजोवाच-

इन्द्रः पुरन्दरः ख्यातः स्वर्गलोके महामते।।२२।।

अत्रिर्वसिष्ठो भगवान् कश्यपो गोतमस्तथा।
भारद्वाजस्तथा ब्रह्मन् विश्वामित्रो महामतिः।
जमदग्निश्च सप्तैते साम्प्रतं मुनयस्तथा।।२३।।

साध्या रुद्रास्तथा विश्वे मरुतो वसवोऽश्विनौ।
आदित्यश्च तथा ख्याता देवाश्चैव महामते।।२४।।

वैवस्वतो मनुः ख्यातः पुत्रा इक्ष्वाकवः स्मृताः।
अष्टाविंशं युगं प्रोक्तं तत्र सत्ययुगं स्मृतम्।।२५।।

भवान् कस्मिन्मनौ ब्रह्मंस्तपस्तप्तुमिहागतः।
विस्मयो मे महानासीत्तद्वदस्व च हे मुने।।२६।।

उदार बुद्धि वाले राजा ने उस मुनि को देख कर सिर झुका कर प्रणाम किया और पीछे बार-बार पैरों में गिरा।।१६।।

मुनि के प्रति मन को लगा कर उसके समक्ष हाथ जोड़ कर खड़े उस राजा को अनेक वर्ष व्यतीत हो गये।।१७।।

हे प्रभो धर्मनेत्र ! उस मुनिश्रेष्ठ ने कभी भूख-प्यास से रहित एवं एकचित्त होकर सामने खडे हुये उन महाराज को देखा।।१८।।

महातेजस्वी मुनिश्रेष्ठ ने उससे प्रेम से यह वचन कहा- हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम कौन हो और यहां क्यों आये हो ?।।१९।।

राजा ने कहा-

हे देव ! मैं जीवनेन्द्र नाम का हूं। सृष्टि के बन्धन को तोड़ने वाले आपके चरणों की सेवा करने के लिये निश्चय से आपके समीप आया हूं।।२०।।

ऋषि ने कहा-

हे महामते ! अब स्वर्ग में इन्द्र कौन है और कौन कौन मुनि हैं ? देवता और मनु कौन है ? यह सब मुझसे कहो।।२१।।

राजा ने कहा-

हे महामते ! स्वर्ग लोक में पुरन्दर इन्द्र प्रसिद्ध है।।२२।।

हे ब्रह्मन् ! इस समय अत्रि, भगवान् वसिष्ठ, कश्यप, गोतम, भारद्वाज, महामति विश्वामित्र और जमदग्नि ये सात मुनि हैं।।२३।।

हे महामते ! साध्य, रुद्र, विश्वेदेव, मरुत्, वसु, अश्विनौ और आदित्य देवता प्रसिद्ध हैं।।२४।।

वैवस्वत मनु प्रसिद्ध हैं। उसके इक्ष्वाकु पुत्र हैं। यह सत्ययुग है और उसका २८ वां युग है।।२५।।

हे ब्रह्मन् ! आप किस मनु के युग में तपस्या करने के लिये यहां आये थे। हे मुने! मुझको इसका महान् विस्मय है। मुझको यह बताओ।।२६।।

ऋषिरुवाच-

स्वायंभुवमनुप्राप्त आग्नीध्र इति विश्रुतः।
कृत्वा राज्यादिभोगांश्च प्राप्य वै पुत्रपौत्रकान्।
आगतोऽत्र तपस्तप्तुमस्मिन् वै क्षेत्रके वरे।।२७।।

तदाद्यहं महाराज स्थितोऽस्मि तपसि प्रभो।
नाऽहं वेद्मि युगादीनां व्यवस्थां पृथिवीपते।
अतः पृष्टोऽसि हे राजंस्त्वयेदानीं क्व गम्यते।।२८।।

राजोवाच-

राजाऽहमस्य देशस्य मृगयासक्तमानसः।
आगतो हि वने देव नानामृगसमाकुले।।२९।।

हत्वा मृगगणान्सर्वांस्तृषार्त्तोऽहं तदाऽभवम्।
त्यक्त्वाऽश्वमत्र देशे वै आगतोऽस्मि त्वदन्तिके।।३०।।

किं कर्त्तव्यं मयेदानीं गृहमार्गो न दृश्यते।
यत्कर्त्तव्यं मयेदानीं तद्वदस्व महामते।।३१।।

ऋषिरुवाच-

जीवनेन्द्र महाराज नयने हि निमीलय।
स्वयमेव हि राजंस्त्वं गमिष्यसि महामते।।३२।।

उत्फालक उवाच-

इति श्रुत्वा वचस्तस्य जीवनेन्द्रो महाद्युतिः।
निमील्य नयने राजा सहसा बहिरागतः।।३३।।

उन्मील्य नयने राजा ददर्श वनमुत्तमम्।
यस्मिन् वने महाराज मृगयां प्रचकार ह।।३४।।

गङ्गातीरे स्थितस्तत्र जलं वै पीतवांस्तथा।
जलं पीत्वा जीवनेन्द्रो हयं तं न ददर्श ह।।३५।।

आययौ पादचारेण नगरे स्वे महीपतिः।
तत्र राजा समागत्य यत्राऽभून्नगरं पुरा।।३६।।

शालांस्तालांस्तमालांश्च बकुलान् देवदारुकान्।
गृहं न तत्र कुत्राऽऽसीत् क्वाऽपि वै राजसत्तम।।३७।।

ऋषि ने कहा-

मैं स्वायम्भुव मनु के समय आया था। मेरा नाम आग्नीध्र प्रसिद्ध था। राज्य आदि भोगों का भोग करके और पुत्र-पौत्रों को प्राप्त करके मैं इस उत्तम क्षेत्र में तपस्या करने के लिये आया था।।२७।।

हे महाराज प्रभो ! तबसे लेकर मैं तपस्या में स्थित हूं। हे राजन् ! मैं युग आदि की व्यवस्था को नहीं जानता हूं। हे राजन् ! इसीलिये मैंने पूछा था कि तुम कहां जाते हो ?।।२८।।

राजा ने कहा-

हे देव ! मैं इस देश का राजा हूं। शिकार खेलने में आसक्त मन वाला मैं अनेक मृगों से भरे हुये वन में आया था।।२९।।

सब मृगों को मार कर मैं प्यास से पीडित हो गया। घोड़े को छोड़ कर इस देश में आपके समीप आ गया हूं।।३०।।

मुझको अब क्या करना चाहिये ? घर का मार्ग दिखाई नहीं देता है। हे महामते! जो मुझको अब करना चाहिये, वह कहिये।।३१।।

ऋषि ने कहा-

हे महाराज ! जीवनेन्द्र ! आंखों को बन्द कर लो। हे महामते ! तुम स्वयं ही घर को चले जाओगे।।३२।।

उत्फांलक ने कहा-

महातेजस्वी उस राजा जीवनेन्द्र ने यह वचन सुन कर आंखें बन्द कर लीं और वह सहसा बाहर आ गया।।३३।।

हे महाराज ! आंखें खोल कर राजा ने उस उत्तम वन को देखा, जिसमें कि वह शिकार खेल रहा था।।३४।।

गङ्गा के तट पर स्थित होकर उसने जल पिया। जल पीकर जीवनेन्द्र ने वह अश्व नहीं देखा।।३५।।

वह राजा पैदल ही चल कर अपने नगर में आया। वहां आकर राजा ने देखा कि जहां पहले नगर था।।३६।।

हे राजश्रेष्ठ ! वहां साल, ताल, तमाल, बकुल और देवदारु वृक्ष थे। कहीं पर भी कोई घर नहीं था।।३७।।

गङ्गातीरे ततः स्थित्वा शिवसंन्यस्तमानसः।
यमैः सन्नियमैर्युक्तस्त्यक्तसर्वपरिग्रहः।
शिलायामेकपादेन स्थितवान्कतिचित्समाः।।३८।।

एवं वै तपतस्तस्य तपसा क्षुभितं जगत्।
आययुर्देवताः सद्यो विमानानि सहस्रशः।।३९।।

नन्दिभृङ्ग्यादिभिर्युक्तश्चन्द्रार्द्धो वृषभध्वजः।
उमया सहितस्तत्र भ्राजमानो महेश्वरः।।४०।।

त्रिनेत्रो नीलकण्ठश्च नागयज्ञोपवीतकः।
अग्रे समाययौ तस्य तप्यमानस्य धीमतः।।४१।।

उवाच वचनं प्रीत्या सन्तुष्टस्तपसा तदा।।४२।।

श्रीशिव उवाच-

राजन्मदालये गच्छ मत्तुल्यो भव सत्वरम्।
त्वत्समो नास्ति त्रैलोक्ये तपस्वी मम भक्तिमान्।।४३।।

अस्मिन् क्षेत्रेऽपि यो मर्त्यः स्नानं दानं जपं तथा।
प्रकरिष्यति तत्सर्वं शतकोटिगुणं भवेत्।।४४।।

उत्फालक उवाच-

सोऽपि राजा महाबाहुर्बभूव वृषभध्वजः।
त्रिनेत्रः शूलहस्तश्च चन्द्रार्द्धकृतशेखरः।।४५।।

ययौ देवगतिं पश्चाद् गणैश्च शतशो वृतः।
एवं तन्नगरं भूप प्राप्तवाञ्छ्रमतो मुने।।४६।।

अस्मादेव महातीर्थादुत्तरस्यां दिशि प्रभो।
माने पृषक्तमात्रे हि गङ्गातीरे महीश्वर।
लास्यतीर्थं समाख्यातं सर्वमुक्तिफलप्रदम्।।४७।।

यत्र श्रीविश्वनाथो हि ननर्त्त भक्तवत्सलः।
दुर्वाससो हि तपसा तुष्टो देवो महेश्वरः।।४८।।

वरं वरय भद्रं ते इत्युवाच मुनिं शिवः।
दुर्वासा अपि पूर्णत्वादुवाच च महेश्वरम्।।४९।।

तदनन्तर गङ्गा के तट पर स्थित होकर उसने शिव के प्रति मन लगाया। सब परिग्रह को छोड़ कर यम-नियम का पालने करने लगा। वह कई वर्ष तक एक शिला पर एक पैर से खड़ा रहा।।३८।।

इस प्रकार तप करते हुये उसके तप से सारा संसार क्षुब्ध हो गया। शीघ्र ही हजारों विमानों पर बैठ कर देवता आ गये।।३९।।

नन्दी-भृंगी आदि गणों से युक्त, अर्धचन्द्र को धारण किये हुये, पार्वती के साथ, दीप्तिमान्, वृषभध्वज, महेश्वर....।।४०।।

तीन नेत्रों वाले, नीले कण्ठ वाले, सर्प के यज्ञोपवीत को पहने हुये शिव तपस्या करते हुये उस बुद्धिमान् जीवनेन्द्र के समक्ष आये।।४१।।

तब तपस्या से सन्तुष्ट हुये उन्होंने यह वचन कहा।।४२।।

श्रीशिव ने कहा-

हे राजन्! तुम मेरे लोक में चलो और मेरे समान हो जाओ। तीनों लोकों में कोई भी तपस्वी तुम्हारे समान मेरा भक्त नहीं है।।४३।।

इस क्षेत्र में जो भी मनुष्य स्नान, दान और जप करेगा, वह उसका सब सौ करोड़ गुना हो जायेगा।।४४।।

उत्फालक ने कहा-

वह महाबाहु राजा जीवनेन्द्र भी वृषभध्वज हो गया। उसके तीन नेत्र हो गये, हाथ में त्रिशूल आ गया। आधे चन्द्रमा का शिरोभूषण हो गया।।४५।।

पीछे वह सैंकड़ों गणों से घिरा हुआ देव गति को प्राप्त हुआ। हे मुने राजन्! इस प्रकार श्रम करके वह उस नगर में पहुंचा था।।४६।।

हे प्रभो पृथिवी के स्वामिन्! इसी महातीर्थ से उत्तर दिशा में एक शरविक्षेप दूर, गङ्गा के तट पर, सब मुक्ति के फल को देने वाला लास्य तीर्थ है।।४७।।

यहां दुर्वासा के तप से सन्तुष्ट होकर देव महेश्वर भक्तवत्सल विश्वनाथ ने नृत्य किया था।।४८।।

शिव ने मुनि से कहा था कि उत्तम वर को मांग लो। सब इच्छाओं के पूर्ण होने से दुर्वासा ने भी महेश्वर से कहा।।४९।।

श्रुतं मया बहुमुखैः शिवो नृत्यति स्वे गृहे।
तं नृत्यं द्रष्टुकामोऽस्मि यदि ते मय्यनुग्रहः।।५०।।

इति श्रुत्वा वचस्तस्य ननर्त्त मुनिसन्निधौ।
धन्यः सदाशिवः साक्षात्परब्रह्ममहेश्वरः।।५१।।

अनिच्छकोऽपि भक्तानां मनोरञ्जनहेतवे।
सकामः सोऽपि भवति नृत्यति क्रीडयत्यपि।।५२।।

भक्तप्रेरणया देवः सर्वं वै प्रकरोति हि।
ततोऽस्य तीर्थराजस्य नामधेयं तथैव च।
लास्यतीर्थमिति ख्यातं शिवलोकप्रदायकम्।।५३।।

अस्मिंस्तीर्थेऽपि यो भर्त्यः स्नानं दानं जपक्रियाम्।
तत्सर्वं कोटिगुणितं शिवप्रीतिश्च जायते।।५४।।

तत ऊर्ध्वे पर्वते वै मायानाम्नी महेश्वरी।
यस्यास्तु दर्शनात्सद्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते।।५५।।

तस्मिन्स्थानेऽपि यो मर्त्यो देवीपूजनकारकः।
बलिभिर्धूपदीपैश्च जपेद्वै शत्रुदाहनीम्।
तस्य सर्वाणि कार्याणि सिद्ध्यन्त्येव न संशयः।।५६।।

तत्रैव च महादेवो मायेश्वर इतीरितः।
यस्य वै दर्शनात्सद्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते।।५७।।

तस्मादधो महाराज जलं निस्सरति ध्रुवम्।
तस्मिञ्जले सकृत्स्नातो महापापैः प्रमुच्यते।।५८।।

लास्यतीर्थान्महाराज क्रोशार्द्धे शिवदायकः।
गौर्याश्चैव तु गङ्गायाः सङ्गमोऽतिशुभप्रदः।।५९।।

गौरीप्रयाग इति वै तीर्थानां तीर्थमुत्तमम्।
यत्र वै तु सकृत्स्नातुरश्वमेधफलं भवेत्।।६०।।

मैंने बहुतों के मुख से सुना था कि शिव अपने घर में नृत्य करते हैं। यदि आपकी मुझ पर कृपा है, तो उस नृत्य को देखना चाहता हूं।।५०।।

दुर्वासा के इस वचन को सुन कर धन्य, साक्षात् परम ब्रह्म महेश्वर सदाशिव मुनि के समीप नृत्य करने लगे।।५१।।

इच्छा न रखते हुये भी भक्तों का मनोरञ्जन करने के लिये वे शिव कामना करते हैं, नृत्य करते हैं और क्रीडा भी कराते हैं।।५२।।

भक्तों की प्रेरणा से वे देव सब कुछ करते हैं। इसलिये इस तीर्थराज का नाम उसी प्रकार से लास्यतीर्थ प्रसिद्ध हुआ, जो शिवलोक को देने वाला था।।५३।।

इस तीर्थ में भी मनुष्य जो स्नान, दान और जप करता है, वह सब करोड़ गुना हो जाता है और शिव की प्रसन्नता होती है।।५४।।

उससे ऊपर पर्वत पर माया नाम की महेश्वरी है, जिसका दर्शन करने से मनुष्य शीघ्र ही सब पापों से मुक्त हो जाता है।।५५।।

उस स्थान पर भी जो मनुष्य देवी का पूजन बलि, धूप और दीपों से करता है और शत्रुओं को जला देने वाली देवी का जप करता है, उसके सारे कार्य सिद्ध हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है।।५६।।

वहीं पर मायेश्वर नाम के महादेव हैं, जिनका दर्शन करने से मनुष्य शीघ्र ही सारे पापों से छूट जाता है।।५७।।

हे महाराज! उससे नीचे निश्चय रूप से जल निकलता है। उस जल में एक बार स्नान करने से मनुष्य सारे पापों से मुक्त हो जाता है।।५८।।

हे महाराज! लास्यतीर्थ से आधे कोस दूर शिव को प्रदान करने वाला गौरी और गङ्गा नदियों का अति शुभप्रद संगम है।।५९।।

इसको गौरीप्रयाग कहते हैं। यह तीर्थों में उत्तम तीर्थ है। यहां एक बार स्नान करने वाले को अश्वमेघ यज्ञ करने का फल मिलता है।।६०।।

गौरीप्रयागके स्नात्वा पुनर्जन्म न विद्यते।
एतत्तीर्थसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति।।६१।।

यत्र गौरी सरिच्छ्रेष्ठा गङ्गया सह सङ्गता।
यथा गङ्गा तथा गौरी ह्येतयोरन्तरं न हि।।६२।।

सर्वत्र दुर्लभा गौरी सर्वपापप्रणाशिनी।
गङ्गायां हि विशेषेण सङ्गमाद्राजसत्तम।।६३।।

सङ्गमाच्छरविक्षेपे गङ्गागौर्योर्महेश्वर।
वरेश्वरी सरिच्छ्रेष्ठा समायाता नदी वरा।।६४।।

अत्र श्रीरमणं नाम तीर्थानां तीर्थमुत्तमम्।
यत्र स्नात्वा महापापो निष्पापो भवति क्षणात्।।६५।।

वारुणे पर्वते रम्ये यत्र कुत्राऽपि यज्जलम्।
तज्जलं शिरसा धृत्वा वारुणे नगरे वसेत्।।६६।।

ततः श्रीरमणात्तीर्थादूर्ध्वभागे नगेश्वरे।
गौर्यास्सुसङ्गमो यत्र नदी परमपुण्यदा।।६७।।

इन्द्राणीति समाख्याता सर्वकामप्रदायिनी।
तस्मिन्सङ्गमके स्नात्वा मासमात्रेण भूपते।
मोक्षपात्रं भवेत्सद्यो जातिं स्मरति पौर्विकीम्।।६८।।

तस्मादपि महातीर्थात्क्रोशमाने नराधिप।
गौरीनकुलवत्योश्च सङ्गमो भवति प्रभो।।६९।।

ऋषिप्रयागः स ख्यातो विश्वपाशविमोचनः।
यैः कृतं पिण्डदानं हि भक्त्याऽभक्त्याऽपि वा नरैः।
तारितास्तैर्महाराज कुलानामेकविंशतिः।।७०।।

तस्मादूर्ध्वं महाराज क्रोशमाने हि वर्तते।
विश्वप्रयाग इति वै सर्वेषां मुक्तिदायकः।।७१।।

गौरीप्रयाग में स्नान करके पुनर्जन्म नहीं होता। इस तीर्थ के समान तीर्थ न तो हुआ है और न होगा।।६१।।

जहां कि नदियों में श्रेष्ठ गौरी का गङ्गा में मिलन हुआ है। जैसी गङ्गा है, वैसी ही गौरी है। इन दोनों में भेद नहीं है।।६२।।

हे राजश्रेष्ठ ! गङ्गा में विशेष रूप से संगम होने से सब पापों का विनाश करने वाली गौरी नदी सर्वत्र दुर्लभ है।।६३।।

हे महेश्वर ! गङ्गा और गौरी के संगम से एक शरविक्षेप दूर नदियों में श्रेष्ठ उत्तम वरेश्वरी नदी आती है।।६४।।

यहां श्रीरमण नाम का तीर्थों में उत्तम तीर्थ है। यहां स्नान करके महापापी भी क्षण भर में निष्पाप हो जाता है।।६५।।

रमणीय वारुण पर्वत पर जहां कहीं भी जल है, उस जल को सिर पर धारण करके मनुष्य वरुण लोक में निवास करता है।।६६।।

जहां कि गौरी नदी का उत्तम संगम है, वहां से श्रीरमण तीर्थ से ऊपर के भाग में पर्वत पर परम पुण्य को देने वाली नदी....।।६७।।

इन्द्राणी नाम से प्रसिद्ध सब कामनाओं को प्रदान करने वाली है। हे राजन् ! उसके संगम में एक मास तक स्नान करके मनुष्य शीघ्र ही मोक्ष का पात्र हो जाता है और पूर्व जन्म की जाति को स्मरण करता है।।६८।।

हे राजन् प्रभो ! उस महातीर्थ से भी एक कोस दूर गौरी और नकुलवती नदियों का संगम होता है।।६९।।

वह संगम ऋषिप्रयाग कहलाता है। यह विश्व के पाश से मुक्त करने वाला है। जो मनुष्य भक्ति से अथवा भक्ति के विना भी यहां पिण्डदान करते हैं, हे महाराज ! वे अपने कुल की २१ पीढियों को तरा देते हैं।।७०।।

हे महाराज ! उस स्थान से एक कोस दूर ऊपर विश्वप्रयाग है। वह सबको मुक्ति देने वाला है।।७१।।

यत्रैका राजपुत्री वै सर्वविश्वविमोहिनी।
नाम्ना विश्ववती ख्याता तपस्तेपे सुदुष्करम्।।७२।।

शिलैका तत्र देशे तु तस्यां स्थित्वा दृढ़ासना।
परमात्मानं शिवं भूप ध्यायन्ती भक्तितत्परा।।७३।।

शिलायां तत्र देशे सा सर्वसङ्गविवर्जिता।
व्यतीयुर्दशवर्षाणि विश्ववत्या नराधिप।।७४।।

ततः कश्चित्तु जटिल आययौ रक्तनेत्रकः।
व्याघ्रचर्माम्बरधरः श्मश्रुलः शुभ्रदन्तकः।।७५।।

प्रत्युवाच महाबाहो जटिलो राजकन्यकाम्।
प्रस्फुरन्नधरं राजन्स्मितेन परिशोभितः।।७६।।

जटिल उवाच-

किमर्थं क्लिश्यसे भद्रे भूत्वा वै राजकन्यका।
किमपेक्षा विश्ववति तवाऽस्ति कृतपुण्यके।।७७।।

राजकन्योवाच-

किं पृच्छसि मुनिश्रेष्ठ मां वै तपसि संस्थिताम्।
चरिष्यामि तपस्तावद्यावन्मम कलेवरम्।।७८।।

उत्फालक उवाच-

इत्याकर्ण्य वचस्तस्या नृपते शिवसंश्रयाम्।
दृढ़ां भक्तिं समालोक्य प्रत्युवाच शिवस्ततः।।७९।।

जटिल उवाच-

धन्याऽसि कृतकृत्याऽसि दृढ़भक्तिश्च ते शिवे।
वरं वरय हे भद्रे यत्ते मनसि वर्त्तते।।८०।।

यहां विश्ववती नाम से प्रसिद्ध, सब विश्व को विमोहित करने वाली एक राजकुमारी ने दुष्कर तप किया था।।७२।।

हे राजन् ! उस स्थान पर एक शिला है। उस पर दृढ आसन से बैठ कर , भक्ति में तत्पर वह राजकुमारी परमात्मा शिव का ध्यान करने लगी।।७३।।

हे राजन् ! वहां उस देश में शिला पर बैठ कर उसने सारे संग छोड़ दिये। इस प्रकार उस विश्ववती को दस वर्ष व्यतीत हो गये।।७४।।

तब कोई जटाधारी वहां आया। उसके लाल नेत्र थे, व्याघ्र-चर्म के वस्त्र को धारण कर रखा था, मूंछ-दाढी थी, शुभ्र दान्त थे।।७५।।

उसका अधर फड़क रहा था और वह स्मित से शोभायमान था। हे महाबाहो ! उस जटिल ने राजकन्या से कहा।।७६।।

जटिल ने कहा-

हे भद्रे ! राजकन्या होकर तुम कष्ट को क्यों उठा रही हो ? हे विश्ववति ! इस पुण्य को करने में तुम्हारी क्या अपेक्षा है ?।।७७।।

राजकन्या ने कहा-

हे मुनिश्रेष्ठ ! तपस्या में स्थित मुझसे क्या पूछते हो ? जब तक यह मेरा शरीर रहेगा, मैं तपस्या करूंगी।।७८।।

उत्फालक ने कहा-

हे राजन् ! इस प्रकार के उसके वचन को सुन कर और शिव में आश्रित दृढ भक्ति को देख कर तदनन्तर शिव ने उत्तर दिया।।७९।।

जटिल ने कहा-

हे भद्रे ! तुम धन्य हो। तुम कृतकृत्य हो। शिव में तुम्हारी दृढ भक्ति है। जो तुम्हारे मन में है, उस वर को मांग लो।।८०।।

राजकन्योवाच-

बुद्धोऽसि त्वं महादेवो निश्चयेन मया प्रभो।
वसेयमिन्द्रलोके हि त्वयि भक्तिश्च मे सदा।।८१।।

उत्फालक उवाच-

ओमित्युक्त्वा महादेवो तत्रैवाऽन्तरधात्प्रभुः।
इदं पुण्यतमं तीर्थं बभूव च ततः परम्।।८२।।

सङ्गमे कुम्भिकागौर्योः स्नात्वा शिवपुरं व्रजेत्।।८३।।

तस्मात्क्रोशार्द्धके विश्वनाथः साक्षात्सदाशिवः।
यद्दर्शनान्महाबाहो नरः साक्षान्नराधिपः।।८४।।

इति ते कथितान्येव गौर्या तीर्थानि भूमिप।
यानि तीर्थानि हे राजन्निन्द्राण्यां शृणु तानि च।।८५।।

सङ्गमादूर्ध्वभागे हि क्रोशे मुक्तिप्रयागकः।
मुक्तिधारा यत्र देशे इन्द्राण्यां सह सङ्गता।।८६।।

धाराया उत्तरे देशे ह्यौडवे पर्वतेश्वरे।
क्रोशे मुक्तीश्वरो देवः शिवो वसति तत्र हि।।८७।।

यस्य दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते।।८८।।

इन्द्राणीति समायाति कौण्डिन्याश्रमतो ध्रुवम्।
अतः परं महाराज गङ्गाया दक्षिणे तटे।
आश्रमः परमः पुण्यो ह्यलर्कस्य महात्मनः।।८९।।

शिवमाराधयत्तीर्थे प्राप यः परमां गतिम्।
गौरीप्रयागतस्तद्धि पूर्वस्यां शरमात्रके।।९०।।

गङ्गातीरे गुहायां हि शिवः स्वर्णमयः प्रभुः।
स्वर्णेश्वर इति ख्यातो दर्शनान्मुक्तिदायकः।।९१।।

राजकन्या ने कहा-

हे प्रभो ! मैंने जान लिया है कि तुम निश्चय महादेव हो। मैं मांगती हूं कि मैं इन्द्रलोक में निवास करूं और तुम्हारे प्रति मेरे मन में सदा भक्ति बनी रहे।।८१।।

उत्फालक ने कहा-

"ओ३म्" यह कह कर महोत्कट प्रभु वहीं अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर यह स्थान पुण्यतम तीर्थ हो गया।।८२।।

कुम्भिका और गौरी नदी के संगम पर स्नान करके मनुष्य शिवलोक को जाता है।।८३।।

उससे आधा कोस दूर साक्षात् सदाशिव विश्वनाथ हैं। हे महाबाहो ! जिनका दर्शन करने से मनुष्य साक्षात् राजा हो जाता है।।८४।।

हे राजन् ! इस प्रकार गौरी नदी के क्षेत्र में जो तीर्थ हैं, उनको मैंने तुमसे कह दिया है। हे राजन् ! इन्द्राणी नदी के क्षेत्र में जो तीर्थ हैं, उनके विषय में सुनो।।८५।।

संगम से ऊपर के भाग में एक कोस दूर मुनिप्रयाग है। इस स्थान पर मुक्तिधारा का इन्द्राणी नदी के साथ संगम हुआ है।।८६।।

इस धारा के उत्तरी भाग में एक कोस दूर औडव नाम के पर्वत पर मुक्तीश्वर नाम के देव शिव निवास करते हैं।।८७।।

इनके दर्शन मात्र से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है।।८८।।

इन्द्राणी नदी निश्चय से कौंडिन्य के आश्रम से आती है। हे महाराज ! इसके पश्चात् गङ्गा के दक्षिणी तट पर महात्मा अलर्क मुनि का परम पुण्यशाली आश्रम है।।८९।।

उसने इस तीर्थ में शिव की आराधना करके परम गति को प्राप्त किया था। गौरीप्रयाग से पूर्व दिशा में एक शरविक्षेप दूर.....।।९०।।

गङ्गा के तट पर गुफा में स्वर्णमय प्रभु शिव हैं। वे स्वर्णेश्वर नाम से प्रसिद्ध हैं और दर्शन करने से मुक्ति देने वाले हैं।।९१।।

ततो वै उत्तरे भागे गङ्गाया: क्रोशपादके।
विनायकेन देवेनाऽऽराधित: परमेश्वर:।।९२।।

कृतवान्गणनाथं हि तं वै भक्तिसमन्वितम्।
गङ्गातीरे तत्र देशे कुण्डं वैनायकं शुभम्।
यस्यावगाहनान्मर्त्यो लभते गाणपं पदम्।।९३।।

गङ्गाया दक्षिणे तीरे धारा मञ्जुमती शुभा।
अलर्काश्रमत: सा वै शरविक्षेपमात्रके।
यस्यास्तु सङ्गमे स्नातो मञ्जुरूपो भवेन्नर:।।९४।।

पञ्चकन्या भैरवस्य मञ्जुघोषस्य भूमिप।
द्रवरूपेण ता: सर्वा गङ्गायां प्रविशन्ति हि।।९५।।

मञ्जुमती रूपवती दिग्वलिश्च शुभानना।
यशोमतीति पञ्चैता: सर्वपापप्रणाशिका:।।९६।।

तत ऊर्ध्वे पर्वते वै भैरवो मञ्जुघोषक:।
क्षेत्रस्य रक्षकश्चासौ शिवेन हि प्रतिष्ठित:।।९७।।

बलिराजदिने यस्तु दर्शनं प्रकरोति हि।
धनं धान्यं यश: पुत्रं लभते च शिवेरितम्।।९८।।

शुद्धः शान्तमना भूत्वा पूजयेद् भैरवं प्रभुम्।
चतुर्दश्यां च सङ्क्रान्त्यामष्टम्यां सोमवासरे।
कर्त्तव्यं दर्शनं भूत्यै विशेषेण महामते।।९९।।

इति ते कथितान्येव सूक्ष्मक्षेत्रे नराधिप।
तीर्थानि प्रवराण्येव श्रोतु: पुण्यप्रदानि च।।१००।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे श्रीक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं
नामाशीत्युत्तरशतमोऽध्याय:।।

उससे उत्तर भाग में चौथाई कोस दूर गङ्गा के तट पर देव विनायक (गणेश) ने परमेश्वर शिव की आराधना की थी।।९२।।

परमेश्वर ने भक्ति से युक्त उसको गणपति बना दिया। उस स्थान पर गङ्गा के तट पर शुभ वैनायक कुण्ड है। जिसमें स्नान करने से मनुष्य गणपति के पद को प्राप्त करता है।।९३।।

अलर्क के आश्रम से एक शरविक्षेप दूर गङ्गा के दक्षिणी तट पर मंजुमती नाम की शुभ धारा है, जिसके संगम पर स्नान करने से मनुष्य का रूप मनोहर हो जाता है।।९४।।

हे राजन्! मंजुघोष नाम के भैरव की पांच कन्यायें हैं। वे सब जल के रूप में गङ्गा में प्रवेश करती हैं।।९५।।

उनके नाम हैं- मंजुमती, रूपवती, दिग्वलि, शुभानना और यशोवती। ये पांचों सब पापों का विनाश करने वाली हैं।।९६।।

उससे ऊपर पर्वत पर मंजुघोष नाम का भैरव रहता है। उसको शिव ने इस क्षेत्र के रक्षक के रूप में प्रतिष्ठित किया था।।९७।।

जो मनुष्य बलिराज के दिन उसका दर्शन करता है, वह शिव के द्वारा कहे गये धन, धान्य, यश और पुत्र को प्राप्त करता है।।९८।।

शुद्ध और शान्त मन वाला होकर भैरव का पूजन करे। हे महामते! चतुर्दशी में, संक्रान्ति में, अष्टमी में और सोमवार में विशेष रूप से ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये उसका दर्शन करना चाहिये।।९९।।

हे राजन्! इस प्रकार मैंने सूक्ष्म श्रीक्षेत्र में स्थित उत्तम तीर्थों का वर्णन कर दिया है। सुनने वाले को भी ये पुण्य प्रदान करते हैं।।१००।।

इस प्रकार स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में श्रीक्षेत्रमाहात्म्यवर्णन नाम का १८० वां अध्याय समाप्त हुआ।।

